श्रीतुकाराम-चरित्र

(जीवनी और उपदेश)

लेखक—

श्रीलक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकर बी० ए०

अनुवादक—

श्रीलक्ष्मण नारायण गर्दे

मुद्रक तथा प्रकाशक—
घनश्यामदास जालान
गीताप्रेस, गोरखपुर ।

सं० १९९१ प्रथम संस्करण ३२५०
मूल्य १≋) एक रुपया तीन आना
सजिल्द १॥) डेढ़ रुपया

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर ।

ॐ

अनुक्रमणिका

ॐ

चित्र-सूची

श्री विठ्ठल

श्रीविट्ठल प्रसन्न

प्रस्तावना

भगवान् श्रीपाण्डुरङ्गकी कृपासे आज श्रीकृष्णजन्माष्टमी (संवत् १९७७) के परम शुभ अवसरपर मैं अपने पाठकोंको श्रीतुकाराम महाराजका यह चरित्र भेंट करता हूँ। चरित्रग्रन्थोंमें मेरा प्रथम प्रयास 'महाकवि मोरोपन्त और काव्यविवेचन' था जो आठ वर्षके सतत उद्योगके फलस्वरूप संवत् १९६५ में (मराठी भाषामें) प्रकाशित हुआ। इसके अनन्तर श्रीएकनाथ महाराजका संक्षिप्त चरित्र संवत् १९६७ के पौष मासमें और ज्ञानेश्वर महाराजका चरित्र और ग्रन्थ-विवेचन संवत् १९६९ के चैत्र मासमें प्रकाशित हुआ। इसके आठ वर्ष बाद यह ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। श्रीतुकाराम महाराजके ऋणसे अंशतः मुक्त होनेका यह सुअवसर भगवान्‌ने प्रदान किया, इसके लिये उन दयाघन श्रीनारायणके चरणकमलोंमें प्रणामकर किञ्चित् प्रास्ताविक आरम्भ करता हूँ।

सबसे पहले इस ग्रन्थके आधारके सम्बन्धमें कुछ कहना आवश्यक है। प्रथम और मुख्य आधार श्रीतुकारामकी अभङ्गवाणी ही है। महाराजका चरित्र यथार्थमें उनके अभङ्गोंमें ही चित्रित है। उनका अन्तरङ्ग, उनका अभ्यास, उनके अनुभव और उपदेश उनके अभङ्गोंमें इतनी उत्तमताके साथ निखर आये हैं कि इतना सुन्दर वर्णन और किसीसे भी न बन पड़ेगा। महाराजके अभङ्गोंको जो जितनी ही आस्था, आदर और चावसे पढ़ेगा और मनन करेगा, उसके सामने महाराज भी अपना हृदय, उतना ही अधिक, खोलकर रख देंगे। महाराजकी पूर्वपरम्पराको अवश्य ही समझ लेना होगा। मैं यह निःसंकोच और निधड़क कह सकता हूँ कि परम्पराको समझते हुए श्रीतुकाराम महाराजकी वाणीके श्रवण-मनन-निदिध्यासनरूप सत्संगमें मेरे जीवनके

कुछ दिन यानी बीस-पचीस वर्ष बीते हैं। श्रीतुकाराम महाराजके अभंग उनके सहज उद्गार हैं, उनमें कृत्रिमता नाममात्रको भी नहीं है—न विचारोंमें है, न भाषामें ही। कुछ ग्रन्थ ज्ञानसंग्राहक होते हैं, कुछ उपदेशपरक और कुछ स्वगतभाषणरूप। तुकाराम महाराजने जो अभङ्ग रचे वे संसारके ज्ञानभण्डारको भरनेकी बुद्धिसे नहीं रचे। संसारको सीख देनेके लिये कुछ अभङ्ग उन्होंने कहे हैं सही, पर अधिकांश अभङ्ग उनके, भगवान्‌के साथ एकान्तकी सहज स्फूर्तिसे ही निकले हुए हैं। अथवा कुछ ऐसे भी अभङ्ग हैं जो उनके स्वगतसंलापसे निकल पड़े हैं। 'तुका कहे करूँ, मनसे संवाद। अपनी ही बात, आपसे ही,' ऐसा उनके मनका बैठका था, इससे उनके अभङ्ग प्रायः उनके स्वगतभाषणोद्गारसे ही हैं। अनेक प्रसङ्गोंका वर्णन इस चरित्रग्रन्थमें उन्हींके अभङ्गोंद्वारा हुआ है। स्थान-स्थानपर जो उनके अभङ्गोंके अवतरण दिये हैं उसका कारण भी यही है।

श्रीतुकारामकी अभङ्गबानी ही इस चरित्रका मुख्य और प्रथम आधार तो है ही; पर इन अभङ्गोंका चुनाव कैसे किया, किन-किन संग्रहोंको देखा और किनको प्रमाण माना, यह भी यहाँ बता देना आवश्यक है। सबसे पहले, माधवचन्द्रोबाने संवत् १९२२–२४ में तुकारामकी 'गाथा' शिलाप्रेसमें छापकर प्रकाशित की। इसमें ३३२८ अभङ्ग थे। इसके पश्चात् बम्बई-शिक्षाविभागके डाइरेक्टर सर अलेकजैण्डर ग्रांटकी सिफारिशसे बम्बई-सरकारने चौबीस हजार रुपया खर्च करके विष्णुशास्त्री पण्डित तथा शङ्कर पाण्डुरङ्ग पण्डितसे संशोधन कराकर साढ़े चार हजार अभङ्गोंका एक संग्रह इन्दुप्रकाश प्रेससे छपवाकर प्रकाशित किया। इन पण्डितद्वयने देहू, तलेगाँव, कडूस और पण्ढरपुरकी पुरानी हस्त-लिखित प्रतियोंको देखकर एक प्रति तैयार की और इस प्रकार यह ग्रन्थ संवत् १९२६ में प्रकाशित हुआ। इसपर वारकरियोंके तत्कालीन प्रसिद्ध नेता भारू काटकरकी मुहर लगी है और बड़े-बड़े अक्षरोंमें यह लिखा है कि 'इस ग्रन्थको हमने देहू स्थानमें देखा है। यह सबके लेनेयोग्य है।' इस ग्रन्थमें आरम्भमें श्रीतुकाराम

महाराजका चरित्र अंगरेजी और मराटी भाषाओंमें दिया गया है। जो महीपति बावाके आधारपर लिखा गया है इसमें पादटिप्पणियोंमें पाठभेद तथा कठिन शब्दोंके अर्थ दिये गये हैं। जिन पुरानी हस्तलिखित प्रतियोंपरसे यह ग्रन्थ उतारा गया, उन प्रतियोंको मैंने देखा है। ये सब प्रतियाँ सौ-सवा सौ वर्षके आगेकी नहीं हैं, तथापि उनकी कोई परम्परा तो अवश्य है। इन पण्डितद्वयको सन्ताजी जगनाडेकी वही देखनेको नहीं मिली, यह भी स्पष्ट है; तथापि सब बातोंका विचार करते हुए 'इन्दुप्रकाश' से प्रकाशित यह संग्रह बहुत अच्छा है। छपे हुए संग्रहोंमें सबसे अच्छा संग्रह यही है। इसके बाद मॉडगाँवकरजीने भी पाठभेदोंके साथ एक संग्रह छापा है। आपटे और निर्णयसागर आदिने भी विषयविभाग करके भिन्न-भिन्न संग्रह प्रकाशित किये हैं। तुकाराम तात्याका नौ हजार अभङ्गोंका संग्रह संवत् १९४६ में प्रकाशित हुआ। तुकाराम महाराजके अभङ्गोंका सुस्थिर एकाग्र दृष्टिसे विचार करनेपर इस संग्रहमें संगृहीत अनेक अभङ्ग तुकारामके नहीं प्रतीत होते, पर इसका यह मतलब नहीं कि इस संग्रहके ऐसे सभी अभङ्ग जो अन्य संग्रहोंमें नहीं हैं, प्रक्षिप्त हों। बात यह है कि अभीतक अभङ्गोंकी पूरी खोज और परख अच्छी तरहसे होने ही न पायी है। पुराने संग्रहोंमें प्रायः साढ़े चार हजारसे अधिक अभङ्ग नहीं हैं और तुकारामके सर्वमान्य अभङ्ग इतने ही हैं। संवत् १९६६ में श्रीविष्णुबोवा जोगने सार्थ संग्रह छापा। सब अभङ्गोंका अर्थ लगानेका यह प्रथम ही प्रयास था। इस दृष्टिसे यह संग्रह अच्छा है। इस संग्रहके साथ बारह पृष्ठोंकी एक प्रस्तावना श्रीविष्णुबोवाने जोड़ी है और उसके बाद ही उन्हींके आग्रहसे मेरा लिखा हुआ श्रीतुकाराम महाराजका अल्प चरित्र बारह पृष्ठोंमें आ गया है। पण्ढरपुरसे श्रीतुकाराम महाराजके अभङ्गोंकी दो प्राचीन वहियाँ हैं जो वारकरीमण्डलमें प्रसादस्वरूप मानी जाती हैं। एक वहाँके वडवों यानी पण्डोंकी वही और दूसरी मालियोंकी। पहिली वही दो सौ वर्ष पुरानी, सुविख्यात विट्ठलभक्त श्रीप्रह्लादबोवा वडवेके समयकी, मानी जाती है। यह वही गङ्गुकाकाके मठमें है। दूसरी वही मालियोंकी

तथा वासकरके अखाड़ोंमें सम्मान्य है। बडवोंकी बहीपरसे पूनेके आर्यभूषणप्रेसने श्रीहरिनारायण आपटेके तत्त्वावधानमें चार हजार बानवे अभङ्गोंका संग्रह, और मालियोंकी बहीपरसे पुस्तकविक्रेता श्रीगोडबोलेजीने जगद्धितेच्छुप्रेससे साढ़े चार हजार अभङ्गोंका संग्रह, प्रकाशित किया। ये दोनों संग्रह संवत् १९७० में प्रकाशित हुए। दोनों ही संग्रह सम्प्रदायमान्य हैं और वारकरियोंके भजनोंमें इन्हींसे काम लिया जाता है। इनके सिवा दो संग्रह और हैं। श्रीतुकाराम महाराजको वैकुण्ठ सिधारे पूरे तीन सौ वर्ष भी न बीतने पाये थे कि उनके अभङ्गोंमें पाठभेद और प्रक्षिप्त अभङ्गोंका झगड़ा चल पड़ा और उनके असली अभङ्गोंके विषयमें सबकी एक राय होना बड़ा कठिन हो गया। ऐसा क्यों हुआ, यह भी एक प्रश्न है और इसीका उत्तर ढूँढ़नेके प्रयासमें *श्रीतुकाराम महाराजके असली अभङ्गोंका संग्रह ढूँढ़ निकालनेकी* ओर सब शोधकोंका ध्यान लगा। आशाकी यह एक झलक-सी दिखायी दी कि यदि श्रीतुकाराम महाराजके लेखक गङ्गाराम मवाल और सन्ताजी तेली जगनाडेद्वारा लिखित अभङ्गोंकी बहियाँ कहींसे मिल जायँ तो तुकाराम महाराजके असली अभङ्गोंका पता लगाना बहुत सुगम हो जायगा। इसी आशासे संवत् १९६० में मैंने तलेगाँव जाकर जगनाडेके घरके वेष्टन देखे। उनमें सन्ताजी और उनके पुत्र बालाजीके हाथकी बहियाँ मिल गयीं। उनमें तीन जगह 'हस्ताक्षर सन्ताजी तेली जगनाडे' इस लेखको पढ़कर मुझे बड़ा हर्ष हुआ और ता० २८-४-१९०३ ई० के 'केसरी' में मैंने दो कालमोंका एक लेख लिखकर इस अभङ्ग-संग्रहकी ओर सबका ध्यान आकर्षित करनेका प्रयत्न किया। सन्ताजीके एक लेखमें शाके १५६८ (संवत् १७०३) और दूसरे लेखमें शाके १६१० (संवत् १७४५) लिखा हुआ है। इससे यह भी पता चला कि सन्ताजी तुकारामजीके प्रयाणके पश्चात् चालीस वर्ष और जीवित रहे। सन्ताजीके हाथका लिखा वह अभङ्गसंग्रह उतारकर प्रकाशित करनेका काम तो मुझसे नहीं बन पड़ा, पर शोधकोंकी दृष्टि तो उस ओर लग ही गयी। श्रीदत्तोपन्त पोतदारने सन्ताजीकी

वहीपरसे २५८ अभङ्ग उतारे और उन्हें भारत-इतिहास-संशोधक-मण्डलके पञ्चम सम्मेलन वृत्तमें प्रकाशित किया । इसके पश्चात् सन्ताजीकी और एक वहीका पता लगाकर थानेके श्रीविनायकराव भावेने श्रीतुकाराम महाराजके 'असली अभङ्गोंका संग्रह' दो भागोंमें हालमें ही प्रकाशित किया है । यह संग्रह बड़े महत्त्वका है । इसमें तेरह सौ अभङ्ग हैं । ये अभङ्ग तुकारामजीके असली अभङ्ग हैं । इसमें सन्देह करनेका कोई कारण नहीं रह गया है । श्रीविनायकरावजी लक्ष्मीजीके कृपापात्र हैं और विद्वान् भी हैं, उन्होंने यह सत्कार्य निःस्वार्थ प्रेमसे किया है । यह 'सन्ताजीसंहिता' या 'जगनाडीसंहिता' अभी अधूरी है । इस संग्रहमें छपे हुए अभङ्ग सन्ताजीके हाथके हैं और शुद्ध लेखनपद्धति अवश्य ही तुकारामजीके समयकी और साथ ही सन्ताजीके हाथकी है, यह बात भी ध्यानमें रहे । श्रीतुकाराम महाराजका अध्ययन कितना विशाल और किस उच्च कोटिका था सो आगे पाठक देखेंगे ही । सन्ताजीकी शिक्षा-दीक्षा जैसी थी उसी हिसाबसे उनके लेखनमें शुद्धि-अशुद्धि आ गयी है । देहूमें मैंने दस-बीस बार चक्कर लगाये और तुकारामके वंशजोंके यहाँके प्रायः सब पोथियोंके वेष्टन और कागज-पत्र देखे हैं, और इन सबका उपयोग इस चरित्रग्रन्थमें यथास्थान किया है । देहूमें तुकारामजीके खास घरमें तुकारामजीके हाथकी लिखी एक वही सुरक्षित रखी है । इसे देखनेके लिये बड़ा प्रयत्न करना पड़ा है । इसमें महाराजके दो सौ पचीस अभङ्ग हैं । इसका लेखनप्रकार तुकारामजीके समयका और सन्ताजीकी वहीका-सा ही है । पर जो कुछ लिखा है वह शुद्ध और सुव्यवस्थित है । तुकारामजीके वंशज पूर्वपरम्परासे इस वहीको तुकारामजीके हाथकी लिखी वही मानते चले आये हैं । इस वहीमेंसे दो अभङ्गोंका फोटो इस ग्रन्थमें जोड़ा है । तुकारामजीके हाथके अक्षर, कम-से-कम उनकी सही प्राप्त करनेके लिये मैंने नासिक और त्र्यम्बकमें रहनेवाले देहूकरोंकी मूल वहियोंको देखा । उनकी सही मिल जाती तो बड़ा आनन्द होता ! अस्तु । और एक 'अभङ्गगाथा' का उल्लेख करके यह गाथा समाप्त

करूँगा। बहिणाबाईका असल संग्रह मुझे शिऊरमें मिला है। छपा हुआ संग्रह नकलपरसे छपा है, असलपरसे नहीं! छपे हुए संग्रहमें एक अभङ्ग इस प्रकार है—

कळों आलें तुझें जिणं। देवा तूं माझें पोषण ॥१॥
आठवितां नांव रूपा। सदा निर्गुणींच लपा ॥२॥
वाट पाहे आट व्याची। सत्तानुरेचि मुळींची ॥३॥
बहेणी म्हणे परदेशीं। येथें आम्हां संगें जिसी ॥४॥

इस अभङ्गको पढ़ते ही ऐसा लगा कि यह तुकारामका ही अभङ्ग है और 'गाथा' में देखा तो सचमुच ही यह तुकारामका ही अभङ्ग निकला। इन्दुप्रकाश, आर्यभूषण और जगद्धितेच्छु प्रेसोंद्वारा प्रकाशित संग्रहोंमें कुछ शब्दोंके हेर-फेरके साथ यह अभङ्ग छपा है। बहिणाबाईके असल संग्रहमें यह अभङ्ग इस प्रकार है—

कळों अल तुझ जिन। देवा तूं माझ पोसन ॥१॥
आठवितां याव रुपा। सदा निर्गुणींच लपा ॥२॥
वाट पाहे आठवा ची। सत्ता नोरे मुळि ची ॥३॥
तुका म्हणे परदेसि। येथें आम्हां संगें जीसी ॥४॥

सन्ताजीकी गाथामें 'इन्दुप्रकाश' का-सा ही पाठ है। इन्दुप्रकाश 'गाथा', दो साम्प्रदायिक 'गाथाएँ', सन्ताजीकी 'गाथा', बहिणाबाईकी 'गाथा'—ये ही पाँच संग्रह मुख्य हैं। ५वाँ संग्रह अभी छपा नहीं है। कुछ पाठभेद हैं, शुद्धि-अशुद्धिके कुछ हेर-फेर हैं, इनका संशोधन होना आवश्यक है; तथापि तात्पर्यार्थकी दृष्टिसे देखते हुए 'गाथा-गाथामें' बहुत बड़ा अन्तर नहीं है! सम्प्रदायके सिद्धान्त यदि परिचित हों, श्रीतुकाराम महाराजके विचारों और भावनाओंका अन्तरङ्ग परिचय हो, कम-से-कम विचारोंकी अन्तर्धारा जँची हुई हो तो किसी भी संग्रहसे काम लिया जा सकता है। अभङ्गोंके शुद्ध पाठ तभी मिल सकते हैं जब या तो तुकारामजीके हाथकी कोई प्रति मिले अथवा सब उपलब्ध प्रतियोंके अभङ्गोंको बड़ी सूक्ष्मतासे शोधकर परम्परा और संशोधन—दोनों प्रकारसे सर्वमान्य हो सकनेवाला कोई नवीन संग्रह प्रस्तुत किया जाय। मैंने अबतक-

के सभी संग्रहोंमें खास-खास महत्त्वपूर्ण और मार्मिक अभङ्गोंको मिलान करके देखा है और इस प्रकार सम्प्रदायपरम्पराकी दृष्टिसे वारकरियोंमें प्रेमसे सम्मिलित होकर तथा आलन्दी, देहू, पण्ढरीमें परम्परानुसार कथा-कीर्तन-प्रवचन सुनने और सुनानेसे प्राप्त सम्प्रदायशुद्ध विचारपद्धतिके अनुसार इन अभङ्गोंका अध्ययन और मनन किया है। इस चरित्रग्रन्थका जो प्रथम और मुख्य आधार है अर्थात् श्रीतुकाराम महाराजके अभङ्ग, उसका यहाँतक विवरण हुआ।

ग्रन्थका दूसरा आधार है शोध। बहुतोंको इस बातका बड़ा आश्चर्य होता है कि एक ही मनुष्य शोधक और भावुक दोनों कैसे हो सकता है! मेरे विचारमें सन्तोंका चरित्रलेखक तो भावुक, रसिक और चिकित्सक यानी शोधक होना ही चाहिये। परम्परा, उपासना और भक्तिभावकी उत्कटताके बिना सन्तोंके रहस्य नहीं जाने जा सकते, न उनके ग्रन्थ ही समझमें आ सकते हैं। इस युगमें खोजसे बेखबर रह करके भी तो काम नहीं चल सकता। इसलिये जहाँतक हो सकता है, मैं दोनों ही बातोंको चरित्रग्रन्थोंमें मिलाता हूँ। प्रस्तुत ग्रन्थके लिये, खोजका काम जितना भी मैं कर सका उतना मैंने किया है। इसका दिग्दर्शन भी ऊपर कुछ करा चुका हूँ। यों तो सारा ग्रन्थ ही खोजसे भरा हुआ है। यहाँ उसका विस्तार कहाँतक किया जाय? देहूमें दस-बीस बार जाकर वहाँकी पोथियाँ, कागज-पत्र और बहियाँ देखीं और उनमेंसे उतना ही मसाला इस ग्रन्थमें लगाया है जितना कि इसके लिये पोषक और आवश्यक था। श्रीशिवाजी महाराजके श्रीतुकारामतनय श्रीनारायण बोवाको लिखे दो पत्र मुझे प्राप्त हुए हैं। तुकारामजीके पुत्रोंकी जायदादका बटवारा और बहिणाबाईके पतिके सम्बन्धका एक व्यवस्थापत्र इत्यादि कई कागज-पत्र मेरे हाथ लगे हैं, पर इस ग्रन्थमें उनकी चर्चा चलाकर ग्रन्थका कलेवर बढ़ाना मैंने उचित नहीं समझा। तुकारामजीकी आजदिनतककी वंशावली देहू, पण्ढरपुर, नासिक और त्र्यम्बककी वंशावली तथा प्राचीन लेखोंसे मिलाकर तैयार की, सो भी इस ग्रन्थमें नहीं जोड़ी है। तुकाराम-जीके और स-वंशज देहूमें तथा अन्यत्र भी बहुत हैं। तुकाराम महाराज-

के अनन्तर उनके कुलमें उनके पुत्र नारायण बोवाके अतिरिक्त गोपाल बोवा, राघोबा और वासुदेव बोवा—तीन पुरुषोंने अच्छी ख्याति लाभ की। नारायण बोवाको छत्रपति श्रीशाहु महाराजने तीन गाँव भेंट किये थे। देहू गाँवकी सनदमें यह लिखा है कि 'राजश्री तुकोबा गोसाँई' के पुत्र नारोबा गोसाँईने प्रसिद्धगढ़ दुर्गमें पत्र भेजा, उसमें लिखा कि श्रीतुकाराम महाराज देहूमें 'भगवत्कथा-कीर्तन करते हुए अदृश्य हो गये, यह बात प्रसिद्ध है। उन्हींके हाथों इन श्रीभगवान्‌की मूर्तिकी पूजा हुआ करती थी।' कीर्तन करते हुए तुकारामजीका अदृश्य होना, इस बातकी सर्वत्र प्रसिद्धि तथा तुकारामजीका मूर्तिपूजन करना—ये तीनों बातें नारायण बोवाने बड़े महत्त्वकी कही हैं। इस ग्रन्थके पूर्वपीठिकाध्यायमें, खोजमें मिले हुए कागज-पत्रोंका पूरा उपयोग किया है। इस चरित्रमें तुकारामजीके परपोते गोपाल बोवाका नामोल्लेख कई स्थानोंमें किया गया है। यह गोपाल बोवा तुकाराम महाराजके मझले पुत्र विठोबाके पोते हैं। राघोबा विठोबाके परपोते हैं। विठोबाके दो पुत्र, एक गोविन्द और दूसरे गणेश। गोविन्दके पुत्र गोपाल बोवा हुए और गणेशके त्र्यम्बक और फिर त्र्यम्बकके राघोबा।

तुकारामजीके प्रथम पुत्र महादेव बोवा थे। इनके वंशमें वासुदेव बोवा हुए—तुकारामजीके महादेव, महादेवके आबाजी, आबाजीके मुकुन्द और मुकुन्दके वासुदेव। तुकारामजीके बाद वासुदेव बोवा ही सबसे अच्छे निकले। यह भी कहा जाता है कि इन्हींसे देहूका सम्प्रदाय चला। वंशावलीका शेष विवरण यहाँ देना अनावश्यक है। शिऊरमें जाकर बहिणाबाई और शङ्कर स्वामीके सम्बन्धमें जो ढूँढ़-खोज की उसका उपयोग यथास्थान किया है। निलोबारायका हस्तलिखित ओवीबद्ध ग्रन्थ मिला, उससे भी काम लिया है। देहू और लोहगाँवके वर्णन तथा शिलालेख भी पाठक देखें। इस ग्रन्थका 'कालनिर्णय'—अध्याय शोधसे ही भरा है। ग्रन्थमें जहाँ-तहाँ वारकरी सम्प्रदायका स्वरूप दरसाया है। जहाँ जो कागज-पत्र, पुरानी बहियाँ और वेष्टन मिले उन सबकी खोज ठीक तरहसे की है। खोजसे कोई स्थान अभी यदि खाली रह गया

हो अथवा किसीकी खोज इसके बाद प्रकट हो तो उसके लिये मैं जिम्मेदार नहीं हूँ। आठ वर्षसे इस ग्रन्थकी पुकार मची है और इसके बारेमें अनेक लेख और व्याख्यान प्रसिद्ध होते रहे हैं, फिर भी यदि किसीने कोई बात मुझसे छिपा रखी हो तो यह उन्हींका दोष है।

इस चरित्रग्रन्थका तीसरा आधार है तुकारामजीके प्रयाणकालसे लेकर अबतक उनका जो-जो चरित्रकथन और गुणकीर्तन हुआ, जो-जो आख्यायिकाएँ ख्यात हुईं, जो-जो चरित्रग्रन्थ और प्रबन्ध लिखे गये—उन सबका पर्यालोचन। इस सम्बन्धमें भी दो बातें कहनी हैं। इस ग्रन्थमें तुकाराम महाराजकी गुणावली और भगवत्कृपाके प्रसङ्गोंका वर्णन पाठक पढ़ेंगे। इस गुणावली और भगवत्कृपाके दिव्य प्रसङ्ग महाराजके जीवनकालमें सबपर प्रकट हो चुके थे। इस कारण उनके समकालीन तथा पश्चात्कालीन सभी सन्त कवियोंने प्रेममें विभोर होकर उनका वर्णन किया है। इन्द्रायणीके दहमें तुकारामकी बहियोंको भगवान्‌ने जल-से उबार लिया। यह घटना संवत् १६९७ से भी पहिले कोल्हापुरतक गाँव-गाँवमें फैल चुकी थी। इसी संवत् १६९७ का एक लेख बहिणाबाईके आत्मचरित्रमें मिलता है कि कोल्हापुरमें जयराम स्वामी हरिकीर्तन करते हुए श्रीतुकाराम महाराजके अभङ्ग गाया करते थे। रामेश्वर भट्टने तुकाराम महाराजकी जो स्तुति की है उसका प्रसङ्ग आगे आवेगा ही। इन्हींकी एक आरतीमें एक चरण इस आशयका है कि, 'पत्थरसहित बहियोंको जलपर ऐसे रखा जैसी लाई छिटकी हो।' सदेह वैकुण्ठ-गमनके विषयमें रङ्गनाथ स्वामीका बड़ा ही सुन्दर पद अन्तिम अध्यायमें आया है। इन्हींके भाई विठ्ठल (जन्मसंवत् १६७२) की प्रसिद्ध प्रभाती 'उठि उठि बा पुरुषोत्तमा' में यह चर्चा भी आ गयी है कि, 'उनकी बहियोंको तुमने पानी लगनेतक न दिया'। संवत् १७४२ में देवदासने जो 'सन्तमालिका' रची उसमें कहा है कि 'जातिके बनिये तुकाराम, तेरे भजनमें बड़ा गाढ़ा प्रेम है। इसीसे तूने उस पुरुषोत्तमको पा लिया, जो तेरे कागज भी जलसे तारने चला आया।' श्रीधर स्वामीके 'सन्तप्रताप' में बहियोंके उबारे जानेकी बात लिखी है। संवत् १७२५ के

बाद सन्तगुणकीर्तनोंमें तुकारामकी बहियोंके तारे जाने तथा उनके सशरीर वैकुण्ठ सिधारने—इन दोनों ही घटनाओंका कीर्तन किया गया है। शिवदिनकेसरी, मध्वमुनीश्वर, देवनाथ महाराज आदिने अपने पदोंमें तुकाराम महाराजकी स्तुति करते हुए इन दो कथाओंका स्मरण कराया है। समर्थ श्रीरामदास स्वामीके सम्प्रदायवालोंने भी तुकारामजीके प्रति अत्यन्त प्रेम व्यक्त किया है। समर्थ और तुकाराम एक दूसरेसे अवश्य ही मिले होंगे। 'भिक्षाके मिससे छोटे-बड़े सबको परख ले' 'महन्त महन्तको ढूँढ़े' इत्यादि सीख 'दासबोध' द्वारा देनेवाले समर्थ दक्षिणमें कृष्णानदीके तीरे संवत् १७०१ में आये। इसके पाँच वर्ष बाद संवत् १७०७ में तुकाराम अदृश्य हुए। इन पाँच वर्षके कालमें समर्थ तुकारामजीसे कभी न मिले हों, यह तो असम्भव ही प्रतीत होता है। रामदास-तुकाराम-मिलापके कथाप्रसङ्ग रामदासी ग्रन्थोंमें वर्णित हैं। उद्धवसुतने समर्थचरित्रमें तथा रङ्गनाथ आत्या स्वामी, वामन, निवराज, बोवले बोवा और जयराम स्वामीने लिखा है कि पण्ढरपुरमें तुकाराम, रामदास मिले।

भीम स्वामीके 'सन्तलीलामृत' में तुकारामचरित्र बीस अभङ्गोंमें है। पर इन बीस अभङ्गोंमें भी समर्थ-तुकाराम-मिलनका प्रसङ्ग वर्णित है तथा और भी कई प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध आख्यायिकाएँ हैं। 'दासविश्रामधाम' की भी यही बात है। तुकारामजीकी कई अनोखी बातें इस ग्रन्थमें हैं। उनकी विपत्ति, उनके धैर्य, निःस्पृहता और असीम प्रेमाभक्तिका बहुत अधिक वर्णन है। सन्तोंकी छोटी-बड़ी सभी गाथाओंमें तुकारामका गुणकीर्तन हुआ है। तुकारामजीकी सब आख्यायिकाओंको एकत्र करके और उनकी कुलपरम्परा जानकर सन्तचरित्रकार महीपति बाबाने पहिले (संवत् १८१९) 'भक्तविजय' में पाँच अध्यायोंका और पीछे (संवत् १८३१) 'भक्तलीलामृत' में सोलह अध्यायोंका तुकारामचरित्र लिखकर तुकाराम महाराजकी बड़ी सेवा की। इन सब बातोंसे यह अच्छी तरह मालूम हो जाता है कि किस प्रकार महाराष्ट्रके क्या वारकरी और क्या अन्य सभी सम्प्रदायोंके लोगोंमें तुकारामजीकी कीर्तिपताका फहराती रही। परन्तु सबसे बढ़कर तुकारामजीके सम्बन्धमें

मोरोपन्तकी तीस-पैंतीस आर्याएँ हैं जिनमें उन्होंने तुकाराम, तुकारामके अभङ्ग, इन अभङ्गोंके कीर्तनोंपर और कीर्तनोंद्वारा जनसमूहपर होनेवाले परिणामोंका बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है। तुकाजी 'विमद, विराग, विमत्सर' थे, नारद-प्रह्लादके समान लोगोंको हरिकथामृत पान करानेके लिये वैकुण्ठसे उतरे थे। ऐसे यह ज्ञानाम्बुधि और 'मूर्तिमान् भक्तिरस' श्रीतुकारामको सब लोग 'प्रेमसे गावें, ध्यावें और अपने पापोंको तुका-वानीसे भस्म करें।'

स्वात्मानुभव देखते तुकजी केवल सखा जनकजीके।
वैराग्य देख जिनका डोलन लागे अंग सनकजीके ॥ १६ ॥
वाणी अभंग जिनकी बिन होके हो न हरिकथा साँची।
श्रोता अभंग पाते स्तन मातासे प्रसन्नता साँची ॥ १९ ॥
बहु जड-जीवोंको जो सुभक्तिकी दें सीख तुका ज्ञानी।
उन सम कोई होगा कभी कहीं क्या भक्त तुका-वानी ॥२०॥

(हिन्दीपद्यानुवाद)

'इन्दुप्रकाश' वाले संग्रहके प्रकाशित होनेके बादसे तुकाराम महाराजके चरित्र और अभङ्गोंकी ओर लोगोंका ध्यान विशेषरूपसे लगा। इस संग्रहमें दिये हुए चरित्रके आधारपर बंगला और कर्णाटकी भाषाओंमें तुकाराम महाराजके चरित्र लिखे गये। श्रीबालकृष्ण महार-हंसका सुन्दर निबन्ध (संवत् १९३७), श्रीकेलुसकरलिखित चरित्र (संवत् १९५३), श्रीभिडेजीका 'तुकाराम बोवा' प्रबन्ध और फिर इन्दौरके प्रो० शान्ताराम देसाईग्रथित 'तुकाराम अभङ्गरत्नोंके हार' शीर्षक सत्यजिज्ञासाप्रधान और थाह लेनेवाला हृदयकी लगन-लगा निबन्ध—ये सब निबन्ध और ग्रन्थ प्रकाशित हुए। फ्रेजर साहबने तुकारामके कई अभङ्गोंका जो अङ्गरेजी अनुवाद किया वह प्रसिद्ध है।

हमारे ईसाई भाई भी श्रीतुकारामकी गुण-गौरव-सेवामें हमसे बहुत पीछे नहीं हैं। डॉ० मेरी माइकेलका प्रबन्ध भी अच्छा है और रेवरेण्ड नेहेम्या (पूर्व हिन्दू श्रीनीलकण्ठ गोरे) का लिखा हुआ 'तुकारामका धर्मविषयक ज्ञान' निबन्ध बहुत ही विद्वत्तापूर्ण है। रेवरेण्ड नवलकर और डॉ० मैक-निकलके अङ्गरेजी भाषामें लिखे लेख नामोल्लेखयोग्य हैं। यहाँकी तुकाराम-चर्च-सोसायटी तुकारामकी बानीका प्रचार करनेमें बहुत यत्नवान् है। अबतक जिन-जिन लोगोंने अपने-अपने ढङ्गसे तुकारामके चरित्र और अभङ्गोंके विषयमें जो कुछ भी लिखा, उन सबको धन्यवाद देकर अब प्रस्तुत ग्रन्थकी दृष्टिके विषयमें दो शब्द लिखता हूँ।

इस ग्रन्थके (१) अभङ्गोंका सूक्ष्मावलोकन, (२) खोज और (३) अबतकके प्रयत्नोंका निरीक्षण—ये तीन आधार बताये; अब इस ग्रन्थका स्वरूप संक्षेपमें निवेदन करता हूँ। मङ्गलाचरणके पश्चात् पहिले कालनिर्णयका प्रश्न हल किया है। इसके बादके दो अध्यायोंमें तुकारामका पूर्वचरित्र है और फिर समग्र मध्यखण्ड उपासनाप्रधान है। यह उपासनाखण्ड श्रीतुकाराम महाराजके वचनोंके ही आधारपर विस्तार-पूर्वक लिखा है जिसमें ऐसा प्रयत्न किया गया है कि महाराष्ट्रीय भागवत-धर्मानुयायियों अर्थात् वारकरियोंको और सामान्यतः सबको ही इस भागवतसम्प्रदायका विशुद्ध मूलक्रमसे यथार्थ परिज्ञान हो; और यह मालूम हो कि तुकाराम किस साधनक्रमसोपानसे साक्षात्कारकी पैढीतक चढ़ गये, उनके सामने सगुणोपासनाका रहस्य खुल जाय, उन्हें श्रीविठ्ठल-स्वरूपका बोध हो और उनके लिये परमार्थमार्गपर चलना सुगम हो, भक्तिमार्गको वे स्पष्ट देख लें। यही इस विस्तारका मुख्य हेतु रहा है। भावुक भगवद्भक्तोंको यह मध्यखण्ड बहुत प्रिय और बोधप्रद होगा। वारकरी सम्प्रदायकी सिद्धान्तपञ्चदशी बतलाकर एकादशीव्रत, नाम-संकीर्तन, सत्संग और परोपकारका महत्त्व तथा तुकारामजीके पूर्वाभ्यास-

का विवरण बताकर विस्तारके साथ अन्तरङ्ग प्रमाणोंको देते हुए यह चर्चा चलायी है कि उन्होंने किन-किन ग्रन्थोंका अध्ययन किया था और किस ग्रन्थसे क्या पाया था । सातवें अध्यायमें गुरुकृपा और गुरु-परम्पराका विवरण है । चित्तशुद्धिके साधनोंमें पाठक तुकारामजीकी लोकप्रियताका रहस्य, मनोजय, एकान्तवास, आत्मपरीक्षण और नाम-संकीर्तनका आनन्द लें । फिर भक्तिमार्गकी श्रेष्ठता, सगुणनिर्गुणविवेक, श्रीविठ्ठलोपासना और श्रीमूर्तिपूजा, भगवन्मिलनकी लगन—इन सबको देखते हुए सगुण प्रेमको चित्तमें भरते हुए विठ्ठलस्वरूपका परिचय प्राप्त करके श्रीविठ्ठलमूर्तिको ध्यानसे मनोमन्दिरमें बैठावें और रामेश्वर भट्ट और तुकाराम महाराजके वादके मर्मको जान तुकारामकी ध्यान-निष्ठाको ध्यानमें ला श्रीतुकारामके साथ सगुण-साक्षात्कारके उनके आनन्दका प्रतिआनन्द लाभ करें । इस ग्रन्थका मध्यखण्ड श्रीतुकाराम-चरित्रका हृदय है । इसी हृदयको लेकर आगे बढ़िये । मेघवृष्टिमें तुकारामजीने संसारियोंको बार-बार कैसे जगाया है, दाम्भिकोंका कैसा भण्डाफोड़ किया है, यह देख लें । पीछे तुकाराम और शिवाजी-प्रकरण समग्र पढ़नेके पश्चात् पाठक यह समझ लेंगे कि सन्तोंपर संसारियोंकी ओरसे जो आक्षेप किये जाते हैं वे कितने अयथार्थ हैं । इसके अनन्तर सोलह शिष्योंकी वार्ताएँ, निलोबारायकी महिमा और इनके बादके वारकरी नेता, तुकारामबाबा और जीजाबाईका गृहप्रपञ्च, दोनोंकी ओर-छोरकी दृष्टियोंका मध्य देखते हुए यह देखें कि श्रीतुकाराम महाराज ज्ञान-भक्तिके परमात्मानन्दको कैसे प्राप्त हुए और कैसे सशरीर वैकुण्ठ सिधारे ।

धन्यवादके दो शब्द

इन्दौरसंस्थानाधिपति श्रीमन्त सवाई तुकोजीराव होलकरने इस चरित्रग्रन्थका लेखन प्रायः समाप्त हो चुकनेपर इस सत्कार्यके निमित्त बहुत बड़ी द्रव्यसहायता की, इसके लिये मैं उनके प्रति अपनी हार्दिक

कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। तुकाप्रेमी श्रीशिवराव कृष्ण कैकिणी तथा स्व० कर्नल कीर्तिकर और इस ग्रन्थकी हस्तलिखित प्रतिको पढ़ते हुए चर्चाद्वारा सहायता करनेवाले श्रीभिडेजीके भी बड़े उपकार हैं। भगवान् श्रीपाण्डुरङ्गके उपकार तो शब्दोंद्वारा व्यक्त हो ही नहीं सकते हैं। तुकाबानीमें यही कहना पड़ता है कि—

बस करो स्वामी अब ये वचन।
तेरे कृपादान वाणीरूप॥ १॥
तेरा दिया तेरे चरणोंपै वारा।
भार है उतारा पांडुरंग॥ २॥

पूना 'मुमुक्षु' कार्यालय
जन्माष्टमी
संवत् १९७७

साधुसन्तोंका दासानुदास—
लक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकर

पूर्व खण्ड-कर्मकाण्ड

श्री
विठ्ठलरुखमाई
पंढरपूर

श्रीरुक्मिणीवल्लभाय नमः

मंगलाचरण

समचरणसरोजं सान्द्रनीलाम्बुदाभं
जघननिहितपाणिं मण्डनं मण्डनानाम् ।
तरुणतुलसिमाला कन्धरं कञ्जनेत्रं
सदयधवलहासं विट्ठलं चिन्तयामि ॥

अभङ्ग

सम चरण दृष्टि विटेवरि साजिरी ।
तेथें माझी हरी वृत्ति राहो ॥ १ ॥
आणिक न लगे मायिक पदार्थ ।
तेथें माझें आर्त नको देवा ॥ध्रु०॥
ब्रह्मादिक पदें दुःखाची शिराणी ।
तेथें दुश्चित्त झणी जडों देसी ॥ २ ॥
तुका म्हणे त्याचें कळलें आम्हा वर्म ।
जें जें कर्म धर्म नाशिवन्त ॥ ३ ॥

'जिनके चरण और नेत्र सम हैं ऐसे भगवान् ईंटपर खड़े बड़े ही भले लगते हैं । हे भगवन् ! हे हरि !! मेरी चित्तवृत्ति सदा वहीं लगी रहे । और कोई मायिक पदार्थ मुझे नहीं चाहिये, भगवन् ! उसमें मेरा मन कभी न लगे । ब्रह्मादिक पद दुःखोंके

ही घर हैं, उनमें मेरा चित्त कभी दुश्चित्त न हो । तुका कहता है, उसका मर्म मैंने जान लिया; जो-जो कर्म-धर्म हैं, सब नाशवान् हैं।'

सम चरन दीठि, ईंटासन सोहै । मेरो मन मोहै, सदा हरि ॥१॥
आन न चाहिय, मायिक पदार्थ । विषय-कामार्थ, नाहीं नाहीं॥टेक॥
ब्रह्मादिक पद, दुःख-निकेतन । तहाँ मेरो मन, न हो कदा ॥२॥
तुका कहे याको, जान्यो, सब मर्म । जो जो कर्म धर्म, नासैं अन्त ॥३॥

(हिन्दीपद्यानुवाद)

(२)

भक्तराज पुण्डलीकने यह बड़ा उपकार किया जो वैकुण्ठ-धामका निज ब्रह्म यहाँ ले आये । बालमूर्ति श्रीपाण्डुरङ्ग (श्रीकृष्ण) गायों और ग्वालोंसमेत बड़े प्रेमसे आकर यहाँ समपद खड़े हैं । एक अक्षरके आधिक्यसे यह दूसरा (भू-) वैकुण्ठ ही है । और भी अनेक वैकुण्ठ कहानेवाले तीर्थस्थान हैं पर इसके समान नहीं । इसकी पञ्चक्रोशीमें पाप-ताप या आधि-व्याधि आ ही नहीं सकतीं । फिर विधि और निषेध यहाँ किसके लिये रहेंगे ? पुराण ऐसा बताते हैं कि यहाँके मनुष्य चतुर्भुज हैं, इनके हाथोंमें सुदर्शन-चक्र है, कल्पान्तमें भी यहाँ कभी पाप नहीं प्रवेश कर सकता । पण्ढरी (पण्ढरपुर) महाक्षेत्र है, इसकी महिमा अपार है । तुका कहता है, यहाँके वारकरी (नियमपूर्वक यात्रा करनेवाले श्रीविट्ठल-भक्त) धन्य हैं ।

(३)

कटिपर कर, उर तुलसीमाल । ऐसी नंदलाल छबि देखूँ ॥ १ ॥
चरन-सरोज खिले ईंटपर । ऐसी सम रूप छबि देखूँ ॥ध्रु०॥

कटि पीतांबर गरुड़-वाहन । परम मोहन छवि देखूँ ॥ २ ॥
सूख सूख हुआ पंजर केवल । अब तो दयाल आवो नाथ ॥ ३ ॥
तुकाकी हे स्वामी; करो पूरी आस । करो न निरास हरि मेरे ॥ ४ ॥

(४)

हे रुक्मिणीवल्लभ ! तुम्हारी छविमें मेरी आँखें गड़ जायँ । हे नाथ ! तुम्हारा रूप मधुर है, नाम भी तुम्हारा वैसा ही मधुर है । ऐसा करो कि इसी माधुरीमें मेरा प्रेम सदा बना रहे । अरी मेरी विठामाई ! मुझे यही वरदान दे और मेरे हृदयको अपना घर बना ले । तुका कहता है, मैं और कुछ नहीं चाहता; सारा सुख तो तेरे चरणोंमें ही है ।

(५

सुंदर सुकुमार, मदनमोहन । रवि-ससि-मान, हर लीने ॥ १ ॥
कस्तूरीलेपन, चंदनकी खौर । सोहै गर हार, वैजयंती ॥टेक॥
मुकुट कुंडल, श्रीमुख सोहत । सुख-सुनिर्मित, सवै अंग ॥ २ ॥
पीत पट धारे, पीतांबर काछे । घनश्याम आछे, कान्हा मेरे ॥३॥
जी मेरो अधीर, मिलै कों मुरारी । हटो तुम नारी, तुका कहै ॥४॥

(६)

सुंदर सो ध्यान, ठाढे ईंटासन । कर कटि-सन, मन भावै ॥ १ ॥
गले वृंदा-माल, काछे पीतांवर । मोहै निरंतर, सोई ध्यान ॥ध्रु०॥
मकर कुंडल, जगमगैं स्त्रवन । कौस्तुभ रतन, कंठ राजै ॥ २ ॥
तुका कहे मेरो, यहै सर्व सुख । जो देखूँ श्रीमुख, प्रियतम ॥ ३ ॥

(७)

श्रीअनंत मधुसूदन । पद्मनाभ नारायण ।

जगव्यापक जनार्दन । आनन्दघन अविनाश ॥ १ ॥
सकल देवाधिदेव । दयार्णव श्रीकेशव ।
महानंद महानुभाव । सदाशिव सहजरूप ॥ध्रु०॥
चक्रधर विश्वंभर । गरुडध्वज करुणाकर ।
सहस्रपाद सहस्रकर । क्षीरसागर शेषशयन ॥ २ ॥
कमलनयन कमलापति ।कामिनि-मोहन मदनमूर्ति ।
भवतारक धारक* क्षिति । वामन मूर्ति त्रिविक्रम ॥ ३ ॥
सर्वेश सगुण निर्गुण । जगज्जनक जगज्जीवन ।
वसुदेव देवकी-नंदन । बालराँगन † बालकृष्ण ॥ ४ ॥
तुका रावरी शरणी । ठाँव दीजै निज चरण ।
विनय मेरी कीजै श्रवण । भवबंधन ते छुडावो ॥ ५ ॥

(८)

जो नित्य निरामय अद्वय आनन्दस्वरूप और योगीजनोंके निज ध्येय हैं, वही समचरण श्रीविट्ठलरूप देखो, भीमातीरपर, ईंटपर विराज रहे हैं । पुराण जिनकी स्तुति करते नहीं अघाते और वेद भी जिनका पार नहीं पाते वही श्रीपुण्डरीकके प्रेमसे

---

* अर्थात् 'क्षितिधारक—पृथ्वीको धारण करनेवाले । इस विषयमें गीता अ० १५ श्लोक १३ में भगवान् कहते हैं—'गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा' अर्थात् पृथ्वीमें आकर मैं सब भूतोंको धारण करता हूँ । इसका भाष्य करते हुए ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं, मैं पृथ्वीमें घुस बैठा हूँ, इसीसे इस महाजलसमुद्रमें यह मिट्टीके एक लोंदे-सी पृथ्वी घुल नहीं जाती ।'

† बालराँगन—यह मराठी शब्दप्रयोग हिन्दी अनुवादमें भी ज्यों-का-त्यों रहने दिया है । 'राँगने' का अर्थ है रेंगना और रेंगना-राँगना हिन्दीमें भी कहते ही हैं । —अनुवादक

साकार बन आये हैं। तुका कहता है, सनकादिक मुनिगण जिनका ध्यान करते हैं वही हमारे कुलदेव यह श्रीपाण्डुरङ्ग महाराज हैं।

(९)

श्रीविट्ठल-नाम-सङ्कीर्तन बड़ा ही मधुर है। विट्ठल ही तो हमारा जीवन है और झाँझ-करताल ही हमारा सारा धन है। 'विट्ठल, विट्ठल' वाणी अमियरससञ्जीवनी है। तुका रँगा है इसी रङ्गमें, अङ्ग-अङ्गमें विट्ठल श्रीरङ्ग हैं।

(१०)

मेरी विठामैया प्रेम-रस पनहाती है, छातीसे लगाकर अपना अमृतस्तन मेरे मुखमें देती है। अपने पाससे जरा भी बिछुड़ने नहीं देती। जो भी माँगता हूँ, देती है, 'ना' तो कभी करती ही नहीं। निठुराई नामको भी नहीं, दयाकी मूर्ति है। तुका कहता है, वह अपने हाथसे जो कौर मेरे मुँहमें डालती है, वह ब्रह्मरस ही होता है।

(११)

आषाढ़ी आयी, कार्तिकीका हाट लगी। बस, ये ही दो हाट काफी हैं और व्यापार अब करनेका कुछ काम नहीं। यहाँ भक्तिके भावसे कैवल्यआनन्दकी राशियोंका लेन-देन करो। विट्ठल नामका सिक्का यहाँ चलता है, उसके बिना कोई किसीको यहाँ पूछता नहीं।

(१२)

नैहर है मेरा, पंढरी-पत्तन। कूटत धान, गाऊँ गीत॥ १॥

राई रखमाई, सत्यभामा माता। पांडुरंग पिता करें वास ॥टेक॥
उद्धव अक्रूर, व्यास अंबरीष। नारद मुनीश, भाई मेरे ॥ २ ॥
गरुडजी बन्धु, लाडिले पुंडलीक। तिनके कौतुक, गेय मेरे ॥ ३ ॥
मेरे बहु गोती, संत ओ महंत। नित्य सुमिरत, सर्व नाम ॥ ४ ॥
निवृत्ति ज्ञानदेव, सोपान चांगाजी। मेरे जीके हैं जी, नामदेव ॥ ५ ॥
नागा जनमित्र, नरहरि सुनार। रैदास, कबीर, सगे मेरे ॥ ६ ॥
सुनो सूरदास, माली सांवताजी। गीत गुणकेजी गावो गावो॥ ७ ॥
चोखामेला संत, हृदयके हार। कभी ना बिसार हरि-दास ॥ ८ ॥
जीवके जीवन, एका-जनार्दन। पाठक श्रीकान्ह, मीराबाई ॥ ९ ॥
अन्य मुनि संत, महंत सज्जन। सबके चरण, माथे धरूँ ॥१०॥
सुख संग जाते, पंढरी-दर्शन। तदीय कीर्तन, करूँ सदा ॥११॥
तुका कहे माता, पिता मेरे ये ही। सुखरूप गृही, गृहाश्रमी ॥१२॥

(१३)

इन सन्तोंके बड़े उपकार हैं। कहाँतक गिनाऊँ? ये मुझे निरन्तर जगाते रहते हैं। क्या देकर इनका एहसान उतारूँ? इनके चरणोंमें यदि अपना प्राण भी अर्पण कर दूँ तो वह भी अत्यल्प है। जिनका स्वैर आलाप भी हितगर्भ उपदेश होता है, वे कितना कष्ट उठाकर मुझे शिक्षा देते हैं! बछड़ेपर गौका जो भाव होता है उसी भावसे ये मुझे सम्हाले रहते हैं।

(१४)

जो ब्रह्मरूप हैं उनके कर्म भी संकल्पविकल्पविरहित होनेसे ब्रह्मरूप ही होते हैं। स्फटिकशिला जिस रंगकी वस्तुके पास रखो, उसी रंगकी दिखायी पड़ेगी, पर वास्तवमें वह रहती

है उपाधिसे अलग ही । बच्चे अनेक प्रकारकी बोलियोंसे माताको पुकारते हैं, पर उन बोलियोंका यथातथ्य ज्ञान माताको ही होता है। ऐसे जो उपाधिरहित अन्तर्ज्ञानी हैं, तुका उनकी वन्दना करता है, बार-बार उनके चरणोंमें गिरता है ।

(१५)

सन्तोंने मर्मकी बात खोलकर हमें बता दी है—हाथमें झाँझ, मजीरा ले लो और नाचो । समाधिके सुखको भी इसपर न्योछावर कर दो । ऐसा ब्रह्मरस इस नाम-सङ्कीर्तनमें भरा हुआ है । भक्ति-भाग्यका बल-भरोसा ऐसा है कि उससे इस ब्रह्मरससेवनका आनन्द दिन-दिन बढ़ता ही जाता है । चित्तमें अवश्य ही कोई सन्देहान्दोलन न हो । यह समझ लो कि चारों मुक्तियाँ हरिदासों-की दासियाँ हैं । इसीसे, तुका कहता है, मनको शान्ति मिलती है और त्रिविध ताप एक क्षणमें नष्ट हो जाते हैं ।

(१६)

सदा-सर्वदा नाम-संकीर्तन और हरि-कथा गान होनेसे चित्तमें अखण्ड आनन्द बना रहता है । सम्पूर्ण सुख और शृङ्गार इसीमें मैंने पा लिया और अब आनन्दमें झूम रहा हूँ । अब कहीं कोई कमी ही नहीं रही । इसी देहमें विदेहका आनन्द ले रहा हूँ । तुका कहता है, हम तो अग्निरूप हो गये, अब इन अङ्गोंमें पाप-पुण्यका स्पर्श भी नहीं होने पाता ।

(१७)

नाम-संकीर्तन सुगम साधन । पाप-उच्छेदन जडमूल ॥ १ ॥

मारे मारे फिरो काहे बन बन । आवें नारायण घर बैठे ॥टेक॥
जाओ न कहीं करो एक चित्त । पुकार अनन्त दयाघन ॥ २ ॥
'राम कृष्ण हरि विट्ठल केशव ।' मन्त्र भरि भाव जपो सदा ॥ ३ ॥
नहिं कोई अन्य सुगम सुपथ । कहूँ मैं शपथ कृष्णजीकी ॥ ४ ॥
तुका कहे सीधा सबसे सुगम । सुधी-जनाराम रमणीक ॥ ५ ॥

(१८)

कोटि-कोटि आनन्द मेरे पेटमें समा गये । नामका अखण्ड प्रेम-प्रवाह चला है । रामकृष्ण नारायण नाम अखण्ड जीवन है, कहींसे भी खण्डित होनेवाला नहीं । इह-परलोक दोनों, तुका कहे, इसके समतीर हैं ।

(१९)

हरिपद दासा नाहिं भय चिंता । दुःखके निहन्ता नारायण ॥ १ ॥
नहिं सिर भार संसार उद्वेग । हरें भवरोग पांडुरंग ॥टेक॥
रहे मन धीर सदा समाधान । सुखके निधान संग खड़े ॥ २ ॥
तुका कहे मेरे सखा पांडुरंग । व्यापि रहे जग इकले ही ॥ ३ ।

श्रीतुकाराम

ॐ

श्रीतुकाराम-चरित्र

पहला अध्याय

काल-निर्णय

जो-जो कुछ धर्मसे है उसकी रक्षा करनेके लिये प्रतियुगमें मैं आया करूँ, यह तो स्वभाव-प्रवाह ही है और यह पहलेसे ही चला आया है । (४९) इसी कामके लिये मैं युग-युगमें अवतार लेता हूँ । पर इस बातको जो समझे वही बुद्धिमान् है । (५७)

—श्रीज्ञानेश्वरी अ० ४

१ श्रीतुकाराम-चरित्रकी महिमा

इस प्रथमाध्यायमें श्रीतुकाराम महाराजके जीवनकी मुख्य-मुख्य घटनाओंका कालानुक्रम निश्चित करना है । तत्त्व-दृष्टिसे विचारें तो महात्माओंके जीवनका हिसाब ही हम क्या लगा सकते

हैं ? मृत्युको मारकर जो चिरञ्जीव हुए और काल-नागको नाथकर उसपर नाचते हुए जो लोक-संग्रहमात्रके लिये स्वेच्छासे भूलोकमें विचरते रहे उनका जन्म क्या और मृत्यु ही क्या ? जीवन्मुक्त महात्मा लोक-कल्याणकी विमल सूक्ष्म वासना चित्तमें धारण किये समय-समयपर भूलोकमें अवतीर्ण हुआ करते हैं, और कुछ सत्सङ्गियों-को अपने सत्सङ्गका असामान्य लाभ दिलाकर जहाँ-के-तहाँ ही विलीन हो जाते हैं। जन्म-मरणका तो हमलोग उनपर मिथ्या ही आरोपण करते हैं ! यथार्थमें सूर्यभगवान् तो अपने स्थानमें ही स्थिर रहते हैं, पर उदयादस्तको 'मान' मानकर हम उनपर उनके उगने-डूबनेका आरोपण किया करते हैं। हमारा दिन-मान भी ऐसा ही होता है कि जब हमारे घरकी छतपर सूर्यका प्रकाश आता है तब हम समझते हैं कि सूर्योदय हुआ और जब हमारे घरसे सूर्यभगवान् नहीं दिखायी देते तभी हम सूर्यास्त मान लेते हैं। श्रीराम-कृष्णादि भगवदवतारोंमें और अन्य विभूतियोंके चरित्रोंकी भी यही बात है। उनका अजन्मा होकर भी 'जन्मना' अक्रिय होकर भी 'कर्म करना' और अमर होकर भी 'मरना' ही यथार्थमें उनका चरित्र है ! तुकाराम महाराजके ऐसे चरित्रका विचार करनेसे उनका चरित्र लिखना असम्भव ही हो उठता है। तुकाराम-जी कहते हैं, 'हम वैकुण्ठवासी हैं, यहाँ वैकुण्ठसे आये हैं।' ऐसे वैकुण्ठवासी तुकारामका चरित्र कहाँसे कब आरम्भ हुआ और कहाँ जाकर कब समाप्त हुआ, यह भला कौन बता सकता है ? तुकारामजीने स्वयं ही बताया है कि हम कहाँसे आये और किसलिये आये। 'भक्तिका डङ्का बजे,

कलिकालका दमन हो और सब लोग भक्तिसे भगवान्‌का जयजय-कार करें' यही उनके अवतीर्ण होनेका प्रयोजन था, और उनका चरित्र भी उन्हींकी वाणीसे 'बानी कहूँ वेदनीति । करूँ कृति सन्तोंकी ।' यही था । भगवान्‌का सन्देशा ले करके ही वह आये थे । 'तुका कहे हरि पठायो संदेस । सुखद सुदेश भक्ति पंथ ।' भक्तिका डङ्का बजाने, कलिकाल-नागको नाथने, वेद-नीतिका प्रचार करने, भगवान्‌के सुखद सुरम्य भक्ति-मार्गका सन्देशा लेकर वह आये थे । अर्थात् वह सिद्धरूपसे—भगवद्विभूतिरूपसे ही अवतीर्ण हुए थे । ऐसे सत्पुरुषका चरित्र सामान्य साधकके चरित्रका-सा लिखना क्या समुचित होगा ? अकाल पड़ा, स्त्री-पुत्र अन्नके बिना भूखों मर गये, मन विकल हुआ, चित्तपर विषाद छा गया और फिर इससे वैराग्य हो आया ! तब भण्डारा-पर्वतपर गये, ग्रन्थोंका अध्ययन और नामस्मरण करने लगे । स्वप्नमें गुरुने आकर दर्शन दे अनुग्रह किया, इससे वह कृतार्थ हुए, कवित्व-स्फूर्ति हुई, मुखसे अभङ्ग-गङ्गा प्रवाहित होने लगी, हरि-कीर्तनोंकी धूम मचायी और अन्तमें परलोक सिधारे । इन बातोंके अतिरिक्त श्रीतुकाराम महाराजका चरित्र और हम क्या वर्णन कर सकते हैं ? इन बातोंमें सांसारिक दुःखोंका जो भाग है वह तो कितने ही संसारियों और साधकोंके भागमें सदा ही रहता है । इसी रास्तेही-पर तो सब चल रहे हैं । पर इन्हें तुकाराम महाराजकी-सी दिव्य स्फूर्ति नहीं होती, इसका कारण क्या है ? दुर्भिक्ष, अपमान, आपदा, स्त्री-पुत्र-विरह इत्यादि बातोंसे अत्यन्त दुखी होकर तुकाराम संसारसे उपराम हुए, यही तो हम चरित्रकार तुकाराम-चरित्र

...वेंगे; पर ऐसी-ऐसी आपदाओंका रोना रोनेवाले असंख्य जीव इस संसारमें हैं। पर इन सबको तुकारामकी-सी उपरामता अंशतः भी क्यों नहीं होती? नाना प्रकारकी विपत्तियोंसे घबराकर कुएँमें जा गिरनेवाले या अफीम खाकर आत्महत्यापर उतारू होनेवाले अथवा 'हाय पैसा!' करते हुए मरनेवाले सोंडमें लिपटी मक्खीकी तरह धनके ही पीछे पड़े हुए उसीमें मर मिटनेवाले जीवोंकी इस संसारमें कोई कमी नहीं है। कमी है उन्हीं लोगोंकी जो विपत्तियोंपर सवार होते हैं, उनसे दब नहीं जाते। धनको गो-मांस समझनेवाले, विपत्तियोंके पहाड़ोंको ढा देनेवाले तुकाराम ऐसे ही रणबाँकुरे वीरोंके सरदार थे। ऐसे वीर, ऐसे वीरशिरोमणि जिन्होंने मायाको जड़-मूलसे उखाड़ डाला, कहाँसे पैदा होते हैं, यही तो प्रश्न है। बात यह है कि जो महात्मा हैं वे महात्मा ही हैं। उनके सम्बन्धमें कार्य-कारण-परम्परा जोड़नेकी हमारी विचार-पद्धति बेचारी बेकार ही हो जाती है। तुकाराम-जैसे सन्त-वीर एक ही जीवनके फल नहीं, 'अनेकजन्म-संसिद्ध' होते हैं। तुकारामने देहूग्राममें, और उसके चतुर्दिक् जो पुण्य-कार्य किया वही पुण्य-कार्य वह पूर्वजन्मोंमें भी करते रहे, इसीसे विपत्तियोंके बड़े-बड़े दुर्गोंको उन्होंने आसानीसे जीत लिया। विपत्तियोंके आनेसे उन्हें वैराग्य हुआ यह कहना तो यहाँ शोभा नहीं देता। यहाँके योग्य बात यही है कि उनके जन्म-सिद्ध अपार ज्ञान-भक्ति-वैराग्यके सामने विपत्तियाँ बालूकी भीतकी तरह ढह गयीं। तुकारामजीने स्वयं ही कहा है, 'पिछले अनेक जन्मोंसे हम यही करते आये हैं; संसार-दुःखसे दुखी जीवोंको विश्वास दिलाकर ढाढ़स बँधाते, हरिके गीत गाते, वैष्णवोंको एकत्र करते

और पत्थरोंतकको पिघलाते—यही सब तो करते—आये हैं।'
जन्म-जन्म यही करते आये हैं और इस जन्ममें भी यही करना
है। इनके सिवा और कौन ऐसा कर सकता है? एक स्थानमें
इन्होंने कहा है कि 'भगवन्! जब-जब आपने अवतार लिया तब-
तब भक्तिका आनन्द लूटने और वह आनन्द सबको वितरण करने
मैं भी आपके सङ्ग आया हूँ।' वारकरियोंका यह विश्वास है और
मैं भी इसे मानता हूँ कि तुकाराम श्रीनृसिंहावतारमें प्रह्लाद,
श्रीरामावतारमें अङ्गद और श्रीकृष्णावतारमें उद्धव थे और कलियुगमें
पहले नामदेव होकर और पीछे तुकारामका भेष बनाकर आये।
प्रभुके प्रत्येक अवतारमें आकर उन्होंने भक्तिका डङ्का बजाया और
आगे भी बजाते ही रहेंगे। ऐसे जिन श्रीतुकारामने महाराष्ट्र-देशके
देहू-स्थानमें आकर अवस्थान किया उनकी इन सब अवतार-
लीलाओंकी एक माला गूँथकर तैयार करना उसीसे बन पड़ सकता
है जो वैसा ही दिव्यदृष्टि-सम्पन्न महात्मा हो अर्थात् जो ऐसे
भगवद्विभूतियोंके अगले-पिछले सब चरित्रोंमें एक-सी प्रवाहित
होनेवाली अन्तःसलिला लीला-धाराको प्रत्यक्ष कर सकता हो।
यह परम सौभाग्य किसको प्राप्त है? हम तो अपने अन्तरङ्ग
स्वजनोंके भी अन्तर्गत मनोव्यापारोंका ठीक-ठीक पता नहीं
लगा सकते, उनके स्वभाव, गुण, दोष और चेष्टाओंकी गाँठें नहीं
खोल सकते, उनके क्रम-विकासके इतिहासके गोरखधन्धेको
नहीं सुलझा सकते, उनके चरित्रोंके विविध प्रसङ्गोंका
वास्तविक स्वरूप नहीं जान सकते; और, यहाँतक कि
अपने ही मनकी बातोंतकको नहीं समझ पाते। ऐसी अवस्थामें

तुकाराम-से दिव्य पुरुषोंके चरित्रोंका रहस्य भला क्या जान सकते हैं ? सच है, महात्माओंके चरित्र वर्णन करनेका काम आसमानपर खोल चढ़ानेका-सा ही साहस है ! महात्माओंके चरित्र महात्मा ही जान सकते हैं, महात्मा ही लिख सकते हैं। स्वयं सन्त हुए बिना सन्त-चरित्रका रहस्य नहीं जाना जा सकता। तुकाराम-जैसे सन्तका चरित्र तुकाराम-जैसे सन्त ही लिखें तभी उनका चरित्र-कथन यथार्थ हो सकता है। इतना सब कुछ सोचते हुए भी मैंने यह चरित्र लिखनेका साहस किया है। कविकुलतिलक कालिदासके कथनानुसार मेरा यह प्रयत्न कहीं ऐसा न हो जैसे कोई बौना मनुष्य ऊँचे वृक्षकी ऊँची डारमें लगे फलोंको तोड़नेके लिये अपने हाथ ऊँचे करे ! इस बातका भय भी मुझे हुआ, पर बालकपर बड़ोंकी कृपा होती है। फल तोड़नेकी बालककी इच्छा जान बड़े उसे अपने कन्धोंपर उठा लेते हैं, और उनकी ऊँचाईका सहारा पाकर बालक अपना हठ पूरा कर लेते हैं। मैंने यह चरित्र लिखनेका साहस किया है, यह ऐसा ही है और साधु-सन्तोंके कृपाशीर्वादका ही इसे सहारा है। इस बाल-हठको पार लगाना भी उन्हींका काम है। भक्तोंके चरित्र भगवान्‌को प्रिय होते हैं। ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि 'जो मेरे (भगवान्‌के) चरित्रोंका कीर्तन करते हैं वे भी मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्यारे लगते हैं। (२२७) और जो मेरे भक्तोंकी कथा कहते हैं उन्हें तो मैं अपने परम देव मानता हूँ। (२३८) [ज्ञानेश्वरी अ० १२] श्रीगीता-ज्ञानेश्वरी माताके इन वचनोंके अनुसार यह पुण्य-कार्य भगवान्‌को प्रसन्न करनेका सर्वोत्तम साधन जान, चित्तमें दृढ़ श्रद्धा

धारण कर श्रीपाण्डुरङ्गभगवान्‌का स्मरण करके मैं इस वाग्यज्ञक आरम्भ करता हूँ ।

२ काल-गणनाका महत्त्व

श्रीतुकाराम महाराजका जन्म कब हुआ, कब उन्हें गुरू पदेश प्राप्त हुआ, कब वह यहाँसे चले गये, उनके जीवनक मुख्य-मुख्य घटनाएँ कब किस क्रमसे हुईं और उनकी कुल आयु कितनी थी, इन बातोंकी चर्चा अबतक थोड़ी-बहुत हो चुकी है। पर सब पहलुओंसे इन सब बातोंका पूर्ण विचार करके निर्ण करनेका काम अभीतक नहीं हुआ है । इसलिये इस निबन्धमें य निर्णय करनेका काम यथासाध्य पूरा किया जाय । परमार्थ-दृष्टि में काल-गणनाका विचार कोई बड़ा महत्त्व नहीं रखता, प इतिहासकी दृष्टिमें इसका बड़ा महत्त्व है । महात्माओंके जीवन चरित्रोंसे मुमुक्षुजन यही जानना चाहते हैं कि उन महात्माओं कौन-कौन-से दिव्य लक्षण थे और वह दिव्य सम्पदा उन्होंने कै पायी, परिस्थितिसे लड़ते-भिड़ते हुए वे महत् पदपर कैसे आरू हुए, वैराग्य उन्हें कैसे प्राप्त हुआ, उन्होंने क्या-क्या अभ्या किया, कैसी दिनचर्या और जीवनचर्या बनायी, उनकी ज्ञान-भ और भगवन्निष्ठा कैसी थी, सङ्कटोंसे भगवान्‌ने उन्हें कैसे उबार संसारको वे क्या सिखा गये इत्यादि । मुमुक्षुओंका तो य ध्यान रहता है और यही ठीक भी है; क्योंकि सन्त-चरित्रोंको दे अपना चरित्र सुधारने, सन्तोंके निर्मल चरित्र-दर्पणको अप सामने रखकर उनके भक्ति-ज्ञान-वैराग्यको प्राप्त होने, उनके प चिह्नोंको देख-देख उसी रास्तेसे चलनेकी शुभेच्छा भगवत्कृपा

जिन्हें प्राप्त हुई हो उन्हें काल-गणनाकी-सी नीरस-सी चर्चा लेकर क्या करना है? अमराईमें बैठा हुआ मनुष्य क्षुधित होनेपर आम्रफल तोड़कर खा लेना ही सबसे आवश्यक कार्य समझेगा। ... इस चर्चासे क्या प्रयोजन कि ये पेड़ किसने, कब, कैसे, कहाँ- ... पाकर लगाये और कितने बरसमें ये फले? क्षुधा-निवृत्तिकी ... इस चर्चाका कोई खास महत्त्व नहीं है। उसका काम क्षुधा-निवृत्तिका साधन करना है, इधर-उधर देखना नहीं। महान् भक्त प्रह्लाद किस शताब्दीमें, किस जातिमें, किस देशमें, कब पैदा हुए और कबतक जिये। भागवत ग्रन्थ किसका बनाया है— वेदव्यासदेवका या बोपदेवका अथवा इसकी रचना किस शताब्दीमें हुई इत्यादि बातोंकी चर्चा परमामृतके प्यासे परमार्थके साधकोंको नीरस-सी ही जान पड़ेगी। वह प्रह्लादके जीवन-रसको पानेके लिये छटपटाने लगेगा जिससे प्रह्लादने पिताके सब अत्याचारोंको सहकर नारायणके परम रसका पान किया! इतनी-सी उमरमें इतना महान् तप और ऐसी अटल निष्ठा! इसीके ध्यानमें निमग्न होकर वह प्रेमभरे अन्तःकरणमें प्रह्लादको अपने नेत्रोंमें चित्रित कर लेगा, और 'पुकारते ही दौड़े आकर खम्भको फोड़कर बाहर निकलनेवाले ऐसे दयालु मेरी विठामाईके सिवा और कौन हो सकते हैं?' इस कथा-रहस्यको हृदयमें धारणकर तुकारामके समान वह भगवत्प्रेमानन्दमें उछलने और नाचने लगेगा। सच्चे भक्तोंका यही मार्ग है और अपने परम कल्याणका यही साधन है, इसमें कोई सन्देह नहीं। तथापि आधुनिक पद्धतिसे चरित्र-ग्रन्थ लिखनेवाला लेखक काल-गणनाकी उपेक्षा भी नहीं कर सकता।

इतिहास और समाज-शास्त्रकी दृष्टिसे काल-निर्णयका बड़ा महत्त्व है। काल-निर्णय इतिहासका नेत्र है, काल-निर्णयके बिना इतिहास अन्धा रह जाता है। ठीक-ठीक काल-निर्णय न होनेसे कार्य-कारण-सम्बन्धको समझना असम्भव होता है, कितने ही निराधार भ्रम लोगोंमें फैल जाते हैं और 'कहींकी ईंट और कहींका रोड़ा' लेकर 'भानमतीका कुनबा जोड़ा' जाता है। इसलिये काल-निर्णयका काम छोड़ नहीं दिया जा सकता। अतएव इस प्रथम अध्यायमें ही यह काम कर लें, तब द्वितीय अध्यायसे श्रीतुकाराम महाराजका कालक्रमानुसार चरित्र वर्णन करेंगे।

३ ज्योतिर्विदोंकी सहायता

आरम्भमें ही मैं यह बतला देना चाहता हूँ कि तिथि-वार और शक-संवत् आदिका मिलान प्रसिद्ध ज्योतिर्विदोंसे ठीक-ठीक करा लिया है और तभी यह अध्याय लिखा है। पूनेके प्रसिद्ध ज्योतिषी श्रीकेतकर, श्रीखरे और ग्वालियरके प्रो० आपटेने इस काममें सहायता की है। पर सबसे अधिक (स्वर्गीय) लोकमान्य तिलकका उपकार है जिन्होंने आठ दिनमें सब गणित करके मुझे जिन शक-मितियोंकी आवश्यकता थी उनका निर्णय करके एक कागजपर लिखकर मेरे हवाले किया। इस अध्यायमें जो ज्योतिर्गणित है वह सब लोकमान्य तिलकका है। जिन ज्योतिर्विदोंने इस कार्यमें मेरी सहायता की उन सबके प्रति मैं यहाँ कृतज्ञता प्रकट कर काल-निर्णयके प्रसङ्गकी ओर आगे बढ़ता हूँ।

४ प्रयाण-कालके बारेमें तीन मत

श्रीतुकाराम महाराजके जन्म-संवत्के सम्बन्धमें कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिला है। जो है, अनुमान है और ऐसे अनुमानोंके चार मत हैं। प्रयाण-कालके सम्बन्धमें भी तीन मत हैं। इन सब मतोंका परीक्षण करके यह देखा जाय कि इनमें ग्राह्य मत कौन-सा है। जन्म-काल या प्रयाणकाल कुछ भी हो तो भी उससे किसीका कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। काल-निर्णयका विषय भी कोई आग्रहका विषय भी नहीं है। गणितके द्वारा ही इस विषयमें निर्णय किया जा सकता है। पर जहाँ गणितकी सहायता भी पूरा काम नहीं देती वहाँ तारतम्यसे काम लेना पड़ता है। जन्म-काल अथवा प्रयाण-काल कोई भी एक काल निश्चित करके तब दूसरा काल निश्चित करना ठीक होगा। पहले प्रयाण-काल निश्चित करें। इस सम्बन्धमें जो तीन मत हैं वे इस प्रकार हैं—

(१) प्रयाण-कालके सम्बन्धमें जो सबसे प्राचीन लेख मिलता है वह तुकाराम महाराजके लेखक सन्ताजी जगनाडेके पुत्र बालाजी जगनाडेके हाथका लिखा है। इन दोनों पिता-पुत्रके हाथकी लिखी अभंगोंकी बहियाँ तलेगाँवमें हैं। बालाजीके हाथकी वहीमें २१६वें पृष्ठपर यह लेख है—'श्रीनृपशालीवाहन शक १५७२ विकृति नाम संवत्सर फाल्गुन बदी २ द्वितीया वार सोमवारके दिन तुकोबा गोसाईं वैकुण्ठ गये। स्वशरीरसहित गये।' इस

लेखसे तुकाराम महाराजकी प्रयाण-तिथि फाल्गुन वदी २ सोमवार शाके १५७२ है।

(२) देहूमें देहूकरोंके यहाँ पूजामें जो अभंगोंकी वही है उसमें अन्तके एक पृष्ठपर यह लेख है—'शाके १५७१ विरोधी नाम संवत्सर फाल्गुन बदी द्वितीया, वार सोमवार। उस दिन प्रातः-कालमें तुकोबाने तीर्थको प्रयाण किया। शुभं भवतु मंगलम्।' यही समय महीपतिबाबाने भी भक्तलीलामृत अ० ४० में दिया है। जगनाडेोंकी वहियोंके लेखोंके बादके ये दोनों लेख हैं और ये ही बहुत माने गये हैं।

(३) प्रसिद्ध इतिहासकार (स्वर्गीय) राजवाडेका यह मत है कि फाल्गुन बदी द्वितीया शाके १५७० में आती है इसलिये प्रयाण-काल १५७० शाके मानना चाहिये।

५ मतोंकी मीमांसा

इन तीनों लेखोंमें फाल्गुन वदी २ समान है, और सर्वथा प्रमाण है। कारण, देहूमें तथा वारकरियोंमें सर्वत्र ही इसी तिथिको, तुकाराम महाराजके प्रयाण-कालसे ही, पुण्योत्सव मनाया जाता है। वर्षके सम्बन्धमें तीन मत हो गये हैं; पर कठिनाई यह है कि शाके १५७०, १५७१, १५७२ इनमेंसे किसी भी वर्ष फाल्गुन वदी द्वितीयाको सोमवार नहीं था। १५७१ में फाल्गुन वदी २ को सोमवार न पाकर राजवाडे महोदयने सोमवारके लिये प्रयाण-काल एक वर्ष पीछे घसीटा है, पर १५७० में भी उस तिथिको सोमवार नहीं मिलता, रविवार आता है। १५७१ में

शनिवार और १५७२ में गुरुवार आता है। फाल्गुन बदी २ को इन तीन वर्षोंमेंसे किसीमें भी सोमवार नहीं है। पर प्रयाण-कालको रखना होगा इन्हीं तीन वर्षोंके भीतर ही। शिवाजी महाराजका जन्म शिवनेरीदुर्गमें शाके १५४९ में* वैशाख शुक्ल २ को हुआ। दादाजी कोंडदेवकी सहायतासे स्वराज्य-संस्थापन-का उद्योग उन्होंने शाके १५६५ के लगभग आरम्भ किया। शिवाजीकी मनोभूमि धर्मभूमि थी, जिजाबाई (उनकी माता) और दादाजीसे उन्हें जो शिक्षा मिली वह भी धर्म-शिक्षा ही थी। शिवाजीके हृदयमें यह विश्वास जमा हुआ था कि स्वराज्य-संस्थापनका उद्योग साधु-सन्तोंके कृपाशीर्वादके बिना सफल नहीं हो सकता। इसीसे चिंचवड-निवासी महात्मा देव और देहूके विदेह-देही श्रीतुकारामके पावन दर्शनोंका सौभाग्य उन्हें शाके १५६५ के पश्चात् ५-६ वर्षके भीतर ही प्राप्त हुआ और कीर्तन सुननेका भी उन्हें चसका लग गया। दादाजी पूनेके सूबेदार थे। एक संन्यासी महात्माके कहनेसे उन्होंने तुकाराम महाराजको पूनेमें बुलवाया और पूनावासी महाराजके कीर्तन सुनकर मुग्ध हो गये। सबके चित्तपर उनके ज्ञान-भक्ति-वैराग्यका रंग चढ़ गया जैसा कि महीपतिबाबाने लिख रक्खा है। दादाजीकी मृत्यु १५६९-७० शाके के लगभग हुई, १५६८ तक तो वह अवश्य ही जीवित थे क्योंकि १५६८ का उनका एक निर्णय-पत्र प्रसिद्ध है। इनका तुकारामजी-

---

* 'जेधे शकावली' और 'शिवभारत' के प्रमाणसे अब श्रीशिवाजी महाराजका जन्म-वर्ष शाके १५५१ (संवत् १६८६) माना जाता है। उसी प्रमाणसे जन्म-दिन फाल्गुन शुक्ल ३ है। —अनुवादक

को पूनेमें लिवा लाना, उनके कीर्तनपर पूनावासियोंका मुग्ध होकर जयजयकार करना, तुकाराम महाराजकी अनेक कथाओंको शिवाजीका श्रवण करना इत्यादि बातें शाके १५६६ और १५७१ के बीचकी हैं। शाके १५७०-७१ के लगभग तुकाराम, शिवाजी और रामदास तीनोंका मिलन अवश्य हुआ होगा। इसलिये इसके बाद और १५७२ के पहले अर्थात् ७०, ७१ और ७२ इन्हीं तीन वर्षमें किसी समय तुकाराम महाराजने प्रयाण किया होगा। इन तीन वर्षमेंसे कौन-सा वर्ष निश्चित होनेयोग्य है यह देखनेके लिये एक बात विचारणीय है।

६ प्रयाण-काल-निर्णय

तुकाराम महाराजने अपनी धर्मपत्नी जिजाबाईको 'पूर्णबोध' नामसे ११ अभंगोंमें जो उपदेश किया है वह प्रयाणके ४-५ ही दिन पहले किया होगा, यह उन अभंगोंको देखनेसे ही स्पष्ट विदित होता है। 'तुकाराम और जिजाबाई' वाले अध्यायमें इन अभंगोंका विस्तारके साथ विचार होनेवाला है इसलिये यहाँ इस प्रसंगमें जितने अंशका विचार आवश्यक है उतना ही करेंगे। इन अभंगोंमें तुकारामजी जिजाबाईसे कहते हैं, 'घर-द्वार, गाय-बैल, बाल-बच्चे इन सबपरसे अपना ममत्व हटा लो और अपना गला छुड़ा लो। सबका अपना-अपना प्रारब्ध है, इसलिये तुम इनके मोहमें फँसकर अपना नाश मत करो। घर-द्वार, भाजन-छाजन सब ब्राह्मणोंको दानकर एकदम निश्चिन्त हो जाओ। इससे हम-तुम साथ ही वैकुण्ठ चले चलेंगे। देव, ऋषि, मुनि सब हम दोनोंका जयजयकार करेंगे।........यह सुख दोनोंको

मिलेगा, देवता और ऋषि बड़ा उत्सव करेंगे, रत्न-जटित विमानमें बैठावेंगे, गन्धर्व नाम-गान करेंगे, सन्त-महन्त-सिद्ध अगवानी करेंगे, सुखमात्रकी इच्छा वहाँ पूर्ण होगी। जहाँ अपने माता-पिता बैठे हैं वहाँ चलें और उनके चरणोंका आलिंगनकर उनपर लोट जायँ। जब इन नेत्रोंको माता-पिताके दर्शन होंगे उस समयके सुखका मैं क्या वर्णन करूँ।'

इन अभंगोंसे यह स्पष्ट ही जान पड़ता है कि 'पूर्णबोध' के ये अभंग उन्होंने उसी समय रचे हैं जब वैकुण्ठकी ओर ही उनका ध्यान लगा था। प्रयाणके पूर्व कुछ दिन वह जिजाईसे कहा करते थे कि 'हम अब वैकुण्ठ चले!' पर वह उनकी बात समझ न सकीं। ये अभंग उसी समयके हैं जब 'वे देवऋषि', 'जडित विमान', 'वे वैकुण्ठवासी माता-पिता' नेत्रोंके सामने आ गये थे। शुक्ल दशमीसे ही वैकुण्ठकी रट लगी! उसी दिन भगवान् तुकारामसे मिलने वैकुण्ठसे आये। उस समय उनका सत्कार करनेयोग्य कोई सामग्री तुकारामके समीप नहीं थी। तब उन्होंने इस आशय-का अभंग कहा है कि 'हृषीकेश अतिथि होकर घर आये हैं, अब इनका क्या देकर सत्कार करूँ! पानीमें चावलके कन घोल-कर सामने रख दिये।' इस घटनाके स्मारकस्वरूप फाल्गुन शुक्ल १० को चावलके कनोंका ही भगवान्‌को भोग लगता है। इसे देहूमें अबतक 'कनिया-दशमी' कहते भी हैं।

और एक बात है, वैकुण्ठ सिधारनेका निश्चय करने-पर ही उन्होंने जिजाबाईको 'पूर्णबोध' सुनाकर अपना कर्तव्य पूरा किया। यह केवल मेरी ही कल्पना नहीं है। निलोबारायने भी कहा है

कि 'पहले स्वर्गको जाते हुए तुकारामने अपनी स्त्रीको उपदेश किया। यह उपदेश उन्होंने किस दिन किया यह उन्हींके अभंगोंसे मालूम हो जाता है; 'प्रातःकाल है, द्वादशीका पर्वकाल है, शुक्लपक्षका आज सोमवार है,ऐसे पर्वपर जीको कड़ा करके सब कुछ दान कर दो। फाल्गुन शुक्ल ११ को रविवार, १२ को सोमवार, १३ को मंगलवार, १४ को बुधवार, पूर्णिमाको गुरुवार, वदी १ को शुक्रवार और वदी २ को शनिवार—इस प्रकार तिथि-वारका यह एक सप्ताह बन जाता है और 'पिले'के कैलेण्डरसे भी यह हिसाब ठीक मिलता है। फाल्गुन शुक्ल १२ को सोमवार था, यह बात तुकाराम महाराजके अभंगसे ही सिद्ध है और इसी क्रमसे जन्त्री मिलाकर देखनेसे भी वदी २ को जब शनिवार ही आता है तब सीधा हिसाब यही है कि शाके १५७०-७१-७२ इन तीन वर्षोंमें जिस किसी वर्ष फाल्गुन वदी २को शनिवार हो वही वर्ष तुकाराम महाराजके प्रयाणका वर्ष माना जाय। शाके १५७२में इस तिथिको गुरुवार है, १५७० में रविवार है, केवल १५७१ में ही इस तिथिको शनिवार है। फाल्गुन शुक्ल १२ को सोमवार होना चाहिये सो इसी वर्षमें है और इसी क्रमसे वदी २ को शनिवार है। इसलिये शाके १५७१ ही तुकाराम महाराजके प्रयाणका वर्ष मानना चाहिये। कई पुराने कागजोंमें १५७१में ही तुकाराम महाराजके प्रयाण करनेका उल्लेख भी है। तात्पर्य, फाल्गुन वदी २ (पूर्णिमान्त मासके हिसाबसे चैत्र कृष्ण २) शाके १५७१ (संवत् १७०६) शनिवारके दिन प्रातःकाल तुकारामजी वैकुण्ठ सिधारे यह बात निश्चित हुई * अब जन्म-वर्ष देखें।

* इस दिन अंगरेजी तारीख ९ मार्च १६५० ई० थी।

७ जन्म वर्षके बारेमें चार मत

जन्म-वर्षके सम्बन्धमें चार मत इस प्रकार हैं—

(१) कवि चरित्रकार जनार्दन रामचन्द्रजीने लिखा है कि 'तुकाराम देहूमें शाके १५१० में पैदा हुए ।'

(२) देहू और पण्ढरपुरकी तुकारामकी वंशावलीमें उनका जन्म 'माघ शुक्ल ५ गुरुवार शाके १५२०' को लिखा है ।

(३) इतिहासकार राजवाडेने वाईमें मिली हुई एक प्राचीन वंशावलीको प्रमाण मानकर और प्रमाणान्तरोंसे मिलानकर तुकाराम-जन्म शाके १४९० में माना है ।

(४) 'सन्तलीलामृत'में महीपतिबाबाने तुकारामके प्रथम इक्कीस वर्षोंका जो चरित्र-विवरण दिया है उससे ये बातें मालूम होती हैं—

१३ वें वर्ष तुकारामके सिरपर गृहस्थीका सारा भार आ पड़ा ।

१७ वें वर्ष उनके माता-पिता इहलोक छोड़ गये और पीछे बड़े भाई सावजीकी स्त्रीका देहान्त हुआ ।

१८ वें वर्ष सावजी तीर्थाटनको गये ।

२० वें वर्षतक इन तीन वर्षमें इन्होंने गृह-सुत-दाराके साथ सुखपूर्वक गृहस्थी चलायी ।

२१ वें वर्ष दिवाला निकला, घोर दुर्भिक्ष पड़ा, तुकारामकी ज्येष्ठा पत्नी और उससे उत्पन्न पुत्र दोनों अन्नके बिना हाहाकार कर मर गये ।

महीपतिबाबाने यह विवरण देकर इसे तुकाराम-चरित्रकी 'पूर्वार्ध-समाप्ति' कहा है। इसका वाच्यार्थ ही ग्रहण करें और इन २१ वर्षको पूर्वार्ध मान लें तो तुकारामकी आयु ४२ वर्ष माननी पड़ेगी। महीपतिबाबाने तुकारामके प्रयाणका वर्ष १५७१ ही बताया है, इसमेंसे ४२ वर्ष घटा दें तो जन्म-वर्ष शाके १५२९-३० आता है। यदि इस 'पूर्वार्ध-समाप्ति' को लक्ष्यार्थसे 'अज्ञान-प्रकृतिका अन्त' मानें तो जन्मका कोई भी वर्ष मान लिया जा सकता है। पर बहुतोंने वाच्यार्थ ही ग्रहण किया है और जन्म-वर्ष शाके १५३० माना है।

८ चार मतोंका विचार

इन चार मतोंमेंसे कौन ठीक उतरता है, यह अब देखना चाहिये। कवि चरित्रकारने जन्म-वर्ष १५१० दे दिया है, पर कोई प्रमाण नहीं बताया है इसलिये यह ग्राह्य नहीं हो सकता। देहू और पण्ढरपुरकी वंशावलियोंको मैंने देखा है। वे ५०-७५ वर्षसे अधिक प्राचीन नहीं हैं और इनमें जो जन्म-वर्ष १५२० दिया है उसके साथ इन्हींमें दी हुई जन्म-तिथि माघ शुक्ल ५ गुरुवारका मेल नहीं बैठता। माघ शुक्ल पञ्चमीको गुरुवार तो नहीं था। इस वर्ष माघ शुक्ल ५ को रविवार था और माघ कृष्ण ५ को सोमवार था, इसलिये इसे भी प्रमाण नहीं मान सकते।

९ इतिहासकार राजवाडेका मत

इतिहासकार राजवाडेने जन्म-वर्ष शाके १४९० माना है और इसके पक्षमें तीन प्रमाण दिये हैं—(१) वाईमें मिली हुई

वंशावली, (२) निबन्धमालामें वामनविष्णु लेलेद्वारा प्रकाशित एक प्राचीन पत्र, जिसमें तुकारामके गुरु-उपदेशके सम्बन्धमें महीपति नामक किसी पुरुषके बनाये ५ अभंग हैं जिनमेंसे एक अभंगका आशय यह है कि बाबाजी चैतन्यने शाके १४९३ प्रजापति नाम संवत्सर वैशाख बदी १२ को समाधि ली और उसके ३० वर्ष बाद तुकारामपर अनुग्रह किया। प्रजापति-संवत्सरसे ३० वाँ संवत्सर शार्वरी (शाके १५२२) है। पर तुकारामने एक अभंगमें कहा है कि माघ शुक्ल १० 'गुरुवार' देख गुरुने अंगीकार किया, इसलिये माघ शुक्ल १०को 'गुरुवार' का होना आवश्यक है। शाके १५२२में इस तिथिको गुरुका यह वार नहीं मिलता, मिलता है शाके १५२० विलम्बी संवत्सरमें। अर्थात् उपर्युक्त महीपतिके अभंगमें तीस वर्षकी जो बात लिखी है उसका अर्थ तीस ही नहीं, पचीस-तीस-जैसा है। इस प्रकार राजवाडेके मतसे बाबाजी चैतन्यने तुकारामको शाके १५२० विलम्ब नाम संवत्सरमें माघ शुक्ल १० गुरुवारके दिन उपदेश किया। जन्म-वर्ष शाके १४९० और गुरूपदेश-वर्ष १५२० मानकर इस बीचके तुकाराम-चरित्रके २१ वर्षका विवरण राजवाडेने वही माना है जो महीपतिबाबा बतलाते हैं। शाके १५७१के फाल्गुन मासमें तुकारामने प्रयाण किया अर्थात् उस समय उनकी आयु ८१ वर्षकी थी। उपर्युक्त महीपतिके अभंगमें शाके १४९३में बाबाजी चैतन्यकी समाधि है और इसके तीस वर्ष अनन्तर तुकारामको उनका गुरूपदेश प्राप्त होता है। इसे सही मान लेनेसे तुकारामकी आयु उस समय २५।३० वर्षकी रही होगी यह स्पष्ट है। अर्थात् इस प्रकारसे उनका जन्म-वर्ष शाके १४९० मानना पड़ता है। (३) तुकारामने एक

अभंगमें कहा है, 'जरा कर्णमूलमें आकर बातें करने लगी'; इससे भी राजवाडे यह अनुमान करते हैं कि तुकाराम स्वर्ग सिधारनेके समय बहुत वृद्ध हो गये थे।

इन तीन प्रमाणोंके अतिरिक्त एक प्रमाण राजवाडेजीकी ओरसे मैं ही पेश किये देता हूँ। तुकारामजीके शिष्योंमेंसे एक शिवा कसेरे नामक शिष्य लोहगाँवमें रहते थे, वहाँ उनका बनवाया हुआ एक कूप है और उसपर शाके १५३४ में खुदा हुआ एक शिलालेख है। उस शिलालेखको शोधकर उसपर एक प्रबन्ध मैंने शाके १८३७ में भारत-इतिहास-संशोधक-मण्डलकी सभामें पढ़ा था। राजवाडेजी जिसे लोहगाँव बतलाते हैं वह लोहगाँव नहीं है, यह बात मैंने उस लेखमें सप्रमाण बता दी थी और वह शिलालेख भी सामने रख दिया था। इस शिलालेखसे तुकारामका जन्म शाके १४९०में ही हुआ होगा इसी बातकी पुष्टि होती है।

१० उनके मतका परीक्षण

अब राजवाडेके मतानुसार तुकाराम-जन्म शाके १४९०में मान लेना कहाँतक युक्तिसंगत हो सकता है, यह देखें।

वाईकी वंशावलीको प्रमाण मानें तो उस प्रमाणमें प्रमाद मौजूद है। महीपतिबाबा और देहूकरोंकी वंशावली दोनों ही एक रायसे बतलाते हैं कि विश्वम्भरबाबाके दो पुत्रोंमेंसे हरि बड़ा था और मुकुन्द छोटा, पर वाईकी वंशावलीमें मुकुन्दको बड़ा और हरिको छोटा कहा है। इसके अतिरिक्त वाईकी वंशावलीमें तुकारामके दादाका नाम रंगनाथ और परदादाका नाम सोमाजी

लिखा है। पर महीपतिबाबा और देहूकरोंकी वंशावली दोनों ही दादाका नाम कान्हजी और परदादाका नाम शंकरबाबा बतलाते हैं। यहाँ यह भी ध्यानमें रखना चाहिये कि वाईमें किसी वारकरीके घर-की किसी पोथीमें मिली हुई वंशावलीकी अपेक्षा तुकारामके सत्-शिष्य और शोधक महीपतिबाबा और तुकारामके वंशजोंके वचन अधिक विश्वसनीय और सम्मान्य हैं। इसलिये वाईकी जिस वंशावलीमें ऐसी-ऐसी भूलें हैं उसका दिया हुआ जन्म-वर्ष १४९० भी कहाँतक विश्वसनीय हो सकता है?

राजवाडेने जिन महीपतिके अभंग उद्धृत किये हैं वह महीपति कौन थे? कोई महीपति नामधारी जरूर थे, पर महीपति-बाबा वह नहीं हैं, यह बात उन अभंगोंकी ही दो बातोंसे स्पष्ट होती है। कारण, यह महीपति कहते हैं कि तुकारामको ओतुर नामक स्थानमें गुरूपदेश प्राप्त हुआ, और भक्तलीलामृतमें महीपतिबाबा लिखते हैं कि तुकारामको यह गुरूपदेश देहूमें प्राप्त हुआ। दूसरी बात यह है कि यह महीपतिबाबाजी चैतन्य और केशव चैतन्यको एक ही बतलाते हैं। और वारकरी-सम्प्रदायमें यह मान्यता है कि राघव चैतन्य, केशव चैतन्य और बाबाजी चैतन्य तुकारामकी गुरुत्रयी हैं अर्थात् बाबाजी चैतन्यके गुरु केशव चैतन्य और केशव चैतन्यके गुरु राघव चैतन्य थे। इन दोनों बातोंसे यह स्पष्ट होता है कि ताहराबादकर श्रीमहीपतिबाबाके ये अभंग नहीं हैं। यह कोई दूसरे ही महीपति हैं। राजवाडे जिन वाईकी वंशावली और महीपतिके अभंगोंके आधारोंपर तुकारामकी

८१ वर्षकी आयुकी अट्टालिका खड़ी करते हैं वे आधार बहुत ही कच्चे हैं। इनको प्रमाण नहीं माना जा सकता।

'जरा कर्णमूले' वाली बातसे राजवाडेजीने अनुमान किया है कि मृत्यु-समयमें तुकाराम बहुत वृद्ध हो गये थे। कानोंके पासके बाल जब श्वेत होने लगते हैं तब उसे यमराजकी ध्वजा यानी यमराजके आगमनकी प्रथम सूचना मानने और कहनेकी परिपाटी पहलेसे चली आयी है। पर अतिवृद्ध होना ही उसका अभिप्राय नहीं है। बालोंका श्वेत होना २८ वें वर्षसे ६० वें वर्षतक, अपनी-अपनी प्रकृतिके अनुसार आगे-पीछे आरम्भ हो जाता है। तुकारामको वयस्के १८ वें वर्षके बादसे संसारमें दुःख-ही-दुःख भोगने पड़े, इससे ४० वें वर्षके लगभग उनके मुँहसे 'जरा कर्णमूलमें आकर बातें करने लगी'—ऐसा उद्गार निकला हो तो क्या आश्चर्य है? और 'जरा कर्णमूलमें आकर बातें करने लगी' इस वाक्यसे जरा या बालोंके श्वेत होनेका आरम्भ ही सूचित होता है। और यही अभिप्राय व्यक्त करनेके लिये इस प्राचीन उक्तिप्रकारका प्रयोग किया जाता है। कथासरित्सागर द्वितीय लम्बक द्वितीय तरंगका २१६ वाँ श्लोक देखिये—

अथ तस्य जरां प्रशान्तिदूती-
मुपयातां क्षितिपस्य कर्णमूलम्।
सहसैव विलोक्य जातकोपा
बत दूरे विषयस्पृहा बभूव॥

यह सुभाषित तो प्रसिद्ध ही है—

कृतान्तस्य दूती जरा कर्णमूले
समागत्य वक्तीति लोकाः श्रृणुध्वम् ।
परस्त्रीपरद्रव्यवाञ्छां त्यजध्वं
भजध्वं रमानाथपादारविन्दम् ॥

संस्कृत-साहित्यसे ऐसे अनेक अवतरण दिये जा सकते हैं। यदि प्रयाण-कालमें तुकाराम सचमुच ही बहुत वृद्ध हुए होते तो वृद्धत्व-सूचक और भी कुछ उल्लेख उनके अभंगोंमें मिले होते और राजवाडेजी उन्हें उद्धृत भी करते। पर ऐसे उल्लेख कहीं हैं ही नहीं।

अब शिवा कसेरेके कूपकी बात रह गयी। इस कूपपर शाके १५३४ का लेख है। इससे तुकारामजीका जन्म इससे बहुत पहले हुआ होगा ऐसा अनुमान कोई करे तो वह भी नहीं माना जा सकता। तुकारामजीने शिवबापर अनुग्रह किया, उसके बाद उन्हींकी आज्ञासे शिवबाने वह कूप बनवाया, ऐसा महीपतिबाबाने लिखा है, पर यह सुनी-सुनायी बात ही उन्होंने लिखी होगी। कूपके शिलालेखमें 'शिऊजी' नाम है। पर यह शिऊजी तुकाराम-जीके शिष्य शिवजी कसेरा हैं या उनके कोई दादा-परदादा या और कोई, यह निश्चयपूर्वक नहीं जाना जा सकता। निश्चय इतना तो अवश्य हो सकता है कि तुकारामके शिष्य शिवजीने तुकारामकी आज्ञासे यह कूप बनवाया होता तो उस शिलालेखमें जहाँ श्रीगणेश और श्रीकालिकाको प्रथम नमन किया गया है वहाँ उनके स्थानमें या उनके साथ ही 'श्रीपाण्डुरङ्गाय नमः', 'श्रीरुक्मिणीविट्ठलाभ्यां नमः' भी अवश्य होता। तुकारामका शिष्य होकर गणेश और

कालिकाको तो स्मरण करे और विट्ठल-रखुमाईको भूल जाय, ऐसा नहीं हो सकता। इसलिये यह कूप बनवानेवाला शिवा कसेरा या तो तुकारामका शिष्य शिवा कसेरा नहीं है या कम-से-कम कूप बनवानेके समयतक वह तुकारामका शिष्य नहीं था, यह बात सिद्ध होती है। इस तरह तुकारामका जन्म-वर्ष शाके १४९० माननेकी पुष्टि इस कूपसे भी नहीं होती।

तुकारामकी आयुमर्यादा ८१ वर्ष माननेके विरुद्ध एक बड़ी बात यह भी है कि जिस समय तुकाराम वैकुण्ठ सिधारे उस समय जिजाई गर्भवती थीं। तुकारामके दोनों विवाह उनके माता-पिताके रहते ही हुए थे और माता-पिता उनके वयस्के सतरहवें वर्ष मृत्युलोकसे विदा हुए, यह महीपतिबाबाने स्पष्ट ही कहा है। राजवाडेजी भी इस बातको मानते हैं कि तुकारामका प्रथम विवाह उनके वयस्के १२ वें वर्षमें और द्वितीय विवाह चौदहवें वर्षमें हुआ। अर्थात् तुकारामकी द्वितीया पत्नी उनसे अधिक-से-अधिक ५-६ वर्ष छोटी रही होंगी। अर्थात् प्रयाणके समय यदि तुकाराम ८१ वर्षके रहे हों तो जिजाई ७५-७६ वर्षकी रही होंगी। पर इस वयस्में उनके सन्तान होना असम्भव है। अपनी बातकी पुष्टिमें राजवाडेजीने निजामुलमुल्क, जर्मन तत्त्ववेत्ता गेटी और 'गुरुचरित्र' में वर्णित बाँझके वृद्धावस्थामें सन्तान होना, ये तीन दृष्टान्त उपस्थित किये हैं।

राजवाडेजी बतलाते हैं कि निजामुलमुल्क जब ८० बरसके थे तब उनके लड़का पैदा हुआ। पर इस लड़केकी याने

निजाम अलीकी माता निजामुलमुल्ककी कौथी स्त्री थी, कितने वर्षकी थी, तथा राजपुरुषोंकी जन्म-कथाओंमें कभी-कभी कितने पेंच-पाँच होते हैं, इन सब बातोंका विचार उन्होंने नहीं किया है। निजामुलमुल्क-जैसोंके उदाहरण महात्माओंके चरित्रोंमें देना भी प्रशस्त नहीं है। दूसरा उदाहरण गेटीका है। ६० वर्षतक यह ब्रह्मचारी रहे, पीछे इन्होंने विवाह किया और विवाह भी एक युवतीसे किया। इसलिये यह दृष्टान्त भी यहाँ नहीं घटता। फिर शीतकटिबन्धके मनुष्योंकी बात कुछ है, उष्णकटिबन्धके मनुष्योंकी बात कुछ और। इसलिये भी यह उदाहरण ठीक नहीं है। तीसरा उदाहरण 'गुरुचरित्र' में वर्णित स्त्रीका है। राजवाडेजी कहते हैं, 'प्रसिद्ध गुरुचरित्र-ग्रन्थमें, मासिक धर्मको छूटे बीस-पचीस वर्ष बीत चुके थे, ऐसी एक वृद्धा स्त्रीके सन्तान होना लिखा है। यह स्त्री प्रसूतिके समय ७०-७५ वर्षकी रही होगी।' यह कथा 'गुरुचरित्र' के ३९ वें अध्यायमें है। वह स्त्री सोमनाथकी पत्नी गंगा है। इस स्त्रीके ६० वें वर्ष श्रीगुरुकृपासे सन्तान हुई, यह तो गुरुचरित्रमें लिखा है, पर राजवाडेजीने उसे ७०-७५ वर्षकी बना डाला है। इस कथामें उस स्त्रीके ६० वर्षकी होनेका कई बार उल्लेख हुआ है। दूसरे यह कि गंगाबाई बाँझ थीं और उन्हें पुत्र-मुख-दर्शनकी बड़ी लालसा थी। जिजाईकी बात तो ऐसी नहीं थी। यौवन प्राप्त होनेके समयसे ही उनके बच्चे होने लगे और उनसे उनका जी भी ऊब गया था। तीसरी बात यह कि गंगाबाई बाँझ थीं और बच्चा होनेके लिये उन्होंने कितनी मानताएँ मानी थीं, पुत्रके लिये वह ईश्वरसे प्रार्थना किया करती थीं और श्रीगुरुने

अपनी सिद्धाईका एक चमत्कार दिखाया जो उन्हें ६० वर्षकी अवस्थामें पुत्र दिया। जिजाईके सम्बन्धमें ऐसी कोई बात नहीं है। जिजाईके सन्ततिकी कोई कमी नहीं थी। बच्चे-बच्चे पालते-पोसते इस जंजालसे उनका जी ऊब गया था और ऐसी अवस्थामें वयस्के ७५ वें वर्ष जिजाईके सन्तान हो, यह तो असम्भव है। इसलिये बात यह है कि प्रयाणके समय तुकारामकी आयु ८१ वर्ष नहीं थी और न जिजाईका मासिक धर्म ही छूटा था। चौथी बात यह कि वयस्के २१ वें वर्षमें वैराग्य वरण करनेवाले तुकाराम ८१ वें वर्षमें भी ग्राम्यधर्मरत हों, यह बात भी जँचनेलायक नहीं है। वर्णाश्रम-धर्मका साधारण नियम यह है कि—

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
वार्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्॥

(रघुवंश सर्ग १।८)

इस साधारण नियमको तुकारामने न माना हो, ऐसी बात तो समझके बाहर है। प्राचीन परम्परा यही है कि कोई भी धार्मिक हिन्दू ५०-५५ वयस्के बाद प्रायः ग्राम्यधर्ममें मन नहीं लगाते। फिर जो तुकाराम अपने अवतीर्ण होनेका यह प्रयोजन बतलाते हैं कि 'धर्मरक्षणके लिये हमारा सारा उद्योग है' जो अपनी 'वाणीसे वेदनीति ही कहते हैं' और 'वही करते हैं जो सन्तोंने किया', वह तुकाराम अपने इस अन्तिम पुत्रके गर्भमें आनेके समय ८१ वर्षके हो ही नहीं सकते।

११ संवत् १६८६ का अकाल

अब रह गया तीसरा मत, जिसके अनुसार तुकारामका जन्म-वर्ष शाके १५२० है। इसके पक्षमें ऐतिहासिक प्रमाण काफी हैं

और परम्पराकी मान्यता भी है। महीपतिबाबाने जो यह कहा है कि २१ वर्षकी अवस्थामें जीवनका 'पूर्वार्ध समाप्त हुआ', वह वाच्यार्थसे भी सही है और इसको प्रमाण माननेके लिये ऐतिहासिक आधार भी है। वाच्यार्थ लेनेसे तुकाराम महाराजकी आयु कुल ४१-४२ वर्ष माननी पड़ती है और इस प्रकार उनका जन्म-वर्ष शाके १५३० ग्रहण करना ठीक है। महीपतिबाबाने लिख रक्खा है कि उनके वयस्के 'इक्कीसवें वर्ष विपरीत काल' आया अर्थात् घोर दुर्भिक्ष पड़ा और उसमें उनकी प्रथम स्त्रीको अन्नके बिना प्राण त्यागने पड़े। तुकाराम महाराजके वयस्का यह इक्कीसवाँ वर्ष (जन्म-वर्ष १५३० माननेसे) शाके १५५१ में आता है और इतिहाससे यह बात मिलती है कि शाके १५५१ (संवत् १६८६ वैक्रम या सन् १६२९-३० ईसवी) में केवल पूनेमें ही नहीं, सम्पूर्ण महाराष्ट्रमें घोर दुर्भिक्ष पड़ा था। अब्दुल हमीद लाहौरी नामक एक मुसलमान इतिहासकारने शाहजहाँ बादशाहके शासनकालके प्रथम २० वर्षका एक इतिहास 'बादशाहनामा' के नामसे लिखा है। यह लाहौरी १६५४ ई० में मरे। यह तुकाराम-जीके समकालीन थे, 'बादशाहनामा' में इन्होंने लिखा है, 'पिछले साल (सन् १६२९ ई०) बालाघाटकी तरफ बारिश नहीं हुई और दौलताबादकी तरफ तो एक बूँद भी पानी नहीं गिरा। इस साल (सन् १६३० ई०) आसपासके सब सूबोंमें नाजकी कमी हुई और दक्खिन और गुजरातमें तो हाय मची। यहाँके लोगोंका हाल ऐसा बेहाल हुआ कि कुछ कहनेकी बात नहीं। रोटीके एक-एक टुकड़ेपर जानवर और बच्चे बिकने लगे,

तो भी कोई गाहक न मिलता। बड़े-बड़े दानी एक-एक टुकड़ेके लिये हाथ पसारने लगे! लाशोंमेंसे हड्डियाँ निकाल-निकालकर उन्हें पीस-पीसकर वह पिसान आटेमें मिलाया जाने लगा। यहाँ-तक नौबत आ गयी कि आदमी आदमीको खाने लगे! यहाँतक कि माँ-बाप अपने बच्चोंको खाने लगे! जहाँ-तहाँ लाशोंके ढेर दिखायी देने लगे। अच्छी-से-अच्छी जमीनमें भी एक दाना नहीं पैदा हुआ। कहीं एक बूँद पानी नहीं, एक दाना अन्न नहीं, यह हालत इन सूबोंकी हुई····।' (इलियट ऐण्ड डासन भाग ७ पृ० २४०) इसीका उल्लेख एलफिन्स्टनके इतिहासमें (पृ० ५०७) और पूना गजेटियरमें (भाग ३ पृ० ४०३) किया हुआ है। तुकाराम महाराजके समकालीन इतिहासकारने शाके १५५१-५२ के उस भीषण दुर्भिक्षका यह वर्णन किया है। शाके १५५१ का वर्षाकाल वर्षाके बिना ही बीता, इससे उसी वर्ष दुर्भिक्षका सामना पड़ा। पर पहलेका जमा अन्न जहाँ जो था उससे वह वर्ष तो लोगोंने किसी प्रकार रोते-गाते बिता दिया। पर जब शाके १५५२ में भी वर्षा नहीं हुई तब लोगोंके दुःखका कोई ठिकाना न रहा और यहाँतक नौबत आयी कि हजारों आदमी अन्नके बिना मर गये और आदमी आदमीको खाने लगे! इस दुर्भिक्षके विषयमें अपने यहाँ घरका प्रमाण भी मौजूद है। राजवाडे महोदयने 'मराठोंके इतिहासके साधन' प्रकाशित किये हैं। इनके १५ वें खण्डमें शिवाजी महाराजके समयका पत्र-व्यवहार प्रकाशित हुआ है। लेखाङ्क ४१३-४१४ और ४१९ देखिये। मौजा निगुरडाके पाटील (गाँवके मुखियाने) शाके

१५५१ के कुआरमें ३१ मौजोंकी अपनी वृत्तिका आधा हिस्सा बेचते हुए लिखा है कि 'आफत और फितरतके मारे भूखों मर रहे हैं' इसलिये 'आधी पाटिलाई अपनी खुशीसे बेचते हैं।' शाके १५५३ में फिर इसी बची हुई पाटिलाईका आधा हिस्सा और बेचा है, क्योंकि 'दुर्भिक्षके कारण असह्य कष्ट है, खानेको अन्न नहीं है, व्यवहार करनेवाला कोई बनिया नहीं है।' इसके बाद शाके १५५५ में बचा हुआ हिस्सा भी यही कहकर बेच डाला है कि 'बड़ा भयङ्कर दुर्भिक्ष है, गाय-बैल नहीं रहे, अन्नके बिना मर रहे हैं।' अस्तु ! यह सब शाके १५५२ के दुर्भिक्षसे महाराष्ट्र-में* कैसा हाहाकार मचा था, यह दिखानेके लिये ही लिखा है !

---

* महीपतिबाबाने भी उस दुर्भिक्षका वर्णन किया है। पर उन्होंने जो लिखा है वह सुनी-सुनायी बातोंके आधारपर लिखा है, अपनी आँखोंसे देखा हाल नहीं। प्रत्यक्षदर्शी श्रीसमर्थ रामदास स्वामी थे जिनकी आयु उस समय २१-२२ वर्ष होगी। इसी समयके लगभग उनका तीर्थ-यात्रा-काल आरम्भ हुआ है। उन्होंने इस दुर्भिक्षका वर्णन इस प्रकार किया है—'सब पदार्थ निकल गये, केवल देश रह गया; लोगोंपर सङ्कटके पहाड़ टूट पड़े। कितने स्थान भ्रष्ट हो गये। कितने जहाँ-के-तहाँ मर गये। जो बचे वे अपने गाँव लौटकर मर गये। खानेको अन्न नहीं रहा। ओढ़ने-बिछानेको कपड़ा नहीं रहा। घर-गृहस्थीकी कोई चीज न रही !'''सब लोग उद्वेग-उद्भ्रान्त हो गये। दुश्चिह्न अभीतक मौजूद हैं। कितने जातिभ्रष्ट हो गये। कितने विष खाकर मर गये। कितने जलमें डूब मरे, कितनोंका दहन या दफन भी नहीं हुआ। मालूम होता है, दुर्भिक्ष और परचक्र दोनों एक साथ ही टूट पड़े थे।

(रामदास और रामदासी वर्ष १ अङ्क १०)

१२ कान्हजीके शोकोद्गार

तुकाराम महाराजके प्रयाणके पश्चात् उनके छोटे भाई कान्हजीने जो विलाप किया है उसके १८ अभंग हैं। उन अभंगोंको देखनेसे यह कोई भी नहीं कह सकता कि किसी ८१ वर्षके वृद्धकी मृत्युपर यह शोक हुआ है। इन अभंगोंमें इतना करुण-रस भरा हुआ है कि उसे देख यही समझा जायगा कि तुकाराम सबको अपना चसका लगाकर अकालमें ही चले गये। कान्हजी तुकारामकी पीठपर ही हुए थे, अधिक-से-अधिक ३-४ वर्ष उनसे छोटे होंगे। तुकाराम जब विरागी हुए तब कान्हजी लड़कर उनसे अलग हो गये थे। इस समय तुकाराम बीस-पचीस वर्षके रहे होंगे। पीछे जब कान्हजीने तुकारामकी योग्यता जानी, तब उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ और वह उनके शिष्य बने। प्रयाणके समय महाराजकी आयु यदि ८१ वर्ष होती तो कान्हजीके ऐसे अनुतापभरे उद्गार इतने वेगके साथ कभी न निकलते कि 'सखा जानकर मैंने तुमसे अतिपरिचयका ही व्यवहार किया' अथवा 'संसार-में मुझ चाण्डालको तुम दुःख दे गये' इत्यादि। तुकाराम यदि उस समय इतने वृद्ध होते तो उसका यह मतलब होता कि कान्हजीको ४०-५० वर्षतक उनका सत्सङ्ग-लाभ हुआ होता। कान्हजी भी वृद्ध होते, उनके पूर्व कर्म धुलकर नूतन गाम्भीर्यमें परिणत हो गये होते, जिसमेंसे ऐसे अनुतापका आवेग कभी न निकलता। कान्हजीके मुँहसे ऐसी बात भी न निकलती कि 'मेरी ओढ़नी छिन गयी,' 'मेरा घर डूबा, बच्चे-कच्चे अनाथ हो गये,' 'हरा-भरा घर उजाड़ डाला।' तुकाराम यदि उस समय वृद्ध होते तो ऐसे उद्गार न

निकलते और ऐसे उद्गारोंमें तब कोई स्वारस्य भी न होता। इन सभी बातोंसे यही निश्चित होता है कि वृद्धावस्था आरम्भ होनेके पूर्व ही तुकाराम इहलोकसे चले गये। कान्हजीका एक उद्गार ऐसा भी है कि 'बच्चे बिलख-बिलखकर रो रहे हैं, उनके करुण-स्वरसे पृथ्वी विदीर्ण हुआ चाहती है।' तुकारामकी आयु उस समय यदि ८१ वर्ष होती तो उनके सन्तान कोई ४० वर्षके, कोई ५० और कोई ५५ के होते और तब कान्हजीको यह भी न कहना पड़ता कि 'बच्चे दर-दर रोते फिर रहे हैं।' ये सभी उद्गार उस हालतमें व्यर्थ हो जाते। इन सभी उद्गारोंसे यही प्रकट होता है कि तुकाराम महाराज और तुकाभाई कान्हजीके सन्तान उस समय १५-२० वर्षकी अवस्थाके भीतर-बाहर रहे होंगे। कान्हजीकी वाणीसे यह भी नहीं झलकता कि तुकारामका गृहप्रपञ्च इस समय समाप्त-सा हुआ हो। दूसरी बात यह कि अकाल ही जब वियोग होता है तभी करुण-रस सोहता है—तभी स्फुरता भी है, यह तो रसज्ञ और रसिक जानते ही हैं। यह भी नहीं कह सकते कि ये अभंग प्रक्षिप्त हों। कारण, ये तुकाराम महाराजके साथ रहनेवाले उनके लेखक सन्ताजी जगनाडेकी बही-परसे श्रीभावेजीके 'असली गाथा, भाग १' में भी उतारे गये हैं।

१३ पूर्व-परम्परा

इन सब प्रमाणोंसे यह प्रमाणित हुआ कि तुकारामका जन्म-वर्ष शाके १४९० जितना आगेका तो नहीं है। जन्म-वर्ष १५३० माननेसे चरित्रके सब प्रसङ्गोंकी शृङ्खला ठीक जुड़ जाती है। महीपतिबाबाने २१ वें वर्ष पूर्वार्ध-समाप्तिकी जो बात कही

है वह वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ दोनों प्रकारसे ठीक बैठ जाती है, जिजाई तुकाराम महाराजके प्रयाणके समय गर्भवती थीं, इस बातमें भी कोई विसङ्गतता नहीं आती (कारण, उस समय उनकी आयु ३६-३७ वर्ष रही होगी); महीपतिबाबाका यह कहना कि 'इक्कीसवें वर्ष विपरीत काल आया' शाके १५५१ के महा-दुर्भिक्षकी ऐतिहासिक घटनासे मिल ही जाता है; और कान्हजी-का विलाप करना भी सार्थक होता है, और परम्परासे चली आयी हुई मान्यताको भी अमान्य करनेकी कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। परशुराम पन्त तात्या गोडबोलेने शाके १७७६ में 'नवनीत' का प्रथम संस्करण प्रकाशित किया। उसमें उन्होंने लिखा है कि 'तुकाराम ४० वर्षकी आयुमें इहलोक छोड़कर परलोक सिधारे।' सरकारी सहायतासे प्रकाशित 'इन्दुप्रकाश' वाले संग्रहमें कहा है कि 'शाके १५३० में देहू-स्थानमें तुकारामका जन्म हुआ। तुकाराम अदृश्य हुए। उस समय उनकी आयु ४२ वर्ष थी, यही सब सन्त-समाजों और तुकारामके वंशजोंमें सर्वत्र प्रसिद्ध है।' इस प्रकार सभी प्रमाणोंसे तुकाराम महाराजका जन्म-वर्ष शाके १५३० ही निश्चित होता है और इसीको मानकर तुकारामकी जन्म-कुण्डली बनानेसे ज्योतिष जो चरित्र-फल बतलाता है वह भी तुकाराम महाराजके चरित्रसे मिलता है। इसलिये शाके १५३० (संवत् १६६५) में तुकाराम महाराजका जन्म हुआ, इस बातको सब लोग मान लेंगे।

१४ गुरूपदेशका वर्ष

अब गुरूपदेशका समय निर्धारित करना है। जन्म शाके १५३० में हुआ, १५५१-५२ के दुर्भिक्षमें उनकी स्त्रीका अन्नके बिना

देहान्त हुआ, उसके पश्चात् उन्हें वैराग्य हुआ। अर्थात् गुरूपदेशका समय शाके १५५२ के पश्चात् ही है। पर वह शाके १५५८ के पूर्व ही हो सकता है। कारण इस प्रकार है। बहिणाबाई १५५० में जन्मीं और १६२२ के आश्विन-मासमें शुक्ल पक्षकी प्रतिपदाको समाधिस्थ हुई। (गाथा बहिणाबाई भाग १ पृ० १८३) अर्थात् उस समय उनकी आयु ७२ वर्ष थी, यह बात उन्होंने स्वयं भी अपने निर्याणकालीन अभंगोंमें कही हैं। बहिणाबाई जब ११-१२ वर्षकी थीं तभी तुकारामने स्वप्नमें उन्हें दर्शन दिये। बहिणाबाई कोल्हापुरमें थीं, अपने पतिके साथ बैठकर जयराम स्वामीका कीर्तन सुना करती थीं, इन्हीं कीर्तनोंसे तुकाराम महाराजकी कीर्ति उनके कानमें पड़ी और तुकाराम महाराजकी ओर उनका ध्यान लगा। ऐसी अवस्थामें 'कार्तिक कृष्ण ५ रविवारको तुकाराम महाराजने स्वप्नमें आकर पूर्ण कृपा की।' कार्तिक कृष्ण ५ को (पूर्णिमान्त-मासके हिसाबसे मार्गशीर्ष कृष्ण ५ को) रविवारका योग शाके १५६२ में आता है। इसलिये बहिणाबाईके स्वप्नानुग्रहका समय मिति कार्तिक बदी ५ शाके १५६२ ही है। इस समयतक भगवान्ने तुकारामकी 'बहियोंको जलसे उबार लिया' की कथा कोल्हापुरतक फैल चुकी थी। इसके पश्चात् बहिणाबाई अपने पति और माता-पिताके साथ देहूमें आयीं। वहाँ कुछ कालतक मम्बाजी बाबाके घर रहीं। मम्बाजीने उन्हें यही कहकर अपने यहाँ टिका लिया था कि 'आगे सोमवती अमावस्या है', तबतक यहीं रहो। सोमवती अमावस्याका योग १५६२ के फाल्गुनमें, १५६३ के कार्तिकमें और १५६४ के श्रावणमें भी है।

अर्थात् इन तीन वर्षोंमेंसे किसी भी वर्षमें वह देहूमें गयी होंगी। तथापि जब १५६२ में कार्तिक वदी पञ्चमीको श्रीतुकाराम महाराजका स्वप्नानुग्रह हुआ है तब यही अधिक सम्भव है कि गुरु-दर्शनकी उत्कण्ठासे वह उसी वर्ष फाल्गुनमें ही देहू गयी हों। वहाँ जानेपर मम्बाजीने उन्हें बहुत कष्ट दिया। उसी कष्ट-कहानी-में मम्बाजीकी इस शिकायतका भी जिक्र है कि रामेश्वर भट्ट-जैसे विद्वान् भी जाकर तुकाके पैर छूते हैं, यह तो बड़ा भारी अनर्थ है। इन दोनों उल्लेखोंसे यह पता चला कि तुकारामकी बहियाँ रामेश्वर भट्टने डुबायीं और भगवान्‌ने उन्हें उबारा, यह बात शाके १५६२ के पहले ही सर्वत्र फैल चुकी थी। यह कथा बहिणा-बाईने १५६२ के कार्तिक मासके पहले सुनी, जब यह घटना हुई तभी कुछ दिनोंमें ही सुनी हो या दो-एक वर्ष बाद सुनी हो। यह मान लेनेमें कोई हरज नहीं है कि यह घटना १५६० के लगभग हुई होगी। तुकारामजीके कवित्व-स्फूर्ति हुई और वे अभंग रचने लगे, इस बातको १५६० में दो-तीन वर्ष बीत चुके होंगे। 'तुकाराम अपने कीर्तनोंमें अपने ही बनाये हुए अभंग गाते हैं और उन अभंगोंसे वेदार्थ प्रकट होता है।' यह बात फैलते-फैलते रामेश्वर भट्टके कानोंतक पहुँची और तब तुकारामको विरोधी लोग कष्ट पहुँचाने लगे। इस अवस्थाको यदि १५६० में रखते हैं तो उनके कवित्व-स्फूर्ति होनेका समय १५५७-५८ रखना होगा। इस हिसाबसे इसके पूर्व ही पर १५५२ के पश्चात् जिस किसी वर्षमें माघ शुक्ल दशमीको गुरुवार हो वही वर्ष उन्हें गुरूपदेश प्राप्त होनेका वर्ष मानना होगा। जन्त्रीमें शाके १५५४ की माघ शुक्ल

१० को गुरुवार है। इस प्रकार यह सिद्ध है कि शाके १५५४ संवत् १६८९ (अँगरेजी तारीख १० जनवरी १६३३ ई०) माघ शुक्ल १० गुरुवारके दिन ब्राह्ममुहूर्तमें भण्डारा-पर्वतपर श्रीतुकारामको स्वप्नमें श्रीगुरुने उपदेश दिया ।

१५ अभंग-रचनाका क्रम

श्रीगुरूपदेशके पश्चात् तुकारामजीके कवित्व-स्फूर्ति हुई। तुकारामजीका एक अभंग है, 'जाति शूद्र, वैश्य किया व्यवसाय (जाति शूद्र वैश्यकेला व्यवसाय),' वह किसी अगले अध्यायमें आवेगा। उसमें तुकारामजीने अपने जीवनकी मुख्य-मुख्य घटनाएँ क्रमसे बता दी हैं। पहले घर-गिरस्ती सँभाली, व्यवसायमें हानि उठायी, दुर्भिक्षमें प्रथम पत्नी अन्न बिना मर गयी, वैराग्य हो आया, श्रीविट्ठल-मन्दिरका जीर्णोद्धार किया, ग्रन्थ पढ़े, इसके पश्चात् स्वप्नमें गुरूपदेश हुआ और इसके अनन्तर कवित्व-स्फूर्ति हुई। कवित्व-स्फूर्ति शाके १५५६ में हुई मानें तो श्रीतुकारामजीके श्रीमुखसे सतत पञ्चदश वर्ष पर्यन्त अभंग-गङ्गा बहती रही। इन पन्द्रह वर्षोंमें सहस्रों अभंग उनके मुखसे निकले। सब अभंग आज नहीं मिल रहे हैं। कवित्व-स्फूर्ति होनेपर सबसे पहले उन्होंने बाललीलापर ओवियाँ रचीं और स्वयं ही बालबोधिनी (देवनागरी) लिपिमें बहीपर लिखीं। श्रीकृष्णद्वैपायन महर्षि वेदव्यासने श्रीमद्भागवत लिखा, उसके 'दशम स्कन्धमें हरिलीलामृत' है और उसमें 'जगदात्मा गोकुलमें क्रीडा कर रहे हैं,' यही श्रीकृष्णकी गोकुलकी बाललीलाका प्रसङ्ग है। 'उसकी नौ सौ ओवियाँ हैं' जिनका मर्म, महीपतिबाबा कहते हैं कि 'साधु-सन्त ही स्वानुभवसे जानते हैं।'

ये ओवियाँ ऐसी हैं कि इन्हें ओवी भी कह सकते हैं और अभंग भी। अभंग यों कह सकते हैं कि कुछ चरणोंके बाद 'तुका म्हणे (तुका कहे)' कहकर इतना ही टुकड़ा तोड़कर जोड़ा है। इन्हें अभंग कहें तो इनमें चरणोंकी संख्याका कोई ठिकाना नहीं, किसीमें तीन चरण हैं, किसीमें तीनसे अधिक और किसीमें तीसतक छोटे-बड़े कई चरण हैं। रचना ओवीके ढंगकी है। अभंगकी जो यह विशेषता है कि द्वितीय चरणमें स्थायी पद आता है सो इसमें नहीं है। ओवी बद्ध-सी रचना है इसलिये हम इन्हें ओवियाँ ही कहते हैं। अभंगका हिसाब लगायें तो ये बाललीलाके १०० अभंग हैं और चरण गिनें तो ९०० ओवियाँ हैं। बात एक ही है। देहू-पण्ढरीके संग्रहोंमें बाललीलावर्णन पहले दिया है, पीछे 'पांडुरंगनमन' के २३१ ओवियोंके तीन अभंग दिये हैं। इन्दुप्रकाशसंग्रहमें ये तीन अभंग पहले और बाललीलावर्णन पीछे दिया है। ये तीन और बाललीलाके सौ अभंग मिलाकर ओवीके ११२५ चरण होते हैं और कुछ संग्रहोंमें ओवियोंका जोड़ ११००-११२५ जितना ही दिया हुआ है। यह बहिरंगकी बात हुई। वर्णित विषयको देखें तो २३१ ओवियाँ प्रास्ताविक हैं और सबसे पहले तुकारामजीने यही लिखा होगा। तुकारामजीके उपास्यदेव श्रीपाण्डुरंग थे, इसलिये सबसे पहले उन्होंने उन्हींका चरित्र लिखा, यह स्वाभाविक ही है। मंगलाचरण आदिसे यह स्पष्ट ही ध्वनित होता है कि यह रचना करते हुए तुकारामजीको यह ध्यान है कि यह मेरी पहली ही रचना है। दो ही एक वर्ष पहले गुरूपदेश हुआ था इससे गुरु-वन्दना भी इसमें स्वभावतः ही आ गयी है।

बाललीलाकी ओवियोंके कुछ काल पश्चात् दधिकाँदो, गुल्ली-डंडा, गेंद आदिके अभंग बने होंगे। शेष सब अभंगोंका कालक्रम निश्चित करना कठिन है। परन्तु बाललीलाके पश्चात् आत्मपरीक्षण, दर्शन-लालसा, परिचयकी घनिष्ठता, धन्यता, पूर्णता और उपदेश ऐसा क्रम यदि इन सब अभंगोंका बाँधा जाय तो उसमें बहुत बड़ी गलती होनेकी सम्भावना नहीं है। बाललीलाके अभंग तुकारामजीने स्वयं ही लिखे। पीछे कीर्तन-प्रसंगसे करतालियों और श्रोताओंका जमघट ज्यों-ज्यों बढ़ने लगा और विशेषकरके जबसे गंगाराम बोवा मवाल और सन्ताजी जगनाडे अभंग लिखनेवाले मिल गये तबसे तुकारामजी-का स्वयं लिखना छूट-सा गया होगा। इन लेखकोंने भी तुकारामजीके सभी अभंगोंको लिखा होगा, यह तो नहीं कहा जा सकता। एक बार देहूमें एक वृद्ध वारकरीके मुँह सुना कि तुकारामजीने एक लाख अभंग भण्डारा-पर्वतपर रखे, एक लाख इन्द्रायणीको भेंट किये और एक लाख लोगोंको दान किये। इसका अभिप्राय इतना ही समझमें आता है कि भण्डारा-पर्वतपर तुकाराम महाराज जब श्री-विट्ठलके ध्यान और नाम-जपमें निमग्न थे तब भगवान्‌को सम्बोधन-कर असंख्य अभंग उन्होंने कहे होंगे। वह इस समय एकान्तमें थे। एकान्तके इन अभंगोंको भगवान्‌के सिवा और कौन सुन सकता था? और उस आनन्दके अनुभवमें निमग्न तुकारामजीको भी उन अभंगोंको लिख रखनेकी सुधतक न रही होगी। इन्द्रायणीके दहपर भी एकान्तवासमें यही हुआ करता था। कीर्तन-प्रसंगसे अथवा अन्य अवसरोंपर जो अभंग उनके मुखसे निकले उनमेंसे कुछ—लगभग साढ़े चार हजार—अभंग लेखकोंकी लेखनीतक पहुँचे। महाराजके

हृदयमें स्वानन्दका जो भण्डार भरा हुआ था उसमेंसे बहुत ही थोड़ा अंश हमारे-आपके हाथ आया है। भगवान्‌के साथ उनका जो एकान्त हुआ उस समयका सारा सुख भगवान्‌ने ही लूटा और चार दाने सौभाग्यसे हमलोगोंको मिले हैं! इन चार दानोंसे समूचे भण्डार-की कल्पना जो कोई कर सकता हो वह कर ले! श्रीतुकारामजीके श्रीमुखसे जो भक्तिज्ञानगंगा अखण्डरूपसे सतत पन्द्रह वर्षतक प्रवाहित होती रही उसमेंसे चार घड़े पानी जिन उदारात्माओंकी कृपासे हमलोगोंको मिला है उनके अपार उपकार हैं। महाराजने स्वयं पूर्ण परितृप्त होकर जो चार मुट्ठी उच्छिष्टान्न हमें दिया है उसके परिमलमात्रसे जब समय-समयपर कृतार्थताकी तरंग-सी उठा करती है तब जिन महाभागोंने साक्षात् तुकाराम महाराजके हाथों पन्द्रह-बीस वर्षतक बराबर प्रसाद पाया हो उन गंगाराम, सन्ताजी, रामेश्वर भट्टादि पुण्यात्माओंके सौभाग्यकी कहाँतक सराहना की जाय? श्रीतुकाराम महाराजका निज योगैश्वर्य तो अवर्णनीय ही है, परमात्माका सम्पूर्ण ऐश्वर्य उनपर प्रकट हुआ। वह कर्मी, ज्ञानी, योगी, भक्त, सभी कुछ थे, 'गंगासागरसंगममें सभी तरंग एकमय' रूप थीं। 'तुका भये पांडुरंग,' यही सच है। उनके अभंगोंमें भी सब रंग भरे हुए हैं, हर कोई अपने अधिकारके अनुसार चाहे जिस रंगसे रञ्जित हो ले!

१६ जीवन-क्रमका मानचित्र

यहाँतक जो विवेचन हुआ उससे श्रीतुकाराम महाराजके जीवन-क्रमका जो कालमानचित्र चित्रित होता है वह ऐसा है—

वयस् वर्ष	विक्रम संवत्	घटना
	१६६५	श्रीतुकाराम-जन्म ।
१३	१६७८	गृहप्रपञ्चका भार तुकारामजीके सिर पड़ा ।
१४ १६	१६७९ १६८१	के लगभग तुकारामजीका प्रथम और द्वितीय विवाह हुआ ।
१७	१६८२	तुकारामजीके माता-पिता और भावजका देहान्त ।
१८	१६८३	तुकारामजीके बड़े भाई सावजी विरक्त होकर चले गये ।
२०	१६८५	मनका विषाद दबाकर प्रथम पुत्र सन्ताजी और दोनों पत्नियोंके साथ तुकारामजी गृह-प्रपञ्चमें हौसलेके साथ आगे बढ़े ।
२१	१६८६	'विपरीत काल' और दिवाला । दुर्भिक्षका आरम्भ ।
२२	१६८७	दुर्भिक्षका भीषण रूप । दुर्भिक्षसे प्रथम पत्नीका देहान्त । पुत्रकी मृत्यु, वैराग्य और भामनाथ-पर्वतारोहण ।
२३	१६८८	श्रीविट्ठल-मन्दिरका जीर्णोद्धार, कीर्तन-श्रवणकी धुन ।
२४	१६८९	माघ शुक्ल १० गुरुवार श्रीगुरुका उपदेश ।
२६	१६९१ १६९२	के लगभग कवित्व-स्फूर्ति ।
३०	१६९५	के रामेश्वर भट्टद्वारा पीडन, और सगुण-साक्षात्कार ।
४१	१७०६	चैत्र कृष्ण २ (पूर्णिमान्त मासके हिसाबसे) शनिवार सूर्योदयके अनन्तर ४ घटिका दिनमें प्रयाण ।

दूसरा अध्याय

पूर्ववृत्त

पूर्व-परम्परासे प्राप्त पैतृक सम्पत्ति मेरी, हे पाण्डुरङ्ग! तेरी चरणसेवा है। उपवास और पारण ही मेरे लिये तेरे मन्दिरद्वार हैं। इसीके भोगमात्रका अधिकार हमें मिला है। वंश-परम्परासे ही मैं तेरा दास हूँ।

—श्रीतुकाराम

१ देहूक्षेत्रका वर्णन

श्रीतुकाराम महाराजके अधिवाससे पुनीत और त्रिलोक-विख्यात देहूग्राम पुण्यक्षेत्र पूना-प्रान्तमें इन्द्रायणी-नदीके तटपर बसा हुआ है। आलन्दीसे पाँच कोस, तलेगाँवसे चार कोस और चिंचवडसे तीन-चार कोसपर यह पावन तीर्थ है। पूनेसे वायव्य दिशामें, तलेगाँवसे पूर्व ओर, चिंचवडसे उत्तर ओर और आलन्दीसे भी वायव्य ओर है। देहूके चारों ओर थोड़ी-थोड़ी दूरपर, छोटे-बड़े अनेक पर्वत हैं। शेलारवाड़ी नामक रेलवे स्टेशनसे यह स्थान तीन मील उत्तरकी ओर है। स्थान छोटा-सा होनेपर भी भाग्योदय इसका महान् हुआ जो यहाँ श्रीतुकाराम महाराज अवतीर्ण हुए। तुकारामके समय यह स्थान नाम-संकीर्तनसे गूँजता रहता था और इसी पुण्यके बलसे आगे चलकर यह स्थान महाराष्ट्रके महाक्षेत्रोंमें परिगणित हो गया। महाराष्ट्रका सबसे

प्रधान क्षेत्र पण्ढरपुर है। तेरहवें शालिवाहन-शतकमें ज्ञानेश्वर महाराजके कारण आलन्दीक्षेत्रकी महिमा बढ़ी, सोलहवें शालिवाहन-शतकमें एकनाथ महाराजके कारण पैठणकी प्रतिष्ठा बढ़ी और सतरहवें शालिवाहन-शतकमें तुकाराम महाराजके कारण देहू प्रसिद्ध हुआ। तुकाराम महाराजके पूर्व देहूमें दो-चार छोटे-छोटे मन्दिर थे और इनके आठवें पूर्वज श्रीविश्वम्भर बोवाने वहाँ श्रीविट्ठल-रखुमाई (रुक्मिणीकान्त श्रीकृष्ण) का मन्दिर बनवाया था। तबसे, या यों कहिये कि जबसे उनके कुलमें पण्ढरीकी वारीका नियम विशेषरूपसे चला तबसे देहूग्राम एक पुण्यक्षेत्र बना। परन्तु इसका महान् पुण्य तभी प्रकट होकर चतुर्दिक् विख्यात हुआ जब तुकाराम महाराजने इस धरतीपर पैर रखे। तुकाराम महाराजके कारण ही देहूक्षेत्र महाराष्ट्रके महाक्षेत्रोंमें गिना जाने लगा। देहूक्षेत्रके सम्बन्धमें तुकाराम महाराजका एक अभंग भी प्रसिद्ध है जो तुकाराम महाराजके सभी प्रकाशित अभंग-संग्रहोंमें मौजूद है और सन्ताजीकी बहीमें भी होनेसे जिसकी प्रामाणिकता निस्सन्दिग्ध है। इस अभंगमें तुकाराम महाराज अपने समयके देहूक्षेत्रका वर्णन करते हैं—

'धन्य है देहूग्राम पुण्यधाम जहाँ श्रीपाण्डुरङ्ग विराजते हैं। धन्य हैं वहाँके सौभाग्यशाली क्षेत्रवासी जो नित्य नाम-संकीर्तन करते हैं। इस देहूक्षेत्रमें विश्वपिता, वामांगमें रुक्मिणीमाताके साथ, कटिपर कर धरे, उत्तराभिमुख खड़े हैं। सामने गरुडध्यानमें अश्वत्थ-वृक्ष हाथ जोड़े खड़ा है। दक्षिणमें श्रीशङ्करलिंग श्रीहरेश्वर हैं और इन्द्रायणी-गङ्गाके तटकी अपूर्व शोभा है। बल्लाल-वनमें

श्रीलक्ष्मी-नारायण विराज रहे हैं और वहीं श्रीसिद्धेश्वरका अधिष्ठान है। द्वारपर श्रीविघ्नराज विराजे हैं और वाहरकी ओर वहिरव और हनुमान्‌जी पास-पास सुशोभित हैं। इसी स्थानमें यह दास तुका, श्रीविट्ठल-चरणोंको हृदयमें धारण किये हुए, श्रीहरि-कीर्तन किया करता है।'

देहूमें इस समय श्रीविट्ठलनाथजीका जो मन्दिर है और उसके वाहरकी ओर जो दालान वने हुए दिखायी देते हैं वे सव पीछे वने हैं। श्रीविट्ठल-रखुमाई (श्रीविट्ठलनाथ और श्रीरुक्मिणी-माता) की मूर्तियाँ तो वे ही हैं जो तुकाराम महाराजके पूर्वज श्रीविश्वम्भरवावाने स्थापित की थीं। तुकारामजीके समयतक वह श्रीविट्ठल-मन्दिर जीर्ण होकर गिरनेको हो गया था। तुकाराम महाराजने उसका जीर्णोद्धार किया। अवश्य ही जीर्णोद्धारका वह काम, तुकारामजीकी जैसी आर्थिक अवस्था थी उसके अनुसार, सामान्य-सा ही हुआ होगा। तुकाराम महाराजके पुत्र नारायण वोवाको तीन गाँवोंकी जागीर मिली, तवकी अवस्था कुछ और थी और उस समय तुकाराम महाराजकी कीर्ति भी सर्वत्र फैल चुकी थी। इसके वाद ही मन्दिरका वड़ा विस्तार हुआ और देहूके इंगले पाटिल आदि धनिकोंने मन्दिरको इतना वड़ा और भव्य वनवा दिया। तथापि उपर्युक्त अवतरणमें तुकारामजीने देहूका जो वर्णन किया है वह आज भी यथार्थ है। सव देवता, देवस्थान और उनके पार्श्वस्थान ज्यों-के-त्यों वर्तमान हैं। पण्ढरपुरमें श्रीविट्ठल अकेले ही ईंटपर खड़े हैं। श्रीरुक्मिणीजीका मन्दिर वहाँ पीछेसे बना है। और देहूमें श्रीविट्ठल-रखुमाई पास-पास ही खड़े हैं।

इनकी मूर्तियाँ उत्तराभिमुख हैं अर्थात् मन्दिर भी उत्तराभिमुख है। सामने गरुडथान है। गरुड और हनुमान्‌जी भगवान्‌के सामने हाथ जोड़े खड़े हैं, पूर्वद्वारके समीप दक्षिणाभिमुख श्रीविघ्नराज हैं और बाहर बहिरवजीका छोटा-सा मन्दिर है। मन्दिरके पश्चिम हरेश्वरका मन्दिर है और 'इनामदारों' की बड़ी हवेली है। उसीकी परली तरफ तुकारामजीका खास घर है। जिस घरमें—जिस कोठरी-में तुकारामजीका जन्म हुआ और जहाँ पीछेसे श्रीविट्ठल-मूर्तिकी नवस्थापना हुई उसका छाया-चित्र अन्यत्र प्रकाशित है। तुकारामजीके खास घर और हवेलीके पश्चिम ओर इन्द्रायणीके समीप एक खँडहर है। कहते हैं कि यहाँ पहले मम्बाजीबाबाका घर और बाग था। श्रीविट्ठल-मन्दिरकी परिक्रमामें ही दायीं ओर इनामदारोंकी हवेली और श्रीतुकारामजीका अपना खास घर है। पास ही एक गली है। इस गलीसे नीचे उतरनेपर दायीं ओर ही मम्बाजीका खँडहर है। ये सब स्थान परिक्रमाके भीतर ही हैं। एक बारकी घटना बतलाते हैं कि तुकारामजीकी भैंस मम्बाजी-के बागमें घुस गयी। मनकी खार मिटानेका यह अच्छा अवसर जान उस मत्सरमूर्ति मम्बाजीने तुकारामजीपर झूठमूठ यह दोष मढ़ा कि इन्होंने जान-बूझकर भैंसको काँटेकी बाड हटाकर, मेरी फुलवारीमें घुसा दिया। यह कहकर उन्होंने उन्हीं काँटोंकी बाडोंसे तुकारामजीको बेतरह मारा। जिस स्थानमें तुकारामजी-पर इस प्रकार मार पड़ी वह स्थान तुकारामजीके घरकी पश्चिम ओर, इन्द्रायणीके सम्मुख है। इन सब स्थानोंके पश्चिम ओर बल्लाल-वन है और उसमें श्रीसिद्धेश्वरका मन्दिर है।

इस मन्दिरके पूर्व ओर श्रीलक्ष्मी-नारायणका मन्दिर है। ये मन्दिर छोटे-छोटे और पत्थरके बने हैं। इन मन्दिरों और तुकारामजीके घर-के पूर्व तथा उत्तर-पूर्वमें अन्य लोगोंके घर थे और आज भी हैं। देहू-क्षेत्र उस समय ऐसा बसा हुआ था। इन्द्रायणी-नदी देहू-क्षेत्रसे लगकर उत्तर ओर बहती है। मन्दिरके बाहर और नदी-के किनारे पुण्डलीकका मन्दिर है। वहाँसे उत्तर ओर आगे बढ़नेसे डेढ़ मील लम्बा एक बड़ा दह है। इस दहके किनारे गोपालपुर बसा हुआ है और वहाँ पुराना पीपलका वृक्ष है। इसी वृक्षके समीप महाराजका अन्तिम कीर्तन और फिर महाप्रयाण हुआ। यहाँसे और नीचे उतरकर कोई आध मीलपर करंजाईका स्थान है। दहका यह बीचोबीच भाग है। यहाँ मुरलीधरजीका मन्दिर है। महाराज दह-पर एकान्तमें जो बैठा करते थे सो इसी स्थानमें। यहीं रामेश्वर भट्टने उन्हें बहुत कष्ट दिया, तब महाराज एक शिलापर तेरह दिन ध्यानमें पड़े रहे। इसी अवस्थामें श्रीकृष्णने बालरूपमें उन्हें दर्शन दिये और उनकी बहियोंको जलमेंसे उबारा। इस प्रकार यह शिला भक्तजनोंके लिये अत्यन्त प्रिय और पूज्य हुई। तुकारामजी-के स्वर्गारोहणके पश्चात् भक्त लोग इस शिलाको ढकेलते हुए श्री-विट्ठल-मन्दिरमें ले आये और मन्दिरसे सटा हुआ ही तुकारामजीकी प्रथम स्त्री रखुमाबाईका जो 'वृन्दावन' है, उसके सहारे वह शिला खड़ी कर दी। उस वृन्दावनके साथ शिलाका फोटो अन्यत्र दिया हुआ है। इन्द्रायणीके तटपर खड़े होकर पश्चिम ओर देखने-से बायीं ओर छः मीलपर गोराडी या घोरवडीका पहाड़ दिखायी देता है। देहूसे ठीक पश्चिममें दो मीलपर भण्डारा-पहाड़ और

दायीं ओर दहके पारपर देहूसे आठ मीलपर भामगिरि या भामनाथ अथवा भामचन्द्र-पर्वत दिखायी देता है। भण्डारा-पर्वतका फोटो दिया है और दहका भी एक फोटो है। श्रीक्षेत्र देहूका यह संक्षिप्त वर्णन है और इसकी सामान्य कल्पना पाठक कर सकें इसके लिये अपने हाथसे बनाया हुआ एक नकशा भी इस पुस्तकमें जोड़ दिया है।

२ कुल-गोत्र

अब श्रीतुकाराम महाराजके विश्वपावन कुलका कुछ परिचय प्राप्त करें। भगवान्‌के भक्तोंका कुल-गोत्र देखनेकी वस्तुतः कोई आवश्यकता नहीं होती। भगवत्-भक्त किसी जाति या कुलमें कहीं भी उत्पन्न हुआ हो, वह विश्ववन्द्य ही होता है। नारायणने जिसे अपनाया उसका कुल-गोत्र धन्य हुआ। जिसका देहाभिमान गल गया वह वर्णाश्रम-धर्मको पार कर गया। तीनों लोकको पावन करनेवाले महात्मा जिस देशमें, जिस कुलमें, जिस जातिमें जन्म लेते हैं वह देश, वह कुल, वह जाति अत्यन्त पवित्र है।

पवित्र सो वंश, पावन सो देश।
जहाँ हरिदास, जन्म लेते॥

अर्थात् वह कुल पवित्र है, वह देश पावन है जहाँ हरिके दास जन्म लेते हैं, यह स्वयं तुकारामजीकी उक्ति है। और यह बिल्कुल सही है, तथापि महात्माओंके चरित्रका सब प्रकारसे साङ्गोपाङ्ग विचार करते हुए, लौकिक दृष्टिसे उनके कुल और जातिका विचार करना पड़ता है। 'तुका वाणी (वणिक्)' नाम महाराजका प्रसिद्ध है अर्थात् वह जातिके बनिया थे, यही लोग समझ सकते

हैं। पर बात यह नहीं है। बनिज-व्यापार उनके घरमें कई पुश्तसे होता चला आ रहा था और तुकारामजीने भी अपने पूर्व वयस्में बनियेका ही काम किया इसीलिये वह बनिया कहाये। बनिया जाति उनकी नहीं थी। आजकल कुछ जात्यभिमानी विद्वान् उन्हें 'मराठा क्षत्रिय' बनानेके फेरमें पड़े हैं। पर अच्छा तो यही होगा कि हम तुकारामजीसे ही उनकी जाति और कुल पूछ लें। तुकारामजी कहते हैं—

याती शूद्र वैश्य किया व्यवसाय।
पांडुरंग-पाँय कुलपूज्य॥

अर्थात् 'जातिका मैं शूद्र हूँ, धन्धा किया वैश्यका और उपासना की अपने कुलपूज्य देव (विट्ठल) की।'

अच्छा किया कुनबी हे नाथ।
नहीं तो मारा जाता दंभके हाथ॥

'हे ईश्वर! तूने मुझे कुनबी बनाया यह अच्छा किया, नहीं तो दम्भसे मैं मारा जाता।'

पाया शूद्र वंश। नहीं लगा दंभ पाश॥१॥
अब तो मेरे नाथ। माता-पिता पंढरिनाथ॥ध्रु०॥
घोखूँ वेदाक्षर। सो तो नहीं अधिकार॥२॥
सर्वभाव दीन। तुका कहे जाति हीन॥३॥

'शूद्र-वंशमें मैं जन्मा, इससे दम्भसे तो मैं छूटा और अब हे पण्ढरिनाथ! तू ही मेरा माँ-बाप है। वेदाक्षर घोखनेका मुझे

अधिकार नहीं। तुका कहता है मैं सब प्रकारसे दीन, जातिसे हीन हूँ।'*

यही तुकाराम आगे चलकर अपनी करनीसे नरके नारायण हुए, विधिके विधाता बने, यह बात और है; पर उनका जन्म शूद्र-जातिमें हुआ था, यह उन्हींके वचनोंसे स्पष्ट है, महीपतिबाबाने 'भक्तलीलामृत' में कहा है कि—'वैष्णव भक्त तुकाराम शूद्र-जातिमें उत्पन्न हुए। मोरोपन्त और निबन्धमालाकारने बड़े कौतुकके साथ 'शूद्रकवि' कहकर ही तुकाराम महाराजका उल्लेख किया है। तुकारामजीकी जातिके सम्बन्धमें यह विचार हुआ। अब इनके कुलका विचार करें। समर्थ रामदास स्वामीकी बखरमें हनुमन्त स्वामीने तुकारामका 'मोरे' कुल-नाम (अल्ल) दिया है और महीपतिबाबाने 'आंबले' कहा है। इनमेंसे सच्चा कुल-नाम कौन-सा है—मोरे या आंबले? यह प्रश्न कुछ दिन पूर्व लोग किया करते थे। परन्तु मैंने नासिक तथा त्र्यम्बकमें देहूकरोंके

* तुकाराम महाराजके इन उद्गारोंसे, कुछ लोग बड़ी अधीरतासे यह अनुमान कर बैठते हैं कि महाराजका यह ब्राह्मणोंपर कटाक्ष है। पर ऐसा नहीं है और ब्राह्मण भी इसे अपनी निन्दा न समझें। तुकारामजीने वेदोंके अक्षर नहीं घोखे; तथापि पुराणादि ग्रन्थ और अन्य प्राकृत ग्रन्थ उन्होंने देखे थे और ब्राह्मणोंको भी वह अत्यन्त पूज्य मानते थे, यह आगे चलकर आप ही प्रसंगसे ज्ञात होगा। अध्ययनके साथ जो दम्भ-दर्पादि विकार उठा करते हैं उन्हीं विकारोंका तिरस्कारभर यहाँ प्रकट किया गया है। 'विद्याविवादाय' का जो सामान्य प्रकार देखनेमें आता है उससे 'अक्षर घोखने' का अधिकार न होनेके कारण तुकाजी मुक्त रहे, इसी बात-पर सन्तोष व्यक्त किया है।

तीर्थपुरोहितोंके यहाँकी बहियाँ देखीं। उनसे मालूम हुआ कि इनका कुल-नाम 'मोरे' और उपनाम 'आंबले' है। त्र्यम्बकमें श्रीतुकाराम महाराज गये थे, यह बात पक्की है। पर नासिक और त्र्यम्बक दोनों स्थानोंमें तुकाराम महाराजके पुत्र नारायण बोवा और और उनके वंशजोंके लेख हैं। तुकाराम महाराजके हस्ताक्षरका कागज फटकर नष्ट हो गया है यह देखकर बहुत दुःख हुआ। नासिकका लेख मुझसे पहले श्री पां० न० पटवर्धनने प्राप्त करके प्रकाशित किया था। पर उन्हें असली लेख नहीं मिला था, नक़ल मिली थी और नक़लमें जो एक भूल थी वह उनके लेखमें भी आ गयी। अस्तु। नारायण बोवाका नासिकका असली लेख वेदमूर्ति शङ्कर गोविन्द गायधनीकी बहीमें है, उस लेखमें तुकारामजीके पुत्रों और पोतोंके नाम हैं। वह लेख इस प्रकार है—'लि० नारोबा गोसावी पिता तुकोबा गोसावी दादा बोल्होबा भाई विठोबा गोसावी माहादजी (गोसावी) विठोबाके पुत्र उधोबा रामजी गणेश गोसावी गोविन्द गोसावी माहादजीके पुत्र आबाजी पित्रव्य कान्हावा गोसावी उनके पुत्र खण्डोवा माता अवळिबाई कुणब वाणी (कुनबी बनिया) उपनाम आंबले गाँव देहू प्रान्त पूना कुल नाम मोरे।' इस असली लेखमें नारोबा (नारायण बोवा) की माताका नाम 'अवळिबाई' है। श्रीपटवर्धनके लेखमें यह नाम 'अवन्तीबाई' है जो भूल है। तुकाराम महाराजकी स्त्रीका नाम जिजाबाई उर्फ आवलीबाई था। नारायण बोवाने अपनी जाति और कुलके सम्बन्धमें स्पष्ट ही लिख दिया है, 'कुणब वाणी उपनाम आंबले कुल नाम मोरे।' त्र्यम्बकमें देहूकरोंके तीर्थोपाध्याय वेदमूर्ति धोंडभट बापूजी काण्णवकी बहीमें नारायण

बुवाका जो लेख है वह इस प्रकार है—'नारोबा पिता तुकोबा गोसावी दादा बोल्होबा भाई माहादाबा और विठोबा भतीजे रामा और गणो और गोविन्दजी चचेरे भाई आबाजी माताजी जिजाईबाई जात कुनबी आंबले बास देहू प्रान्त पूना ।' इस लेखमें नारोबाने अपनी माताका नाम 'जिजाईबाई' दिया है और जाति 'कुनबी' बतायी है। और भी कुछ लेखोंमें 'कुणंब-वाणी अंबले' नामके उल्लेख हैं। इन सब लेखोंसे यह निर्विवादरूपसे निश्चित होता है कि तुकाराम शूद्र, कुणंब-वाणी (कुनबी बनिया) थे, उनका कुल मोरे था और उपनाम आंबिले, आंबले, अंबले था। जाति और कुल देह-से सम्बन्ध रखते हैं। जो देहातीत हैं उनके लिये जाति और कुल क्या ? साधकावस्थामें तुकाराम महाराजने परमार्थ-दृष्टिसे यह भी कहा है कि 'जिन्हें हृदयसे हरि प्यारे हैं वे मेरी जातिके हैं।' अस्तु, तुकारामजीके देहकी जाति और कुल देखा, अब उनके घरानेका विचार करें।

२ कुलकी पूर्व-प्रतिष्ठा

तुकारामजीका घराना बहुत सुखी, समृद्ध और प्रतिष्ठित था। देहू-गाँवमें इस घरानेकी बड़ी प्रतिष्ठा थी, यह इस घरानेसे मिले हुए कागज-पत्रोंसे जाना जाता है। देहूके ये लोग महाजन थे। तुकारामजी उदासीनवदासीन होकर यह महाजनी वृत्ति छोड़ चुके थे। पीछे नारायण बुवाने यह काम फिरसे प्राप्त करके सँभाल लिया। राजशक ५ कालयुक्त संवत्सर अर्थात् शाके १६०० (संवत् १७३५) के फाल्गुन-मासमें लिखा हुआ शिवाजी महाराजका एक आज्ञापत्र है। इसमें लिखा है—'तुकोबा गोसावी-

के पुत्र नारायण गोसावीने कहा है कि पूना-परगनेके देहू-मौजेकी महाजनी मेरे पिताकी पैतृक वृत्ति है। पिताजी गोसावी (गोसाईं) हुए, इससे महाजनी चलानेकी वह उपेक्षा ही करते गये....अब हम इसे न चलावें तो वृत्तिका लोप होता है। इसलिये महाजनी जो पैतृक वृत्ति है उसे हम चलाना चाहते हैं। अतएव पहलेसे जैसे यह वृत्ति चली आयी है वैसे ही उसे हम आगे चलावें ऐसा आज्ञापत्र करा दिया जाय।' इसपर महाराजने पूना-परगनेके देशाधिकारीको यह आज्ञा दी है कि 'इनकी महाजनी वृत्ति मौरूसी चली आयी है वैसी ही आगे चलायी जाय।' इस लेखसे यह जान पड़ता है कि तुकारामजीने महाजनी नहीं चलायी पर यह वृत्ति इनके घरानेमें बहुत पहलेसे चली आती थी। तुकारामजीके पोतों-की लिखी हुई एक फेहरिस्तमें भी 'श्रीतुकारामबावा वास्तव्य क्षेत्र देहूकी क्षेत्र मजकूरकी महाजनकी' ये अक्षर हैं। तुकारामजीके पुत्र महादेव बोवा, विट्ठल बोवा और नारायण बावाका शाके १६११ का फारकतीका एक कागज मिला है। इसमें महादेव बोवा अपने दोनों भाइयोंको लिखते हैं, 'अपने पैतृक घर दो हैं एक श्रीसमीप, एक पेठ (बाजार) में महाजनीका घर। हमने महाजनीका घर और महाजनी ली और तुम दोनोंको श्रीसमीप-वाला घर और श्रीकी पूजा सौंप दी।' और एक कागजमें लिखा है कि, 'श्रीविट्ठलटिकें (देहूमें एक खेतका नाम) श्रीके नाम पहले-से है यह बात गाँवके पञ्चोंके मुँह पन्त मुतालिक और पन्त प्रधानने पक्की करा ली।' यह लेख शाके १६४२ का है। इन सब लेखोंसे यह प्रकट है कि तुकारामजीके घरानेमें महाजनीकी पैतृक वृत्ति

थी, बाजारमें महाजनीकी हवेली, महाजनीका अधिकार और आमदनी थी। उसी प्रकार श्रीकी पूजा-अर्चाके निमित्त 'पुरातन इनाम' था। महाजनीकी हवेलीके अतिरिक्त इनका खास घर श्रीके समीप था। जिस गाँवमें बाजार लगता था उस गाँवमें महाजन और शेटे दो अधिकारी होते थे, इनके ओहदे बड़े समझे जाते थे। इसके भी अतिरिक्त इनकी कुछ खेती-बारी, साहुकारी और व्यापार भी था, तात्पर्य, प्रतिष्ठित, बड़े कुलीन और सामान्य व्यापारी-घरानेमें तुकाराम-का जन्म हुआ। परन्तु इस घरानेमें देहूकी महाजनी ही चली आयी थी सो नहीं, एक और पैतृक वृत्ति चली आयी थी। तुकारामजीने पहली वृत्तिकी उपेक्षा की, पर दूसरी वृत्ति इतनी उत्तमतासे चलायी कि उससे देहूके ही क्यों, सम्पूर्ण महाराष्ट्र और अखिल विश्वके महाजन होनेके अष्टाधिकार सब लोगोंने एकमतसे उन्हें प्रदान किये हैं। यह महाजनी क्या थी इसे अब देखें। नया कुछ न करे, पूर्वजोंकी परम्पराको ही बनाये रहे, इसीमें शोभा है।

नया करो नहिं कोई। राखो पूर्वतन सोई।
पैतृक सम्पत्ति। राखो करके युक्ति॥

'नया कुछ न करे, पुराना जो कुछ है उसे हर कोई सँभाल रखे। पैतृक वृत्तिका जो स्थान है उसकी हर उपायसे रक्षा करो। यह तुकोबाका ही उपदेश है।'

४ परम्परासे प्राप्त श्रीविट्ठल-प्रेम

श्रीतुकाराम महाराज अपनी अनन्य भक्तिसे त्रिलोकमें वन्द्य हुए, तथापि जिस घरानेमें उनका जन्म हुआ उस घरानेका इतिहास

देखें तो यह कहना पड़ेगा कि विट्ठल-भक्तोंके घरानेमें जन्म होनेसे विट्ठल-भक्ति उन्हें आनुवंशिक संस्कारोंसे ही प्राप्त हुई थी। उनके घरानेमें उनके आठवें पूर्वज विश्वम्भर बोवा प्रसिद्ध विट्ठल-भक्त हुए। विश्वम्भर बोवाके समयसे ही देहूग्राम पुण्यक्षेत्र हो गया था। विश्वम्भर बोवाने देहूमें विट्ठल-मन्दिर बनवाया और उसमें जो विट्ठल-मूर्ति स्थापित कर पूजी वही मूर्ति तुकारामजीके समयमें और उसके पाँच सौ वर्ष बाद आज भी विराज रही है। इस अध्यायके शीर्षकमें जो अभंग हैं उनमें तुकारामजीने अपने पूर्वजोंकी भगवद्भक्तिका इतिहास ही बता दिया है। तुकाजी कहते हैं, पाण्डुरङ्गकी चरण-सेवा मुझे अपने पूर्वजोंसे मिली हुई पैतृक सम्पत्ति है। मेरे पूर्वजोंने एकादशी महाव्रतके उपवास और पारण करके श्रीविट्ठलको भक्तिसे अपने वशमें किया और उनके द्वारपाल बने। उन्होंने चरण-सेवाका अंश हमारे भोगके लिये रखा है और इस प्रकार हम लोग वंशपरम्परासे विट्ठलके दास हैं। तुकारामजीके पूर्वजोंने उनके लिये घर-द्वार, चीज-वस्त, जमीन-जायदाद सब कुछ रखा था। महाजनीकी वृत्ति भी रखी थी और इस पैतृक सम्पत्तिसे उन्हें अपनी घर-गिरस्ती चलानेमें बहुत कुछ सहारा भी मिला; पर उन्हें इस पैतृक सम्पत्तिकी अपेक्षा विट्ठल-चरण-सेवा-रूप मौरूसी जागीर ही बहुत अधिक कीमती मालूम होती थी और यही उपर्युक्त अभंगका भाव है। सच है, बाल-बच्चोंके लिये जमीन-जायदाद रख जानेवाले माँ-बाप क्या कम हैं? दुर्लभ हैं वे ही जो अपनी सन्ततिके लिये भगवद्भक्तिकी सम्पत्ति छोड़ जाते हैं।

तुकाराम और समर्थ* रामदास-जैसे पुरुषोंके हिस्सेमें ऐसी सम्पत्ति उस समय आयी थी। तुकारामको बार-बार इस बातका ध्यान होता था कि विट्ठल-भक्तोंके घरमें मेरा जन्म हुआ, मेरे माता-पिताने मुझे विट्ठलोपासनारूप दैवी सम्पत्ति दी और मुझे श्रीविट्ठल-की गोदमें डाला; मेरे माता-पिताने, मेरे पूर्वजोंने भगवान्‌की जो भक्ति की उसका मैं वारिस हूँ, उन्होंने जो रास्ता बताया उसी रास्तेसे मैं चल रहा हूँ, उन्हींके आचरणका मैं अनुकरण कर रहा हूँ। इत्यादि, कितनी शुद्ध, निरभिमान और कृतज्ञतापूर्ण भावना है! कोई भी मनुष्य जो अच्छा या बुरा होता है उसके दो ही कारण समझमें आते हैं, एक उसके कुलकी रीति-नीति और दूसरा अपने-अपने पूर्व-जन्मजात संस्कार। किसीके पूर्व-संस्कार शुद्ध होते हैं तो कुलकी रीति-नीति अच्छी नहीं होती, ऐसी अवस्थामें

---

* तुकारामजीका जन्म संवत् १६६५ (शाके १५३०) में इन्द्रायणी-तटपर देहू-गाँवमें हुआ। उसी साल रामभक्त रामदास स्वामीका जन्म गोदातटपर जांब-गाँवमें हुआ। ये दोनों परम भक्त एक ही साल जन्मे और दोनोंने ही अपने आचरण और उपदेशके द्वारा महाराष्ट्रमें भगवद्भक्ति-का बड़ा प्रचार किया। 'राम विठ्ठल दुजा नाहीं' (राम और विठ्ठल दो नहीं हैं)। इस बातको ध्यानमें रखकर उनके चरित्र और उपदेशकी ओर देखनेसे भक्तोंको एक-सा ही आनन्द प्राप्त होता है। पूर्वजोंने विठ्ठलचरण-सेवाकी पैतृक सम्पत्ति दी इसलिये तुकारामने कृतज्ञतासे जैसे उद्गार प्रकट किये हैं वैसे ही समर्थ रामदासने भी प्रकट किये हैं। समर्थ कहते हैं—

बापें केली उपासना। आम्हीं लाधलों त्या धना ॥१॥
रामदास्य आलें हाथा। अवघा वंश धन्य आतां ॥२॥

(बापने उपासना की वही धन हमें प्राप्त हुआ। रामदास्य हाथमें आ गया, अब तो सारा वंश धन्य हो गया।)

यदि उसके पूर्व-संस्कार बलवान् हुए तो वह 'भङ्गमें तुलसी' सा होता है। किसीका जन्म अच्छे कुलमें हुआ रहता है पर उसके पूर्व-जन्मके दुष्ट संस्कार बलवान् हो उठते हैं, ऐसी अवस्थामें वह 'तुलसीमें प्याज' सा लगता है। पूर्व-संस्कार भी शुद्ध हों और जन्म भी उत्तम कुलमें हुआ हो, ऐसा तो बड़े ही भाग्यसे होता है।' ऐसा शुद्ध दुग्धशर्करासंयोग जहाँ होता है वहीं 'शुद्ध बीजके सुन्दर मीठे फल' की सूक्ति चरितार्थ होती है। तुकारामजीका सिद्धान्त यही है कि 'बीज जैसे फल। उत्तम या अमंगल॥' अर्थात् बीज-जैसे ही फल होते हैं, फलमात्र हैं बीजसे ही, चाहे वे उत्तम हों या अधम। जीवके संस्कार परम शुद्ध हों और ऐसे संस्कारोंके विकासके लिये अत्यन्त अनुकूल कुल और परिस्थितिमें उसका जन्म हो, यह तो बहुत बड़े भाग्यसे होता है। नौ पीढ़ियोंतक विट्ठलोपासनाका पुण्यव्रत आचरण करनेवाले कुलमें तुकारामका जन्म हुआ।

पंढरीची वारी आहे माझे घरीं।
आणिक न करीं तीर्थव्रत॥ १॥
व्रत एकादशी करीन उपवासी।
गाईन अहर्निशी मुखीं नाम॥ २॥

पण्ढरीकी वारी (यात्रा) करनेका नियम मेरे घरमें चला आता है, वही मैं करता हूँ, और कोई तीर्थ-व्रत नहीं करता। उपवासे रहकर एकादशीका व्रत करूँगा और दिन-रात मुखसे नाम गाऊँगा।

यही तुकारामके कुलका व्रत था। तुकारामका एक अभंग

है (ऐका वचन हें सन्त) उसमें वह कहते हैं, 'अनायास पूर्व-पुरुषोंकी सेवा हो जाती है, इसलिये इन देवताको पूजता हूँ।' श्रीविट्ठल हमारे 'कुलकी कुलदेवी' हैं, यह हमारे 'कुलदैवत' हैं, और उनकी उपासना करना हमारा 'कुलधर्म' है इत्यादि उद्गार उनके मुखसे अनेक बार निकले हैं। जिसके कुलमें जो उपासना चली आती है उसी उपासनाको निष्ठापूर्वक चलानेसे वह कृतकार्य होता है। तुकारामका एक अभंग है 'कुलधर्में ज्ञान' (अर्थात् कुलधर्मसे ज्ञान होता है)। उसमें वह कहते हैं कि कुलधर्मका पालन करनेसे उद्धारका साधन मिल जाता है, ज्ञान-लाभ होता है, गति-भक्ति-विश्रान्ति सब कुलधर्मसे मिलती है, दया परोपकार आदि कुलधर्मके पालनमें आप ही हो जाते हैं। तात्पर्य, तुकोबाराय कहते हैं—

तुका कहे कुलधर्म प्रकटावे देव।
यथाविध भाव यदि होय॥

'कुलधर्म देवतामें देवत्व प्रत्यक्ष करा देता है यदि यथाविध (शुद्ध) भाव हो।' यह तुकोबारायका अनुभव है और यही अनुभव अन्य सन्तोंका भी है। श्रीविट्ठलकी भक्तिका कुलधर्म पालन करते-करते ही उन्हें देवतामें देवत्व मिला—भगवन्मूर्तिमें भगवान् मिले, भगवन्मूर्ति ही सच्चिन्मय हुई। उस मूर्तिका ध्यान करते-करते अन्दर-बाहर सर्वत्र विट्ठल ही भर गये।

इस पवित्र कुलकी भगवद्भक्तिका अरुणोदय यदि विश्वम्भर बोवाको मानें तो उसका मध्याह्न श्रीतुकाराम महाराज हैं। किसी महात्माके चरित्रको देखा जाय तो यह देख पड़ता है कि

जिस कुलको वह धन्य करता है उस कुलमें उसके पूर्व दस-पाँच पीढ़ियोंतक भक्ति, ज्ञान, वैराग्यादि गुणोंकी बराबर वृद्धि होती रहती है। ज्ञानेश्वर महाराजके कुलमें उनके परदादा त्र्यम्बक पन्त पहले भगवद्भक्त प्रसिद्ध हुए, एकनाथ महाराजके घरानेमें उनके परदादा भानुदास प्रसिद्ध हुए, समर्थ रामदासके घरानेमें नौ पीढ़ियोंसे श्रीरामचन्द्रकी उपासना हो रही थी, उसी प्रकार तुकाराम महाराजके घरानेमें नौ पुरुषोंसे पण्ढरीकी वारीका व्रत चला आ रहा था और तुकाराम महाराजके दादाके परदादा विश्वम्भर बोवा विख्यात विट्ठल-भक्त हो चुके थे। पवित्र कुल और पावन देशमें ही हरिके दास जन्म लिया करते हैं। पवित्रताके संस्कार, पावन रहन-सहन, शुचि आचार-विचार जब किसी कुलमें परम्परासे जमते हुए चले आते हैं तब उन सबके फल-स्वरूप तीनों लोकमें सत्कीर्ति-पताका फहरानेवाला कोई महात्मा अवतीर्ण होता है। इसीलिये हमारे धर्मशास्त्रमें कुलपरम्पराको शुद्ध बना रखनेका इतना कड़ा विधान है। हिन्दू-समाजमें कुलधर्म और कुलाचारकी जो इतनी महिमा है उसका कारण यही है। पण्ढरी-की वारी (यात्रा) करनेवालोंको मद्य-मांस छोड़ना पड़ता है, इसके बिना उनके गलेमें तुलसीकी माला पड़ ही नहीं सकती। पण्ढरीकी यात्रा, एकादशी-व्रत, मद्य-मांस-परित्याग, हरिपाठादि अभंगोंका पाठ और नित्यभजन प्रत्येक वारकरीके लिये अनिवार्य है। यह वारकरी सम्प्रदाय तुकाराम महाराजके कुलमें नौ पीढ़ियोंसे चला आ रहा था, इससे उनके कुलके संस्कार कितने शुद्ध और पवित्र हुए होंगे इसकी कुछ कल्पना की जा सकती है।

उत्तम कुलमें जन्म लेने और निष्ठापूर्वक कुलधर्म पालन करनेसे क्या फल मिलता है, यह यदि कोई पूछे तो उसका सबसे अच्छा उत्तर श्रीतुकाराम महाराजका चरित्र है।

५ श्रीविश्वम्भर बाबा

तुकाराम महाराजके आठवें पूर्वज विश्वम्भर बोवा बचपनमें ही पितृविहीन हो गये थे। वह और उनकी माता ये ही दो आदमी उस कुटुम्बमें रह गये थे। पीछे विश्वम्भर बोवाका विवाह हुआ। उनकी स्त्रीका नाम आमाबाई था। विश्वम्भर बोवाने अपने पिताकी वणिक्-वृत्ति ही आगे चलायी। उनका व्यवहार खरा था; झूठ कभी न बोलना, प्रारब्धसे जो मिल जाय उसका सत्कार्यमें व्यय करना, साधु-सन्त-ब्राह्मण और अतिथि-अभ्यागतोंका सत्कार करना, घर-गिरस्तीके सब काम करते हुए नाम-स्मरणमें मग्न रहना, रातको भक्तोंको जुटाकर भजन करना, श्रीराम और श्रीकृष्णकी लीला सबको सुनाना और प्राणिमात्रमें दयाभाव रखकर तन-मन-वचनसे परोपकारार्थ उद्योग करना उनका नित्यक्रम था। विश्वम्भर बोवाका यह ढंग देखकर उनकी माता बहुत प्रसन्न होती थीं। उनका अन्तःकरण प्रेममय था। एक बार उन्होंने विश्वम्भर बोवाको बताया कि 'तुम्हारे बाप-दादा पण्ढरीकी वारी बराबर करते चले आये हैं, तुम इस क्रमको कभी न छोड़ो तो ही संसारमें सफलता प्राप्त करोगे।'

माताका यह उपदेश सुनकर उन्होंने पण्ढरी जानेकी तैयारी की। उन्हें स्वयं बड़ा उत्साह था, फिर उसमें माताकी आज्ञा, तब क्या पूछना है! विश्वम्भर बोवा चार भक्तोंको साथ

लिये बड़े आनन्दसे भजन करते हुए पण्ढरी गये। वहाँका अपूर्व भजन-समारम्भ देखकर उन्हें अपनी देहका भी भान न रहा। वारकरी भक्तोंका मेला, चन्द्रभागाके निर्मल जलका वह विस्तीर्ण पाट, श्रीविट्ठलकी शान्त सुन्दर सगुण मूर्ति, पुण्डलीक, नामदेव, चोखा-मेला आदि भगवद्भक्तोंकी अद्भुत लीलाओंका स्मरण करानेवाले वे पुण्यस्थान, हरिकीर्तन और नामसंकीर्तनका वह दृश्य देखकर विश्वम्भर बोवाके चित्तमें प्रेमसमुद्र हिलोरें मारने लगा। भगवन्मूर्ति-के सामनेसे उनसे उठा न जाय!

वह ब्रह्म सनातन। निज भक्तोंका हृदयरत्न॥
नासिकाग्र दृष्टि किया ध्यान। देखते ही मन तन्मय॥
सर्वांग सुगंध संभार। कंठमें कोमल तुलसी-हार॥
विश्वंभर देखे श्याम साकार। आनन्दाकार हृदय॥
सगुण रूप नैनोंमें भाया। सोई हिय अंतर समाया॥
सर्वत्र ब्रह्मानंद छाया। अनुपम पाया संतोष॥

'वह सनातन ब्रह्म जो निज भक्तोंका हृदयरत्न है, नासि-काग्रपर उसका ध्यान करके देखा। देखते ही मन तन्मय हो गया। सर्वाङ्गमें उनके सुगन्ध-लेपन हुआ है, कण्ठमें कोमल तुलसी-माला पड़ी है। ऐसे उन घनसाँवरेको देखकर विश्वम्भरका मन आनन्द हो गया। दृष्टिसे सगुणरूप देखा, उसीको हृदय-सम्पुटमें रखा, सृष्टिमें ही ब्रह्मानन्दका मजा देखकर चित्तको बड़ा सन्तोष हुआ।'

इस प्रकार दशमीसे लेकर पूर्णिमाके कांदौतक पण्ढरीमें रहकर विश्वम्भर बोवा बड़े कष्टसे देहू लौट आये। पण्ढरीका सब आनन्द

उन्होंने अपनी मातासे निवेदन किया और उनकी आज्ञासे प्रति पखवारे पण्ढरीकी वारी करना आरम्भ किया। रात-दिन श्रीविट्ठलका चिन्तन करते हुए उन्होंने क्रमसे आठ महीनेमें पण्ढरीकी सोलह वारियाँ कीं। प्रत्येक दशमीको एक समय खाते, एकादशीको निराहार उपवास-व्रत रहते और रातको जागरण करते। हरि-कीर्तन श्रवणकर उनका अन्तःकरण प्रेमसे गद्गद हो जाता। पण्ढरीको बड़े उल्लासके साथ जाते, पर जब वहाँसे लौटना होता था तब गद्‌गद होकर अश्रुपूर्ण नयनोंसे भगवान्‌की मनोहर मूर्ति-को देखकर लौटते हुए उनके पैर भारी हो जाते थे। भगवद्भक्तिमें विश्वम्भर बोवा इतने तन्मय हो गये थे। अन्तमें भगवान् उनकी भक्तिपर मोहित हुए और साकाररूपमें प्रकट होकर उन्होंने उन्हें हरिनाम-मन्त्रोपदेश किया। चित्त हरिचरणमें रत हो जानेसे घर-गिरस्तीके काममें उनका मन नहीं लगता था और इस कारण, जैसा कि दस्तूर है, कुछ लोग उनके गुण गाने लगे और कुछ उनकी निन्दा भी करने लगे। विश्वम्भर बोवाकी अनन्यभक्ति देखकर भगवान्‌ने उन्हें स्वप्न दिया कि अब तुम्हें पण्ढरपुर आनेकी कोई आवश्यकता नहीं, अब मैं ही तुम्हारे घर आकर रहूँगा। स्वप्नके अनुसार विश्वम्भर बोवा गाँवके सौ-पचास मनुष्योंको संग लिये देहूके समीप जो आम्रवन था, वहाँ गये। वहाँ जिस स्थानमें सुगन्धित फूल, अरगजाचूर्ण और तुलसीदल पड़े हुए देखे, वहीं ठहर गये और वह भूमि खनने लगे तो 'सगुण श्याम पाण्डुरङ्ग-मूर्ति' निकल आयी, 'वामांगमें माता रुक्मिणी शोभायमान थीं, कटिमें दिव्य पीताम्बर था, गलेमें तुलसीके मञ्जुल हार थे; ऐसी

सुन्दर मूर्ति देखकर सब लोग जयजयकार करने लगे।' विश्वम्भर बोवा उस मूर्तिको देहूमें ले आये और अपने घरके समीप इन्द्रायणी-के तटपर बड़े ठाटके साथ उन्होंने उस मूर्तिकी स्थापना की और मन्दिर बनवाया। यहींसे देहूग्राम पुण्यक्षेत्र हो गया।

६ विश्वम्भरजीके पुत्र

विश्वम्भर बोवाके देहावसानके पश्चात् उनकी स्त्री आमाबाई अपने दो पुत्र हरि और मुकुन्दके साथ काल व्यतीत करने लगीं। पतिके सत्संगसे उनके भी अन्तःकरणमें भगवत्-प्रेम उदय हो चुका था। पतिके पीछे श्रीविट्ठलकी पूजा-अर्चा उत्तम प्रकारसे चलाते रहना ही उन्हें प्रिय था। कुछ दिन ऐसे ही चला, पर पीछे पुत्रोंकी राजसी प्रकृतिके कारण उनके विचारोंमें बाधा पड़ने लगी। हरि और मुकुन्दको 'सेना तुरंग शिविका आभरण' का शौक लगा। क्षात्रवृत्तिकी ओर खिंचकर वे दोनों माँका कहा न मान घरसे चले गये और किसी राजाके यहाँ नौकरी करने लगे। यह राजा कौन, कहाँका था, यह जाननेका कोई साधन नहीं है। पुत्रोंने माँको भी अपने पास बुला लिया। माँ अपनी दोनों बहुओंके साथ वहाँ गयीं। आमाबाई तनसे तो अपने पुत्रोंके पास गयीं पर उनका मन देहूकी विट्ठलमूर्तिमें ही लगा रहता था, राजसेवा करनेवाले पुत्रोंके ठाट-बाटसे उन्हें कुछ भी सुख नहीं होता था। उनकी तो यही इच्छा थी कि लड़के घर ही रहें, पैतृक धन्धा ही करें और भगवान्‌की पूजा-अर्चा चलाते रहें। परन्तु बेटे नवयुवक थे, यौवन उनके रक्तके अन्दर खेल रहा था, वैभव और प्रतिष्ठा प्राप्त करनेकी धुन उनपर सवार थी। इस कारण उन्हें पुत्रोंके पास

जाना पड़ा। सांसारिक स्नेह-सम्बन्धका प्रेमसुख कितना निष्ठुर होता है, यह उन्हें अभी देखना था। मायापाश बड़ा कठिन है। मन देहूमें भगवान्‌के पास है और तन लड़कोंके पास, यह उनकी हालत थी। बेटे यशस्वी निकले, यश दिन-दिन बढ़ने लगा। कुछ काल बाद श्रीविट्ठलने आमाबाईको स्वप्न दिया, 'तुम पुत्र-मोहसे हमें देहूमें छोड़ आयी हो, पर तुम्हारे पुत्र युद्धमें मारे जायँगे और उनका सारा वैभव नष्ट हो जायगा।' आमाबाईने यह स्वप्न अपने पुत्रोंसे कहा, पर वे स्वप्नपर विश्वास करनेवाले न थे। अन्तको राजापर शत्रुने आक्रमण किया, घोर युद्ध हुआ और उसमें हरि और मुकुन्द दोनों ही मारे गये। मुकुन्दकी स्त्री सती हुई। शोकाकुल आमाबाई बड़ी बहूको साथ ले देहू लौटीं। माताकी आज्ञा उल्लंघन करनेका फल बेटोंको मिला और माता पहलेसे भी अधिक विरक्त होकर श्रीविट्ठलचरणोंमें और भी अधिक अनुरक्त हुईं। हरिकी स्त्री गर्भवती थी। प्रसूतिके लिये उन्हें आमाबाईने उनके नैहर नवलाख डंबर भेज दिया। वहाँ यथा-समय वह प्रसूत हुई; लड़का हुआ और उसका नाम विट्ठल रखा गया। दुःख, शोक और वैराग्यसहित भगवत्प्रेमकी परस्परविरुद्ध लहरोंसे आमाबाईकी चित्तवृत्ति उदासीन हो चुकी थी। वृद्धावस्थामें जब शरीर जराजर्जर हो गया तब उनके उपास्यदेवने उन्हें धैर्य दिया। उनपर भगवान्‌का पूर्ण अनुग्रह हुआ और नन्हें पोतेको पीछे छोड़ वह स्वर्ग सिधारीं।

७ सन्तति-विस्तार

हरिके बेटे विट्ठल। इन्हें माता-पिताके वियोग-दुःखके कारण

यौवनमें ही वैराग्य हो गया और भगवद्भक्तिमें ही उनका मन लगा। इन विट्ठलके पदाजी नामक पुत्र हुए। पदाजीके शंकर, शंकरके कान्हा और कान्हाके पुत्र बोलाजी हुए। यही बोलाजी तुकाराम महाराजके पिता थे।

८ वंशावली

तुकाराम महाराजके ज्येष्ठ पुत्र महादेव बोवाके वंशज (वर्तमान) रामभाऊ देहूकरके घरमें पण्ढरपुरमें तुकाराम महाराजकी जो वंशावली मिली वह इस प्रकार है—

विश्वम्भर बोवा (स्त्री आमाबाई)

हरि बोवा (स्त्री विठाबाई) — मुकुन्द बोवा

हरि बोवा
|
विठोबा
|
पदाजी बोवा
|
शंकर बोवा
|
कान्हया
|
बोल्हो बोवा (स्त्री कनकाबाई)
|
श्रीतुकाराम महाराज चैतन्य
(स्त्री १ रखमाबाई और २ जिजाबाई)

'सन्तलीलामृत' में महीपतिबाबाने जो वंशावली दी है वह और यह एक ही है। तुकाराम महाराजके जो वंशज देहूमें हैं उनके यहाँ भी यही वंशावली है। 'केशवचैतन्यकल्पतरु' ग्रन्थमें

निरञ्जन स्वामीने जो वंशावली दी है वह भी इसी वंशावलीसे मिलती है ।

देहूके कागज-पत्र देखते हुए तुकाराम महाराजके पोते उद्धव बोवाके हाथका एक लेख मिला है, वह यहाँ देते हैं—

श्री

'वंशावली स्वामीकी—मूल पुरुष विश्वंभर बावा, इनके पुत्र दो, बड़े हरि छोटे मुकुन्द । हरि बावाके पुत्र विठोबा, विठोके पुत्र पदाजी, पदाजीके पुत्र शंकर बावा, शंकर बावाके पुत्र कान्होबा, कान्होबाके पुत्र बोल्हो बावा, (इनके) पुत्र बड़े सावजी बावा, मझले तुकाराम बावा और छोटे कान्होबा । सावजी बावाके कुछ नहीं । तुकोबाके पुत्र तीन, बड़े महादेव, मझले विठोबा, छोटे नारायण बावा । महादेव बाबाके पुत्र आबाजी बाबा, आबाजी बाबाके पुत्र तीन, बड़े महादेव बावा, मझले मुकुन्द बावा और छोटे जयराम बावा । विठोबाके पुत्र चार, बड़े रामाजी बावा और उधो बावा और गणेश बावा और गोविन्द बावा । रामाजी बावाके कुछ नहीं । उधो बावाके पुत्र बड़े खंडोबा, मझले विठोबा, छोटे नारायण बावा । कान्होबाके गंगाधर बावा, गंगाधर बावाके खंडोबा और खंडो बावाके गंगाधर बावा ।

इस प्रकार तुकारामजीकी जाति, कुल, उनके पूर्वज और उनकी वंशावलीके सम्बन्धमें जो-जो विश्वसनीय बातें मिलीं वे इस अध्यायमें समाविष्ट की गयी हैं ।

तीसरा अध्याय

संसारका अनुभव

भगवान्‌की यह पहचान है कि जिसके घर वह आते हैं उसकी गृहस्थीपर चोट आती है।

—श्रीतुकाराम

१ महाराष्ट्र धर्मकी पूर्व-परम्परा

तुकारामका जन्म संवत् १६६५ (शाके १५३०) में हुआ, यह बात पूर्वाध्यायमें यथेष्ट प्रमाणोंद्वारा सिद्ध की जा चुकी है। अब जिस समय महाराष्ट्रके क्षितिजपर तुकाराम महाराज-जैसे भक्त-चूडामणि उदय हुए उस समयके महाराष्ट्रका विहंगम-दृष्टिसे संक्षेप-में पर्यालोचन करें। श्रीज्ञानेश्वर महाराजके समयमें महाराष्ट्र समग्र ऐश्वर्य भोग रहा था। महाराष्ट्रकी राजधानी उस समय देवगिरि थी जिसका आधुनिक यवन-नाम दौलताबाद है। यादव (जाधव) राजा राज्य करते थे और राजशासन उत्तम प्रकारसे होता था। श्री-ज्ञानेश्वरीके उपसंहारमें ज्ञानेश्वर महाराजने उस समयके यादवराज श्रीरामचन्द्र या रामदेव रावका इस प्रकार बड़े सम्मानके साथ उल्लेख किया है—'वहाँ यदुवंशविलास। जो सकलकला-निवास। न्यायसे पालें क्षितीश। श्रीरामचन्द्र।' शालिवाहनकी तेरहवीं शताब्दीमें रामदेव राव-जैसे धर्मात्मा राजा, हेमाद्रि-जैसे विद्वान् और बुद्धिमान् राजकार्यकर्ता, वोपदेव-जैसे पण्डित, श्रीज्ञानेश्वर महाराज-जैसे

अवतारी भागवतधर्मप्रवर्तक, नामदेव-जैसे सगुणप्रेमी सन्त, चोखा-मेला, गोरा कुम्हार, सांवता माली-जैसे भक्त, मुक्ताबाई, जनाबाई-जैसी परम भक्त स्त्रियाँ जिस कालमें महाराष्ट्रमें उत्पन्न हुईं वह काल निश्चय ही परम धन्य है। शाके १२१२ (संवत् १३४७) में महाराष्ट्र-साहित्यमें मुकुटमणिके समान शोभायमान ज्ञानेश्वरी-जैसा अद्वितीय ग्रन्थ महाराष्ट्रके महद्-भाग्यसे महाराष्ट्रमें निर्माण हुआ। इस कालके पश्चात् शीघ्र ही उत्तरकी ओरसे मुसलमानी फौजें दक्षिणपर चढ़ आयीं और दक्षिण-देशपर मुसलमानोंका आधिपत्य स्थापित हुआ। तीन-चार सौ बरसतक दक्षिणपर मुसलमानोंका अधिकार रहा। पर इस कालमें भी यह अधिकार सर्वत्र पूर्णरूपसे प्रस्थापित नहीं था। शिरके आदि कई मराठे खानदान ऐसे थे जो अपने गढ़ और प्रदेश अपने हाथमें ही रखे हुए थे और कभी मुसलमानी बादशाहत-के सामने नहीं झुके। ये स्वतन्त्र ही थे। गुलबर्गाके बाहमनी सुलतान जब तप रहे थे उसी समय तुंगभद्राके तटपर विद्यारण्य स्वामी (पूर्वाश्रमके माधवाचार्य) ने हरिहर और बुक्क नामक दो युवा राजकुमारोंको शिक्षा देकर उनके द्वारा विजयानगर-राज्य स्थापित कराया। मुसलमानोंके बाहमनी-राज्यके पाँच टुकड़े हो गये तबसे मराठे वीरों और ब्राह्मण-राजनीतिज्ञोंने धीरे-धीरे अपने पाँव फैलाना आरम्भ किया और शाके १५४९ (संवत् १६८४) में श्रीशिवाजी महाराजका जन्म होनेके पूर्व महाराष्ट्रके पुनरुज्जीवन-के स्पष्ट लक्षण दिखायी देने लगे। बीचकी तीन शताब्दियोंमें पराधीनताके कारण महाराष्ट्रको अनेक क्लेश भोगने पड़े। तथापि मराठा-मण्डलकी तेजस्विता इस कालमें भी बची हुई थी, उनका

स्वाभिमान बिल्कुल नष्ट नहीं हुआ था। विधर्मियोंका राज्य होनेसे यह काल धर्मग्लानिका रहा, तथापि इसी कालमें अनेक सन्त कवि उत्पन्न हुए और उन्होंने धर्मनिष्ठाकी बुझती-सी ज्योतिको बुझने न देकर प्रज्वलित कर दिया। शालिवाहनकी तेरहवीं शताब्दीमें ज्ञानेश्वर, नामदेवादि महात्माओंने भागवत धर्मकी स्थापना करके धर्मका झण्डा महाराष्ट्रपर फहरा दिया था। इन महापुरुषोंका यह उद्योग व्यर्थ होनेवाला नहीं था। इन्होंने जिस उदार धर्मतत्त्वामृतकी वर्षा कर रखी थी उसीसे विधर्मी राजसत्ताके धर्मग्लानिरूप भयंकर दुर्भिक्षमें भी हिन्दुओंका हिन्दुत्व बचा रहा। इस कालमें जो सन्त और कवि हुए उन्हींके कर्तव्यसे धर्मकी रक्षा हुई और विपरीत कालसे जूझते हुए महाराष्ट्र-समाजका धैर्य नष्ट नहीं हुआ। वह धीरतासे विधर्मके साथ लड़ता रहा और अपने आपको बचाता रहा। किसी भी राष्ट्रका जो उत्कर्ष होता है वह स्वदेश, स्वधर्म और स्वभाषारूपमें तीन प्रकारसे होता है। इन्हीं तीनोंका उत्कर्ष राष्ट्रका उत्कर्ष है और इन्हीं तीनका ह्रास राष्ट्रकी मृत्यु है। महाराष्ट्र पराधीन तो हुआ पर पराधीनताकी उस प्रतिकूल परिस्थितिमें भी उसने स्वधर्म और स्वभाषाका बाना नहीं छोड़ा। मुसलमानोंकी नौकरी करनेवाले मराठे वीरोंमेंसे जैसे आगे चलकर शाहाजी-जैसे पराक्रमी कुशल राजनीतिज्ञ उत्पन्न हुए वैसे ही मुसलमानोंकी नौकरी करनेवालोंमें ही दामाजी पन्त और जनार्दन स्वामी-जैसे परमभागवत भी हुए और इन्होंने ही लोगोंकी धर्मनिष्ठा जागृत रखी। विधर्मियोंके शासन-कालमें आचार-विचार भी उलट-पलट जाते हैं। आचार और विचारका जहाँ मेल होता है वहीं धर्म जीता-

जागता रहता है। बौद्ध-सम्प्रदायकी लहरको लौटाते हुए पहले कुमारिल भट्टने आचार-धर्मको जगाया और तब शंकराचार्यने ज्ञानका डंका बजाया। शाके १३०० (संवत् १४३५) से श्रीपाद श्रीवल्लभ और श्रीनृसिंह सरस्वतीने धर्मको जगानेका जो काम किया उसका परिचय शाके १४७०के लगभग निर्माण हुए 'गुरुचरित्र' ग्रन्थसे मिल सकता है। नृसिंह सरस्वती शाके १३८० बहुधान्य संवत्सरमें फाल्गुन बदी १ को 'निजानन्दमें बैठे' (गुरुचरित्र अ० ५१)। शाके १३९६के भीषण दुर्भिक्षमें दामाजी पन्तने बादशाहके कोपसे आनेवाले संकटके सामने उदारतासे अपनी छाती खोलकर शाही धान्यागार लुटा दिया और सहस्रों मनुष्योंके प्राण बचाये। भगवान् भक्तोंके सदा सहाय हैं, यह बात भगवान्‌ने विठू महारका रूप धारणकर सबको जँचा दी। कान्हूपात्रा वेश्या थी, पर उसकी भी निष्ठा देखकर लोग भक्तिमार्गपर विश्वास करने लगे। मंगलवेढ्या-के दामाजी पन्तके समान ही देवगढ़ (देवगिरि-दौलताबाद) में जनार्दन स्वामीके तपने बड़ा काम किया। जनार्दन स्वामीके शिष्य एका जनार्दन, जनी जनार्दन और रामा जनार्दन थे। चांगदेव, दासो पन्त आदि अनेक भक्त इस कालमें हुए। एकनाथ महाराजके (संवत् १५८५-१६५५) उदार-चरितसे महाराष्ट्रमें फिर भागवत धर्मका प्रचण्ड जय-जयकार हुआ। एकनाथी भागवत (संवत् १६३०), रुक्मिणीस्वयंवर (संवत् १६२८), भावार्थ-रामायण, सहस्रों अभंग और अन्य कविताएँ महाराष्ट्रमें लोक-प्रिय हो गयीं। सप्तशृंगीपर त्र्यम्बक राय, चिंचवडमें मोरया गोसावी, शिंगणापुरमें महालिङ्गदास इत्यादि महाराष्ट्रके सभी प्रान्तोंमें संवत्

१६३५ (शाके १५००) के लगभग अनेक भगवद्भक्त और ग्रन्थकार निर्माण हुए। इन सबके पृथक्-पृथक् कार्योंका समवेत फल भागवत धर्मका प्रचार ही था और उपासना अपनी-अपनी भिन्न होनेपर भी अथवा सम्प्रदायोंके भिन्न होते हुए भी इन सबके द्वारा धर्मके ही जगानेका काम हुआ। ज्ञानेश्वर, नामदेवके पश्चात् महान् कार्य एकनाथ महाराजके द्वारा ही हुआ। एकनाथ महाराजने गुरु-कृपाकी अलौकिक शक्तिसे अत्यन्त प्रासादिक ग्रन्थ रचे और उनके दिव्य चरित्रका भी जन-समूहपर बड़ा ही उत्तम संस्कार घटित हुआ। जनार्दन स्वामीके ही सदृश एकनाथ महाराज भी ज्ञानेश्वरीपर प्रवचन किया करते थे। इससे इस ग्रन्थकी ओर सबका ध्यान लगा। एकनाथ महाराजके अवतार-कार्यका प्रभाव देवगढ़, पैठण और पण्ढरपुरपर ही नहीं, पूना-प्रान्तपर भी खूब पड़ा। संवत् १६४० में एकनाथ महाराज सैकड़ों वारकरियोंको साथ लिये आलन्दी गये, वहाँ वह तीन महीने रहे। नित्य कीर्तन-भजन हुआ करता था। वहाँ वह किसीसे कुछ लेते नहीं थे। एक लिङ्गायत बनियेके रूपमें भगवान् नित्य सबको सीधा-पानी दिया करते थे। भगवान्‌ने ही एकनाथ महाराजको ऋणमुक्त किया! यह बात पूना-प्रान्तमें घर-घर फैल गयी और इस घटनाके ५० वर्ष बाद तुकाराम महाराजने यह कह-कर इस घटनाका उल्लेख किया है कि 'प्रत्यक्षके लिये और प्रमाण क्या चाहिये? (भगवान्‌ने) एकाजी (एकनाथ) का ऋण शोध दिया यह तो प्रत्यक्ष ही है।' नाथ आलन्दीसे लौटे तबसे आलन्दीकी वारी (यात्रा) होने लगी और १० ही वर्ष बाद संवत् १६५० के लगभग एक 'देशपाण्डे' सज्जनने ज्ञानेश्वर महाराजकी समाधिके आगे सभा-

मण्डप बनवा दिया। एकनाथ महाराजके आगमनसे आलन्दीकी महिमा और भी बढ़ी, यात्रा अधिक जाने लगी, ज्ञानेश्वरीके जहाँ-तहाँ पारायण होने लगे और भागवत धर्मपर लोगोंकी श्रद्धा और प्रीति खूब बढ़ी। एकनाथ महाराजने संवत् १६५५ में पैठणमें समाधि ली और इसके दश ही वर्ष बाद देहूमें तुकारामका जन्म हुआ। तुकाराम और रामदास स्वामी एक ही संवत्में अवतीर्ण हुए और उनके द्वारा महाराष्ट्रमें कृष्ण-भक्ति और राम-भक्तिकी दो धाराएँ बहने लगीं। गुरु-चरित्रका दत्तसम्प्रदाय, पण्ढरीका वारकरी सम्प्रदाय, समर्थ रामदासका रामदासी सम्प्रदाय आदि सभी सम्प्रदाय भगवद्-भक्ति सिखानेवाले भागवत धर्मके ही सम्प्रदाय थे और इनके मुख्य सिद्धान्तोंमें परस्पर कोई भेद नहीं था। सबने एक धर्मको ही जगाया। तुकाराम और समर्थ जब १९ वर्षके थे तभी अर्थात् शाके १५४९ (संवत् १६८४) में पूना-प्रान्तके ही शिवनेरी-दुर्गमें श्रीशिवाजी महाराजका जन्म हुआ। तुकाराम, रामदास और शिवाजी ये तीन महाविभूति हुए और इन्होंने जो कुछ कार्य किया उसके पोषक और सहायक अनेक पुरुष उस कालमें महाराष्ट्रमें उत्पन्न हुए थे। महाराष्ट्रमें प्रवृत्ति और निवृत्तिका ऐक्य सिद्ध होनेको था। इन महात्माओंके अवतार 'भवो हि लोकाभ्युदयाय तादृशाम्' इस कालिदासोक्तिके अनुसार संसारके अभ्युदयके लिये हुए। यह अभ्युदय क्या और कैसे हुआ यह सबको विदित ही है। इन महाविभूतियोंने आकर महाराष्ट्रको सौभाग्यके दिन दिखाये। जो मुख्य बात यहाँ ध्यानमें रखनेकी है वह यह है कि श्रीज्ञानेश्वर और नामदेवने महाराष्ट्रमें जो भागवत धर्म संस्थापित किया और

तुकारामजीका जन्मस्थान पृष्ठ ६९

जिसका प्रचार करनेके लिये ही एकनाथ आये उसे एकनाथ महाराज ही आलन्दीमें आकर पूना-प्रान्तमें अच्छी तरह जगा गये। ऐसे शुभ समयमें देहूमें तुकारामका जन्म हुआ। ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथके अवशिष्ट धर्मकार्यको पूर्ण करनेके लिये ही देहूमें श्रीतुकोबा राय अवतीर्ण हुए। भगवान् श्रीकृष्णके हृदयसे निकलकर महाराष्ट्रमें पुण्डलीकके गोमुखसे प्रकट होनेवाली भागवत धर्मकी भागीरथी ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथरूपी प्रचण्ड प्रवाहोंके साथ बहती हुई पूना-प्रान्तवासिनी जनताके सौभाग्यसे वहाँ तुकारामके रूपमें प्रवाहित हुई। बहिणाबाईके कथनानुसार ज्ञानेश्वर महाराजने जिसकी नींव डाली, नामदेवने जिसका विस्तार किया, एकनाथने जिसपर झण्डा फहराया उस भागवत धर्मरूप प्रासादपर तुकारामरूप कलश चढ़ा।

२ श्रीतुकारामजीके माता-पिता

तुकारामके भाग्यवान् पिता बोलाजी और पुण्यवती माता कनकाई देहूमें सुखपूर्वक रहते थे। बोलाजीने अपने कुलदेव श्रीविट्ठलकी भक्तिभावसे उपासना की और पण्ढरीकी आषाढ़ी और कार्तिकी वारी सतत ४० वर्षतक की। पति-पत्नी दोनों अपना जीवन परोपकार और पुण्यकर्माचरणमें व्यतीत करते थे; भूखेको अन्न खिलाते, प्यासेको पानी पिलाते, दीन-दुखियोंकी दयापूर्वक सहायता करते, साधु-सन्तोंकी खोज-खबर* लेते, घरकी विट्ठल-मूर्तिकी

* संवत् १६४० में जब एकनाथ महाराज आलन्दी गये थे तब उनके दर्शन करने और कीर्तन सुनने बोलाजी भी कनकाईके साथ कई बार गये होंगे और तुकोबाजीने बचपनमें ही माता-पिताके मुखसे ही एकनाथ महाराजकी बातें सुनी होंगी। बोलाजी स्वयं परम्पराके वारकरी थे, वह कब ऐसा अवसर छोड़ सकते थे कि जब एकनाथ महाराज-जैसे परम भक्त

बड़े प्रेमसे पूजा-अर्चा करते, सदा भजन-पूजनके ही आनन्दमें रहते। यही उनका नित्य-कर्म था। बोलाजीकी यह ख्याति थी कि 'जगत्का व्यवहार करते हुए वह कभी झूठ नहीं बोलते थे।' बोलाजी प्रापञ्चिक कार्योंमें भी दक्ष थे। कुछ महाजनी, कुछ व्यापार और कुछ खेती करके सुखपूर्वक प्रपञ्च-साधन करते थे। व्यापारमें दया और सचाई रखते थे। उनके प्रथम पुत्र सावजी हुए। द्वितीय पुत्रके समय कनकाईको वैराग्यका ही चसका लगा। वह एकान्तमें बैठतीं, किसीसे अधिक न बोलतीं और प्रपञ्चकी ओर कुछ भी ध्यान न देतीं, यह हालत हो गयी थी। उनकी कोखसे महाविष्णु-भक्त जन्म लेनेवाले थे, शायद इसी कारण उन दिनों उन्हें नामदेव रायके अभंग सुननेकी इच्छा होती थी अथवा वह हरिकीर्तन सुनतीं या विट्ठल-मन्दिरमें अकेली ही श्रीविट्ठल-रखुमाईकी ओर घण्टों टक लगाये बैठी रहती थीं। यथा-समय उनकी कोखसे श्रीतुकारामका जन्म हुआ। भक्तलीलामृतमें महीपतिबाबा प्रेमसे वर्णन करते हैं—(तुकाराम महाराज क्या अवतीर्ण हुए—)

'कनकामाईकी कोखमें महानक्षत्र स्वातीकी ही वर्षा हुई, अथवा मुक्तिके परेकी चतुर्थी भक्ति ही उतर आयी या यह कहिये कि स्वयं वरुणभगवान् ही अवतीर्ण हुए। उस उदरशुक्तिकामें नाम-प्रेमका नीर गिरा, वही हरि-प्रेमी हरि-भक्त मुक्ताफलरूपसे तुका

और वारकरी सम्प्रदायके तत्कालीन सर्वमान्य महन्त बोलाजीके स्थानसे तीन ही कोसके फासिलेपर आलन्दीमें आये हों? अवश्य ही बोलाजीने उनके दर्शन किये होंगे, कीर्तन सुने होंगे और उनके सत्संगसे लाभ उठाया होगा।

जन्मे। नवधा भक्तिके जो आयास किये वही नव मास पूर्ण हुए और कनकामाईके महद्भाग्यसे परम वैष्णव उनके गर्भमें आकर रहे।'

कनकामाईके सौभाग्यका क्या कहना है। अपनी असीम भक्तिसे भगवान्को नचानेवाला और तीनों लोकमें सत्कीर्तिका झण्डा फहरानेवाला सुपुत्र जिसने जना उस पुत्रवतीके महद्-भाग्यकी महिमा कहाँतक गायी जाय? यह कनकाईके एक जन्मका नहीं असंख्य जन्मोंका पुण्य था जो देवलोकके लिये भी दुर्लभ तुकाराम-जैसे पुत्रश्रेष्ठका लाभ हुआ।

ऐसी कीर्तन-भक्तिका डंका बजानेवाला समर्थ पुत्र जिसकी कोखसे पैदा हुआ वही तो यथार्थ पुत्रवती है। विषयोंसे वैराग्य हो इसीलिये वेदान्तशास्त्रने तथा साधु-सन्तोंने भी स्त्री-निन्दा की है। परन्तु यहाँ तो यही कहना पड़ेगा कि—

नारी-निन्दा मत कर प्यारे नारी नरकी खान।
इसी खानसे पैदा होते भीष्म राम हनुमान॥

जिस खानमें ऐसे रत्न पैदा होते हैं उस स्त्री-जातिकी निन्दा कौन कर सकता है? श्रीकृष्णको गर्भमें धारण करनेवाली देवकी और उनका लालन-पालन करनेवाली यशोदा जैसी भाग्यवती थीं, तुकारामकी जननी भी वैसी ही भाग्यवती थीं। तुकारामके पश्चात् कान्हजीका जन्म हुआ। सावजी, तुकाजी और कान्हजी तीनोंकी बाललीलाओंको अवलोकन कर बोलो बोवा और कनकामैया मन-ही-मन अपने भाग्यको धन्य समझते हों तो इसमें क्या आश्चर्य है?

३ बाल्य-काल

तुकारामजीके जीवनके प्रथम तेरह वर्ष माता-पिताके संरक्षण-छत्रकी सुख-शीतल छायामें बड़े सुखसे व्यतीत हुए। बचपनमें तुकाराम बाहरके लड़कोंसे अवश्य ही अनेक प्रकारके खेल खेले होंगे। श्रीकृष्ण और उनके ग्वाल-बाल सखाओंकी बाल-लीलाओं-का उन्होंने बड़े ही प्रेमसे वर्णन किया है! डंडा-डोली, गेंद-तडी, मृदङ्ग, कबड्डी, आती-पाती, गुल्ली-डंडा आदि बच्चोंके अनेक खेलोंपर उनके अभंग हैं। भगवान्से प्रेम-कलह करते हुए भी उन्होंने बच्चोंके खेलोंके मजेदार दृष्टान्त दिये हैं। इन सबसे यह पता चल जाता है कि बचपनमें तुकाराम बड़े खेलाड़ी थे। भगवान्से झगड़ते हुए उन्हें 'फसड्डी' कह देना, कहीं 'पासा उलटा पड़ा, और कहीं 'पौबारह' चिल्लाना', इत्यादि अनेक खेलोंकी परिभाषाओंके प्रयोगोंसे तुकारामजीके बालकपनका खेलाड़ीपन ही प्रकट होता है। मनुष्यके जीवनकी विशेष घटनाएँ, उसकी रुचि-अरुचि, उसके भिन्न-भिन्न अनुभव, उसके अभ्यास, उसके अनेक स्थित्यन्तर, उसके सङ्गी-साथी, इन सबका ही प्रभाव उसके भाव, विचार और भाषापर पड़ा करता है। उसकी भाषासे भी ऐसे प्रभावोंका पता चलता है। अवश्य ही इन भेदोंको समझना बड़ी साव-धानी और सूक्ष्मदर्शिताका काम है। यहाँ एक उदाहरण देकर बातको स्पष्ट करते हैं। उदाहरण भी मनोरञ्जक होगा। 'युक्ताहारविहार' क्या है, यह तो सभी जानते हैं। ज्ञानेश्वर महाराजने 'युक्ताहार-विहार' का अर्थ किया है 'युक्तताकी नापसे नपे हुए गिनतीके कौर:' और एकनाथ महाराजने 'भगवान्को भोग लगाकर यथेष्ट

भोजन करने' को ही 'युक्ताहारविहार' बताया है। इसका रहस्य यही जान पड़ता है कि एकनाथ महाराजके यहाँ था सदावर्त, और नित्य ब्राह्मण-भोजन हुआ करता था। इसलिये उन्होंने 'युक्ताहार-विहार' से ऐसा ही अर्थ ग्रहण किया जिससे भगवान्को भोग लगाकर ब्राह्मणोंको तृप्त करनेके सदनुष्ठानमें कोई बाधा न पड़ती। तात्पर्य यह कि मनुष्य जैसी अवस्थामें होता है, जैसा उसका अनुभव, भाव और स्वभाव बनता है वैसे ही उसके मुखसे भाषा भी निकलती है। साधु-सन्तोंकी सूक्तियोंमें अलौकिक परमार्थ तो होता ही है, पर उसके साथ ही लौकिक व्यवहारका निर्देश भी होता है। यही नहीं, प्रत्युत उनकी वाणीमें पारमार्थिक सिद्धान्तके साथ व्यावहारिक दृष्टान्तका ऐसा मेल रहता है कि उनके ग्रन्थोंसे परमार्थके साथ-साथ व्यवहारकी भी अनुपम शिक्षा मिलती है। प्रायः व्यवहारकी भाषामें ही परमार्थके गूढ़ सिद्धान्त बता दिये जाते हैं। उनके दृष्टान्त, रूपक और उपमालङ्कारादिमें व्यवहारकी शिक्षा भरी हुई होती है और सिद्धान्त तो परमार्थके देनेवाले होते ही हैं। श्रीतुकारामजीका बचपन खेल-खेलवाड़में ही बीता, ऐसा कोई न समझे। हाँ, उनकी वाणीमें खेलाड़ीपनका रंग जरूर है। पाण्डुरङ्गकी भक्ति तो उनकी घरकी खेती ही थी।

४ संसार-सुखका अनुभव

बोलाजीने अपने तीनों पुत्रोंके विवाह क्रमसे कर दिये। तीनों ही विवाहके अवसरपर बालक ही थे। तुकारामजीका जब प्रथम विवाह हुआ तब उनकी आयु बारह वर्ष रही होगी। उनकी गृहिणीका नाम रखुमाई था। विवाहके पश्चात् दो-एक

वर्षके भीतर ही जब यह मालूम हुआ कि रखुमाईको दमेकी बीमारी है और उसके अच्छे होनेका कोई लक्षण नहीं तब तुकाराम-जीके माता-पिताने उनका दूसरा विवाह कर दिया। तुकारामजीका यह दूसरा विवाह पूनेके आपाजी गुलबे नामक एक धनी साहूकारकी कन्याके साथ हुआ। तुकाजीकी इन गृहिणीका नाम जिजाबाई या आवळी था। पुत्रों और बहुओंसे इस प्रकार घर भरा हुआ देखकर कनकाईको अपना संसार-सुख धन्य प्रतीत हुआ होगा! एक गृहिणीके रहते दूसरा विवाह करना यदि दोषास्पद हो तो भी यह दोष तुकाजीको नहीं दिया जा सकता, यह स्पष्ट ही है। पुत्रोंको और बहुओंको देखकर कनकाईके दिन आनन्दमें बीतते थे। महीपतिबाबाने ठीक ही कहा है—

पुत्र स्नुषा धन संपत्ती। भ्रतारयुक्त सौभाग्यवती।
याहूनि आनंद स्त्रियाँचे चित्तीं। नसे निश्चित दुसरा॥

'पुत्र, बहू, धन, सम्पत्ति, सौभाग्यस्वरूप जीवित पति, इससे बढ़कर स्त्रियोंके लिये सचमुच ही और कोई दूसरा आनन्द नहीं हो सकता।' बोलाजीकी यह ढलती उमर थी, पचासके लगभग होंगे। सुखपूर्वक उनका समय कट रहा था। 'सभी बातें अनुकूल थीं, रोजगार-हाल अच्छा था, कोई कमी नहीं, दीनवत्सल भगवान्‌की पूर्ण कृपा थी।' सब प्रकारसे सुखी थे। धीरे-धीरे बोलाजीके जीमें यह बात आने लगी कि अब सब काम-काज लड़कोंको सौंप-कर भगवान्‌की ओर ध्यान लगाना चाहिये। उन्होंने बड़े बेटेको पास बुलाया और कहा कि प्रपञ्चका सारा भार अब तुम अपने सिर उठा लो। पर सावजीके विरक्त चित्तमें यह बात नहीं जमी,

उन्होंने बड़ी नम्रताके साथ कहा, 'मुझे इस जंजालमें मत फँसाइये। मैं तो अब तीर्थयात्रा करने जाना चाहता हूँ। ऐसा आशीर्वाद दीजिये कि यह शरीर चरितार्थ हो।' बोलाजीने बहुतेरा समझाया पर सावजीकी समझ गृहप्रपञ्चकी मायासे छूटना ही चाहती थी। सावजीसे निराश होकर बोलाजीने सारा भार तुकारामजीके कन्धों-पर रखा। इस समय तुकाजी कुल तेरह वर्षके बालक थे, इस सुकुमार अवस्थामें ही इस प्रकार उनके सिर घर-गिरस्तीका गुरु भार आ पड़ा। धीरे-धीरे सब काम उन्होंने सँभाल लिये, जमा-खर्चकी बही लिखने लगे, हुण्डी-पुर्जी लेने-देने लगे, दूकानपर बैठने लगे, खेती-बारी देखने-भालने लगे, महाजनी भी करने लगे। और ये सब काम वह बड़ी दक्षताके साथ करने लगे। लोगोंके मुँह इनकी प्रशंसा सुनी जाने लगी। सब लोग कहने लगे, 'देखो, बालक होकर कैसी चतुराई, दक्षता, परिश्रम और सचाईके साथ सब काम सँभाले हुए है।' बही-खाता देखकर अपना सब व्यवहार उन्होंने अच्छी तरह समझ लिया था और वे बड़ी कुशलतासे सब काम चला रहे थे। बोलाजीने उनको यह सीख दी थी कि 'लेन-देन और सब काम-काज ऐसे कौशलसे करना चाहिये कि हानि-लाभ सदा दृष्टिमें रहे और ऐसा ही काम करे जिसमें अन्तमें अपना लाभ हो' तुकारामजीने पिताके उपदेशको अपने सिर-आँखों रखा और कहा कि मैं ऐसा ही करूँगा। 'ऐसा ही करूँगा' ये शब्द वैखरीके थे, और इनका जो आन्तरिक परम अर्थ था वही तुकाराम-जीके चित्तमें जाग उठा। उन्हें जो परम अर्थ मिला वह यही था कि, 'सावधान! प्रपञ्चमें जो कुछ लाभ है वह श्रीहरि है और

अशाश्वत द्रव्यसंग्रह हानि है, इस लाभ-हानिको ध्यानमें रखकर श्रीहरिपदरूप परम लाभको जोड़ लो।' तुकाजीने घरका सब काम बड़ी अच्छी तरहसे सँभाल लिया, यह देख उनके माता-पिता बहुत सुखी हुए। उनकी व्यवहार-दक्षता देख उनके भाई-बन्द, अड़ोसी-पड़ोसी बोलाजीके पास आ-आकर उन्हें बधाइयाँ देने लगे। चार वर्ष इसी प्रकार बड़े सुखमें बीते; माता-पिता, भाई-बन्द सभी प्रसन्न थे, धन-धान्यसे घर भरा था, घरके सब लोग निरामय थे, गाँवमें सर्वत्र बड़ी प्रतिष्ठा थी, अभाव नाममात्रको भी नहीं था। सब लोग तुकारामको 'धन्य, धन्य' कहने लगे।

५ मातृसुख

तुकारामजीको इसी समय माता-पिता विशेषतः मातासे बड़ा सुख मिला, यह बात उनके अभंगोंसे स्पष्ट ही प्रतीत होती है। परमपिता परमात्माको हम चाहे जिस भावसे देख और पुकार सकते हैं, कारण, वह पिता भी हैं और माता भी। परन्तु तुकारामजीने भगवान्‌को प्रायः 'मा' कहकर ही पुकारा है। श्रीगीताजीने 'माता धाता पितामहः', 'पितासि लोकस्य चराचरस्य' कहकर भगवान्‌को दोनों ही रूपोंमें दिखाया है और माता-पिता हैं भी एक-से ही। तथापि माताके हृदयका प्रेमरस कुछ और ही है। श्रुतिमाताने भी पहले 'मातृदेवो भव' कहा, पीछे 'पितृदेवो भव' कहा। 'माता'—'मा' शब्दमें जो माधुरी है, जो जादू है, जो प्रेमसर्वस्व है, वह किसी भी शब्दमें नहीं है। माताका हृदय प्रखरतम ग्रीष्मसे भी कभी न सूखनेवाला और सदा भरा-पूरा बहता हुआ अमृत-सरोवर है। माताका प्रेम सब जीवोंका जीवन

है। माता परमपिता परमात्माकी करुणामयी मूर्ति है। पर परमात्माका वात्सल्य यदि देखना हो तो वह माताके ही कोमल हृदयमें देख सकते हैं। बच्चेपर माताका जो प्यार है, उसमें कोई लोभ नहीं। निर्हेतुक प्रेम उसका नाम है। हम जो पलते हैं, जीते हैं, बढ़ते हैं सो माताके ही स्तन्यदुग्धामृतके पानसे। माका यह दूध क्या है? उसके रोम-रोममें सञ्चार करनेवाले प्रेमका केवल बाह्य रूप है। तुकाराम कहते हैं, 'तुका कहे माई-बाप। भगवान्के ही रूप ॥' अक्षरशः सच है। फिर भी माका प्यार माका ही है। इसीसे तुकाराम बार-बार भगवान्को 'विठामाई', 'कन्हैया-मैया' कहकर ही पुकारते हैं। मातृप्रेम जैसे ईश्वरीय भाव है वैसे ही उस प्रेमको पूर्णतया अनुभव करना भी ईश्वरीय प्रसाद है। मातृप्रेम सहज है, वैसे ही मातृ-भक्ति भी सहज ही है और सहज ही सदा बनी रहनी भी चाहिये। पर जैसे जलका झुकाव नीचेकी ओर होता है—जल ऊपर नहीं चढ़ा करता, वैसे ही इस विचित्र संसारमें माताका प्रेम जैसा सहज देखनेमें आता है वैसा या उतना सहज प्रेम सन्तानका माताके प्रति क्वचित् ही दर्शित होता है। बच्चा जबतक दुधमुँहा है तबतक अनन्यगतिक होनेसे वह माताके प्यारका उत्तर वैसे ही प्यारसे दिया करता है। पर वही बच्चा जब बड़ा होता है तब उसके प्रेममें अनेक शाखाएँ फूट निकलती हैं। पहले अपने संगी-साथियोंसे प्रेम करता है, फिर पत्नी-प्रेममें बँधता है, पीछे अपत्य-प्रेमके वशीभूत होता है; इस तरह प्रेम अपना रंग बदलता और स्वयं बँटता जाता है और कभी-कभी शाखा-पल्लवोंमें उलझकर

अपने मूलको भी भूल जाता है। इसीसे मातृ-प्रेमसे मुँह मोड़े हुए कुलांगार भी कहीं-कहीं पैदा हो जाते हैं। पर यह प्राकृत जीवोंकी बात है। पुण्यात्मा तो ऐसे महाभाग होते हैं कि उनका मातृप्रेम यावज्जीवन अखण्ड बना रहता है। और ऐसे अखण्ड मातृभक्त महात्मा ही महत्पद लाभ करते हैं। स्वयं महात्मा पुण्डलीक युवावस्थामें विषयासक्तिके वश हो कुछ कालतक माता-को भूल ही गये थे। ईश्वरकी महती कृपा हुई जो दैवयोगसे वह कुक्कुट-मुक्कुटके आश्रममें पहुँचे और वहाँ उन्होंने मातृ-भक्ति-की महिमा देखी उससे उनकी आँखें खुलीं और पीछे वह ऐसे मातृ-पितृ भक्त हुए, मातृ-पितृ-भक्तिकी उन्होंने ऐसी परा-काष्ठा की कि उसीसे भगवान् उनपर प्रसन्न हुए और उनके दर्शनोंके लिये आये, आकर ईंटासनपर तबसे खड़े ही हैं। तुकारामजी प्रश्न करते हैं, 'पुण्डलीकने किया क्या ?' और स्वयं उत्तर देते हैं, 'माता-पिताको ईश्वर-रूप माना'। इसका फल उन्हें क्या मिला ? तुकाराम कहते हैं, 'ईंटपर परब्रह्म खड़ा रह गया।' यही महाभागवत पुण्डलीक मातृ-पितृ-भक्तिके प्रतापसे सन्तोंके अगुआ और महाराष्ट्रमें भागवत धर्मके आद्य प्रवर्त्तक हुए। लौकिक पुरुषोंमें भी छत्रपति श्रीशिवाजी महाराज तथा नेपोलियन, सिकन्दर आदि दिगन्तकीर्ति दिग्विजयी पुरुष मातृ-भक्तिके महान् पुण्यबलके ही मधुर फल थे। मातृ-पितृ-भक्ति समस्त उत्तम गुणोंकी खान है। गुणोंमें सबसे श्रेष्ठ गुण मातृ-पितृ-भक्ति ही है। जिसके हृदयमें इस भक्तिका रस नहीं उसमें कोई भी गुण नहीं फलता। तुकारामका हृदय तो प्रेमहृद ही था। प्रेमनिर्झर हृदयको

लेकर ही वह जन्मे थे। वयस्के १७ वें वर्षतक उन्होंने मातृ-पितृ-प्रेम अनुभव किया और भक्ति-भरे अन्तःकरणसे माता-पिता-की खूब सेवा की। पीछे माता-पिता स्वर्ग सिधारे, बड़ी भावजका देहान्त हुआ, भाई भी घरसे निकल गये, अन्नके बिना प्रथम पत्नीका प्राणान्त हुआ, प्रथम पुत्र सन्ताजीकी मृत्यु हुई, दिवाला निकला, साख जाती रही—इस प्रकार अनेक संकट, एकके बाद एक, उनपर आते गये। इससे उनका चित्त दुखी हुआ और फिर वैराग्य हो आया। उनका प्रेम जैसा गाढ़ा था वैसा ही उनका वैराग्य भी तीव्र और ज्वलन्त हो उठा। कुछ कालतक उनकी प्रेमा-वृत्ति सरस्वती-नदीके समान गुप्त हो रही। उनकी द्वितीया पत्नी ऐसी नहीं थीं जो उन्हें प्रसन्न करके उनके प्रेमको फिरसे जगा देतीं। वह थीं चिड़-चिड़े मिजाजकी, बात-बातमें गुस्सा होनेवाली, केवल कर्कशा! ऐसी कर्कशासे उनके वैराग्यको ही पुष्टि मिली होगी। ज्यों-ज्यों वैराग्य बढ़ने लगा त्यों-त्यों उन्हें भगवान् भी प्रिय होने लगे। 'भगवान्' के सम्मुख होते ही उनकी प्रेम-सरस्वती फिरसे प्रकट हुईं। प्रेमके लिये पात्र भी अब उत्तम मिला। वैराग्य-सङ्गसे दिव्य और पावन बने हुए इस प्रेम-प्रवाहने भगवान्को अपनी परिक्रमामें मानों घेर लिया। तुकारामजीने तब बड़े प्रेमसे सद्ग्रन्थोंको पढ़ा, पण्ढरीकी वारियाँ कीं, भजन-पूजनमें मग्न हुए, भगवान्के सगुण दर्शनोंकी लालसा लगाये रहे। देह-गेहादि समस्त उपाधियोंसे चित्त उचाट हो गया और बस यही एक आस लगी रही कि साधु-सन्तोंको दर्शन देने-वाले भगवान् मुझे कब मिलेंगे? इसी एक धुनमें चित्तकी सारी

वृत्तियाँ समा गयीं । आगकी तेज आँचके लगते ही जैसे दूध उफन आता है वैसे ही दृढ़तर वैराग्यके प्रखर तापसे तपते ही वह करुणघन मेघश्याम पिघल पड़े—उतर आये वैकुण्ठ-धामसे उस ठाममें जहाँ तुकाराम उनकी प्रतीक्षामें धुनी रमाये हुए थे। आत्मारामने आकर तुकारामको दर्शन दिये, तुकारामको अपने नयनाभिराम मिल गये। मातृ-पितृ-भक्तिरूप प्रेम ईश्वरीय प्रेम हो गया। तुकाराम फिर यह अनुभव करने लगे कि नवनील मेघश्यामके रूपमें दर्शन देनेवाले परमात्मा प्राणिमात्रमें ही तो रम रहे हैं। प्रत्येक प्राणीके हृदयमें वह विराजमान हैं। तब ये जीव उन्हें भुलाकर प्रमादमयी मोहमदिराका पानकर उन्मत्त हो दुःखके महागर्तमें क्यों गिरे जा रहे हैं? जीवोंके इस अपार दुःखका ध्यान कर उनका चित्त व्याकुल हो उठा। उसी विकलतासे उनकी अभंग-वाणी निकल पड़ी। आत्म-परमात्म-प्रेम इस प्रकार भूत-दया-प्रवाह बनकर बह निकला। मातृ-पितृ-भक्ति भगवत्-भक्ति हुई और भगवत्-भक्ति भूत-दयाकी सकल सन्तापहारिणी जड-जीव-उद्धारिणी भागीरथी बनी। तुकारामका सम्पूर्ण चरित इस प्रकार प्रेमके ही प्रवाहका इतिहास है। उनके हृदयमें पहले आत्मोद्धारकी भावना जाग उठी, वही भावना कृतकार्य होकर भूतदयासे द्रवीभूत हो प्रवाहित हुई। सन्तोंके हृदयकी मृदुता अनुपमेय है। वह मृदुता फूलोंमें नहीं, चन्द्रकी चाँदनीमें नहीं, नवनीतमें नहीं, कहीं भी नहीं, केवल जहाँकी तहाँ ही प्रेमकलारूपिणी है। समत्वकी अखण्ड समाधि लगाये हुए प्रेमयोगी अन्तमें उसी प्रेममें घुलकर उसीमें मिल जाते हैं। भूतदयासे द्रवित होकर जो उपदेश-वचन

उनके श्रीमुखसे निकले उनकी लौकिकी भाषामें कहीं-कहीं कठोर शब्द भी आये हैं। पर ऐसे प्रत्येक कठोर शब्दके आगे-पीछे प्रेम-ही-प्रेम है। इस कारण भले-बुरे सभी जीवोंके कानोंमें पड़कर ये शब्द आनन्दकी गुदगुदी ही पैदा करते हैं। श्रीतुकारामजीके सम्पूर्ण चरित्रमें यह जो दिव्य प्रेम ओतप्रोतरूपसे भरा हुआ है वही प्रेम उनकी आयुके १७ वें वर्षतक उनसे उनके माता-पिताको प्राप्त हुआ। 'विठामाई' को सम्बोधन कर जो अभंग उन्होंने रचे हैं उनमें दृष्टान्तरूपसे मातृ-प्रेमका अत्यन्त रसपूर्ण और अनुभव-युक्त वर्णन है। इससे यह ज्ञात होता है कि तुकारामजीको मातृ-स्नेहका अत्युत्तम सुख मिल चुका था। मातृ-प्रेम-वर्णनके कुछ अभंगोंका आशय नीचे देते हैं।—

'मातासे बच्चेको यह नहीं कहना पड़ता कि तुम मुझे सँभालो। माता तो स्वभावसे ही उसे अपनी छातीसे लगाये रहती है। इसलिये मैं भी सोच-विचार क्यों करूँ? जिसके सिर जो भार है वह तो है ही। बिना माँगे ही माँ बच्चेको खिलाती है और बच्चा जितना भी खाय, खिलानेसे माता कभी नहीं अघाती। खेल खेलनेमें बच्चा भूला रहे तो भी माता उसे नहीं भुलाती, बरबस पकड़कर उसे छातीसे चिपटा लेती और स्तन-पान कराती है। बच्चेको कोई पीड़ा हो तो माता भाड़की लाई-सी विकल हो उठती है। अपनी देहकी सुध भुला देती है और बच्चेपर कोई चोट नहीं आने देती। इसीलिये मैं भी क्यों सोच-विचार करूँ? जिसके सिर जो भार है वह तो है ही।'

*　　　*　　　*

'बच्चेको उठाकर छातीसे लगा लेना ही माताका सबसे बड़ा सुख है। माता उसके हाथमें गुड़िया देती और उसके कौतुक देख अपने जीको ठण्डा करती है। उसे आभूषण पहनाती और उसकी शोभा देख परम प्रसन्न होती है। उसे अपनी गोदमें उठा लेती और टकटकी लगाये उसका मुँह निहारती है। फिर इस भय-से कि बच्चेको कहीं नजर न लग जाय, चटसे उठाकर गलेसे लगा उसका मुँह छिपा लेती है। तुका कहता है, कहाँतक कहूँ ऐसे कितने लाभ हैं; प्रत्येक लाभ श्रीपद्मनाभका ही स्मरण कराता है।'

* * *

'वह मातृप्रेमकी विह्वलता, वह हृदय कुछ और ही है। दुश्चित्त होनेसे धीरज नहीं रहता, यह दूसरी बात है; पर सच्ची बात तो यही है कि माता बच्चेको बहुत नहीं रोने देती।'

* * *

'मातृ-स्तनमें मुँह लगते ही माता पनहाने लगती है। तब दोनों ही लाड़ लड़ाते हुए एक दूसरेकी इच्छा पूरी करते हैं। अंग-से अंगके मिलते ही प्रेमरंग गाढ़ा होता है। तुका कहता है सारा भार माताके ही सिर है।'

* * *

'माताके चित्तमें बालक ही भरा रहता है। उसे अपनी देह-की सुध नहीं रहती; बच्चेको जहाँ उसने उठा लिया वहीं सारी थकावट उसकी दूर हो जाती है।'

* * *

'बच्चेकी अटपटी बातें माताको अच्छी लगती हैं, चट उसे वह अपनी छातीसे लगा लेती और स्तनपान कराती है । इसी प्रकार, भगवान्‌का जो प्रेमी है उसका सभी कुछ भगवान्‌को प्यारा लगता है और भगवान् उसकी सब मनोकामनाएँ पूर्ण करते हैं ।'

*　　　*　　　*

'गाय जङ्गलमें चरने जाती है पर चित्त उसका गोठमें बँधे बछड़ेपर ही रहता है । मैया मेरी ! मुझे भी ऐसा ही बना ले, अपने चरणोंमें ठाँव देकर रख ले ।'

*　　　*　　　*

मेरी विठा प्यारी माई । प्रेम सुधा पनहाई ॥१॥
स्तन मुख दे रिझाती । न कभी दूर जाने देती ॥ध्रु०॥
जो माँगा हाथ आया । दयामूर्ति मेरी मैया ॥२॥
तुका कहे ग्रास । मुख दे सो ब्रह्मरस ॥३॥

*　　　*　　　*

इस प्रकार अनेक अवतरण दिये जा सकते हैं, परन्तु यहाँ इतने ही पर्याप्त हैं ।

६ दुःखके पहाड़

अस्तु, संसारभार सिरपर उठानेके पश्चात् प्रथम चार वर्ष बड़े सुखसे बीते । पर भगवान्‌की इच्छा तो यह थी कि तुकाराम संसारबन्धनसे मुक्त होकर लोकोद्धारका कार्य करें । इसलिये अब उनपर एक-से-एक बड़े संकट आने लगे । इन दुःसह संकटोंका फल यह हुआ कि उनके संसार-विषयक सब स्नेह-बन्धन ही कट गये । उनकी आयु अभी १७ वर्ष ही थी जब उनके माता-पिता

इहलोक छोड़ गये और बड़े भाई सावजीकी स्त्रीका भी देहान्त हुआ। इससे वह बहुत ही दुखी हुए। इसके बाद दूसरे ही वर्ष सावजी तीर्थयात्राको चले गये। सावजी शुरूसे ही विरक्त थे, फिर स्त्रीके देहान्तसे और भी विरक्त हो गये। उनकी आयु इस समय बहुत नहीं थी, अधिक-से-अधिक बीसके लगभग रही होगी। तथापि दूसरा विवाह करके फिरसे गृहस्थी जमानेका लतखोरपना उन्हें नहीं सूझा। उन्हें सूझा यह कि जो होना था सो सब हो चुका, अब शेष जीवन हरिभजनमें ही आनन्दसे बिताना चाहिये। यह सोचकर वह तीर्थयात्रा करने चले गये। सप्तपुरी, द्वादश ज्योतिर्लिंग तथा पुष्करादि तीर्थोंकी यात्रा करते हुए वह काशी पहुँचे और वहीं सत्संग और आत्मचिन्तनमें उन्होंने अपना शेष जीवन लगा दिया। इधर तुकाराम भाईके वियोगसे और भी अधिक कष्ट अनुभव करने लगे। माता-पिता स्वर्ग सिधारे, भाई घर छोड़कर चले गये, इससे उन्हें भी प्रपञ्चभार दुःसह होने लगा। घर-गिरस्तीका सब काम देखते थे, पर उसमें उनका मन नहीं लगता था। उनकी इस उदासीनतासे लाभ उठाकर, जो उनके कर्जदार थे वे नादीहन्द हो गये और जो पावनेदार थे वे तकाजा करने लगे। पैतृकसम्पत्ति अस्त-व्यस्त हो गयी। परिवार बड़ा था, दो स्त्रियाँ थीं, एक बच्चा था, छोटा भाई था, बहनें थीं। इतने प्राणियोंको कमाकर खिलानेवाले अकेले तुकाराम थे जिनका मन अब इस प्रपञ्चसे भागना चाहता था। पर घरके लोगोंके अन्न-वस्त्रका ठिकाना करनेके लिये उन्होंने बीच बाजारमें बनियेकी एक दूकान खोल रक्खी थी। इस दूकानपर वह बैठते थे, मुँहसे 'विट्ठल, विट्ठल' नाम जपते थे, कभी झूठ नहीं

बोलते थे, व्यापारमें कभी खोटाई नहीं करते थे, ग्राहकोंको भी दया-दृष्टिसे देखते और मुक्तहस्त होकर माल तौल देते थे, दाम किसी-ने यदि नहीं दिया तो इन्हें भी दामकी कोई परवा नहीं थी। कभी दामका नहीं, सदा रामका नाम लिया करते थे। इस प्रकार चार वर्ष बीते। पर इस ढंगसे दूकान काहेको चलती? दूकानसे कुछ लाभ होनेके बदले नुकसान ही हुआ और यह दूसरोंके कर्जदार बन गये। रात-दिन मेहनत करके भी कुछ हाथ न आता और साहूकार अपने पावनेके लिये छातीपर सवार! आखिर घरपर कुर्की आयी! घरमें जो कुछ चीज-बस्त थी वह बेंची गयी। दिवाला निकलनेकी नौबत आयी। एक बार आत्मीयोंने सहायता करके बात रख दी। दो-एक बार ससुरने भी सहायता की। पर उखड़े पैर फिर जमे नहीं। पारिवारिक स्नेह-सौख्य भी कुछ नहींके बराबर था। पहली स्त्री तो बहुत सीधी थीं, पर दूसरी जिजाबाई बड़ी कर्कशा! रात-दिन किचकिच लगाये रहती थीं। इन कर्कशाके कारण तुकारामको, उन्हींके शब्दोंमें, बड़ा दुःख उठाना पड़ा, बड़ी फजीहत हुई। वह रात-दिन मेहनत करके भी कंगाल ही बने रहे। बड़े दुःखसे कहते हैं कि, 'इहलोक बना न परलोक'— माया मिली न राम! भवताप अब तुकारामके लिये असह्य हो उठा! घर कर्कशा! बाहर पावनेदारोंका तकाजा! कहीं भी चैन नही! जो भी काम करते उसमें अपयशके ही भागी होते। एक बार रातके समय बैलपर अनाज लादे आ रहे थे तो रास्तेमें एक बोरा गिर गया। घरमें चार बैल थे, तीन किसी रोगसे अकस्मात् मर गये। जो संकट टालनेके लिये वह इतने व्यस्त और व्यग्र

रहते थे, वह भी आखिर उपस्थित हुआ। दिवाला निकलनेका जो भय था वह सच होकर ही रहा। तब तो गाँवके लुच्चे-लफंगे लोग उन्हें और भी सताने लगे। उन्हें देखकर कहते, 'लो भगवान्‌का नाम! हरिनामने तुम्हें निहाल कर दिया!' यह कहकर तुकाराम-को नीचा दिखानेका यत्न करते! गाँवमें कोई ऐसा न रह गया जो उनका हित चाहता। एक पैसा भी कहींसे उधार या कर्ज न मिलता। बड़ा साहस करके तुकारामने एक बार मिर्चा खरीद किया और बोरोंमें भरकर कोंकण गये। वहाँ इनकी सिधाई देख-कर ठगोंने इन्हें खूब ठगा! ईश्वरकी दयासे कुछ पैसे वसूल भी हुए तो लौटते हुए रास्तेमें एक आदमी मिला जिसने सोनेके मुलम्मे दिये हुए पीतलके कड़े सोनेके बताकर इनके हाथ बेंचे। जो कुछ इनके पास था, सब लेकर वह चलता बना। जब तुका अपने गाँवमें पहुँचे तब परख हुई और पता लगा कि ये कड़े तो पीतलके हैं! लोगोंने बेवकूफ बनाया और घरमें घरवालीने भी खूब खबर ली। इस तरह गाँठके दाम भी निकल गये और ऊपरसे दक्षिणामें जगहँसाई मिली। फिर भी एक बार और जिजाबाईने अपने नामसे रुक्का लिखा और तुकाजीको दो सौ रुपया दिलाया। इस रुपयेसे इन्होंने नमक खरीदा और बेचनेके लिये परदेश गये। नमक बेंचा और दो सौके इन्होंने ढाई सौ तो बना लिये। पर लौटते हुए रास्तेमें एक दरिद्र ब्राह्मण मिला। उसने अपना सब दुःख इनके आगे रोया। इन्हें दया आ गयी और ढाई सौ जो कमा लाये थे सो उस ब्राह्मणको देकर निश्चिन्त हुए। फिर घर लौटे खाली हाथ! घरवालीके दुःख और अचरजका क्या पूछना है!

उसने इनकी शब्दसुमनोंसे यथेष्ट पूजा की ! इसी समय पूना-प्रान्त-में भयंकर अकाल पड़ा ! अन्नके बिना हाहाकार मचा ! बड़ा ही भीषण अवर्षण रहा ! एक बूँद पानी नहीं ! पानी बिना जानके लाले पड़ गये ! काँटा-कोयर बिना बैल मरे ! सहस्रों मनुष्य भूखों मर गये ! तुकारामकी ज्येष्ठा पत्नी भी इसीमें होम हुई ! तुकाराम-जीकी कोई साख न रह गयी ! घरमें एक दाना भी अन्न नहीं रहा ! किसीके दरवाजे जाते भी तो कोई खड़ा न होने देता ! बाजारमें एक सेरका अन्न बिका ! अन्नके बिना स्त्री मरी ! इस दुर्घटनाकी ऐसी ठेस उनके मर्मपर लगी कि जो कभी भूलनेकी नहीं ! स्त्रीके पीछे उनका पहला लाड़ला बेटा भी चल बसा ! दुःख और शोककी सीमा और क्या होगी ? माता-पिताके स्वर्ग सिधारनेके बाद चार ही पाँच वर्षके भीतर तुकारामजीकी घर-गिरस्ती धूलमें मिल गयी ! सारी सम्पत्ति, गाय-बैल, स्त्री-पुत्र, इज्जत-आबरू सबपर पानी फिरा ! दुःख और शोकका मानो महासमुद्र ही उमड़ पड़ा ! प्रपञ्च-दुःखोंके अति दुःसह वृश्चिक-दंशोंसे कलेजा फट गया ! धरती आग बन-कर दहक-दहक जलने लगी । आकाश फट पड़ा । प्रपञ्च मानो प्रलय हो गया !

७ वैराग्यबीजारोपण

संसार, सच कहिये तो, दुःखोंका ही घर है । जन्म-मरणके महादुःखोंके बीचमें घूमनेवाले इस संसारमें जो भी आया वह दुःखोंका मेहमान हुआ । संसार दुःखरूप है, यही तो शास्त्रका सिद्धान्त है और यही जीवमात्रका अन्तिम अनुभव है । तुकाराम संसारमें चार वर्ष किसी प्रकार सुखसे रहे तो इतनेमें ही द्रव्यहानि,

मानहानि, अकाल और प्रियजनवियोगकी एक-से-एक बढ़कर विपदा उनपर टूट पड़ी और उससे संसारका भयानक स्वरूप उनके सामने प्रकट हुआ। सांसारिक दुःखोंके इन आघातोंसे संसारकी दुःखमयता उन्हें स्पष्ट दिखायी दी और उनका चित्त ऐसे संसारसे उचट गया। प्रथम पत्नीसे उनका बड़ा स्नेह था, वह उनकी आँखोंके सामने अन्नके बिना हा-हा करती हुई कालका ग्रास बन गयी! और उनके प्रेमका प्रथम पुष्प—बालक सन्ताजी—देखते-देखते मुरझा गया। माता, पिता, भावज, स्त्री, पुत्र सभी काल-कवलित हो गये और कराल कालके सभी दुःख एकबारगी ही सिरपर टूट पड़े; इससे उनके अन्तःकरणको बड़ा भारी धक्का लगा। उनका चित्त उदास हो गया। ऐसे समय यदि उनकी द्वितीया पत्नी जिजाईका स्वभाव अच्छा होता तो वह पतिको सान्त्वना देकर प्रेमसे उनके चित्तको हरा-भरा कर देती, उनके मनका अनुगमन कर संसारसे पंछीकी तरह उड़ जानेवाले उनके मनको मञ्जुभाषणसे और प्रेमालापसे फिर संसारमें बाँध रखनेका यत्न करती! पर इन सब कल्पनाओंसे क्या आता-जाता है? भगवत्-संकल्पके अनुसार ही सृष्टिके सब व्यापार हुआ करते हैं। सामान्य जीव सांसारिक दुःखोंकी चक्कीमें पीस दिये जाते हैं, पर वे ही दुःख भाग्यवान् पुरुषोंके उद्धारका कारण बनते हैं। भगवान् श्रीरामचन्द्रके दादा राजा अजकी युवती प्रेयसी स्त्री इसी प्रकार अकाल ही चल बसी! उस समय उन्होंने जो शोक किया है उसका वर्णन कविकुलतिलक कालिदासने (रघुवंश सर्ग ८) किया है। अजने कहा, 'मेरा धैर्य अस्त हो गया, सारे सुख-विलास समाप्त हो गये,

वसन्तादि ऋतु श्रीहीन हो गये, गान बन्द हो गये, इन आभूषणोंका अब क्या प्रयोजन रहा ? घर तो मेरा शून्य हो गया। प्रिये ! तुम तो मेरी गृहस्वामिनी थीं, मन्त्रणा देनेवाली सचिव थीं, एकान्तमें प्रेमालापसे रिझानेवाली सखी थीं, ललित कलाएँ मुझसे लेनेवाली प्रिया शिष्या थीं। और मृत्यु मुझसे तुम्हें हर ले गया ! अरे ! मेरा सर्वस्व लूट ले गया ! तुम्हें ले जाकर उसने मुझे राहका भिखारी बना दिया !' अज थे बड़े विलासी राजा और उनका वर्णन करनेवाले भी कोई ऐरे-गैरे नहीं, स्वयं कविमुकुटमणि कालिदास हैं !. तथापि ऐसा ही शोक-सन्ताप प्रिय पत्नीके वियोगपर प्रत्येक वियोगी पतिको अवश्य ही होता होगा, इसमें सन्देह नहीं। पर सच पूछिये तो संसारमें सच्चा प्रेम है कहाँ ? यदि हो तो क्वचित् ही है ! सच्चा पत्नी-प्रेम जहाँ है वहाँ द्वितीय विवाह कैसा ? द्वितीय विवाहकी कल्पनातक उसके पास नहीं फटक सकती। सच्चा प्रेम कभी मरता नहीं, काल भी उसे नहीं मार सकता। थोड़ी देरके लिये तो सभी विरही रो पड़ते हैं। ऐसे प्रेमी तो बहुतेरे हैं जो मृत पत्नीको याद कर-करके आँखोंसे आँसू बहाते जाते हैं और हाथोंसे द्वितीय सम्बन्धकी चिन्तासे अपनी जन्म-पत्री भी ढूँढ़ा करते हैं। इधर विरह-दुःखकी कविता करते हैं और उधर द्वितीय सम्बन्धके सामान जुटाते जाते हैं। ऐसे नामके प्रेमियोंका 'प्रेम' प्रेम थोड़े ही है ! क्षुद्र कामको प्रेमका मधुर नाम देकर ये लोगोंकी आँखोंमें धूल झोंका करते हैं। प्रेम तो निष्काम—निर्विषय ही होता है और उसका एकमात्र भाजन परमात्मा है। ऐसा प्रेम भक्तोंके ही भाग्यमें होता है। भक्तोंमें सच्चाई होती है। वैराग्यके अञ्जनसे जब

आँखें खुल जाती हैं तब नश्वर संसारके भेद-भावोंमें बँटा हुआ प्रेम वे निग्रहसे बटोरकर एक करके एक परमात्माको ही अर्पण कर देते हैं। 'प्रेमामृतकी धारा भगवान्‌के सम्मुख प्रवाहित करते हैं।' अजको सान्त्वना देते हुए मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ कहते हैं—

अवगच्छति मूढचेतनः प्रियनाशं हृदि शल्यमर्पितम्।
स्थिरधीस्तु तदेव मन्यते कुशलद्वारतया समुद्धृतम्॥

अर्थात् 'मोहसे जिसका ज्ञान ढका हुआ है वह प्रिय वस्तुका वियोग होनेको, हृदयमें काँटा चुभा समझता है, पर जो धीर है वह उसे, कल्याणका द्वार खुला समझता है।' महर्षिके इस बोध-वचनका बोध महात्माओंके चित्तमें सहज-सा ही उदय होता है। देवर्षि नारदकी माता उन्हें बचपनमें ही छोड़ गयीं। तब उन देवर्षिके हृदयमें ऐसा ही दिव्य भाव उठा। उन्होंने कहा—

तदा तदहमीशस्य भक्तानां शमभीप्सतः।
अनुग्रहं मन्यमानः प्रातिष्ठं दिशमुत्तराम्॥

(श्रीमद्भागवत १।६।१०)

'भक्तोंका कल्याण चाहनेवाले भगवान्‌ने मुझपर यह बड़ा अनुग्रह किया, यह मानकर मैं उत्तरकी ओर चला।' तुकारामजी भी नारदजीकी ही श्रेणीके पुरुष थे। उन्होंने भी इस महादुःखमें अपनी अलौकिक स्थितप्रज्ञता प्रकट की। दुःख कल्याणका द्वार है। जगद्गुरु परमात्मा हमें सीख देनेके लिये अनेकविध सुख-दुःखोंमेंसे ले जाकर सज्ञानताके पाठ पढ़ाते हैं। उन पाठोंको हृदयङ्गम न करके हम अज्ञानी मूढ़ जन उद्दण्ड बालकोंकी तरह उन्हें भुला देते हैं और निर्लज्ज होकर बार-बार उनके हाथकी

मार खाते हैं। पर जो लोग पुण्यात्मा होते हैं वे इन विविध प्रसङ्गोंसे भगवान्‌का मन पहचानते हैं और अधिकाधिक ज्ञानसे लाभवान् होते हैं। उन्हें यह दृढ़ विश्वास होता है कि सर्वज्ञ भगवान् जो कुछ करते हैं, उसीमें हमारा हित है। यह शमसुख देनेवाला निर्मल तत्त्व वे अपने हृदयसे लगाये रहते हैं और इस कारण महान् संकटोंमें भी निष्कम्प रहते हैं। आँधीसे वृक्ष उखड़ जाते हैं पर पर्वत स्थिर रहते हैं। सामान्य जीव और महात्माओंके बीच यही तो बड़ा भारी अन्तर है। विपत्तिमें वीरोंका ताव और भी बढ़ता है, ऐसे ही भक्तोंकी निष्ठा और भी दृढ़ होती है। तुकारामजीपर जो संकटके पहाड़ टूटे और अकालके कारण बात-की-बातमें सहस्रों मनुष्योंके मर जानेका जो भीषण दृश्य उनके नेत्रोंके सामने उपस्थित हुआ उससे उन्होंने यह जाना—बहुत ही अच्छी तरहसे जाना कि यह मृत्युलोक क्या है और कैसा है और यहाँ रहकर क्या होता है ? इससे उनके हृदयमें वैराग्य उत्पन्न हुआ और यह निश्चय हो गया कि इस भवसागरके पार उतारनेवाला पाण्डुरङ्गके सिवा और कोई नहीं है। इस समय उनके मनकी अवस्था उन्हींके शब्दोंसे जानिये—

(१)

'पिता मेरे अनजानते ही स्वर्ग सिधारे। उस समय संसारकी कोई चिन्ता न थी। अस्तु, हे विट्ठल भगवान् ! तेरा-मेरा राज है, इसमें दूसरेका कोई काज नहीं। स्त्री मरी, अच्छा हुआ, मुक्त हो गयी, मायासे छूटी। बच्चा चल बसा, यह भी अच्छा ही हुआ,

भगवान्‌ने मायासे छुड़ाया। माता, मेरे देखते, चली गयी; तुका कहता है, चलो, हरिने चिन्ता हर ली।'

(२)

'अच्छा हुआ, भगवन्! दिवाला निकला! दुर्भिक्षने ग्रासा सो भी अच्छा ही किया। अनुताप होनेसे तेरा चिन्तन तो बना रहा और संसार वमन हो गया। स्त्री मरी, सो भी अच्छा ही हुआ और यह जो दुर्दशा भोग रहा हूँ, सो भी अच्छा ही है। संसारमें अपमानित हुआ, यह भी अच्छा ही हुआ। गाय, बैल और द्रव्यादिक सब चला गया, यह भी अच्छा ही हुआ। लोक-लाज नहीं रही सो भी अच्छा हुआ और यह (तो बहुत ही) अच्छा हुआ जो मैं, भगवन्! तेरी शरणमें आ गया।'

* * *

(३)

'भगवान् भक्तको गृहप्रपञ्च करने ही नहीं देते, सब झंझटोंसे अलग रखते हैं। उसे यदि वैभवशाली बनावें तो गर्व उसे घर दबावेगा। गुणवती स्त्री यदि उसे दें तो उसीमें उसकी आशा लगी रहेगी। इसलिये कर्कशा उसके पीछे लगा देते हैं। तुका कहता है, यह सब तो मैंने प्रत्यक्ष देख लिया। अब और इन लोगोंसे क्या कहूँ?'

(४)

'इस कुटुम्ब-परिवारकी सेवा करते-करते, संसारके तापसे मैं दग्ध हो चला। इससे हे पाण्डुरङ्ग-माते! तेरे चरण स्मरण हुए। अनेक जन्मोंका बोझ ढोता चला आया हूँ, इससे छूटनेका

मर्म अभीतक नहीं जान पड़ा । अन्दर-बाहर सब तरफसे चोरोंने घेर रखा है, पर इस हालतमें भी कोई मुझपर दया नहीं करता । बहुत मारा-मारा फिरा, बहुत लुट गया, अब तड़पते ही दिन बीत रहे हैं । तुका कहता है जल्दी दौड़े आओ । हे दीनानाथ ! संसारमें अपना विरद रखो ।'

(५)

'पञ्चमहाभूतोंके बीचमें आकर फँसा हूँ, अहंकारकी कैदमें पड़ा हूँ । अपना गला आप ही फँसा रखा है, निराला होकर भी निरालापन नहीं जान पाता हूँ । संसारको मैंने सत्य क्यों मान लिया ? 'मेरा मेरा' क्यों पुकारता फिरा ? नारायणकी शरणमें क्यों नहीं गया ? क्यों नहीं वासनाको रोका ? तुका कहता है अब इस देहको बलि चढ़ाकर सञ्चितको जला डालूँगा ।'

इनमें पहले अवतरणसे यह मालूम होता है कि तुकारामजी जब छोटे थे तभी उनके पिताका स्वर्गवास हुआ और पीछे दुर्भिक्षमें उनकी स्त्री रखुमाई, प्रथम पुत्र सन्ताजी और अन्तमें उनकी माता कनकाईकी मृत्यु हुई । जब कुछ 'जाना-सुना नहीं था, तब पिता मरे अर्थात् अकस्मात् उनकी मृत्यु हुई अथवा मैं जब अबोध था तब मरे या तुकाराम कहीं किसी कामसे गये हुए थे, तब उनकी मृत्यु हुई याने मरते समय पितासे मिल न सके ।' इनमेंसे कोई भी बात हो सकती है जिसका निश्चय नहीं किया जा सकता । जो कुछ हो, पर माँ-बाप और स्त्री-पुत्रके मरनेपर भी इस धीर पुरुषके मुखसे यही उद्गार निकलता है कि 'हे विट्ठल ! तेरा-मेरा राज है । इसमें औरोंका क्या काज ?' इस प्रकार ऐसे

महद्दु:खसे भी उन्होंने यही सन्तोष पाया कि अब भजनानन्दमें कोई बाधा न रही ! दिवाला निकला, दुर्भिक्षने पीड़ा पहुँचायी। कर्कशा स्त्रीसे साबका पड़ा, अपमान हुआ, धन गया, बैल मरे, लोकलाज छोड़कर भगवान्‌की शरण ली—यह सब कहते हैं कि 'अच्छा हुआ'; क्योंकि 'संसार कै होकर निकल गया, अनुतापसे अब तुम्हारा चिन्तनभर रह गया।' इन सांसारिक दुःखोंके कारण संसारसे जी ऊब गया, चित्त उससे हट गया और अनुतापसे शुद्ध होकर चित्त भगवान्‌का ही चिन्तन करने लगा, यही दूसरे अवतरणका अभिप्राय है।

निःसार यह संसार। यहाँ सार भगवान॥

'निःसार है यह संसार, यहाँ सार (केवल) भगवान् हैं।'

संसार कालग्रस्त, नश्वर और दुःखरूप है; इसका सारा घटाटोप व्यर्थ है, भगवान् मिलें तो ही जन्म सफल है, यही तुकारामजीका दृढ़ विश्वास हो गया।

तुका कहे नाशवान है सकल।
स्मर ले गोपाल, सोई हित॥

'तुका कहता है, यह सब नाशवान् है; गोपालको स्मरण कर, वही हित है।'

* * *

सुख देखो तो जौ जितना। दुःख पहाड़ जितना॥

'सुख देखिये तो जौ बराबर है और दुःख पर्वतके बराबर।'

* * *

दुःखसे बँधा है यह संसार।
सुख देखो विचार, नहीं कहीं॥

'यह संसार दुःखसे बँधा है, इसमें सुखका विचार तो कहीं भी नहीं है।'

* * *

देह नाशवान् है, देह मृत्युकी धौंकनी है, संसार केवल दुःख-रूप है, सब भाई-बन्धु सुखके साथी हैं। इसलिये तुकारामजीका जी संसारसे हट गया और उन्हें अविनाशी अखण्ड सुखकी भूख लगी। यह मृत्युलोक अनित्य और असुख है, यहाँ आकर मुझे भजो–'अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्॥' यही तो भगवान्ने (गीता अ० ९। ३३) में स्वयं कहा है। भगवान्ने कहा है, शास्त्रोंने भी बताया है और सन्तोंने भी यही उपदेश किया है, तथापि यह सत्य ऐसा है कि सबको अपने-अपने अनुभवसे ही जानना होता है। इसे जाननेके लिये असंख्य जन्मोंके पुण्य-प्रतापसे मनोभूमिको तपाकर तैयार करना पड़ता है। विपत्तापसे तपकर जब भूमि तैयार होती है तभी उसमें उत्तम परमार्थ उपजता है। चौथे अवतरणमें तुकोबारायने यही बताया है। संसार-तापसे मैं तपा इसीसे भगवान्के चरणोंका स्मरण हुआ। इस जन्मके सब दुःख सामने आये, इसीसे पिछले सब जन्म याद आये। असंख्य जन्म ऐसे ही दुःखोंमें बीते, सुखके साथी अन्दरके और बाहरके सब चोर हैं, ये किसी काम आनेवाले नहीं। यही सोचकर अत्यन्त दीन होकर उन्होंने भगवान्के पैर पकड़े। चौथे अवतरणका यही सार-मर्म है। पर दूसरोंने मुझे ठगा, यह कहना तो ठीक नहीं; सच्ची बात यह है कि अहंकारने ही मेरा नाश किया, अहंवृत्तिके कारण ही मैंने संसार-को सत्य जाना और उसके फन्देमें अपने आपको फँसा लिया।

इतने असंख्य जन्म और इस जन्मके इतने वर्ष मैंने व्यर्थ ही गँवाये। अब यह शरीर भगवान्के चरणोंमें समर्पण कर दिया। यह पाँचवें अवतरणका अभिप्राय है, दिग्दर्शनके लिये ये पाँच ही अवतरण पर्याप्त हैं।

'यह अच्छा हुआ' इस अवतरणको देखिये। क्या अच्छा हुआ? संसार मिथ्या है—यह ज्ञात हुआ और 'आँखें खुलीं।' दुःखसे आँखें खुलती हैं तब दुःख ही अनुग्रह जान पड़ते हैं। संसारमें यदि सुख होता तो शुकादि उसे गिरि-कन्दराओंमें ढूँढ़ते न फिरते। खटमल-भरी खाटपर मीठी नींदका लगना जैसे असम्भव है वैसे ही अनित्य संसारके भरोसे सुख मिलना भी असम्भव है। ये विचार तुकोबा-रायके अभंगोंमें बारम्बार प्रकट हुए हैं। तुकारामजीको सच्चा अनुताप हुआ। और उनके अन्तःकरणमें वैराग्य भर गया। वैराग्य परमार्थकी नींव है। देहसहित सम्पूर्ण दृश्यमान संसारके नश्वरत्वकी मुद्रा जबतक चित्तपर अंकित नहीं हो जाती तबतक वहाँ ज्ञान नहीं ठहर सकता। ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं 'विरक्तिके बिना कहीं ज्ञान नहीं ठहरता।' (ज्ञानेश्वरी १५—३६)। यह तो सिद्धान्त ही है। पर ऐसा वैराग्य तभी होता है जब जीव संसार-से बिल्कुल ऊब जाता है। 'यह समस्त संसार अनित्य है, इस अनित्यताको जहाँ जान लिया तहाँ वैराग्य हाथ धोकर पीछे पड़ जाता है।' (ज्ञानेश्वरी १५—२९) ऐसा दृढ़तर वैराग्य उत्पन्न होना ही तो भगवान्की दया है। वैराग्य खेल नहीं, भगवान्की दया हो तो ही उसका लाभ हो। भगवान् जिसपर अनुग्रह करना चाहते

हैं उसे वह पहले वैराग्य-दान करते हैं। ऐसा परम शुद्ध वैराग्य तुकारामजीको प्राप्त हुआ और वहाँसे परमार्थ आरम्भ हुआ।

८ कनक-पाशसे मुक्त

वैराग्यके साथ चित्तवृत्तियोंकी शुद्धिके लिये उन्होंने एकान्त-वास आरम्भ किया। पहले भामनाथके पर्वतपर गये और पन्द्रह दिन रहे। यहाँ उन्होंने भगवान्‌का नाम-स्मरण और ध्यान किया। इधर तुकारामके घरसे चल देनेकी बात फैल गयी और जिजाबाई भी विकल हुईं। जिजाबाईका मिजाज बड़ा तेज था, पर थीं वह मैया बड़ी पतिव्रता। तुकारामजीके बिना उन्हें एक क्षण भी कल न पड़ती। उन्होंने तुकारामके छोटे भाई कान्हजीको उन्हें ढूँढ़ने भेजा। कान्हजी घूमते-घूमते भामनाथ-पर्वतपर पहुँचे। वहाँ तुकारामजी मिले। कान्हजी आग्रहपूर्वक उन्हें घर लिवा लाये। उन्हें देखकर जिजाबाईको बड़ा हर्ष हुआ। पिताके समयसे जिन-जिन लोगोंके यहाँ तुकारामजीका पावना था उन सबके रुक्के तुकारामजीने बाहर निकलवाये और उन्हें ले जाकर वे इन्द्रायणीके दहमें डालने लगे। तब कान्हजीने बड़ी नम्रतासे कहा, 'आप तो साधु हो गये पर मुझे बाल-बच्चोंका पालन करना है; यह इतना रुपया यदि आप इस तरह डुबा देंगे तो मेरा काम कैसे चलेगा?' यह सुनकर तुकारामजीने उत्तर दिया, 'ठीक है इनमेंसे आधे रुक्के तुम ले लो और अलग हो जाओ, अपनी गृहस्थी चलाओ। हमारा सब भार श्रीविट्ठलभगवान्‌पर है, अब मेरा यही जीवन-क्रम निश्चित हो चुका है। मध्याह्न अन्न पाण्डुरंग ही चलावेंगे। हाँ, तुम्हारी हानि न हो, इतना तो मुझे देखना होगा। इसलिये तुम अपना हिस्सा

लेकर अलग हो जाओ। हमारी चिन्ता मत करो।' इस तरह तुकारामजीने आधे रुक्के कान्हजीके हवाले किये और बाकी आधे उसी क्षण इन्द्रायणीको अर्पण कर दिये! इन रुक्कोंको दहमें डाल देनेका कारण महीपतिबाबा मार्मिकताके साथ बतलाते हैं—

'अनुभव न हो तो पुस्तकी ज्ञान व्यर्थ है। वैसे ही दूसरोंके हाथमें जो धन है वह भी व्यर्थ है, उससे मन दुश्चित्त ही रहता है। यही चिन्ता और दुराशा जीको लगी रहती है कि अमुक-की ओर इतना पावना है पर वह देगा या नहीं देगा, न जाने, क्या होगा! इसलिये, इन्द्रायणीके दहमें सब कागज-पत्र उन्होंने स्वयं ही डाल दिये।'

तुकारामजीने अपनी चित्तवृत्ति पाण्डुरङ्गको अर्पण कर दी। इस वृत्तिको पीछेसे खींचनेवाली दुष्ट दुराशा वह नहीं चाहते थे। ऋणका अनुभव तो उन्हें पूरा मिल ही चुका था। कहते हैं—

'ऋणके भारसे शरीर जड हो गया, संसारने (खूब) तड़पाया।' अब लेन-देनके बखेड़ेसे सदाके लिये मुक्त होकर निर्बंध निर्विघ्न हरिभजनमें लग जानेके लिये उन्होंने सब रुक्के इन्द्रायणीके दहमें डाल दिये। इसके बाद उन्होंने द्रव्यको स्पर्श नहीं किया। दरिद्रताके सब कष्ट सह लिये, भिक्षा माँग-कर भी गुजर किया, पर द्रव्य-स्पर्श कदापि न करनेका निश्चय करके वह धनपाशसे सदाके लिये मुक्त हो गये।

९ एकान्तवास और यात्रा

तुकारामजीकी दिनचर्या कुछ कालतक इस प्रकार थी, प्रातःकाल प्रातर्विधिसे निवृत्त होकर श्रीविट्ठलभगवान्‌के मन्दिर-

में जाते, पूजा-पाठ करते और फिर इन्द्रायणीके उस पार जाकर कभी भामनाथ तो कभी भण्डारा और कभी गोराडाके पर्वतपर पहुँचकर वहाँ ज्ञानेश्वरी या नाथभागवतका पारायण करते और फिर दिनभर नाम-स्मरण करते रहते। सन्ध्या होनेपर गाँवको लौटते, मन्दिरमें जाकर कीर्तन सुनने और पीछे स्वयं कीर्तन करनेमें आधी रात बिता देते, पश्चात् उत्तर-रात्रिमें थोड़ा सो लेते थे। इस प्रकार विरक्तकी स्थितिमें रहकर उन्होंने भूख-प्यास जीत ली, निद्रा और आलस्य दोनों गये, युक्ताहारविहार होनेसे पूर्ण इन्द्रिय-विजय हुआ। यह सब अवश्य ही धीरे-धीरे हुआ। सद्ग्रन्थ-सेवन, नाम-स्मरण, कीर्तन और ध्यान-धारणादिकोंके अभ्यासमें ही उनका सारा समय बीतता था। उन्होंने तीर्थ-यात्राएँ बहुत-सी नहीं कीं। आषाढ़ी-कार्तिकी वारी परम्परासे ही होती चली आयी थी। सो उन्होंने भी अन्ततक चलायी। आलन्दीक्षेत्र पास ही चार कोसपर है और ज्ञानेश्वर-माउली (मैया) पर उनकी निष्ठा भी असीम थी, इससे आलन्दी वह बार-बार जाते थे। निवृत्तिनाथकी समाधि त्र्यम्बकेश्वरमें है और चांगदेवकी समाधि पुणतांबेमें है। एकनाथ महाराजका पैठणक्षेत्र तो प्रसिद्ध ही है। ये तीनों क्षेत्र गोदातीरपर हैं। इसलिये वारकरियोंके मेलेके साथ तुकारामजी भी इन क्षेत्रोंमें हो आये थे। एक अभंगमें गोदातीरके विषयमें उनका यह उद्गार है कि 'निर्मल गोदातटपर बड़े सुखसे दिन बीतता है।' काशी, गया और द्वारका देखनेकी बात उन्होंने एक जगह लिखी है।

वाराणसी देखी गया द्वारका भी।
बात पंढरी की तुका और॥

'वाराणसी, गया और द्वारका देखी, पर ये पण्ढरीकी बराबरी नहीं कर सकतीं।' उनका एक अभंग है, 'तारूँ लागले बंदरीं' (जहाज बन्दरमें लगा)। इससे मालूम होता है, उन्होंने जहाज-से द्वारकाकी यात्रा की थी। अस्तु, यह यात्रा उन्होंने संवत् १६८८-८९ में की होगी। वैराग्य होनेके पश्चात् दो-एक वर्षके भीतर ही काशी-द्वारका आदि तीर्थ-स्थानोंमें हो आये होंगे। अस्तु, इस प्रकार संसारका अनुभव प्राप्त करके उसकी निःसारताको अच्छी तरह जानकर तुकारामजी परमार्थके अनुगामी बने। परमार्थ प्राप्त करनेके लिये उन्होंने जो उपाय किये और उन्हें जो सिद्धि प्राप्त हुई उसका समीक्षण दूसरे खण्ड-में विस्तारके साथ करेंगे।

मध्य खण्ड

अर्थात्

उपासना-काण्ड

चौथा अध्याय

आत्मचरित्र

अतः जो सुहृद् और शुद्धमति हैं, अनिन्दक और अनन्यगति हैं उनसे गुप्त-से-गुप्त बात भी सुखसे कहे ।

—ज्ञानेश्वरी अ० ९—४०

१ सन्त-चरित्र-श्रवण

कोई महान् पुरुष सामने आता है तो हर किसीको यह जाननेकी इच्छा होती है कि यह महान् कैसे हुआ, किस मार्गपर यह कैसे चला, कौन-कौनसे गुण इसने प्राप्त किये और उनका कैसे उत्कर्ष किया, इत्यादि, यह जिज्ञासा सात्त्विक होती है। कारण, इस जिज्ञासाके भीतर एक निर्मल भाव छिपा रहता है । वह यह कि हम भी इसका अनुसरण कर सकें । किसी सत्पुरुषके जब हम दर्शन करते हैं या उनका गुणगान सुनते हैं तब यही इच्छा होती है कि हम भी इनके गुणोंको जानें और जिस मार्गपर चलकर इन्होंने यह महत् पद लाभ किया उस मार्गपर हम भी चलें । महत् पद-लाभ हँसी-खेल नहीं है । महान् पुरुष उसके लिये जो-जो कष्ट उठाये रहते हैं उन कष्टोंको सह लेनेकी सामर्थ्य और पुण्य सबके भाग्यमें नहीं होता । इसलिये जिज्ञासा तृप्त होनेपर भी सब लोग महान् पुरुषोंका अनुकरण नहीं कर सकते । बात समझमें आ जाती है पर करते नहीं बनती । फिर भी समझना

तो आवश्यक होता ही है । वेदशास्त्रोंमें ब्रह्मनिष्ठ पुरुषोंके अनेक गुण वर्णित हैं । महान् प्रयाससे जिन्होंने उन गुणोंको प्राप्त किया, उन महात्माओंका आचरण ही सामान्य जनोंके लिये पथ-प्रदर्शक होता है और सात्त्विक श्रद्धा जिनके हृदयमें उत्पन्न हो चुकी रहती है वे उस आचरणको देखकर तदनुसार अपना आचरण बनाते हैं ।

पर श्रुति स्मृतिके अर्थ । जो आपही हुए मूर्त ।
अनुष्ठानसे विख्यात । ऐसे महान ॥ ८६ ॥
उनके आचरण सोई चरण । देख सत् श्रद्धा करे अनुसरण ।
सो पावे सोई परम धन । रखा जैसे ॥ ८७ ॥

(ज्ञानेश्वरी अ० १७)

'श्रुति-स्मृतिके मूर्तिमान् अर्थ बनकर जो स्वकर्मानुष्ठानसे प्रसिद्ध होते हैं, ऐसे जो श्रेष्ठ हैं उन्हींके आचरणरूप चरणचिह्न देखकर सात्त्विकी श्रद्धा चला करती है और इससे उसे भी वही फल अनायास ही प्राप्त हो जाता है ।' महात्मा भोजन कैसे करते हैं, बोलते कैसे हैं, चलते कैसे हैं, बर्ताव कैसा रखते हैं, इन सब बातोंको जाननेसे भी बड़ी शिक्षा मिलती है । सामान्य जनोंको जो विषय प्रिय होते हैं उनको उन्होंने कैसे छोड़ा, विषय-वासनाको कैसे जीता, उन्हें वैराग्य कैसे प्राप्त हुआ, प्रवृत्तिको जीतकर वे निवृत्त कैसे हुए, उन्होंने किस ग्रन्थका कैसे अध्ययन किया, उन्होंने एकान्तवास कैसे किया, एकान्तमें उन्होंने क्या साधना की, सत्संगमें उन्हें क्योंकर रुचि हुई, सत्संगसे उन्होंने कौन-सा आत्मलाभ किया और कैसे किया, उनपर गुरु-कृपा कब, कैसे हुई,

उन्होंने निश्चय क्या किया और कैसे सब आघातोंको सहकर उसे निबाहा, उनपर भगवान् कैसे प्रसन्न हुए, इत्यादि बातें जब मुमुक्षु-की समझमें ठीक-ठीक आ जाती हैं तब वह भी अपना जीवनक्रम निश्चित कर सकता है ।

२ आत्मचरित्र-अभंग

इस प्रकारके विचार उन लोगोंके चित्तमें अवश्य उठा करते होंगे जो तुकाराम महाराजके पास नित्य आया-जाया करते थे और उनका हरिकीर्तन सुनकर आनन्दित होते थे। एक बार इन्हीं लोगोंने महाराजसे प्रश्न किया, 'महाराज! आपको वैराग्य कैसे प्राप्त हुआ? और आपपर भगवान् कैसे प्रसन्न हुए? कृपाकर यह हमें बताइये। यह प्रश्न सुनकर और श्रोताओंकी शुभेच्छा जानकर महाराजने दो अभंगोंमें इसका उत्तर दिया। ये अभंग बड़े महत्त्वके हैं। 'याती शूद्र वैश्य' इत्यादि अभंग तो महाराजके चरित्रका मानो सम्पूर्ण पूर्वार्ध ही है। शिष्टाचार यह है कि अपना चरित्र आप ही न कहे, पर 'आपलोग सन्त हैं और प्रेमसे पूछ रहे हैं इसलिये आपलोगोंकी आज्ञाका पालन करना ही चाहिये।' इस प्रकार प्रस्तावना करके महाराजने कहना आरम्भ किया।

'न ये बोलों परी पाडिलें वचन'
कहना नहिं किन्तु, करता पालन।
आपके वचन, सन्तजनो॥

यह चरण इस अभंगका ध्रुवपद है। इससे यह जाहिर

है कि अपना चरित्र आप ही कहना अनुचित* है इस भावको मूलमें रखकर उन्होंने भक्तानुग्रहके लिये ही अपने चरित्रकी मुख्य-मुख्य बातें कह दीं। अब तुकाराम महाराजके मुखसे ही उनका पूर्व-चरित्र हमलोग भी ध्यानपूर्वक सुन लें—

अभंग

जाति शूद्र, किया वैश्य-व्यवसाय।
पांडुरंग-पाँय कुल पूज्य ॥ १ ॥
कहना नहिं किन्तु करता पालन
आपके वचन संत जनो ॥ध्रु०॥
माता पिता मेरे छोड़ गये यदा।
आपदाविपदा आन पड़ी ॥२॥
दुर्भिक्षने मारा-छीना धन-मान।
गृहिणी बिना अन्न प्राण त्यागे ॥३॥
लज्जा बड़ी ग्लानि हुए कष्ट भारी।
व्यापारमें सारी पूँजी हारी ॥४॥
विट्ठल-देवल हुआ अति जीर्ण।
उद्धारकी मन बात आयी ॥५॥

---

* स्वात्मवृत्तं मयेत्थं ते सुगुप्तमपि वर्णितम्।
व्यपेतं लोकशास्त्राभ्यां भवान् हि भगवत्प्रियः॥

(श्रीमद्भागवत ७।१३।४५)

'अजगर मुनि प्रह्लादसे कहते हैं—मेरा चरित्र लोक-व्यवहार और शास्त्र-मर्यादाके अनुकूल नहीं है (ऐसा जड़ मूढजन समझते हैं) इसलिये वह बताने योग्य न होनेपर भी, तुम भगवान्‌के भक्त हो इसलिये तुम्हें बताता हूँ।'

पहिले कीर्तन पुनः एकादशी ।
रहा न अभ्यासी चित्त तदा ॥६॥
कुछ किये कंठ संतोंके वचन ।
विश्वास सम्मान उर धारे ॥७॥
जहाँ नामगान गाऊँ पद-टेक ।
धरूँ चित्त एक भक्ति-भाव ॥८॥
संत-पद-तीर्थ किया सुधापान ।
दिये लज्जा मान छोड़ पीछे ॥९॥
वन पड़ा जो भी किया उपकार ।
काया-कष्ट कर हरि भजे ॥१०॥
हित-नात-वच दृढ़ माया-फंद ।
तोडे भव-वन्द हरि कृपा ॥११॥
सत्य-असत्यमें साक्षी रखा मन ।
बहुमत मान माना नहीं ॥१२॥
सपनेमें पाया गुरु-उपदेश ।
नाममें विश्वास दृढ धरा ॥१३॥
तव स्फुर आयी कवित्वकी स्फूर्ति ।
हरि-पद-रति उर धारी ॥१४॥
'निषेध'की एक लगी भारी चोट ।
दुखी हुआ चित्त काल एक ॥१५॥
वहियाँ डुवा दीं वैठा दिये धरना ।
आये प्रभु कान्हा समाधान ॥१६॥
कहाँ लों विस्तार हैं वहु प्रकार ।
होगी वड़ी वेर अतः इति ॥१७॥

अब जो हूँ जैसा आपके सम्मुख।
भावी जो उन्मुख जानें हरि ॥१८॥
भक्तोंको न भूलें कदा भगवान।
पूर्ण दयावान मेरे हरि ॥१९॥
तुका कहे सारा यही मेरा धन।
श्रीहरि-वचन हरि-बोल ॥२०॥

(मूल मराठीसे अनुवादित)

इन अभंगोंमें श्रीतुकाराम महाराज अपने जीवनकी कुछ मुख्य बातें इस प्रकार गिनाते हैं—

(१) मैं जातिका शूद्र हूँ पर व्यवसाय मैंने वैश्यका किया।

(२) मेरे कुल-स्वामी पाण्डुरङ्ग हैं, उन्हींकी उपासना हमारे कुलमें परम्परासे चली आती है।

(३) पिता-माताका स्वर्गवास होनेके बादसे संसारके दुःख मैंने बहुत उठाये। अकाल पड़ा उसमें घरमें जो कुछ था वह सब द्रव्य स्वाहा हो गया और द्रव्यके साथ ही प्रतिष्ठा भी धूलमें मिली। एक स्त्री 'अन्न, अन्न' पुकारती हुई मरी, जो-जो व्यवसाय किया उसमें नुकसान ही उठाया, इससे बड़ा कष्ट हुआ, मुझे आप ही अपनी लज्जा आने लगी। इस प्रकार संसारसे असह्य ताप हुआ।

(४) ऐसी हालतमें मनको बहलानेकी एक बात सूझी। श्रीविश्वम्भरबाबाका बनवाया श्रीविट्ठलमन्दिर टूटा पड़ा था। उसका जीर्णोद्धार करनेका विचार मनमें उठा। दिन-रात परिश्रम करके यह कार्य पूरा किया।

(५) साधन-पथमें पहले एकादशी-व्रत रहने लगा और नाम-संकीर्तन करने लगा। आरम्भमें अभ्यास न होनेसे उसमें मन नहीं रमता था। तब सन्तोंके ग्रन्थ देखे, उनके कुछ बोध-वचन कण्ठस्थ किये। सन्त-वचनोंपर पूर्ण विश्वास रखा और आदरसे उन्हें हृदयमें धारण किया, अर्थका मनन करते हुए अभ्यासमें मन रमाया।

(६) कोई भगवद्भक्त हरिकीर्तन करते तो मैं उनके पीछे खड़ा होकर भजनका स्थाई पद गाया करता था और भक्ति-भावसे मनको शुद्ध करके मनको मननमें लगा श्रीहरि-प्रेमको मनमें भरने लगा।

(७) कीर्तन-भजन, नाम-संकीर्तन करनेवाले कोई भी सन्त मिल जाते तो उनके चरणोंमें गिरकर उनका चरणामृत ले पान करता था। ऐसा करनेमें मुझे कभी लज्जा नहीं बोध हुई।

(८) शरीरसे कष्ट करके जो भी परोपकार बन पड़ता, उसे करता था। पर-काजके साधनेमें देहको घिस डालना अच्छा ही लगता था।

(९) इस प्रकार परमार्थकी साधना मैंने आरम्भ की। कथा-कीर्तनोंमें और सन्तोंके समागममें बड़ा आनन्द आने लगा। चित्त इन्हींमें रमने लगा। परहित-साधनमें शरीरको कष्ट करके थका डालनेमें बड़ा मजा आने लगा। पर मेरी यह अवस्था मेरे स्वजनों-से न देखी गयी! भाई-बन्द और स्त्री आदि सभी उपदेश देने लगे और गृहप्रपञ्चकी ओर खींचने लगे। पर मैंने अपने कलेजेको कठोर बना लिया था। किसीकी कुछ भी न सुनी। गृह-प्रपञ्चसे मेरा चित्त जड़-मूलसे उचट गया था! उस ओर देखनेतककी इच्छा

न होती थी। स्वजन अपनी ओर खींचते थे, पर मेरा मन परमार्थ-की ओर खींचा जा रहा था। लोग प्रवृत्तिमार्ग बताते थे, पर मन तो निवृत्तिमार्गमें ही रमता था। प्रवृत्ति-निवृत्तिकी इस खींचा-तानीमें सत्यासत्यकी पहचानके लिये मैंने अपने मनको साक्षी बनाया और सत्यस्वरूप भगवान् श्रीहरिका ही पथ अनुसरण किया। असत्य—मिथ्या—नश्वर प्रपञ्चको तिलाञ्जलि दे दी। बहुमत-को नहीं माना, नित्यानित्यविवेक करके नित्यको ही अपना लिया।

(१०) इस प्रकार जब मैं श्रीहरि-चरण-प्राप्तिके लिये कृत-संकल्प हुआ तब सद्गुरु श्रीबाबाजी चैतन्यने स्वप्नमें दर्शन देकर 'श्रीराम कृष्ण हरि' मन्त्रका उपदेश किया। मैंने हरि-नाममें दृढ़ विश्वास धारण कर लिया, यही विश्वास चित्तमें धार लिया कि श्रीहरि-नाम ही तारनेवाला है, यही अपने नामी श्रीहरिसे मिलाने-वाला है। इसीका सहारा मैंने पकड़ लिया।

(११) अखण्ड श्रीहरि-नाम-स्मरणमें जब चित्त लीन होने लगा तब कविता करनेकी स्फूर्ति हुई। श्रीहरि-कीर्तन करते श्रीहरि-प्रसादरूपसे अभंग-वाणी निकलने लगी। मैंने जाना, यह मेरी बुद्धिका प्रकाश नहीं, यह भगवान्‌का ही प्रसाद है, उन्हींकी बात उन्हींसे, मेरे द्वारा, निकलती है, यह जानकर कृतज्ञतासे गद्गद हो श्रीविट्ठलनाथके श्रीचरण मैंने हृदयमें धारण कर लिये।

(१२) यही क्रम चला जा रहा था जब बीचमें ही (रामेश्वर भट्टके द्वारा) 'निषेध' का 'आघात' हुआ। मैं भगवान्‌को प्रसन्न करनेके लिये भगवान्‌की ही प्रेरणासे कवित्व कर रहा था। पर कुछ लोगोंने मेरे इस प्रयासको अनुचित समझा। वे इसका विरोध

करने लगे । इस विरोधसे मेरा चित्त दुखी हुआ और मैंने अभंगों-की सब वहियोंको ले जाकर इन्द्रायणीके दहमें डुवा दिया और फिर (तेरह अहोरात्र) भगवान्‌के द्वारपर धरना दिये उन्हींके ध्यानमें पड़ा रहा । तब नारायणको दया आयी । उन्होंने स्वयं दर्शन देकर मेरा समाधान किया और मेरी वहियोंको भी जलसे बचा लिया ।

३ वैराग्य

इस प्रकार इन अभंगोंमें, घर-गिरस्तीका भार तुकारामजीके सिर पड़ा, तबसे, उन्हें भगवान्‌का सगुणसाक्षात्कार हुआ, तबतककी सभी मुख्य घटनाओंका वर्णन श्रीतुकारामजीके ही शब्दोंमें सुननेको मिला है । पहले उन्होंने वैश्य-व्यवसाय किया अर्थात् बनियेकी दूकान की । कुछ वर्ष उनका यह काम अच्छा चला । पर पीछे उनपर एक-एक करके अनेक विपत्तियाँ आयीं जिनसे वह बहुत ही दुखी हुए और संसारसे उन्हें विराग हो गया ! माता-पिताका देहान्त हुआ, दुर्भिक्षमें सब धन स्वाहा हुआ, द्रव्यके साथ प्रतिष्ठा भी चली गयी, व्यापारमें दिवाला निकला, पत्नी अन्नके लिये तड़प-तड़पकर मर गयी, जो भी काम किया उसीमें घाटा उठाया, इस तरह सब तरफसे वह प्रपञ्चके दावानलसे घिर गये ! दुःखमय संसार-की दुःखमयता उन्होंने अच्छी तरहसे देख ली और उन्हें वैराग्य हो आया । गृहादि प्रपञ्चकी पञ्चाग्निसे जब मनुष्य इस तरह झुलस जाता है तब वह परमार्थमें प्रवृत्त होना ही श्रेय समझने लगता है । संसार-दुःखसे दुखी और त्रिविध तापसे दग्ध जीव ही परमार्थका पात्र होता है । यों तो हम सभी संसार-दुःखसे दुखी

हैं और कभी-कभी दुःखके अति दुःसह हो उठनेपर संसारसे क्षणिक वैराग्यका भी अनुभव कर लेते हैं; पर फिर, सींडमें लिपटी मक्खी-की तरह, उसी संसारमें लिपटे रह जाते हैं! तुकाराम भी संसारसे उपराम हुए। पर तुकारामकी उपरामता और हम सामान्य जनोंकी क्षणकालीन उपरामतामें बड़ा अन्तर है! उन्हें जो विराग हुआ वह प्रपञ्चके जड़मूलसे हुआ, उस वासनाको ही उन्होंने काट डाला जिससे सारा प्रपञ्च निकला। क्षणिक वैराग्य जिसे श्मशान-वैराग्य कहते हैं, हम सबको नित्य ही हुआ करता है पर श्मशान-भूमि-से विदा होते ही वह वैराग्य भी सदाके लिये विदा हो जाता है। कारण, वह वैराग्य ऊपरी होता है, चार आँसू जहाँ गिरे वहीं उसकी इति हुई। तुकारामजी प्रपञ्चसे केवल ऊबे नहीं, प्रपञ्चकी तहतक पहुँचे और उसकी वासना-मूलीको ही उखाड़ लाये। उन्होंने ही जाना कि संसार नश्वर है और सांसारिक सुख केवल भ्रम है। उन्होंने ही यह समझा कि प्रापञ्चिक वासनाओंमें कभी न फँसना चाहिये। इस प्रकार उनके हृदयमें उस वैराग्यका बीजारोपण हुआ जो परमार्थ-वृक्षका मूल है।

४ साधन-पथ

संसारसे उनके विमुख होते ही परमार्थ उनके सम्मुख हुआ। परमार्थ-प्राप्तिके लिये उन्होंने जो साधन किये उनका भी वर्णन आगे करते हैं। श्रीविट्ठल-मन्दिरका उन्होंने जीर्णोद्धार किया, एकादशी-व्रत और हरिजागरण करने लगे, कीर्तनकारों और भजनीकोंके पीछे करताल लिये विशुद्ध भावसे तालधारी बन खड़े होने लगे, साधु-सन्तोंके ग्रन्थ देखने और मनन-सुख देनेवाली

उनकी सूक्तियोंको कण्ठ करने लगे, लोक-लाज छोड़कर सन्तोंके चरण-सेवक बने, शरीरसे जितना बन पड़ता, पर-उपकार करते। यही उनका साधन-मार्ग था। स्त्री, बन्धु, आप्त स्वजन फिर भी प्रयत्न करते रहे कि तुका परमार्थको छोड़ फिर प्रपञ्चमें मन लगावें। पर इन लोगोंका यह प्रयत्न क्या था, तुकारामजीके अविचल निश्चयकी ही परख थी। अन्तःकरणकी शुभेच्छाको प्रमाण मानकर सबकी सुनी अनसुनी करके वह निष्ठाके साथ अपने उपासना-मार्गको ही पकड़े रहे। इनका ऐसा अटल विश्वास जान श्रीसद्गुरु बाबाजी चैतन्यने इनपर अनुग्रह किया, स्वप्नमें उपदेश दिया, तुकारामके परम प्रिय 'राम कृष्ण हरि' मन्त्रकी दीक्षा दी। तुकारामजीने स्वयं ही इस प्रकार अपना साधन-मार्ग बताया है। श्रीविट्ठल-मन्दिरके जीर्णोद्धारसे लेकर श्रीसद्गुरु-कृपा-के होनेतक सब साधनोंका साधन उन्होंने 'भक्ति-भावसे चित्तको शुद्ध करके' किया। इन साधनोंमें अन्तिम और प्रधान साधन नाम-स्मरण ही रहा। नाम-स्मरण उनका कभी न छूटा। पर इससे कोई यह न समझे कि अन्य साधनोंका महत्त्व किसी प्रकार कम है। प्रथम साधन हुआ—श्रीविट्ठल-मन्दिरका जीर्णोद्धार। यह मन्दिर देहूमें श्रीविश्वम्भरबाबाके समयसे ही था। तबसे वहाँ भगवान्‌की पूजा-अर्चा-धूप-दीप-आरती आदि सभी उपचार बराबर होते ही चले आये थे। यह विट्ठल-मन्दिर तुकारामजीसे पहले भी था और अब पीछे भी है। जीर्णोद्धार उन्होंने जो कुछ किया वह यही किया कि पत्थर इकट्ठे किये, मिट्टी पानीमें सानकर गारा बनाया, दीवारें उठायीं और यह सब अपनी देहसे पसीना

बहाकर किया। भगवान्‌की यह कायिक सेवा थी। इस कायिक सेवाके द्वारा भगवान्‌के मन्दिरका उन्होंने जो जीर्णोद्धार किया वह उनका अपना भी जीर्णोद्धार हुआ, हृदयके अन्तस्तलमें दबा हुआ भाव ऊपर उठ आया, भक्ति जी उठी और इसी भक्तिने उन्हें पीछे भगवान्‌के दर्शन करा दिये। तुकारामजीने स्वयं ही कहा है, 'निधि जो गड़ी रखी थी सो इस भाव-भक्तिसे हाथ लगी।' जिस भावसे भगवान् रहते हैं, जिस भावसे भगवान् मिलते हैं, उसी भावको उन्होंने मन्दिरके जीर्णोद्धारसे अपने सम्मुख मूर्तिमान् किया। चित्तमें भावका उदय होनेसे गारे और मिट्टीका काम करते हुए भी भगवान्‌की सेवा किस प्रकार हुई सो भक्त ही जान सकते हैं। मैं तो यही समझता हूँ कि जिन विश्वात्मक विश्वपिता श्रीपाण्डुरङ्गके नामका झण्डा उन्होंने विश्वके ऊपर फहराया वह विश्वात्मा तुकारामजीकी इस प्रथम चरणसेवाके समयसे ही अपनी स्नेहदृष्टि तुकारामजीकी ओर संलग्न किये रहे। चन्दन, धूप-दीप, आरती, प्रभाती, दण्डवत्, भजन-पूजन-कीर्तन आदि उपासनाके बहिरंग हैं और चित्तमें यदि इनके साथ भाव न हो तो ये सब बहिरंग बाहर-के-बाहर ही रह जाते हैं। चित्तमें यदि भक्ति-भाव हो तो ये ही बहिरंग उन भक्तवत्सल श्रीविट्ठलके समचरण-सरोजकी प्राप्तिके पक्के साधन बन जाते हैं। तुकारामजीके चित्त-में विमल भक्तिका विशुद्ध भाव उदय हो चुका था और इस भावको संग लिये, अन्तरंगको बहिरंगमें मिलाये उन्होंने श्रीविट्ठल-मन्दिरका जीर्णोद्धार किया, एकादशीव्रत लिया, महात्माओंके ग्रन्थोंको विश्वास और समादरके साथ पढ़ा, सतत अभ्यासके

लिये उनके वचन कण्ठमें धारण कर लिये, कीर्तनकारोंके पीछे ताल-धारी बन खड़े हुए—यह सब किया 'भक्तिभावसे मनको शुद्ध करके।' उनका साधन-पथ भावमय था, भावसे ही भावके भोक्ता भगवान् प्रसन्न हुए और बाबाजी चैतन्यका उपदेशामृत मिला, जिससे सभी साधन सफल हुए और सब साधनोंके फलस्वरूप उन्हें भगवन्नामकी रट लग गयी। भगवान्‌की पूजा-अर्चा, सद्ग्रन्थ-सेवन, सन्त-समागम, एकादशीव्रत, श्रीहरि-कीर्तन और नाम-स्मरण—ये सभी श्रीतुकारामजीके साधन-पथके अंग थे, यह बात ध्यानमें रहे। इन्हीं साधनोंसे और श्रीगुरुकृपाके बल-भरोसे वह आगे ही बढ़ते गये और अन्तको भगवान्‌की पूर्ण कृपाके अधिकारी हुए।

५ सगुण-साक्षात्कार

वैराग्य हो आना और तब साधन-पथपर चलना क्रमसहित बताकर तुकारामजीने अन्तमें श्रीभगवान्‌का अनुग्रह होनेकी बात कही है। भगवत्कृपाका प्रथम प्रसाद था—कवित्वस्फुरण। यह कवित्वस्फुरण सामान्य नहीं, अति विलक्षण है। तुकारामजीके समय कवित्वका बाना कसे हुए ऐसे बहुतेरे कवि गली-गली मारे-मारे फिरा करते थे और आज भी हैं जो पूर्वके कवियोंकी कृतियों-का 'मक्षिकास्थाने मक्षिका' का-सा अनुवाद करके या साहित्यिक चोरी करके भी अपने कवि या महाकवि होनेका दम भरा करते हैं। ऐसे कवियोंको तुकारामजीके कवित्वस्रोतका पता भी नहीं लग सकता। अस्तु, तुकारामजीने जो कविता की वह अन्त-र्यामीकी स्फूर्ति थी। उस स्फूर्तिके बिना उन्होंने एक भी अभंग नहीं रचा। जो भी रचना की भगवान्‌की प्रेरणासे भगवान्‌की प्रसन्नताके

लिये या 'स्वान्तःसुख' के लिये की। उनकी ऐसी अभंग-रचनाको उनकी न कहकर उनके प्रेमपरिप्लावित अन्तःकरणसे आप ही निकल पड़ी हुई अभंग-प्रेम-धारा कहें तो अधिक समुचित होगा। उनके अभंग श्रीहरि-प्रेमके अमृतोद्गार हैं! यह अभंग-बानी 'सखा भगवन्त' की बानी है। उनकी ऐसी लोकविलक्षण प्रेम-वाणीको जब श्रीरामेश्वर भट्ट-जैसे विद्वान् वैदिक ब्राह्मणने 'निषिद्ध' ठहराया तब तुकारामजीका व्यथित-चित्त हो जाना स्वाभाविक ही था। उन्होंने अभंगोंकी सब बहियाँ इन्द्रायणीके दहमें डुबा दीं; तब 'नारायणने समाधान किया'—भगवान्‌ने उन्हें दर्शन दिये और उनकी बहियोंको भी जलसे उबार लिया। तुकारामजीका जी बहुत दिनोंसे जो भगवान्‌के दर्शनोंके लिये छटपटा रहा था सो अब शान्त हुआ। उन्हें भगवान्‌के मन, वचन, नयन सभी अंग-अयन प्रत्यक्ष हुए। उनकी विकलता दूर हुई। भगवान्‌की बातें अब केवल कही-सुनी ही न रहीं, देखी भी हो गयीं। अब वह यह भी कहनेमें समर्थ हुए कि मैंने भगवान्‌को देखा है। इन्हीं अभंगोंके अन्तमें उन्होंने यह कहा है कि—

भक्तोंको न भूलें कदा भगवान्। पूर्ण दयावान् मेरे हरि॥

भगवत्कृपाका प्रत्यक्ष अनुभव उन्हें प्राप्त हुआ। स्वानुभवसे अब वह यह कहने लगे कि भक्तोंको श्रीहरि कभी नहीं बिसारते। इस सगुण-साक्षात्कारकी बात उन्होंने केवल संकेतमात्रसे कही है। इस विषयमें उनके कुछ खास अभंग भी हैं जिनका विचार किसी दूसरे अध्यायमें स्वतन्त्ररूपसे किया जायगा।

६ दूसरे अभंगका विचार

'कहना नहिं किन्तु करता पालन' कहकर तुकारामजीने

उपर्युक्त अभंगमें अपने चरित्रकी जो मुख्य-मुख्य बातें गिना दी हैं उनमें आत्मस्तुति नाममात्रको भी नहीं है, तथापि अपना चरित्र आप ही कहा, इसी एक बातका उन्हें इतना खयाल हुआ है कि दूसरे अभंगमें बड़ी लघुता धारण करके महाराज कहते हैं कि 'मेरा उद्धार नहीं हुआ ! कैसे होता ? मैं भी तो आप ही लोगोंमेंसे एक हूँ, जैसे आप हैं वैसा ही मैं भी हूँ । आपलोग एक दूसरेकी देखा-देखी मुझे जो बड़प्पन देते हैं उसके योग्य मैं नहीं हूँ, आपलोगों-का ऐसा करना भी ठीक नहीं है । मैंने किया ही क्या है ? घर-गिरस्ती चलाना मेरे लिये भार हो गया । अपने कुलमें मैं ऐसा अभागा पैदा हुआ कि कुछ भी पुरुषार्थ न बन पड़नेसे घर-द्वार छोड़कर मुँह छिपाकर मैं जंगलमें जा बैठा ! यह जो भगवान्‌की पूजा-अर्चा करता हूँ सो भी बड़े लोग करते आये हैं इसलिये करता हूँ, भाव-भक्ति तो कुछ है नहीं !' तुकारामजीने श्रोताओंको इस तरह बहुत समझाना चाहा । इसका क्या प्रभाव उन लोगोंके चित्तपर पड़ा होगा सो अनुमानसे जाना जा सकता है । उन्होंने यही समझा होगा कि महाराज जो ऐसी-ऐसी बातें कह देते हैं सो केवल इसलिये कि लोग उन्हें महात्मा समझ उनके पीछे न लग जायँ, उपाधि न बढ़े और ईश्वरी प्रसाद जो कुछ मिला है वह सुस्थिर और सुदृढ़ करनेके लिये एकान्त मिलता रहे । महाराजका जो कुछ चरित्र था वह उनसे छिपा नहीं था । कीर्तन करते हुए महाराज जैसे तन्मय हो जाते थे उसे वे लोग नित्य ही देखते थे ।

भगवान्‌के लिये महाराजने गृहस्थीपर लात मार दी, यह भी उन्होंने अपनी आँखों देखा था। यह भी वे देखते थे कि 'राम कृष्ण हरी' के जय-निनादसे सारा देहू-ग्राम, भण्डारा, मोराडा और भामगिरिके पर्वत निनादित होते थे। सर्वत्र उनके यशका यह डंका बज रहा था कि तुकाराम महाराजको भगवान्‌ने प्रत्यक्ष दर्शन देकर उनके अभंगोंकी पोथियोंको जलसे उबार लिया। ऐसी अवस्थामें उनके इस कथनको कि 'मैं भक्ति-भावसे भगवान्‌की पूजा नहीं करता' या 'मेरा उद्धार नहीं हुआ' भक्तोंने किस भावसे ग्रहण किया होगा यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं।

७ मध्यखण्डकी प्रस्तावना

अस्तु, इस प्रकार तुकारामजीने 'जाति शूद्र' वाले अभंगमें तीन विशेष बातें कही हैं—(१) वैराग्य-प्राप्ति, (२) साधन-मार्ग और (३) रामेश्वर भट्टद्वारा होनेवाला 'निषेध' और स्वयं भगवान् पाण्डुरङ्गके द्वारा उसका निवारण। जन्मसे लेकर सगुण-साक्षात्कार होनेतकका अर्थात् ३० वर्षका चरित्र महाराजने यहीं कह दिया है। इसी क्रमसे हमें उनके चरित्रका विचार करना होगा। पिछले अध्यायमें हमलोगोंने उनके जन्मसे लेकर, उनकी उम्रके २३ वें वर्ष उन्हें वैराग्य प्राप्त हुआ वहाँतकका, चरित्रावलोकन किया है। इसके बादके ७ वर्ष महाराजके चरित्रके अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं, इसलिये इनका विस्तारपूर्वक विवरण पाठक इस खण्डमें पढ़ेंगे। तुकाराम महाराजकी उपासनाका मुख्य विषय श्रीपाण्डुरङ्ग, पूर्वके

साधु-सन्तोंद्वारा इस उपासनाका प्रशस्त किया हुआ मार्ग, तुकाराम-जीका साधन-क्रम, गुरूपदेश, कवित्वस्फूर्ति, कवित्वका रामेश्वर भट्ट-द्वारा निषेध, तन्निमित्त तुकाजीका धरना, पोथियोंका डुबाया जाना और उनका ऊपर निकल आना, श्रीपाण्डुरङ्गका सगुण-दर्शन इत्यादि महत्त्वपूर्ण विषय इस खण्डमें आनेवाले हैं। इसलिये यह खण्ड तुकाराम-चरित्रका मानो अन्तःकरण है। उनके चरित्रका रहस्य इस खण्डमें पाठक समझ लेंगे। मुमुक्षुओंके लिये यह खण्ड आदर्श-स्वरूप होगा। यह मध्यखण्ड तुकारामजीके चरित्रका हृदय है। तुकाराम महाराजके चरणोंका स्मरण कर अब हमलोग यह देखें कि उनकी उपासनाका उपास्य क्या था।
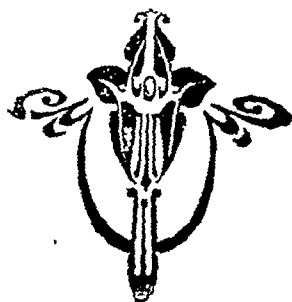
पाँचवाँ अध्याय

वारकरी सम्प्रदायका साधनमार्ग

पंढरीकी वारी मेरा कुलधर्म । अन्य नहिं कर्म तीर्थव्रत ॥ १ ॥
रहूँ उपवासी एकादशी व्रत । गाऊँ दिन रात हरिनाम ॥ध्रु०॥
नाम श्रीविट्ठल मुखसे उचारूँ । बीज कल्पतरू तुका कहे ॥ २ ॥

—श्रीतुकाराम

१ साधनमार्गके चार पड़ाव

प्रपञ्चसे जब तुकारामजीका चित्त उचाट हुआ तब स्वभावतः ही वह परमार्थकी ओर झुके । चित्तसे जबतक प्रपञ्च बिल्कुल उतर नहीं जाता तबतक परमार्थ नहीं सूझता, नहीं भाता, नहीं रुचता, नहीं ठहरता । मनोभूमि जब वैराग्यसे शुद्ध हो जाती है तब उसमें बोया हुआ ज्ञानबीज अंकुरित होता है । तुकाराम जन्मसे ही मुक्त थे इसलिये यह नियम उनपर नहीं घटता, ऐसा यदि कोई कहे तो वह ठीक है; परन्तु मुक्त पुरुषका चरित्र भी जब लिखा जायगा तब मानवी दृष्टिसे ही तो लिखा जायगा । जो जीवन्मुक्त है उसके लिये साधनोंकी भी क्या आवश्यकता है ? वह तो सदा साधनातीत है । परन्तु मुक्त पुरुषका चरित्र जब मानवी दृष्टिसे लिखा जाता है तभी मुमुक्षुजन उससे लाभ

उठा सकते हैं। इसलिये तुकारामको जब वैराग्य हुआ तब उन्होंने क्या-क्या साधन किये और वह कैसे भगवत्प्रसाद पानेके अधिकारी हुए, यह हमें अब देखना है। तुकाराम जिस कुलमें पैदा हुए उस कुलमें परम्परासे वारकरी सम्प्रदाय चला आया था, अर्थात् वारकरी सम्प्रदायकी शिक्षा उन्हें बचपनसे घरमें ही प्राप्त हुई। पण्ढरीकी आषाढ़ी-कार्तिकी यात्रा करना उनका कुल-धर्म ही था। वैराग्य प्राप्त होनेके पूर्व भी वह अनेक बार पण्ढरी हो आये थे। ज्ञानेश्वरी और एकनाथी भागवत तथा नामदेव और एकनाथके अभंग उन्होंने बचपनमें ही सुन रखे थे। एकनाथ महाराजने आलन्दीकी यात्रा की तबसे आलन्दीकी यात्राका प्रचार बहुत बढ़ा, बहुत लोग यह यात्रा करने लगे और वारकरी सम्प्रदाय पूना-प्रान्तमें खूब फैला। आलन्दी, पूना, देहू और आसपासके ग्रामोंमें घर-घर एकादशीका व्रत, और जहाँ-तहाँ भजन-कीर्तन होने लगा। तुकारामजीके मनपर इस प्रकार वारकरी सम्प्रदायके संस्कार जमे हुए थे और जब समय आया तब उन्होंने इसी सम्प्रदायका साधन-क्रम स्वीकार किया और अन्तमें अपने तपके प्रभावसे वह उस पन्थके अध्वर्यु बने। काम-क्रोध-लोभरूप संसारसे जहाँ चित्त हटा तहाँ वह मोक्षमार्गपर आकर सज्जनोंका ही संग पकड़ता है, और फिर ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि 'वह प्रबल सत्संगसे तथा सत्शास्त्रके बलसे जन्म-मृत्युके जंगलोंको पार कर जाता है। (४४१) तब आत्मानन्द जहाँ सदा वास करता है वह सद्गुरु-कृपाका स्थान उसे प्राप्त होता है। (४४२) वहाँ प्रियकी जो परम सीमा है उस आत्मारामसे उसकी भेंट होती है और तब

संसारके सब ताप आप ही नष्ट होते हैं। (४४३)' (ज्ञानेश्वरी अ० १६) सतत सत्संग, सत्शास्त्रका अध्ययन, गुरुकृपा और आत्मारामकी भेंट—यही वह क्रम है जिससे जीव संसारके कोलाहलसे मुक्त होता है। ठीक इसी क्रमसे तुकारामजी साक्षात्कारकी अन्तिम सीढ़ीपर चढ़ गये। इस मध्यखण्डमें हमें यही दिव्य इतिहास देखना है। सज्जनोंका संग और उस संगसे अनायास अभ्यस्त होनेवाले साधनोंका अवलम्बन पहला पड़ाव है, फिर सत्शास्त्रों अर्थात् साधु-सन्तोंके ग्रन्थोंका अध्ययन दूसरा पड़ाव है; गुरूपदेश तीसरा पड़ाव और आत्म-साक्षात्कार अन्तिम पड़ाव है। ये चार मुख्य पड़ाव हैं, और बीच-बीचमें छोटे-छोटे पड़ाव और हैं। चलिये हमलोग भी तुकारामजीके वचनोंके सहारे मार्ग ढूँढ़ते हुए और उन्हींके पद-चिह्नोंपर चलते हुए धीरे-धीरे इन सब पड़ावोंको तय करके गन्तव्य स्थानको पहुँचें।

२ वारकरी सिद्धान्त-पञ्चदशी

मोक्षमार्गपर चलनेवाले सज्जनोंका संग पहला पड़ाव है। मोक्षमार्गपर चलनेवाले मुमुक्षु और साधकोंके संगसे शुभेच्छा प्रबल होती है। मुमुक्षुको बद्धका संग कभी प्रिय नहीं हो सकता। संग सजातीयोंका होता है और उसीसे प्रीति और गुणोंकी वृद्धि होती है। प्रपञ्चसे जब जी ऊब गया और भगवान्‌की ओर चित्त खिंच गया तब स्वभावतः ही तुकारामजीकी यह इच्छा हुई कि 'ऐसे पुरुषोंका संग हो जिनका चित्त भगवान्‌में लगा हो। (देव वसे ज्याचे चित्तीं। त्याची घडावी संगती॥)' पूर्ण सिद्ध पुरुष या सद्‌गुरुकी भेंट सहसा नहीं होती और यदि हो भी जाय तो होने-जैसी नहीं होती; इसलिये पहले अपने ही जैसे समानधर्मियोंका

संग आवश्यक होता है। इस सत्संगमें जो आचार-विचार प्राप्त होते हैं वे ही प्रिय होते हैं, उन्हींका अनुसरण सुखपूर्वक होता है। इस प्रकार देखते हुए, तुकारामजीको पहले वारकरियोंका सत्संग लाभ हुआ, वही उन्हें प्रिय हुआ और वारकरियोंके साधनोंका ही उन्होंने अवलम्बन किया। वारकरी सम्प्रदायका समग्र इतिहास यहाँ लिखनेका अवकाश नहीं है, इसलिये संक्षेपमें इस सम्प्रदाय-के मूलभूत सिद्धान्त यहाँ लिखे देते हैं। यह सम्प्रदाय बहुत प्राचीन है, श्रीज्ञानेश्वर महाराजसे भी पहलेका है। वारकरी सम्प्रदाय महाराष्ट्रके भागवतधर्मका ही दूसरा नाम है। इसके पन्द्रह सिद्धान्त हैं जो सब वारकरियोंके मान्य हैं। यह सिद्धान्त-पञ्चदशी इस प्रकार है—

(१) *उपास्य*—श्रीपण्ढरपुर-निवासी पाण्डुरङ्ग इस सम्प्रदाय-के उपास्यदेव हैं। सिद्धान्त यह है कि सगुण और निर्गुण एक है। महाविष्णुके सभी अवतार मान्य हैं, पर दशावतारोंमेंसे राम और कृष्ण विशेष मान्य हैं। विठ्ठल अर्थात् गोपाल कृष्ण उपास्य हैं।

(२) *सत् शास्त्र-ग्रन्थ*—मुख्य उपासना-ग्रन्थ गीता और भागवत हैं। गीता ज्ञानेश्वरी भाष्यके अनुसार और भागवत एकादश स्कन्ध नाथ-भागवतके अनुसार। सनातन-धर्म-प्रतिपादक वेद-शास्त्र-पुराण मान्य हैं, वाल्मीकि-रामायण और महाभारत मान्य हैं, सम्प्रदायप्रवर्तक सन्तोंके वचन भी मान्य हैं। 'हरिपाठ' विशेष मान्य है।

(३) *ध्येय*—अभेद-भक्ति, अद्वैत-भक्ति अथवा 'मुक्तिके परेकी भक्ति' ध्येय है। अद्वैत-सिद्धान्त स्वीकार है, पर इस

कौशलसे इस ध्येयको प्राप्त करना कि 'अभेदको सिद्ध करके भी संसारमें प्रेमसुख बढ़ानेके लिये भेदको भी अभेद कर रखना।

अभेदके भेद किया निज अंग।
पावे सारा जग प्रेम सुख॥

ज्ञान और भक्तिकी ऐसी एकरूपता कि 'जो भक्ति है वही ज्ञान है और वही श्रीहरि विट्ठल हैं।'

वही भक्ति वही ज्ञान।
एक विट्ठल ही जान॥

द्वैताद्वैतभावसे एक नारायण ही सर्वत्र व्याप्त हैं, इस अनुभवको प्राप्त करना ही ध्येय है।

(४) *मुख्य साधन*—नवविधा भक्ति, उसमें भी विशेषरूपसे अखण्ड नाम-स्मरण और निरपेक्ष हरि-कीर्तन मुख्य साधन है।

(५) *मुख्य मन्त्र*—'राम-कृष्ण-हरी' यही मुख्य मन्त्र है। श्रीहरिके अनन्त नाम सभी स्मरणीय हैं। विष्णुसहस्रनाम भी विशेष मान्य है।

(६) *भक्तराज*—गरुड़, हनुमान् और पुण्डलीक।

(७) *आदिगुरु*—शङ्कर, हरि-हरमें पूर्ण अभेद।

(८) *मुख्य महन्त*—नारद, प्रह्लाद, ध्रुव, अर्जुन, उद्धवके समान ही 'निवृत्ति ज्ञानदेव सोपान मुक्ताबाई। एकनाथ नामदेव तुकाराम' मुख्य महन्त हैं। इन्होंने जिन सन्तोंको माना है वे भी मान्य हैं।

(९) *सन्त-नाम-स्मरण*—'जय-जय राम कृष्ण हरी' अथवा 'जय विट्ठल' या 'विठोबा रखुमाई' इन भगवन्नाम-मन्त्रोंके समान ही 'ज्ञानेश्वर माउली तुकाराम', 'ज्ञानदेव नामदेव एका तुका', 'भानुदास एकनाथ', 'दत्त जनार्दन एकनाथ' ये सन्त-नाम-मन्त्र भी तारक हैं। 'देव ही सन्त, सन्त ही देव' यही सिद्धान्त है।

(१०) *पूज्य*—सन्त, गो, विप्र और अतिथि पूज्य हैं। भगवान् श्रीकृष्णने इन्हें पूज्य माननेका जो दृष्टान्त अपने आचरण-से दिखा दिया वह अनुल्लङ्घनीय है। द्वारपर वृन्दावन, गलेमें तुलसीकी माला और भगवान्के लिये तुलसीका हार आवश्यक है।

(११) *महाव्रत*—एकादशी और सोमवार। आषाढ़ी एका-दशी तथा कार्तिकी एकादशीके अवसरपर पण्ढरीकी यात्रा। कम-से-कम इनमेंसे एक एकादशीको तो पण्ढरीकी यात्रा अवश्य ही करना और इस नियमको अन्ततक चलाये जाना। महाशिवरात्रि-को व्रत रखना।

(१२) *महातीर्थ*—महातीर्थ चन्द्रभागा और महाक्षेत्र पण्ढरपुर, त्र्यम्बकेश्वर, आलन्दी, पैठण, सासवड, देहू इत्यादि सन्त-स्थान भी महाक्षेत्र ही हैं। गङ्गा, गोदा, यमुना आदि तीर्थ तथा काशी, द्वारका, जगन्नाथादि क्षेत्र मान्य हैं।

(१३) *वर्ज्य*—परस्त्री, परधन, परनिन्दा और मद्य-मांस सर्वथा वर्ज्य हैं। हिंसा सर्वदा, सर्वत्र और सबके लिये वर्ज्य है। काया, वाचा, मनसा अहिंसा-व्रत पालन करना आवश्यक है।

(१४) *आचार*—जिसका जो वर्ण-धर्म, जाति-धर्म, आश्रम-धर्म और कुल-धर्म हो उसका वह अवश्य पालन करे। 'कुल-धर्म-

में दक्ष रहे, विधि-निषेधका पालन करे' पर जो कुछ करे वह भगवान्‌को प्रसन्न करनेके लिये करे, यह शास्त्रों और सन्तोंका उपदेश सर्ववन्द्य है। ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं—'इसलिये अपना कर्म जो जाति-स्वभावसे प्राप्त हुआ हो उसे करनेवाला पुरुष कर्म-बन्धको जीत लेता है।' (ज्ञानेश्वरी अ० १८–९३२)

(१५) परोपकार-व्रत—'सर्वं विष्णुमयं जगत् ।' यह मानना कि 'विष्णुमय जगत् है' यही 'वैष्णवोंका धर्म है।' (तुकाराम), 'सब भूतोंमें भगवद्भाव' धारण करो। (एकनाथ), 'जो कुछ भी देखो उसे भगवान् मानो, यही मेरा निश्चित भक्तियोग है।' (ज्ञानेश्वरी अ०१०–११८) इस उदार तत्त्वको ध्यानमें रखकर समता और दयाका व्यवहार सबके साथ करते हुए तन-मन-वाणी-से सबके काम आना ही भूतपतिकी सेवा है।

३ भागवत-धर्म

वारकरी सम्प्रदायके ये मुख्य सिद्धान्त हैं। भागवत-धर्मके इन सिद्धान्तोंको मानकर तथा मानते हुए वारकरी पाण्डुरङ्गकी उपासना आरम्भ करता है। तुकारामजीके पूर्व ये ही सिद्धान्त वारकरियोंमें प्रचलित थे और उन्होंने अपने चरित्रबल तथा उपदेश-के द्वारा इन्हीं सिद्धान्तोंका प्रचार किया। भागवतधर्म कोई निराला क्रान्तिकारी धर्म नहीं है, वैदिक धर्मका ही यह सर्वसंग्राहक, अत्यन्त मनोहर और लोकप्रिय रूप है। महाराष्ट्रमें भागवतधर्म जिस रूपमें प्रचलित है वही वारकरी सम्प्रदाय है। कुछ प्राचीन कर्मठ यह समझते हैं कि यह सम्प्रदाय वेदोंके विरुद्ध एक नया सम्प्रदाय है और कुछ आधुनिक सुधारकोंकी भी यही राय है। पर

ये दोनों प्रकारके लोग गलतीपर हैं—'उभौ तौ न विजानीतो !' यथार्थमें यह वारकरी सम्प्रदाय सनातन-धर्म ही है। वर्णाश्रम-धर्म इसे स्वीकार है। इसकी यह शिक्षा है कि विहित कर्मका कोई त्याग न करे। सच्चे वारकरीमें जात्यभिमान नहीं होता और वह किसीसे डाह भी नहीं करता। प्रारब्धवश जिस जातिमें हम पैदा हुए उसी जातिमें रहकर तथा उसी जातिके कर्म करते हुए प्रेमसे नारायणका भजन करें और तर जायँ, इतना ही वह अपना कर्तव्य समझता है। भगवान्‌का भजन ही जीवनका सुफल है, यही इस सम्प्रदायकी शिक्षा होनेसे सब जातियों और वृत्तियोंके लोग एक स्थानमें एकत्र होते हैं और नाम-संकीर्तनका आनन्द लेते और देते हैं। सच्ची महत्ता भगवान्‌के भक्त होनेमें है। सदाचार और हरिभजनसे काम है। ऐसे प्रेमी वारकरियों अर्थात् मोक्षमार्गी सज्जनोंका संग तुकारामजीने पकड़ा और उसी मार्गपर सदा दृढ़ रहे। सम्प्रदाय घरका ही था, पर वैराग्य होनेके बाद उसमें उनका मनोयोग हुआ।

४ अभ्यास

अनुताप होनेके बाद सम्प्रदाय ग्रहण करनेसे उसकी सजीवता प्रतीत होने लगती है। तुकारामजीने अन्य वारकरियोंके सत्संगसे वे-नागे पण्ढरीकी वारी, एकादशी-महाव्रत, अहोरात्र हरिजागरण, कीर्तन-भजन और नाम-स्मरण, हरि-कीर्तनकी ताकमें रहना, कीर्तन-भजन, पुराण आदिके श्रवणका अवसर हाथसे जाने न देना, कोई भजन या कीर्तन करने खड़ा हो तो 'भावसे चित्तको शुद्ध करके' उसके पीछे खड़े होना, ध्रुवपद गाना, धीरे-धीरे वीणा हाथमें लेकर स्वयं

कीर्तन करना और कीर्तनके लिये आवश्यक पाठ-पाठान्तर करना, ग्रन्थोंको देखना, अर्थका मनन कर स्वयं अर्थरूप होकर उसमें रँग जाना और इसी आनन्दमें सदा रहना इत्यादि अभ्यास किया।

५ एकादशी-महाव्रत

वारकरी सम्प्रदायमें एकादशी-महाव्रतकी बड़ी महिमा है। पन्द्रह दिनमें एक दिन निराहार रहकर दिन और विशेषकर रात हरि-भजनमें बिताना ही उपवासका अभिप्राय होता है। संसारके सभी धर्मोंमें[1] मनोवाक्काय-शुद्धिकी दृष्टिसे उपवासका बड़ा महत्त्व माना गया है। हमारे यहाँ सबसे पहले श्रुतिमाताने ही यह बताया है कि उपवास परमात्मप्राप्तिका साधन है। बृहदारण्यकोपनिषद्में 'तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसानाशकेन' यह वचन है। इसका यह अर्थ है कि वेदाभ्यास अर्थात् स्वाध्याय, यज्ञ, तप, दान और अनाशक अर्थात् अशनरहित—अन्न-जलके बिना रहना—ये पाँच भगवत्-प्राप्तिके मार्ग हैं। महाभारत-अनुशासनपर्वके अ० १०५-१०६ में एक दिन, दो दिन, तीन दिन, एक पक्ष और एक वर्षतकके उपवास

१ यहूदियोंमें तिश्री महीनेकी १० वीं तारीखको सबके लिये उपवास धर्मतः आवश्यक है। यहाँतक कि उपवास न करनेवालेके लिये शिरश्छेदका दण्ड-विधान है। मुसलमानोंमें रमजानके रोजे कितनी कड़ाईके साथ पालन किये जाते हैं सो सबको मालूम ही है। जैन और बौद्ध-धर्ममें भी उपवासकी पद्धति है। ईसाई-धर्मकी बात यह है कि स्वयं ईसाने ४० दिन उपवास किया था। आजकल अमेरिकामें उपवाससे रोग दूर करनेकी प्रक्रिया डाक्टर बताने लगे हैं। आरोग्यके विचारसे वे लोग 'लंघन' मानने लगे हैं।

बतलाये हैं। अनाशक, अनशन, निरशन, उपवास (उप=समीप, वास=रहना) इत्यादि शब्दोंसे यही सूचित होता है कि भगवच्चिन्तनमें समय व्यतीत करना ही उपवासका मुख्य हेतु है। भागवतमें एकादशी-माहात्म्य वर्णित है। नवम स्कन्ध अ० ४। ६ में इस विषयमें अम्बरीष राजाका सुन्दर उपाख्यान भी है। द्वादशीके दिन दुर्वासा-मुनि अतिथि होकर आये। उन्हें आनेमें बहुत विलम्ब होनेसे कहीं व्रत भङ्ग न हो इसलिये राजाने तीर्थोदक प्राशन कर लिया। बस, इसी बातसे दुर्वासा अग्निशर्मा हो उठे। उन्होंने अपनी जटासे एक कृत्या निर्माण की और उसे अम्बरीषपर छोड़ा। राजा विष्णु-भक्त थे। विष्णुभगवान्का सुदर्शनचक्र दुर्वासाके पीछे लगा। दुर्वासा घबरा गये और अन्तको लौटकर राजाके पास आये। एक वर्ष उपवासके पश्चात् दुर्वासाके साथ राजाने भोजन करके पारण किया। यह अम्बरीष राजा पण्ढरपुरकी ओर कोई दाक्षिणात्य राजा थे। द्वादशी-बारस, बार्शीमें उसकी राजधानी थी। बार्शीमें अब भी भगवान्का सुन्दर मन्दिर है। पण्ढरीकी यात्रा करके बहुत-से यात्री बार्शीमें भी भगवान्के दर्शन करते और घर लौटते हैं। अम्बरीष राजा बड़े धार्मिक, उदार और पराक्रमी थे (महाभारत-शान्तिपर्व अ० १२४)। इस प्रकार हमारे यहाँ सामान्यतः उपवासका और विशेषतः एकादशीका माहात्म्य प्राचीनकालसे चला आता है और भागवतधर्मियोंके लिये तो यह महाव्रत ही है। शरीर, वाणी और मनकी पवित्रताके लिये, ध्यान-धारणाकी सुविधाके लिये तथा आत्मचिन्तनके लिये उपवासकी जो पद्धति पहलेसे चली आयी थी और वारकरी-मण्डलमें जिसका इतना माहात्म्य है उस

एकादशीका महाव्रत तुकारामजीने यावज्जीवन पालन किया। उपदेश देते हुए उन्होंने लोगोंसे भी एकादशी करनेको बारम्बार कहा और केवल 'पिण्डपोषी' आलसियोंको तीव्र शब्दोंसे धिक्कारा है।

एकादशीको अन्नपान। जो नर करते भोजन।
श्वान विष्ठा समान। अधम जन हैं वे ॥१॥
सुनो व्रतका महिमान। नेम आचरते जन।
सुनते गाते हरिकीर्तन। वे समान विष्णूके ॥ध्रु०॥
सेज साज विलास-भोग। करते कामिनीका संग।
होता उनके क्षयरोग। जन्मव्याधि भयंकर ॥२॥

'एकादशीको जो लोग अन्न-जल ग्रहण करते, भोजन करते हैं उनका वह भोजन श्वानविष्ठाके समान है और वे लोग अधम हैं। सुनिये, इस व्रतकी महिमा ऐसी है कि जो लोग इस व्रतका आचरण करते हैं, हरिका कीर्तन करते और सुनते हैं, वे विष्णुके समान होते हैं। जो लोग चारपाईपर सोते और विलास-भोग भोगते हैं, कामिनीका संग करते हैं उन्हें क्षयरोग होता है, यावज्जीवन महाव्याधि भोगते हैं।'

एकादशीको पान खानेसे लेकर सब प्रकारके विलासोंका त्याग बताया है। उपवाससे शरीर हलका होता है, मन उत्साही और बुद्धि सूक्ष्म होती है और तुकारामजीको इसमें जो सबसे बड़ा अनुभव प्राप्त हुआ वह यह कि इससे हरि-भजनका कार्य बहुत ही अच्छा होता है। इसीसे उन्होंने इतनी आस्थाके साथ इतनी तीव्र भाषाका प्रयोग किया है।

तुकारामजी कहते हैं—

'एकादशी और सोमवारका व्रत जो लोग नहीं पालन करते उनकी न जाने क्या गति होगी ! क्या करूँ, इन बहिर्मुख अन्धोंको देखकर जी छटपटाता है !'

एकादशीके दिन नाना प्रकारकी मिठाइयाँ और नमकीन चीजें बनाकर खानेकी लोगोंको जो चाट पड़ गयी है उसे भी तुकाजीने धिक्कारा है। कहते हैं, 'जिस एकादशीसे हरि-कथा-श्रवण और वैष्णवोंका पूजन होता है उस एकादशीका व्रत तुम क्यों नहीं पालन करते ? सांसारिक कामोंके लिये कितने जागरण करते हो ? रातको कीर्तनका आनन्द भोग करने मन्दिरोंमें क्यों नहीं जाते ? क्या मन्दिरोंमें जानेसे मर जाओगे और उपवास करनेसे क्या तुम्हारा शरीर नहीं चलेगा ? तुकारामजी कहते हैं क्यों इतने सुकुमार बने हो ? यमदूतोंको क्या जवाब दोगे ? एकादशी व्रत करो, भरपेट भोजन मत करो, हरि-जागरण करो' इत्यादि चिल्ला-चिल्लाकर कहनेकी तुकारामजीको क्या पड़ी थी ? तुकारामजी कहते हैं—

'क्या करूँ, मुझसे भगवान्‌ने कहलाया, नहीं तो मुझे क्या पड़ी थी (जो मैं कुछ कहता) ?

अस्तु, एकादशी महाव्रत तुकारामजीने यावज्जीवन पालन किया, यही नहीं, प्रत्युत इस सम्बन्धमें उन्होंने बड़ी आस्थाके साथ लोगोंको भी बोध* कराया है।

---

* तुकाराम महाराजके सदृश ही नामदेव और एकनाथ महाराजने एकादशी-व्रतके संबन्धमें लोगोंको उपदेश किया है। समर्थ श्रीरामदास-स्वामीने 'हरिपञ्चक'में कहा है, 'जो हरिको पाना चाहता हो वह हरिदिनी

६ सम्प्रदायमें मिल जानेका रहस्य

जो लोग आधुनिक हैं वे यह कहेंगे कि 'एकादशीका इतना विस्तार करनेकी क्या आवश्यकता थी ? जिसकी श्रद्धा हो वह एकादशी करे, न हो न करे, जिसके जीमें आवे भोजन करे या फलाहार करे या भूखा रहे, उससे क्या आता-जाता है ? उसको इतना बढ़ाकर कहनेकी क्या जरूरत थी ?' पर बात ऐसी नहीं है। यह धर्मशास्त्रकी आज्ञा है, यह तो एक बात है ही, पर इसके अतिरिक्त जो मनुष्य जिस समाज या सम्प्रदायमें रहता और बढ़ता है उस समाजके जो मुख्य-मुख्य नियम होते हैं उनका पालन करना उसके लिये आवश्यक है क्योंकि इसके बिना वह उस समाजके साथ एकरूप नहीं हो सकता। जबतक समाजको यह विश्वास नहीं होता कि यह भी हमारा ही समानधर्मीय भाई है, हंसोंके मेलेमें घुसकर बैठा हुआ काग नहीं तबतक वह उस समाजसे हिल-मिल नहीं जाता और जबतक वह समाजसे हिल-मिल नहीं जाता तबतक सम्प्रदायके अन्तरंग और वास्तविक रहस्यसे वह कोरा ही रहता है। उपवाससे यदि चित्त शुद्ध होता है तो किसी भी दिन उपवास करनेसे हुआ, उसके लिये जैसी एकादशी वैसी ही सप्तमी, जैसा सोमवार वैसा ही बुधवार ! इस प्रकारके वितण्डावादसे किसीका कोई लाभ नहीं हो सकता। सम्प्रदाय जहाँ होगा वहाँ उसके साथ नियम भी होंगे ही। सम्प्रदायके अनुष्ठानके विना ज्ञानकी सिद्धि नहीं और नियमों-

---

करे, 'एकादशी व्रत नहीं, वैकुण्ठका महापंथ है।' (एकादशी नव्हे व्रत। वैकुंठीचा महापंथ ॥')

के बिना सम्प्रदाय नहीं। यही संसारका इतिहास देखकर कोई भी समझदार मनुष्य समझ सकता है। इसके अतिरिक्त परम्परासे जो नियम चले आये हैं और सहस्रों लाखों मनुष्य जिनका पालन करते हैं उन नियमोंको एक प्रकारकी स्थिरता और पूज्यता प्राप्त होती है। एकादशी-व्रत करनेवाले भक्तोंका समुदाय किसी देव-मन्दिरमें हरि-कीर्तनके लिये एकत्र हुआ हो और वहाँ कोई अहंमन्य पुरुष ताम्बूल चर्वण करता हुआ आकर बैठ जाय तो यह बात उस समाजको प्रिय नहीं हो सकती। सितारके सब तार जब एक सुरमें आ जाते हैं तब जो आनन्द आता है वही आनन्द लोगोंके एकीभूत अन्तःप्रवाहमें मिल जानेसे प्राप्त होता है। पर समाजमें रहकर समाजके ही विपरीत आचरण करनेवाला अहंमन्य पुरुष ऐसे आनन्दसे वञ्चित रहता है। इसमें उसीकी हानि होती है। समाजके नियम समाजमें मिल जानेके आनन्दके लिये अर्थात् स्वहित-साधनके लिये ही पालन किये जाते हैं। एकादशी-व्रत केवल शरीरको हलका करने या आरोग्य-लाभ करनेके लिये ही नहीं पालन किया जाता। यह तो केवल देह-बुद्धिवालोंकी दृष्टि है। यह महाव्रत भगवत्प्रसाद प्राप्त करनेके लिये परमार्थ-दृष्टिसे किया जाता है। आज एकादशी है, व्रत रहना है, रातको हरि-कीर्तनका आनन्द लेना है, यह भाव ही बहुत बड़ी चीज है और यहींसे चित्तशुद्धि आरम्भ होती है। गङ्गास्नान, निराहार या अल्प फलाहार, भक्तोंका समागम, हरि-प्रेमियोंका मिलन, करताल, मृदंग, वीणादि वाद्योंके मधुर ध्वनि, नाम-संकीर्तन, भगवत्कथालाप इत्यादि सब लाभ एकादशी-व्रत करनेसे प्राप्त होते हैं। कम-से-कम उतने समयके

लिये तो प्रापञ्चिक सुख-दुःख भूल जाते हैं और भगवान्‌के आनन्दमें चित्त रमता है। इस एक दिनका अनुभव दृढ़ करनेके लिये नित्यके नियम पालन करनेकी ओर भी ध्यान जाता है और जब नित्याभ्यास सहज-सा हो जाता है तब सच्चा परमार्थ लाभ होता है। बहुतेरोंका यही अनुभव है। तुकारामजीने अपना जो पहला अभ्यास बताया कि 'आरम्भमें मैं एकादशीको हरि-कीर्तन करने लगा, इसका यही बीज है।'

७ वारकरी-सन्त-समागम

एकादशी और हरि-कीर्तनका वसन्त और आम्र-मञ्जरीकी बहारका-सा नित्य सम्बन्ध है। कीर्तन और नामस्मरणके विषयमें एक स्वतन्त्र अध्याय ही आगे आनेवाला है। यहाँ इतना कहना पर्याप्त होगा कि नाम-संकीर्तनका जो सच्चा आनन्द है वह सम्प्रदायको स्वीकार करनेसे प्राप्त होता है! यह आनन्दानुभव तुकारामजीके रोम-रोममें भर गया था। तुकारामजी कहते हैं—

'मेरा आराधन पण्ढरपुरका निधान है। उस एक पण्ढरिराजको छोड़ और कुछ मैं नहीं जानता।'

* * *

'भिखारी बनूँगा, पर पण्ढरीका वारकरी बना रहूँगा। मुखमें श्रीहरिविट्ठलका नाम हो, यही मेरा नियम, यही मेरा धर्म है। मेरे जीके जो जीवन हैं उन्हें इन आँखोंसे देख तो लूँ। अब तो विट्ठल ही मेरे भगवान् हैं, और सब कुछ कुछ भी नहीं है।'

* * *

'भव-सिन्धु कौन-सी बड़ी समस्या है जब आगे-आगे चलकर भगवान् ही रास्ता बता रहे हैं। भगवान् श्रीपाण्डुरङ्गरूप यह अच्छा जहाज मिला। इसमें बैठनेवालेका कोई भी अंग या पैरतक भी भव-जलसे भींगने नहीं पाता। अनेक साधु-सन्त पहले पार उतर चुके हैं। तुका कहता है, चलो जल्दीसे उन्हींके पीछे-पीछे चलें।'

ऐसी एकनिष्ठ साम्प्रदायिक उपास्य-प्रीति तुकारामजीके हृदयमें भर गयी। मेरे पाण्डुरङ्ग-जैसा 'सुख-स्वरूप' और कौन है? उनके पास कोई भी जा सकता है, कोई रुकावट नहीं। 'कहीं दौड़ना-धूपना नहीं, सिर मुँड़ाना नहीं, कोई झगड़ा नहीं।' पण्ढरीमें अन्य तीर्थोंके समान कोई अन्य विधि नहीं है। बस, इतना ही है कि 'चन्द्रभागामें स्नान करो और हरि-कथामें लगो' इतनेसे ही 'चित्तको सब समय समाधान है।' वारकरियोंका 'विट्ठल ही जीवन है, झाँझ-करताल ही धन है।' पर 'भक्ति-सुखसे मोहित' ईंटपर खड़े भगवान्के उस रूपको देखते ही जीमें आता है कि अपना जीवभाव उसपर न्योछावर कर दें। ऐसे भगवत्-प्रेमी वारकरियोंके संग देहू, पण्ढरी या किसी भी यात्रामें जाते हुए जो आनन्द प्राप्त होता है वह अनिर्वचनीय है। तुकारामजी कहते हैं, 'ऐसा समागम पाकर मैं प्रेमसे नाचने लगा।'

'संसारको कौन देखता है? हमारे सखा तो हरि-जन हैं। ब्रह्मानन्दमें ही काल बीतता है और उसीकी इच्छा बनी रहती है।'

वारकरी वीरोंकी महिमा गाते हुए कहते हैं—

'संसारमें एक विष्णुदास ही लड़ाके वीर हैं, उनके तनसे पाप-पुण्य कभी लिपट नहीं सकते। आसनमें, शयनमें, मनमें उनके सर्वत्र

गोविन्द-ही-गोविन्द हैं । ललाटमें ऊर्ध्वपुण्ड्र लगा है, गलेमें तुलसी-माला विलस रही है, उनसे तो कलिकाल भी मारे भयके थर-थर काँपता है । तुका कहता है, उनके नेत्र शंख-चक्रके ही शृंगार देखते हैं और मुखमें नामामृतरूप सार-रस ही भरा रहता है ।'

आषाढ़ी-कार्तिकी वारीका समय जब निकट आता था तब तुकारामजीके उत्साहका क्या पूछना है—

'अब चलो पण्ढरीको, वहाँ चलकर श्रीविट्ठलको दण्डवत् करें । चलो चन्द्रभागाके तीरपर चलकर नाचें । जहाँ सन्तोंका मेला लगा है, वहीं चलकर उनकी पदधूलिमें लोटें । तुका कहता है, हमने अपने प्राण उनके पाँवतले बलि देकर बिछा दिये हैं ।'

जब अन्य वारकरी पण्ढरीकी यात्रामें तुकारामजीके संग हो लें तब तुकारामजी उनसे कहते—

'सुगम मार्गसे चलो और मुखसे विट्ठल-नाम लेते चलो । हम सब लंगोटिया यार ही तो हैं, लाज किसकी करते हो ? आनन्दमें मस्त होकर गला फाड़कर चिल्लाओ । हाथमें गरुडांकित ध्वजा-पताका ले लो, खूब सज-धजके चलो । तुका कहता है, वैकुण्ठका यही अच्छा और समीपका रास्ता है ।'

पण्ढरीमें देवदर्शन और सन्तोंके मेलेमें कीर्तनका आनन्द प्राप्त कर तुकारामजी कहते—

'बहुत काल बाद पुण्यका उदय हुआ, मेरा भाग्योदय हो गया जो सन्त-चरणोंके दर्शन हुए । आज मेरी इच्छा पूर्ण हुई । भव-दुःख दूर हुआ । सुन्दर श्याम परब्रह्म ही सर्वत्र सम्मुख व्याप्त

हुआ। सन्तोंके आलिंगनसे मेरी काया दिव्य हो गयी। उन्हींके चरणोंपर अब यह मस्तक रख दिया।'

*　　　　*　　　　*

जिस संगसे भगवत्प्रेम उदय होता है वही संग करनेकी इच्छा भी स्वभावतः ही बढ़ती है। 'सदा सन्त-संग होनेसे महान् प्रेमकी वर्षा होती है (संतसंगतीं सर्वकाळ थोर प्रेमाचा सुकाळ ॥)।' वारकरी भक्तों और सन्तोंके प्रति तुकारामका ऐसा प्रेम और आदर था, और उससे उन्हें अपूर्व भगवत्प्रेमका अनुभव भी होता था। इसीलिये उनके मुँहसे ऐसे उद्गार निकलते थे कि 'जहाँ साधु-सन्तोंका मेला लगता है वहीं तुका लोट जाता है' अथवा 'तुका कहता है कि सन्तोंके मेलेमें जाकर उनके चरणोंकी रजको वन्दन करूँगा।' तुकारामजीने एक स्थानमें यहाँतक कहा है कि सन्तोंके द्वारपर श्वान होकर पड़े रहना भी बड़ा भाग्य है, क्योंकि वहाँ उच्छिष्ट प्रसाद मिलता है और भगवान्‌का गुण-गान सुननेमें आता है।

८ कीर्तन-सौख्य

अपने समश्रद्ध समानधर्मी भाइयोंके सम्बन्धमें तुकारामजीके ये उद्गार हैं। एक ही उपास्यकी उपासना करनेवाले उपासक बन्धुप्रेमसे एक दूसरेके साथ बँध जाते हैं। उनका उपास्य, उनके आचार-विचार, उनकी उपासना-पद्धति, उनके नित्य-नियम, आहार-विहार, रुचि-अरुचि, भाव-स्वभाव विशिष्ट प्रकारके बनते हैं और उनमें स्वभावतः ही बन्धुप्रेम उत्पन्न होता है। वारकरियोंकी भी यही बात है। गाँव-गाँव वारकरियोंकी जो मण्डलियाँ हैं उनको देखनेसे यह ज्ञात होगा कि ये लोग प्रायः रातको, विशेष कर प्रति एकादशी और

गुरुवार अथवा सोमवारको एकत्र होकर भजन करते हैं। फिर आषाढ़ी-कार्तिकीके अवसरपर ये लोग मण्डली बाँधकर ही भजन-कीर्तन करते, आनन्दसे नाचते-गाते हुए पण्ढरी जाते हैं। कुछ नियमनिष्ठ वारकरी ऐसे भी होते हैं जो प्रतिमास पण्ढरीकी वारी करते हैं। मुख्य वारी आषाढ़ी-कार्तिकीकी है और यही साधारणतः लोग करते हैं, कुछ मासिक वारी करते हैं और कुछ आषाढ़ी-कार्तिकीके अतिरिक्त चैत्रकी वारी भी करते हैं। किसी भी मासकी शुक्ल-एकादशी देवताओंकी मानी जाती है और कृष्ण-एकादशी सन्तोंकी मानी जाती है, इसलिये शुक्लपक्षकी सब वारियाँ पण्ढरीकी होती हैं। इस प्रकार अत्यधिक नियमी वारकरियोंके मेलोंमें ही तुकाजीका जीवन बीता, इस कारण वारकरियोंके साथ यह भी वारकरियोंके ही मार्गपर चले। वारकरियोंका मुख्य साधन भजन और कीर्तन है। ऊँच-नीच, ब्राह्मण-चाण्डाल, पुण्यवान्-पापी सभी संसारके अधीन होनेके कारण भगवान्के सामने दीन-हीन ही होते हैं। कीर्तनका अधिकार सबको है।

दीन आणि दुर्बळांशी। सुखराशी हरि-कथा ॥

'दीन और दुर्बलोंके लिये हरि-कथा सुखकी राशि है।'

* * *

कीर्तन चांग कीर्तन चांग। होय अंग हरिरूप ॥१॥
प्रेमछन्दें नाचे डोले। हार पला देह भाव ॥२॥

'कीर्तन बड़ी अच्छी चीज है। इससे शरीर हरिरूप हो जाता है। प्रेमछन्दसे नाचो डोलो। इससे देहभाव मिट जायगा।'

कीर्तनानन्दमें मग्न होनेवाले किसी भी भक्तको तुकारामजीका-सा यही अनुभव प्राप्त हुआ करता है। कीर्तन करनेवाला स्वयं तर जाता है और दूसरोंको भी तारता है। भक्त भगवत्कीर्ति गाता है; इसलिये भक्तवत्सल भगवान् उसके आगे-पीछे उसके बन्धनोंको काटते हुए सञ्चार करते हैं। कीर्तनका रहस्य निम्नलिखित अभंगमें तुकारामजीने बहुत ही अच्छी तरहसे बतलाया है—

कथा त्रिवेणीसंगम। देव भक्त आणि नाम।
तेथीचें उत्तम। चरण-रज वंदितां ॥ १ ॥
जळती दोषांचे डोंगर। शुद्ध होती नारीनर।
गाती ऐकती सादर। जे पवित्र हरिकथा ॥२॥
(कथा त्रिवेणीसंगम। भक्त भगवंत नाम।
वहाँकी उत्तम। पदरज वंदनीय ॥ १ ॥
जलते दोषोंके पर्वत। शुद्ध होते नारीनर।
गाते सुनते सादर। जो पवित्र हरि-कथा ॥२॥)

* * *

हरिकीर्तनमें भगवान्, भक्त और नामका त्रिवेणीसंगम होता है। कीर्तनमें भगवान्के गुण गाये जाते हैं, नामका जय-घोष होता है और अनायास भक्तजनोंका समागम होता है। कथा-प्रयागमें ये तीनों लाभ होते हैं। इनमेंसे प्रत्येक लाभ अमूल्य है। जहाँ ये तीनों लाभ एक साथ अनायास प्राप्त होते हैं उस हरि-कथामें योग दानकर आदरपूर्वक उसे श्रवण करनेवाले नर-नारी यदि अनायास ही तर जाते हैं तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? हरि-कथा पवित्र, फिर उसे गानेवाले जब पवित्रतापूर्वक गाते और सुननेवाले जब

पवित्रतापूर्वक सुनते हैं तब ऐसे हरि-कीर्तनसे बढ़कर आत्मोद्धार और लोकशिक्षाका और दूसरा साधन क्या हो सकता है ? प्रेमी भक्त प्रेमसे जहाँ हरि-गुण-गान करते हैं भगवान् तो वहाँ रहते ही हैं। भगवान् स्वयं कहते हैं—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

ज्ञानेश्वर महाराजने कीर्तन-भक्तिके आनन्दका बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है (ज्ञानेश्वरी अ० ९—१९७—२११)। 'कीर्तनके नटनृत्यमें प्रायश्चित्तोंके (अथवा प्रायः चित्तोंके) सब व्यवसाय नष्ट हो जाते हैं। यम-दमादि योग-साधन अथवा तीर्थ-यात्रादि जीवोंके पाप धो डालते हैं सही, पर कीर्तन-रङ्गमें रँगे हुए प्रेमियोंमें तो कोई पाप ही नहीं रह जाता। कीर्तनसे संसारका दुःख दूर होता है। कीर्तन संसारके चारों ओर आनन्दकी प्राचीर खड़ी कर देता है और सारा संसार महासुखसे भर जाता है। कीर्तनसे विश्व धवलित होता और वैकुण्ठ पृथ्वीपर आता है।' यह कहकर ज्ञानेश्वर महाराज भगवान्की उपर्युक्त उक्तिका रहस्य अपनी वाणीसे बतलाते हैं—

तो मी वैकुंठीं नसे। वेळ एक भानु बिंबीं ही न दिसे।
वरी योगियांचीं ही मानसें। उमरडोति जाय॥२०७॥
परी तयां पाशीं पांडवा। मी हरपला गिंवसावा।
जेथ नामघोष बरवा। करिती माझा॥२०८॥

अर्थात् 'मैं नित्य वैकुण्ठमें, सूर्यमण्डलमें अथवा योगि-जन-मन-निकुञ्जोंमें रहता हूँ। पर ऐसा हो सकता है कि कभी इन तीन

स्थानोंमेंसे कहीं भी मैं न मिलूँ; परन्तु मेरे भक्त जहाँ प्रेमसे मेरा नाम-संकीर्तन करते हैं वहाँ तो मैं रहता ही हूँ—मैं और कहीं न मिलूँ तो मुझे वहीं ढूँढ़ो।' इन मधुर ओवियोंमें ज्ञानेश्वर महाराजने ऊपरके श्लोकका अनुवाद ही किया है। तुकोबारायने भी कहा है—

माझे भक्त गाती जेथें। नारदा मी उभा तेथें॥१॥

'नारद! मेरे भक्त जहाँ गाते हैं वहीं मैं खड़ा रहता हूँ।'

तात्पर्य, कीर्तनमें भगवान्, भक्त और नामका संगम होता है और इसीसे कीर्तनमें छोटे-बड़े सब अनायास ऐसा अपार भक्ति-सुख लाभ करते हैं कि देखकर ब्रह्माजीके भी लार टपकने लगती है। तुकारामजीको पहले कीर्तन सुननेका चसका लगा, पीछे स्वयं कीर्तन करनेकी इच्छा हुई और फिर इस कीर्तन-भक्तिका परम उत्कर्ष हुआ।

सिवाय कीर्तन करूँ न अन्य काज। नाचूँ छोड़ लाज तेरे रंग॥

'तेरा कीर्तन छोड़ मैं और कोई काम न करूँगा। लज्जा छोड़कर तेरे रंगमें नाचूँगा।' कीर्तनमें, बल्कि यह कहिये कि परमार्थमें प्रथम प्रवेश जब होता है तब लज्जा बड़ी बाधक होती है, पर साधक जब कीर्तन-रंगमें रँग जाता है तब 'निर्लज्ज' कीर्तन आप ही अभ्यस्त हो जाता है।

९ कीर्तनके नियम

कीर्तन इस प्रकार श्रोता, वक्ता सबको हरि-मार्गपर ले आनेका मुख्य साधन होनेसे यह आवश्यक होता है कि उसमें नियम-

मर्यादा भी हो। वारकरियोंमें यह मर्यादा पहलेसे ही थी, तथापि इस मर्यादाका स्वरूप तुकारामजीके वचनोंसे ही जान लेना अधिक अच्छा होगा। 'कथाकालकी मर्यादा' वाले अभंगमें उन्होंने कीर्तन-के मुख्य नियम बताये हैं—(१) सप्रेम अन्तःकरणसे जो कोई 'ताल-वाद्य-गीत-नृत्यकी' सहायतासे भगवान्‌के नाम और गुण गाता है उसे भगवद्रूप ही मानना चाहिये, और उसे नम्रतापूर्वक वन्दन करना चाहिये। (२) जबतक कथा हो रही हो तबतक कायदेसे बैठे, कथामें बैठे आलस्यवश अँगड़ाई न ले, पुट्ठे टेढ़े करके न बैठे, पान चबाते हुए कथामें न जाय, मुँह स्वच्छ करके कथामें बैठे, नामसंकीर्तनमें चित्त लगावे, कीर्तनके समय और बातें न करे, मानकी इच्छा न करे, अपना बड़प्पन न दिखावे, कीमती वस्त्र पहनकर फिर उन्हें कहीं धूल न लगे इसी चिन्तामें उन कपड़ोंको ही सँभालनेमें न लगा रहे, बड़ोंको रेलकर छोटे न बैठें, उच्च स्थानमें बैठकर कीर्तन करनेवालेको नीचा न देखे; इन नियमोंका पालन करना चाहिये। (३) किसीके दोषोंका ध्यान न करे। इस प्रकार कीर्तन और कीर्तनकारकी मर्यादा रखते हुए देह-बुद्धिके ढंग चित्तमें न आने दे। ये नियम श्रोताओंके लिये हुए। वक्ताके लिये भी उन्होंने नियम बताये हैं। वक्ताका सम्मान बड़ा है। 'सबसे पहले वक्ता-का सम्मान करे' अर्थात् श्रोताओंमें यदि कोई योगी-यती आदि भी हों तो भी चंदन, अक्षत आदिसे पहले वक्ताका ही पूजन होना चाहिये। वक्ताका मान जितना बड़ा है, उत्तरदायित्व भी उसपर उतना ही बड़ा है। पहली बात यह है कि जो कीर्तनकार हों वे निरपेक्ष कीर्तन करें। धन या मान किसीकी भी इच्छा न

करें। कीर्तनका मूल्य न लें। मार्ग-व्ययादि भी न लें। हरि-कथा करके जो अपना पेट भरता है, तुकारामजीने उसे चाण्डाल कहा है। 'कीर्तनाचा विकरा तें मातेचें गमन (कीर्तनका विक्रय मातृगमन है।)'

कन्या गो करे कथा विक्रय।
चांडाल निश्चय जान उसे॥

'कन्या, गौ और हरि-कथाको जो बेचता है, यथार्थमें वही चाण्डाल है—चाण्डाल नाम उसीका है।' हरि-गुण-कीर्ति हरिके दासोंकी माता है, उसे बेचना लज्जाजनक और नरकप्रद है।

कथा करके जो द्रव्य लेते देते।
अधोगति पाते नरक वास॥

'कथा करके जो द्रव्य देते-लेते हैं उनकी अधोगति होती है और उन्हें नरकवास मिलता है।' कीर्तनकारकी वाणी चाहे मधुर न हो, उसमें कोई हरज नहीं। तुकारामजी कहते हैं, 'मधुर वाणीके फेरमें ही मत पड़ो।' स्वभावसे ही यदि वह मधुर हो तो 'यह तो भगवन्! आपहीका दान है' यह सोचकर उसे भगवान्‌के ही गुण-गानमें लगा दो। भगवान्‌को ऊँची तान या टेढ़े-मेढ़े अलाप पसन्द नहीं हैं। भगवान् भावके भूखे हैं।

सुनो नहिं कानों ऐसे जो वचन। भक्ति विन ज्ञान कहें कोई॥१
बखानें अद्वैत भक्ति भाव हीन। पाते दुख जन श्रोता वक्ता॥२॥

'भक्तिके बिना जो व्यर्थ ज्ञान बतलाता है उसकी बातें कानोंसे न सुने। भाव-भक्तिके बिना जो अद्वैतकी स्तुति करता है उससे श्रोता-वक्ता दुःख ही पाते हैं।'

ज्ञान-भक्ति कहे पर भगवद्भक्तभाव तोड़नेवाला ज्ञान कोई न

कहे। एकनाथ महाराजने भी 'सगुण चरित्रें परम पवित्रें हरिची वर्णावीं' इस पदमें वही बात कही है। 'वाणी ऐसी निकले कि हरिकी मूर्ति और हरिका प्रेम चित्तमें बैठ जाय, वैराग्यके साधन बतावे, भक्ति और प्रेमके सिवा अन्य व्यर्थकी बातें कथामें न कहे। अद्वय भजन, अखंड स्मरण, करोंसे ताल देकर गावे-बजावे।' कीर्तन करते हुए हृदय खोलकर कीर्तन करे, कुछ छिपाकर, चुराकर न रखे। 'कीर्तन करने खड़े होकर जो कोई अपनी देह चुरावेगा, उसके पापको कौन नाप सकता है? कीर्तन हो रहा हो और बीचमेंसे ही कोई उठकर चला जाय, कथाकी मर्यादाका उल्लंघन करे, 'निद्राका आदर करे, जागरणसे भाग जाय' वह अधम है। तात्पर्य, श्रोता-वक्ता कीर्तनकी मर्यादाका पालन करें और जितनी इच्छा हो, हरि-प्रेमानन्द लूटें।

१० साधनोंका प्राण सद्भाव

पण्ढरीकी वारी, एकादशी-व्रत, सत्समागम, नाम-संकीर्तन इत्यादि साधनोंका चसका लगानेवाली जो मुख्य जीकी बात है वह है शुभेच्छा या सद्भाव। भाव हो, शुद्ध भाव हो तो ही साधन सफल होते हैं अन्यथा ये ही साधन तथा ऐसे अन्य साधन भी मान और दम्भके कारण बन जाते हैं। गीतामें भगवान्‌ने कहा है, जो श्रद्धावान् होगा उसीको ज्ञान प्राप्त होगा। भाव होगा तो भगवान् मिलेंगे। सन्तोंने स्थान-स्थानमें कहा है कि भाव ही तो भगवान् हैं। उद्गम जहाँसे होता है वह निर्झर, अन्तःकरणका अन्तर्भाव हो तो ही साधन फलदायक होते हैं। पण्ढरी, चन्द्रभागा, पुण्डरीक, साधु-सन्त, देव-प्रतिमा, करताल, वीणा, व्रत, जप, तप सभी उत्तम

और पावन साधन हैं, पर जो साधना चाहे उसमें भी तो अपने साधनके विषयमें निर्मल पावन बुद्धि हो जिसके होनेसे ही साधन साध्यको प्राप्त करा देते हैं। और तो क्या, साधनोंके विषयमें यदि श्रेष्ठतम सद्भाव हो तो साधन ही साध्य बन जाते हैं, साध्य-साधनोंकी एकात्मता प्रत्यक्ष हो जाती है। बाह्योपचारोंसे भगवान् प्रसन्न नहीं होते। 'बाह्य उपचारोंसे मैं किसीके ध्यानमें नहीं उतरता' (ज्ञानेश्वरी अ० ९—३६७)। मँगनी लिया हुआ भाव नहीं ठहरता, वह केवल बाह्याडम्बर है। 'नटनाट्यका सारा स्वाँग रचा' तो इस स्वाँगसे हृदयस्थ नारायण नहीं ठगे जाते। भाव जितना अकृत्रिम, स्वाभाविक और शुद्ध हो, भगवान् उतने ही प्रकट हैं। साधन व्यर्थ नहीं हैं, साधनोंसे भाव बलवान् होता है, यह सच है; परन्तु निर्मल भाव ही साधन-वनका वसन्त है। भाव भगवान्की देन है, पूर्व सुकृतका फल है, पूर्वजोंका पुण्य-बल है। भावके नेत्र जहाँ खुले वहीं सारा विश्व कुछ निराला ही दिखायी देने लगता है। भगवान् भावुकोंके हाथपर दिखायी देते हैं, पर जो बुद्धिमान् अपनेको लगाते हैं वे मर जाते हैं तो भी भगवान्का पता नहीं पाते। ज्ञानके नेत्र खुलनेसे ग्रन्थ समझमें आता है, उसका रहस्य खुलता है, पर भावके बिना ज्ञान अपना नहीं होता। ज्ञानके विज्ञान होनेके लिये, ज्ञानरहस्य हस्तगत होनेके लिये, भगवान्से मिलन होनेके लिये भावका ही होना आवश्यक है। चित्त यदि भगवच्चिन्तनमें रँग जाय तो वह चित्त ही चैतन्य हो जाता है, पर चित्त शुद्धभावसे रँग जाय तब।

भाव तैसें फळ। न चले देवापाशीं बळ ॥१॥

'जैसा भाव वैसा फल । भगवान्‌के सामने और कोई बल नहीं चलता ।'

* * * *

भावापुढें बळ। नाहीं कोणाचें सबळ ॥१॥

करी दैवावरी सत्ता। कोणत्याहूनी परता ॥२॥

'भावके सामने किसीका बल प्रबल नहीं है। दैवपर जिसका शासन चलता है उससे बड़ा और कौन है ?'

* * * *

'पत्थरकी ही सीढ़ी और पत्थरकी ही देवप्रतिमा' होती है, पर एकपर हम पैर रखते हैं और दूसरेकी पूजा करते हैं। नलका भी जल है और गंगाजल भी जल ही है। पर भावसे ही प्रतिमाको देवत्व प्राप्त होता है और भावसे ही गंगाजलको तीर्थत्व प्राप्त होता है। यह भाव जिसके पास है उसीके पास भगवान् हैं। भाव ही भगवान् हैं। 'विश्वासाची धन्य जाती। तेथें वस्ती देवाची ॥' (विश्वासकी जाति धन्य है, वहीं भगवान्‌की बसती है।) इसमें सन्देह ही क्या है ? सन्देह, कुतर्क, विकल्प ही महापाप है और भाव ही महापुण्य है। ऐसा निर्मल भाव तुकोबाके चित्तमें उदय होनेसे उनके सब साधन सफल हुए। उन्होंने स्वयं ही एक अभंगमें कहा है 'लागला झरा अखंड आहे। तुका म्हणे साहे झालें अंतर ॥' (अखंड निर्झर झर रहा है, तुका कहता है कि अन्तर ही सहाय हुआ।) 'आहा आहारे भाई' वाले मधुर अभंगमें उन्होंने यह वर्णन किया है कि भावुक भक्तोंकी दृष्टि कितनी उज्ज्वल होती है।

गंगा नहीं जल । वृक्ष नहीं वट पीपल ।
तुलसी रुद्राक्ष नहीं माल । श्रेष्ठ तनु श्रीहरिकी ॥१॥

'गंगा जल नहीं है[1], वड़, पीपल वृक्ष नहीं है[2], तुलसी और रुद्राक्ष माला नहीं हैं । ये सब भगवान्‌के श्रेष्ठ शरीर हैं ।' इसी प्रकार साधु-सन्त सामान्य जन नहीं हैं, लिंगादि देवप्रतिमाएँ पत्थर नहीं हैं, गरुड केवल पक्षी नहीं हैं, नन्दिकेश्वर साँड़ नहीं हैं, वराह सूअर नहीं हैं, लक्ष्मी स्त्री नहीं हैं, रामरस रेत नहीं है, हीरे कङ्कड़ नहीं हैं, द्वारावती गाँव नहीं है । कारण, इनके दर्शन-सेवनसे मोक्ष प्राप्त होता है । 'कृष्ण भोगी नहीं हैं, शंकर जोगी नहीं हैं ।' पर तुकोबाराय ! ऐसा विमल भाव आपको कहाँसे मिला ?—'तुका कहता है, पाण्डुरङ्गसे यह प्रसाद मिला ।' भगवान् श्रीविट्ठलदेवके कृपाप्रसादसे तुकोबाको यह शुद्ध भाव प्राप्त हुआ और इसलिये उनके सब साधन सफल हुए, इस भावसे उन्हें भगवान् मिले । 'तुका ह्मणे होता ठेवा । तो या भावा सांपडला ।' (तुका कहता है, निधि रखी हुई थी सो इस भावसे मिल गयी ।) अर्थात् इस भावने मुझे अपने स्वरूपका ज्ञान करा दिया । भाव न हो तो साधन व्यर्थ हैं । 'तीर्थको जो जल समझता है, प्रतिमामें जो पत्थर देखता है, सन्तोंको जो मनुष्य समझता है वह अधम है ।' ऐसे लोग जो भी साधन करते हैं

---

१. 'स्रोतसामस्मि जाह्नवी' (गीता १० । ३१) ।

२. 'अश्वत्थः सर्ववृक्षाणाम्' (गीता १० । २६) ।

कल्पवृक्ष, पारिजात और चन्दन गुणमें प्रसिद्ध हैं, पर इन सब वृक्षोंमें अश्वत्थ वृक्ष मैं हूँ । (ज्ञानेश्वरी अ० १० । २३५)

तुकाराम स्पष्ट ही बतलाते हैं कि वे साधन 'वन्ध्या-सहवासके समान' व्यर्थ होते हैं। तात्पर्य, सब साधनोंका साधन साध्य-साधनमें सद्भाव है। यहाँतकके सब साधन तुकारामजीके आचरणमें आ गये, और साथ ही उन्होंने परोपकार-व्रत स्वीकार किया। उन्होंने यह बात आत्मचरित्रमें ही लिख दी है कि, 'जो कुछ बन पड़ा, शरीरको कष्ट देकर वह उपकार किया।' अब उन्होंने परोपकार कैसे किया, यह देखें।

११ परोपकार-व्रत

शरीरसे कष्ट करके जो उपकार बन पड़ता उसे करनेमें तुकाराम तत्पर रहते थे। कोई खेतकी रखवाली करनेको कहता तो आप खेतकी रखवाली करते, बोझ लादनेको कोई कहता तो चाहे जितना भारी बोझ हो आप उसे लादकर पहुँचा देते, घोड़ेको खरहरा करनेके लिये कोई कहता तो आप घोड़ेको खरहरा करते, मतलब यह कि जो भी जो कोई काम बतलाता था तुकारामजी उसे प्रसन्नचित्तसे करते थे। मुफ्तमें कोई नौकर मिले तो उसे कौन न चाहेगा? इसलिये तुकारामजी सबके प्रिय हो गये। पर तुकारामजी इन सबको नारायणकी मूर्ति ही समझते थे और जो कोई काम करते उसे नारायणकी ही सेवा समझकर करते थे। मानव-नाम-रूपकी सुध धीरे-धीरे भूलती गयी और काम बतलानेवाली ध्वनि अन्तर्वासी नारायणकी है यही बोध रह गया। ध्वनि सुनते ही जिस स्थानसे वह ध्वनि निकली उसी उद्गम स्थानपर उनकी दृष्टि स्थिर होने लगी। नाम-रूपको देखते ही नामरूपातीतपर उनका ध्यान जमने लगा। यह सातवीं

दास्य भक्ति है। इस दास्य भक्तिका मर्म देहूके लोगोंने या जिजाबाईने न जाना हो पर ज्ञातापन जहाँसे प्रकट होता है वहाँ तो वह पहुँच ही गया। यह भूतसेवा भूतोंकी समझमें न आयी हो पर भूतेशने तो समझ ली। तुकारामजीको वेगारमें पकड़नेवाले लोग चाहे कभी यह न सोचते हों कि इनसे बहुत कष्ट कराना अच्छा नहीं, सो भी तुकारामजी तो यह जानते थे कि भूतसेवा विषमभाव छोड़कर निष्काम कर्म करनेका अलौकिक साधन है। भूतसेवा भूतमात्रमें हरिके दर्शन करना सिखलाती है, यही नहीं प्रत्युत भूतमात्रमें जब हरिके दर्शन होने लगते हैं तभी निष्काम और सच्ची भूत-सेवा बन पड़ती है। अस्तु, जिजाबाईको अवश्य ही इस बातका बड़ा कष्ट था कि तुकारामजी घरके काम-काजकी ओर कुछ ध्यान नहीं देते और गाँवभरके छोटे-बड़े सभी काम कर दिया करते हैं। जिजाबाईका पक्ष लेकर कोई कह सकता है कि ठीक तो है, गाँवभरका काम तुकाराम करते थे तो घरका काम करनेमें उनका क्या बिगड़ा जाता था? इसका उत्तर यह है कि घरवालोंका काम तो हमलोग सभी सब समय करते ही रहते हैं; पर अपने ही प्रेम और महत्त्वकी बात होनेसे वह यथार्थमें स्व-सेवा ही है। परोपकार तो वही कहा जा सकता है कि जिसमें देहकी दृष्टिसे जिन लोगोंके साथ हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है उनका उपकार हो। और उपकार भी कब होता है?—जब प्रतिफलकी, केवल स्तुति या आशीर्वादकी भी इच्छा न करके काया-वाचा-मनसा केवल भगवत्प्रीत्यर्थ वह कार्य किया जाय। ऐसे परोपकार या लोकसेवासे अनेक लाभ होते हैं। एक तो, निष्काम कर्म करनेका अभ्यास

होता है; दूसरे, आत्मभावका विकास होता है, यह प्रतीति होने लगती है कि आत्माराम इस साढ़े तीन हाथकी देहके अन्दर ही बन्द नहीं है, तीसरे, देह-ममत्व नष्ट होता जाता है; और चौथे, सर्वान्तर्यामी नारायण सुप्रसन्न होते हैं। ये लाभ घरवालोंकी सेवा करनेकी अपेक्षा ऐसे लोगोंकी सेवासे जो घरवाले नहीं समझे जाते अधिक प्राप्त होते हैं। इसलिये तुकारामजीने 'जो बन पड़ा वह शरीरसे कष्ट करके उपकार किया' यह कहकर अपने साधन-मार्गके एक अभ्यासका ही निर्देश कर दिया है। 'भावें गावें गीत' (भावसे गीत गावे) इस अभंगमें तुकारामजी कहते हैं—

जो तू चाहे भगवान। कर ले सुलभ साधन।

'यदि तुम भगवान्‌को चाहते हो तो यह सुलभ उपाय है।' कौन-सा ?—

तुका कहे कर। थोर बहु उपकार॥

'तुका कहता है, थोड़ा-बहुत उपकार किया करो।'

इस प्रकार भगवत्प्राप्तिके उपायोंमें तुकाजीने पर-उपकारका भी अन्तर्भाव किया है। इस अभंगमें तुकाजी यही बतलाते हैं कि भगवत्-प्राप्तिका सुलभ उपाय यही है कि 'चित्त शुद्ध अर्थात् निर्विषय करके भावके साथ भगवान्‌के गीत गावे, दूसरोंके गुण-दोष न सुने, मनमें भी न ले आवे, सन्तोंके चरणोंकी सेवा करे, सबके साथ विनम्र रहे और थोड़ा-बहुत जो कुछ बन पड़े उपकार करे। यह सुलभ उपाय तुकाजीने स्वयं कृतार्थ होनेके पश्चात् लोगोंको बताया है, अर्थात् साधनकालमें उन्होंने इस उपायका अवलम्बन किया

था। परोपकार करते हुए देहभाव सिमट जाता है और प्राणिमात्रमें भगवद्भाव उदय होता है, हृदय विशाल होता और अपना-पराया-भाव लुप्त होता है तथा 'अन्दर हरि बाहर हरि' के अनुभवका दिव्य आनन्द प्राप्त होता है। 'भूतीं भगवन्त। हा तों जाणतों संकेत ॥' 'भूतमात्रमें भगवान् हैं।' यही सङ्केत तुकारामजी जानते थे। 'भूतमात्रमें भगवद्भाव' रखनेसे 'मेरा तेरा' विकार नष्ट हो जाता है और 'अद्वैतका जो धाम है' उस 'एक निरञ्जन' का अनुभव प्राप्त होता है। 'भूतांचिये नांदे जीवीं। गोसावीच सकळां ॥' (सब भूतोंके जीवोंमें गोसाईं ही विराज रहे हैं।) पर-उपकारसे उन्हीं गोसाईंकी ही उत्तम सेवा बनती है। भूतोंका उपकार ही भूतात्माका पूजन-अर्चन है। तुकारामजीने शरीरसे कष्ट करके जो परोपकार किया वह भूतपतिकी ही सेवा की और परोपकारकी जो इतनी महिमा है वह इसीलिये है। तुकारामजी कहते हैं—

'भूतमात्रमें भगवान् विराजते हैं, इसीलिये मैं इन लोगोंसे मिलता हूँ, नर-नारी समझकर नहीं। हृदयका भाव भगवान् जानते हैं, उन्हें जनाना नहीं पड़ता।'

१२ परोपकारके भेद

अब श्रीतुकारामजीके परोपकारके प्रकार देखें। इनमेंसे कुछका वर्णन महीपतिबाबाने (भक्तलीलामृत अ० ३१ में) किया है। राह चलते कोई पथिक सिरपर बोझ लादे मिल जाता तो आप उसका बोझ अपने सिरपर उठा लेते और कुछ काल उसे विश्राम दिलाते, वर्षामें कोई भींग जाय तो उसे पहनने-ओढ़नेको वस्त्र देते, बैठनेके लिये स्थान देते; यात्रियोंके पैर चलते-चलते सूज जाते और

उनपर इनकी दृष्टि पड़ती तो ये गरम पानीसे उन्हें सेंकते; गाय, बैल दुर्बल होनेसे काम न देते और इसलिये गृहस्थ यदि उन्हें निकाल देते तो आप उन्हें दाना-पानी देते; चींटियोंकी चिटारीपर चीनी छोड़ते; मनसे भी किसीकी हिंसा न करते, चलते हुए कहीं पैरोंतले छोटे-छोटे जीव कुचल न जायँ इसलिये 'कारुण्यामाजीं पाउलें लपवून' (कारुण्यमें अपने पैरोंको छिपाकर) चला करते; कीर्तन हो रहा हो और गरमीसे लोग परेशान हों तो कीर्तन करते हुए भी आप श्रोताओंपर पंखा झलने लगते; नदीसे जल भर-कर ले आनेवालोंमें यदि कोई थका दिखायी दिया तो उसकी गगरी आप अपने कन्धेपर उठा लेते और घर पहुँचा देते, कोई यात्री बीमार पड़ गया तो उसे आप उठाकर किसी देवालयमें ले जाते और उसका इलाज कराते; मनुष्य और पशु-पक्षीमें कोई भेद-भाव नहीं मानते थे; छोटे-बड़े सबके शरीरोंको नारायणके ही शरीर मानते थे; तन-मन-वचनसे, पास धन हुआ तो धनसे भी सबके काम आते थे। श्रीमद्भागवतके जड़भरतके समान कैसा भी कष्ट करनेमें वह पीछे नहीं हटते थे। ऐसे बर्तावसे तुकाराम सबके अत्यन्त प्रिय हुए, कोई ऐसा न रहा जिसे तुकाराम प्रिय न हों। तुकारामजीका यह अजातशत्रुत्व देखकर मम्बाजी बाबाने बहुत बुरा माना और उन्होंने उन्हें बहुत कष्ट दिये। पर उन मम्बाजी बाबाका भी वदन तुकाजीने दाब दिया। परोपकारकी उज्ज्वल भावनासे अपनी स्त्रीकी साड़ी भी एक अनाथाको दे डाली। पर ये दोनों प्रसङ्ग आगे आनेवाले हैं इसलिये यहाँ उनका विस्तार करनेकी आवश्यकता नहीं। एक बार एक वृद्धा स्त्रीके कहनेपर तुकारामजीने

तेल लाकर उसके घर पहुँचा दिया। यह तेल सदासे बहुत अधिक दिन चला। यह बात गाँवमें फैल गयी। तब सभी अपने-अपने तेलके पीपे ले जाकर तुकारामके गलेमें बाँध आये। तुकाराम उन सब पीपोंको तेलकी दूकानपर ले गये और सबके घर जा-जाकर तेल पहुँचा आये। तुकारामकी पीठपर एक बैलका जितना भारी बोझ लदा देखकर सती जिजाईको बड़ा क्रोध आया। एक बार एक किसान उन्हें रस पिलानेके लिये अपने खेतपर ले गया। रस पीनेके इस न्योतेकी बात जिजाईने घरमेंसे सुन ली थी। चलते समय उसने तुकारामजीसे कह रखा था कि 'वह किसान ऊँखकी फाँदी देगा वह मेरे बच्चोंके लिये घर ले आना।' तुकारामजी खेतपर पहुँचे, बड़ी भक्तिसे उस किसानने उन्हें रस पिलाया और ऊँखकी फाँदी देकर उन्हें विदा किया। तुकारामजी ऊँख लिये ज्यों ही गाँवमें पहुँचे त्यों ही गाँवभरके बच्चोंने उन्हें घेर लिया और ऊँख माँगने लगे। तुकारामजीने बोझ उतारा और सब ऊँख उन बच्चोंको बाँट दिये, तीन ऊँख रह गये जो लेकर वह घर आये। जिजाबाई ताड़ गयीं कि ऊँख सब बँट गये। तुकारामने सब हाल उससे कहा और उसे समझाया कि 'देखो, सब बच्चे अपने ही तो हैं। तेरे तीन बच्चे हैं इसलिये पाण्डुरङ्गने तीन ही ऊँख यहाँ भेजे, बाकी सब जिनके थे उन्हें बाँट दिये।'

अयं निजः परो वेत्ति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

तुकाराम ऐसे उदारचरित थे। अपना-पराया-भाव उनका नष्ट हो रहा था, बल्कि 'मेरा तेरा' जीवभाव नष्ट हो और उसके

स्थानमें 'सर्वत्र श्रीहरि' का भाव उदय हो इसीलिये इस नश्वर देहके द्वारा कष्ट करके भूतसेवारूप भगवत्सेवाका यह व्रत तुकारामजीने स्वीकार किया। तुकारामजीका सम्पूर्ण जीवन परोपकारमें बीता। उन्होंने जो हरि-कीर्तन किये और अभंग रचे, पहले वे श्रीहरिकी प्राप्तिके लिये थे, पीछे परोपकारके लिये हो गये। वह—

'विष्णुमय जग वैष्णवांचा धर्म।'

—मानते थे और इसलिये परोपकार उनका स्वभाव ही बन गया था। 'भूतदया' ही उनकी पूँजी बनी, दीन-दुखियोंको वह अपना कहने लगे। भगवत्प्रसाद होनेके पश्चात् भी 'अब मैं उपकारभरके लिये रह गया' कहनेवाले तुकारामजीके जीवनमें परोपकारके सिवा और क्या था? तुकोबाके जीवनका प्रत्येक क्षण विट्ठलभजन और परोपकारमें बीता। उनके प्रयाणके पश्चात् भी उनके अभंग जड़ जीवोंके उद्धारका कार्य कर रहे हैं। तुकारामकी अभंगवाणी उनकी परोपकार-बुद्धिका चिरस्थायी स्मारक है।

१३ अट्ठाईस अभंगोंकी गवाही

तुकारामजी वारकरी सम्प्रदायके साधनमार्गपर ही चले, यह स्पष्ट है। वह मार्ग हमलोगोंने यहाँतक देखा, पर निश्चयकी दृढ़ताके लिये हमलोग एक बार स्वयं तुकारामजीसे ही पूछ लें और फिर यह प्रकरण समाप्त करें। तुकारामजीने जो साधन किये, उन्हें उन्होंने अपने अभंगोंमें स्पष्ट बता दिया है। अभंगोंमें कहीं स्वयं किये हुए साधनके तौरपर और कहीं दूसरोंको उपदेश करनेके प्रसङ्गसे उन साधनोंको बताया है। तुकाराम 'जैसी बानी वैसी करनी' वाले बानेके थे, इस कारण उनकी वाणीसे उनके किये

हुए साधन ही प्रकट होते हैं। छत्रपति शिवाजी महाराजको, जिजाबाईको और धरना देनेवाले ब्राह्मणको उपदेश करते हुए जो साधन उन्होंने बताये हैं उन्हें हम देखें। ऐसे सब साधनबोधक अभंगोंका एक साथ विचार करनेसे निश्चितरूपसे यह जाना जा सकेगा कि तुकारामजी जिस साधनमार्गपर चले वह साधन-मार्ग क्या था।

(१) सौंपा निज चित्त । उन्हें जो रुक्मिणी-कांत ॥१॥
पूर्ण हुआ सकल काम। निवारित भव-भ्रम ॥टेक॥
परनारी परद्रव्य । हुए विषवत् त्याज्य ॥२॥
तुका कहे फिर। और न लगा व्यवहार ॥३॥

मैंने एक रुक्मिणीकान्तको ही चित्तमें धारण कर लिया। उसीसे सारा काम बन गया। भव-भ्रम दूर हो गया। परद्रव्य और परनारी विषवत् हो गये। तुका कहता है, कोई बड़ा उद्योग नहीं करना पड़ा। बस, इतनेसे ही सारा काम बन गया, भव-भ्रम दूर हो गया।' दो बातें बतलायीं, चित्तमें भगवान्को बैठाया और परद्रव्य और परनारी विषवत् हो गये। इतनेसे ही सारा काम बन गया। कौन-सा काम? भव-भ्रम दूर हो गया। तात्पर्य, हरि-चिन्तन और सदाचार संसार-निवृत्तिके साधन हैं।

(२) 'कुळीचें दैवत ज्याचे पंढरिनाथ' (कुलदेवता जिनके पण्ढरिनाथ हैं)—उनके घरमें दासी-पुत्र होकर भी रहूँगा, पण्ढरीकी वारी जिनके यहाँ है उनके द्वारका पशु होकर रहूँगा, दिन-रात विट्ठलचिन्तन जो करते हैं उनके पैरोंकी पनही बनकर रहूँगा, तुलसीका पेड़ जिनके आँगनमें है उनके यहाँ झाड़ू बनकर रहूँगा।

इन उत्कट भक्तिके उद्गारोंसे यह मालूम होता है कि पण्ढरिनाथ, पण्ढरीकी वारी, पण्ढरिनाथका चिन्तन और पण्ढरिनाथकी प्रिय तुलसीका पूजन तुकारामजीको कितना प्यारा था। उपास्यविषयक परम प्रीति इससे व्यक्त होती है।

(३) 'सुख वाटे परि वर्म' (सुख होता है पर उसका रहस्य) बतलाता हूँ। मैं भगवान्का रहस्य नहीं जान सकता, इतना ही जानता हूँ कि 'निर्लज्ज होकर उसके गुण-नाम गाता हूँ।' 'अवघें माझें हेंचि धन। साधन हीं सकळ॥' (मेरा सारा धन यही है और यही सम्पूर्ण साधन है।) निर्लज्ज नाम-स्मरण!

(४) 'विट्ठल आमुचें जीवन' (विट्ठल हमारे जीवन हैं) हमारे विट्ठल आगम-निगमके अर्थात् वेदशास्त्रोंके स्थान (रहस्य) हैं, विट्ठल मेरे ध्यानका विश्रान्ति-स्थान है, मेरा चित्त, वित्त, पुण्य, पुरुषार्थ सब कुछ विट्ठल है, मेरा विट्ठल कृपा और प्रेमकी मूर्ति है।

विट्ठल विस्तारला जनीं। सप्तहि पाताळें भरुनी॥
विट्ठल व्यापक त्रिभुवनीं। विट्ठल मुनि मानसीं॥
(विट्ठल विश्वजन व्याप्त। सप्तही पाताल संतत॥
विट्ठल व्यापक त्रिभुवन। विट्ठल मुनि-सुमन॥)

मेरे माँ-बाप भाई-बहन सब विट्ठल ही हैं। विट्ठलको छोड़ कुल-गोत्रसे मुझे क्या काम? 'अब विट्ठल छोड़ और कुछ भी नहीं है' विट्ठल ही मेरा सर्वस्व हैं, उनके सिवा ब्रह्माण्डमें मेरा और कोई नहीं। उपास्यकी एकान्त-भक्ति ही उपासकका सर्वस्व है।

(५) 'पांडुरंगा करूं प्रथम नमन' (पाण्डुरङ्गको पहले नमन करता हूँ)—तुकारामजीके ओवीरूप दो अभंग हैं। ये हैं बहुत बड़े, पर मधुर हैं। प्रत्येक अभंग सौ चरणोंका है, पहला अभंग देखा जाय।

क्षीण झाला मज संसार संभ्रमें।

'संसारमें भटकते-भटकते मैं थक गया।' तो वह आपकी थकावट दूर हुई ? विश्रान्ति मिली ? समाधान हुआ ? कैसे हुआ ?

शीतल या नामें झाली काया॥ ५॥

'इस नामसे काया शीतल हुई।'

हरि-नाम और हरि-गुण गाओ, 'और सब उपाय दुःखमूल' हैं। मेरा उद्धार हरि-कीर्तनसे हुआ। लोगोंको अपने अनुभवका ही मार्ग बतलाता हूँ—

'वैकुण्ठ जानेका यह सुन्दर मार्ग है। रामकृष्णका कीर्तन करो, दिण्डीपताका लिये उन्हींका संकीर्तन करते हुए यात्रा करो; सुजान हो, अजान हो, जो हो, हरि-कथा करो। मैं शपथ करके कहता हूँ कि इससे तर जाओगे। (११, १६)

निराश मत हो, यह मत कहो कि हम पतित हैं, हमारा उद्धार क्या होगा! मुझ-जैसा 'पतित और कोई न होगा'; और लोग और साधन करते होंगे पर 'मेरे लिये कीर्तन छोड़ और कोई' साधन नहीं और इसी साधनसे मैं तर गया।

मेरे जीके बंध, किये विमोचन। ऐसे नारायण, दयावंत॥२३॥
यही मेरा नेम, यही मेरा धर्म। नित्य जप नाम, श्रीविट्ठल॥२४॥

कहीं मत देखो, गावो हरिनाम। देखोगे श्रीराम, एकाएक ॥६७॥
भक्त जन हाथ, आते भगवंत। बड़े बुद्धिमंत, निरे मर्त्य ॥६८॥
होके भी निर्गुण, बनते सगुण। भक्त जन प्रेम, वश होके ॥८६॥
चित रंगते ही, चैतन्य ही होता। तब क्या न्यूनता? निजानन्द ।९३।
सुखके सागर, खड़े ईंटपर। कृपा कर वर, वही एक ॥९४॥
जीते हम हैं जो, नामके भरोसे। गाते हैं मुखसे, हरिनाम ॥
सिखाया संतोंने मुझ मूरखको उनके वचको उर धारा ॥९९॥
पकड़े हूँ दृढ़ विट्ठल चरण। तुका कहे आन नाहीं काम ॥

'मेरे जीको जंजालसे छुड़ाया, ऐसे दयालु मेरे प्रभु नारायण हैं। सतत श्रीविट्ठलका नाम मुखसे उचारूँ, यही मेरा नियम, यही मेरा धर्म है। तुमलोग और कहीं मत देखो, श्रीहरिकी कथा करो, उसीमें अकस्मात् तुम उन्हें देख लोगे। भावुक भक्तोंके हाथ भगवान् लगते हैं, अपनेको बड़े बुद्धिमान् लगानेवाले मर मिटते हैं तो भी भगवान् उन्हें नहीं मिलते। निर्गुण भगवान् भक्ति-प्रिय माधुर्य चखनेके लिये अपनी इच्छासे सगुण बनकर प्रकट होते हैं, चित्त उनमें रँग जाय तो स्वयं ही चैतन्य हो जाय, फिर वहाँ निजानन्दकी क्या कमी रहे? वह सुखके सागर ईंटपर खड़े हैं, वही एक कृपा करनेवाले हैं। हमें उन्हींके नामका विश्वास है इसलिये वाणीसे उन्हींका नाम-संकीर्तन करते हैं। मुझ मूर्खको सन्तजनोंने ऐसा ही सिखाया है, उनके वचनपर विश्वास किये बैठा हूँ। श्रीविट्ठलके चरण पकड़े बैठा हूँ। तुका कहता है, अब और कोई दूसरी इच्छा नहीं है।'

ये लोग संसारसे ऐसे क्यों चिपके रहते हैं, इसीका मुझे बड़ा

आश्चर्य लगता है। मेरा तो यह अनुभव है कि 'हरि-कथा सुखाची समाधि' (हरि-कथा सुखकी समाधि है)। क्या यह परमामृत भोग करना इनके भाग्यमें नहीं है ?

(६) 'गाईन ओवियां पण्ढरीचा देव' (गाऊँ मैं गीत पण्ढरीके भगवन्त)—यह दूसरा अभंग है। अब इसे देखें—

रँगा मेरा चित्त, चरणोंमें नत। प्रेमानन्द-रत, यही लाभ ॥२॥
जोड़ूँ यही पूँजी, संसारसे सारी। राम कृष्ण हरी, नारायण ॥३॥

'उसके चरणोंमें मेरा चित्त रँग गया। इसलिये यही लाभ मैं लेता हूँ। संसारमें मैं यही लाभ, राम-कृष्ण-हरी-नारायण प्राप्त करूँगा।'

भगवदानन्द इतना सुलभ होनेपर भी ये जीव संसार-जालमें मछलियोंकी तरह क्यों छटपटा रहे हैं ? सत्संग करके हरि-गुण-गानका परम सुख क्यों नहीं भोगते ? 'ये विषयोंमें कन्या-पुत्र-स्त्री और धनके लोभसे अटक गये हैं, इससे तुम्हें भूल गये हैं' परन्तु हे नारायण ! तुम्हींने इन्हें अहंभाव, खेलवाड़में लगा दिया और स्वयं अलग रहकर विश्वकी लीला कौतुकसे देख रहे हो। जीवजनो ! पुण्यमार्गपर आ जाओ तभी यह विट्ठल कृपा करेंगे। पुण्य-कर्म कौन-सा करें यह जानना चाहते हो ?—तो सुनो। 'पूजावे अतीत देव द्विज' (अतिथि, देवता और द्विजोंका पूजन करो)।

करो जप तप, अनुष्ठान याग। संतोंने जो मार्ग दरसाया ॥२०॥

'जप, तप, अनुष्ठान, यज्ञ आदि करो अर्थात् सन्तोंने जो मार्ग चलाये हैं उनपर चलो' पर इन सब कर्मोंको मनमें वासना रखकर मत करो।

वासनाका मूल, छेदे बिना कोई । समझे न यों ही, मैं तो तरा ॥

'वासनाका मूल काटे बिना ही कोई यह न कहे कि मेरा उद्धार हो गया ।' निष्काम सत्कर्माचरणसे हरिभक्ति उत्पन्न होगी । मैं तो नाम-संकीर्तनपर इतना मुग्ध हो गया हूँ कि क्या कहूँ !

अमृतत्व बीज, निज-तत्त्वसार ।
गुह्याद्गुह्यतर, रामनाम ॥३३॥
यही महासुख, लेता सर्वकाल ।
करता निर्मल, हरि-कथा ॥३४॥
कथा देती दिलाती,सबको समाधि ।
तत्काल ही बुद्धि, विमलाती ॥३५॥
नासैं लोभ मोह, आशा तृष्णा माया ।
जब गान गाया, हरिनाम ॥३६॥
यही रीति अंग, किये पांडुरंग ।
रंगाये श्रीरंग, निजरंग ॥४२॥
विट्ठलके प्यारे, हम हैं दुलारे ।
दैत्य मतवारे, काँप रहे ॥४६॥
सत्य मान संत-सज्जन-वचन ।
गहो नारायण, पदांबुज ॥

'अमृतका बीज, आत्मतत्त्वका सार, गुह्यका भी गुह्य रहस्य श्रीराम-नाम है । यही सुख मैं सदा लेता रहता हूँ और निर्मल हरि-कथा किया करता हूँ । हरि-कथामें सबके समाधि लग जाती है । लोभ, मोह, आशा, तृष्णा, माया सब हरि-गुण-गानसे रफूचक्कर हो जाते हैं । पाण्डुरङ्गने इसी रीतिसे मुझे अङ्गीकार किया और

अपने रंगमें रँगा डाला। हम विट्ठलके लाड़िले लाल हैं, जो असुर हैं वे कालके भयसे काँपते रहते हैं। सन्त-वचनोंको सत्य मानकर तुमलोग नारायणकी शरणमें जाओ।'

प्रेमियोंका संग करो। धन-लोभादि मायाके मोह-पाश हैं। इस फन्देसे अपना गला छुड़ाओ। ज्ञानी बननेवालोंके फेरमें मत पड़ो, कारण 'निन्दा अहंकार वादभेद' में अटककर वे भगवान्‌से बिछुड़े रहते हैं। साधुओंका संग करो। 'सन्त-संगसे प्रेम-सुख लाभ करो।'

संत-संग हरि-कथा संकीर्तन। सुखका साधन राम-नाम॥

प्रतीतिकी यह सीधी-सादी बानी कितनी मीठी है! ऊपर उल्लिखित दोनों अभंगशतक कण्ठ करने योग्य हैं। इस गङ्गा-प्रवाहमें नित्य निमज्जन करें।

(७) 'साधका ची दशा उदास असावी' (साधककी अवस्था उदास रहनी चाहिये)—उदास किसे कहते हैं? 'जिसे अन्दर-बाहर कोई उपाधि न हो' उसकी जिह्वा लोलुप न हो, भोजन और निद्रा नियमित हों, अर्थात् वह युक्ताहारविहार हो। स्त्री-विषयमें वह फिसलनेवाला न हो—

एकांतीं लोकांतीं स्त्रियांशीं भाषण। प्राण गेला जाण करूँ नये॥

एकान्त लोकान्त, कहीं स्त्री-भाषण। न करे प्राण, जाय जाय॥

'एकान्तमें या लोकान्तमें (भीड़-भड़क्केमें) प्राणोंपर बीत आवे तो भी स्त्रियोंसे भाषण न करे।'

इस प्रकार सदाचारका पालन करते हुए—

संग सज्जनाचा उच्चार नामाचा। घोष कीर्तनाचा अहर्निशी॥

'सज्जनोंका संग, नामका उच्चारण और कीर्तनका घोष अहर्निश किया करे।' इस प्रकार हरि-भजनमें रमे। सदाचारमें ढीला रहकर भगवद्भक्तोंके मेलेमें कोई केवल भजन करे तो वह भजन कुछ भी काम न देगा। वैसे ही कोई सदाचारमें पक्का है पर भजन नहीं करता तो वह भी बेकार है। सदाचारसे रहे और हरिको भजे उसीको गुरु-कृपासे ज्ञान लाभ होगा।

(८) 'काळ सारावा चिंतनें' (चिन्तनसे समय काटो)— एकान्त-वास, गङ्गा-स्नान, देव-पूजन, तुलसी-परिक्रमा नियमपूर्वक करते हुए हरि-चिन्तनमें समय व्यतीत करे। इन्द्रियोंको नियमसे नियत कर आहार, विहार, निद्रा और भाषणमें संयत रहे। देह भगवान्‌को अर्पण करे। प्रपञ्चका भार सिरपर उठाकर कराहता न बैठे। परमार्थ-लाभ ही महाधन है, यह जानकर भगवान्‌के चरण प्राप्त करे।

(९) 'धिक् जिणें तो बाइले आधीन' (स्त्रीके अधीन होकर जीनेको धिक्कार है!)—जो मनुष्य स्त्रैण है वह न परलोक साध सकता है, न इहलोकमें मान प्राप्त कर सकता है। अतिथि-पूजन करे। द्वारपर कोई अतिथि आया और उसे विमुख होकर जाना पड़ा तो वह जो जाता है वह यजमानका 'सत्' लेकर जाता है। द्वारपर कोई भूखा खड़ा चिल्ला रहा हो और गृहस्थ घरमें बैठा भोजन करे—ऐसा भोजन भी किसीसे कैसे करते बनता है, उस

अन्नमें रुचि भी कहाँसे आ जाती है ? काम, क्रोध, लोभ, निद्रा, आहार और आलस्यको जीते। मानके लिये न कुढ़े। विवेक और वैराग्य बलवान् हो। निन्दा और वाद सर्वथा त्याग दे।

(१०) 'युक्ताहार न लगे आणीक साधन' (युक्ताहारके लिये और साधन क्या !)—

लौकिक व्यवहार, चलाओ अखंड। न लो भस्मदंड, वनवास॥
कलिमें आधार, नाम-संकीर्तन। उससे नारायण, आ मिलेंगे॥

'लौकिक व्यवहार छोड़नेका कुछ काम नहीं, वन-वन भटकने या भस्म और दण्ड धारण करनेकी कोई आवश्यकता नहीं। कलियुगमें (यही उपाय है कि) कीर्तन करो, इसीसे नारायण दर्शन देंगे।'

रहते जो नहीं, एकादशी व्रत। जानो उन्हें प्रेत, जीते भूत॥
नहीं जिस द्वार, तुलसी ओवन। जानो वह श्मशान, गृह कैसा॥

'एकादशी-व्रतका नियम जो नहीं पालन करता उसे इस लोकमें रहनेवाला प्रेत समझो। जिस घरके द्वारपर तुलसीका पेड़ न हो उस घरको श्मशान समझो।'

(११) 'पराविया नारी माउली समान' (परनारी माताके समान)—जाने। परधन और परनिन्दा तजे। राम-नामका चिन्तन करे। सन्त-वचनोंपर विश्वास रखे। सच बोले। तुकारामजी कहते हैं, 'इन्हीं साधनोंसे भगवान् मिलते हैं, और प्रयास करनेकी आवश्यकता नहीं।'

(१२) **भक्ति सह गीत। गावो शुद्ध करि चित्त॥१॥**
यदि चाहो भगवान। कर लो सुलभ साधन॥ध्रु०॥
करो मस्तक नमन। धरो संतोंके चरण॥२॥

दूसरोंके दोष । मन कानमें न पोष ॥३॥
तुका कहे कर । थोड़ बहु उपकार ॥४॥

'चित्तको शुद्ध करके भावसे गीत गावे। यदि तुम भगवान्‌को चाहते हो तो यह सुलभ उपाय है। मस्तक नीचा करो, सन्तोंके चरणोंमें लगो। औरोंके गुण-दोष न सुनो न अपने मनमें लाओ। तुका कहता है, कुछ थोड़ा-बहुत उपकार भी किये चलो।'

(१३) साधनें तरी हीं च दोन्ही (साधन तो यही दो हैं)— इन्हें साधो, भगवान् दया करेंगे। ये कौन-से दो साधन हैं ?—

परद्रव्य परनारी । यां चा धरी विटाळ ॥२॥

'परद्रव्य और परनारीका छूत मानो।'

(१४) येथें दुसरी न सरे आटी। देवा भेटी जावया। अर्थात् भगवान्‌से मिलने जानेके लिये और साधन करनेकी आवश्यकता नहीं।

ध्यावो प्रभु एक चित्त । करके रिक्त कलेवर ॥

'तनको खाली करके चित्तसे उसी एकका ध्यान करो।' 'तनको भूलकर चरणोंका चिन्तन करो।'

(१५) **तुका कहे छूटे आस । तहां वास, प्रभुका ॥**

'जहाँ कोई आशा न रही वहीं भगवान् रहते हैं।' 'आशाको जड़से उखाड़कर फेंक दे।'

(१६) नावडावे जन नावडावा मान (रुचे नहिं जन रुचे नहिं मान)—देह-सम्बन्धी व्यसनों, आदतों, लतों और संकल्पोंमें मन न रहे।

रुचे नहिं रूप रुचे नहिं रस । रहे सारी आस चरणोंमें ॥

(१७) हित व्हावें तरी दम्भ दूरी ठेवा (यदि हित चाहते हो तो दम्भको पास न आने दो)—लोगोंके लिये, लोग अच्छा कहें इसलिये परमार्थ करना चाहते हो तो मत करो । भगवान्‌को चाहते हो तो भगवान्‌को भजो ।

देवाचिये चाडें आळवावें देवा । ओस देह भावा पाडोनियां ॥

'भगवान्‌की लगन हो तो देहभावको शून्य करके भगवान्‌को भजो ।' जन और मनके फन्देमें मत फँसो, इनसे छिपकर नारायणका चिन्तन-सुख भोग करो ।

(१८) निर्वैर व्हावें सर्व भूतासवें (निर्वैरः सर्वभूतेषु हो)—यह एक साधन भी बहुत ही अच्छा है ।

(१९) नरस्तुति आणि कथेचा विकरा (नरस्तुति और कथाका विक्रय)—ये दो पाप ऐसे हैं कि भगवन् ! मेरे द्वारा कभी न होने दो ! और

भूतों प्रति द्वेष संतोंकी बुराई । हो न यदुराई, कदा काल ॥

'प्राणियोंके प्रति मात्सर्य और सन्तनिन्दा, यह भी हे गोविन्द ! मुझसे कभी न हो ।'

(२०) कळे न कळे ज्या धर्म (धर्मको जो जानते हैं या नहीं जानते)—ऐसे सुजान-अजान सबको तुकाराम एक ही रास्ता बतलाते हैं, 'मांझ्या विठोबाचें नाम । अट्टहासें उच्चारा ॥' (मेरे विट्ठलका नाम अट्टहासके साथ उच्चारो ।)

तो या दाखवील वाटा। जया पाहिजे त्या नीटा ॥
कृपावंत मोठा। पाहिजे तो कळवळा ॥ २ ॥

'वह (स्वयं ही) जिसके लिये जो मार्ग ठीक है वह दिखा देगा। वह बड़ा दयालु है, पर हृदयकी वह लगन होनी चाहिये।'

भगवत्प्रेम चित्तमें धारण करो। मन और वाणीपर विट्ठलकी ही धुन हो। हृदयमें सच्ची लगन हो तो जिसके लिये जो मार्ग सरल और सुगम है उसे वह स्वयं दिखा देगा।

(२१) हेंचि भवरोगाचें औषध (यही भवरोगकी ओषधि है)—इस ओषधिके सेवनसे क्या होगा?—

जन्म जरा नासे व्याध। न रहे और कोई उपाध।
करती वध षड्वर्ग ॥

'जन्म-मृत्यु, जरा और रोग नष्ट हो जाते हैं, और कोई विकार नहीं होता; षड्विकारोंका भी वध हो जाता है।' इस ओषधिमें सब गुण-ही-गुण हैं, दोष कुछ भी नहीं। जितना सेवन करें उतना लाभ है। तब तो यह ओषधि बड़ी अच्छी है। यह क्या है? तुकारामजी बतलाते हैं—

सांवरे प्यारेको रे देख। छ चार अठारह भये एक।
दुःसंग न कर क्षण एक। नाम मंत्र घोख विष्णु-सहस्र ॥

'नेत्रोंसे साँवरे प्यारेको देख। देख उन्हें जिनमें छओं शास्त्र, चारों वेद और अठारह पुराण एकीभूत हैं। एक क्षण भी दुःसंग न कर। विष्णु-सहस्र-नाम जपा कर।' यही वह ओषधि है। अब इसका अनुपान भी जान लो, नहीं तो ओषधि-सेवनसे क्या लाभ? अनुपान सुनो—

कहीं न जाय छोड़ निज घर । न लगे बाहरकी रे बयार ॥
बहु बोलना कम कर । संग अपर छोड़ दे रे ॥

'अपना घर (हरि-प्रेम) छोड़कर बाहर न जाय, बाहरकी हवा न लगने दे, बहुत न बोले, और भगवत्संग छोड़ दूसरा संग न करे ।' अपना हृदय श्रीहरिको दे डाले । चित्त हरिको देनेसे वह नवनीतके समान मृदु होता है ।

कुछ अनुपान अभी और बतलाना है——

नहाओ अनुताप ओढ लो दिशा । स्वेद कढ जाय सारी आशा ।
पावोगे स्वरूप आदि था जैसा । तुका कहे दशा भोगो वैराग्य ॥

'अनुताप-तीर्थमें स्नान करो, दिशाओंको ओढ़ लो और आशारूपी पसीना बिल्कुल निकल जाने दो और वैराग्यकी दशा भोग करो । इससे, पहले जैसे तुम थे वैसे हो जाओगे ।'

(२२) सारी दशाएँ इससे सधतीं । मुख्य उपासना सगुणभक्ति ।
प्रकटे हृदयकी मूर्ति । भावशुद्धि जानकर ॥

'सब दशाएँ इससे सध जाती हैं । मुख्य उपासना सगुण-भक्ति है । भावशुद्धि होनेपर हृदयमें जो श्रीहरि हैं उनकी मूर्ति प्रकट हो जाती है ।'

श्रीहरिके सगुणरूपकी भक्ति करना ही जीवोंके लिये मुख्य उपासना है । मुमुक्षु जिस मूर्तिका नित्य ध्यान करता है वह हृदयमें रहनेवाली मूर्ति मुमुक्षुका चित्त शुद्ध होनेपर उसके नेत्रोंके सामने आ जाती है । इस सगुणसाक्षात्कारका मुख्य साधन हरि-नाम-स्मरण ही है, और सगुणसाक्षात्कारके अनन्तर भी नाम-स्मरण ही आश्रय है । नाम-स्मरणसे ही हरिको प्राप्त करो और

हरिके प्राप्त होनेपर भी नाम-स्मरण करो। बीज और फल दोनों एक हरिनाम ही हैं। इस सगुणभक्तिसे सब दशाएँ साधी जाती हैं। भव-बन्धन कट जाते हैं, जन्म मृत्युका चक्कर छूट जाता है। योगी जिसे ब्रह्म मानते और मुक्त जिसे परिपूर्ण आत्मा कहते हैं वही हमारे सगुण श्रीहरि हैं। उनका नाम-संकीर्तन ही हमारा साधन और साध्य है। उसी नारायणको हम भक्तलोग 'सगुण' निर्गुण, जगज्जनिता, जगज्जीवन, वसुदेव-देवकी-नन्दन, बालरांगन, 'बाल-कृष्ण' कहकर भजते हैं।

(२३) धरना देनेवाले ब्राह्मणको—तुकारामजीने ११ अभंगोंमें जो बोध कराया है उसमें भी यही बतलाया है कि इन्द्रियों-को जीतकर मनको निर्विषय करो और भगवान्‌की शरण लो। शरण जानेकी रीति बतलायी कि, देहभावको शून्य करके 'भगवत्-प्रेमसे ही भगवान्‌को भजो।'

(२४) श्रीशिवाजी महाराजको भेजे हुए पत्रमें भी—

आम्हीं तेणें सुखी। म्हणा विठ्ठल विठ्ठल मुखीं ॥१॥
कंठीं मिरवा तुळसी। व्रत करा एकादशी ॥२॥

'हमें इसीमें सुख है कि आप मुखसे 'विठ्ठल विठ्ठल' कहें। कण्ठमें तुलसीकी माला धारण करें और एकादशीका व्रत पालन करें।' यही मुख्य उपदेश है।

(२५) प्रयाणके पूर्व जिजाबाईको ११ अभंगोंमें जो पूर्ण बोध कराया है उसमें भी बाल-बच्चोंके मोहमें न पड़कर 'तुम अपना गला छुड़ा लो' यही पहले कहा है और फिर बतलाते हैं कि 'भगवान्‌के दर्शन चाहती हो तो साधन करो। नाशवान्‌की आशा

पहले छोड़ दो। लीप-पोतकर स्थान स्वच्छ रखो, तुलसीकी सेवा करो, अतिथि और ब्राह्मणोंका पूजन करो। सम्पूर्ण भक्ति-भावसे वैष्णवोंकी दासी बनो और मुखसे श्रीहरिका नाम लो।'

(२६) 'ऐका पण्डितजन' (सुनो हे पण्डितो)—विद्या पढ़कर विद्वान् क्या करते हैं? प्रायः किसी राजा, रईस या धनिककी अतिरिक्त स्तुति करके अपनी विद्या उसके पैरोंपर रख देते हैं। ऐसे पण्डितोंसे तुकाराम कहते हैं, 'नरस्तुति मत करो।' तब पेट कैसे भरेगा? 'अन्न आच्छादन। हें तों प्रारब्धाआधीन' (अन्न-वस्त्र तो प्रारब्धके अधीन है। सारा प्रपञ्च प्रारब्धके सिर पटको और श्रीहरिको ढूँढ़नेमें लगो। कैसे ढूँढे, क्या करें?

तुका म्हणे वाणी। सुखें वेंचा नारायणीं॥

'अपनी वाणी नारायणके लिये सुखपूर्वक खर्च करो।'

पण्डित-शब्दकी व्याख्या तुकारामजीने गीताके अनुसार ही की है—

पंडित तो भला। नित्य भजे जो विठ्ठला॥१॥
अवघें सम ब्रह्म पाहे। सर्वाभूतीं विठ्ठल आहे॥२॥

'सच्चा पण्डित वही है जो नित्य विठ्ठलको भजता है और यह देखता है कि यह सम्पूर्ण समब्रह्म है और सब चराचर जगत्‌में श्रीविठ्ठल ही रम रहे हैं।'

(२७) अब अन्तमें एक मधुर अभंग और लीजिये जो सबके लिये बोधप्रद है। इसमें उपासनाकी शपथ करके तुकारामजीने यह बतलाया है कि परम साधन नामसंकीर्तन ही है। उपास्यदेव-को उठा लेना कितनी बड़ी बात है। हृदयमें वैसी सच्ची लगन हो,

वैसी दृढ़ता हो, वैसी कृतकार्यता हो तभी उपास्यदेवकी शपथ करके कोई बात कही जा सकती है। ऐसी बातका मर्म और महत्त्व उपासकोंके ही ध्यानमें आ सकता है—

नाम-संकीर्तन सुलभ साधन। पाप-उच्छेदन जड़मूल ॥१॥
मारे-मारे फिरो काहे बन-बन। आवैं नारायण घर बैठे ॥ध्रु०॥
जाओ न कहीं करो एक चित्त। पुकारो अनंत दयाघन ॥२॥
'राम कृष्ण हरि विट्ठल केशव'। मंत्र भरि भाव जपो सदा ॥३॥
नहीं कोई अन्य सुगम सुपथ। कहूँ मैं शपथ कृष्णजीकी ॥४॥
तुका कहे सूधा सबसे सुगम। सुधी जनाराम रमणीक ॥५॥

'नाम-संकीर्तनका साधन है तो बहुत सरल, पर इससे जन्म-जन्मान्तरके पाप भस्म हो जायँगे। इस साधनको करते हुए वन-वन भटकनेका कुछ काम नहीं है। नारायण स्वयं ही सीधे घर चले आते हैं। अपने ही स्थानमें बैठे चित्तको एकाग्र करो और प्रेमसे अनन्तको भजो। राम-कृष्ण-हरी-विट्ठल-केशव' यह मन्त्र सदा जपो। इसे छोड़कर और कोई साधन नहीं है। यह मैं विट्ठलकी शपथ करके कहता हूँ। तुका कहता है, यह साधन सबसे सुगम है, बुद्धिमान् धनी ही इस धनको यहाँ हस्तगत कर लेता है।'

यह प्रकरण यहाँ समाप्त हुआ। सत्संग, सत्शास्त्र, सद्गुरु-कृपा और साक्षात्कार परमार्थमार्गके ये चार पड़ाव हैं। इनमेंसे पहला पड़ाव सत्संग है, यहाँतक हमलोग पहुँचे। तुकाराम वारकरी घरानेमें पैदा हुए, वारकरी सम्प्रदायमें भरती हुए और उसी सम्प्रदायको उन्होंने बढ़ाया। इससे वारकरियोंका सत्संग ही उन्हें लाभ हुआ। यह सम्प्रदाय मुट्ठीभर लोगोंका नहीं है, सम्पूर्ण

महाराष्ट्रके अधिवासियोंका यह धर्म है। इसलिये वारकरी सम्प्रदायके मुख्य तत्त्व 'सिद्धान्तपञ्चदशी' के रूपसे सङ्कलित करके पाठकोंके सामने रखे हैं। अनन्तर एकादशीव्रत, वारकरियोंके भजन-मेले और कीर्तन-प्रकार इन तीन मुख्य बातोंका विचार किया। तुकाराम भावके बलसे इस मार्गपर चले और इसी मार्गपर चलनेका उपदेश उन्होंने सबको किया, इसलिये हमलोग भी उनके सत्संगसे उन्हींके प्रासादिक वचनोंको सुनते हुए यहाँतक आये। अन्तमें उन्होंने अपने मनको, सर्वसाधारण जनको, अजान और सुजानको, राजाको और अपनी सहधर्मिणी जिजाबाईको जो उपदेश किया उससे भी यह जाँच लिया कि तुकारामजीने अपने लिये कौन-सा साधनमार्ग निश्चित किया था। सम्प्रदायके परम्परागत मार्गपर ही तुकाराम चले और इससे यह ज्ञात हुआ कि उनका साधनमार्ग और सम्प्रदायका साधनमार्ग एक ही है। उदास-वृत्तिसे रहकर प्रपञ्च करे और तन-मन भगवान्‌को अर्पण करे; परस्त्री, परधन, परनिन्दा और परहिंसासे सर्वदा दूर रहे; सदाचारमें अटल रहे; काम, क्रोध, मोह, लज्जा, आशा, दम्भ और वादको सर्वथा तजकर चित्तको शुद्ध करे; सन्तवचनोंपर विश्वास रखते हुए सब प्राणियोंके साथ विनम्र रहे; एकादशीका महाव्रत, पण्ढरीकी वारी और हरि-कीर्तन कभी न छोड़े। श्रद्धाके साथ सम्प्रदायके इस मार्गपर चलते हुए परम प्रेमसे श्रीपाण्डुरङ्गका भजन करे। यहाँतक यही साधन-मार्ग देखा। अब सत्‌शास्त्रकी ओर आगे बढ़ें।

छठा अध्याय

तुकारामजीका ग्रन्थाध्ययन

'अक्षरोंको लेकर बड़ी माथापच्ची की, इसलिये कि भगवान् मिलें। यह कोई विनोद नहीं किया है कि जिससे दूसरोंका केवल मनोरञ्जन हो।'

* * *

'विश्वास और आदरके साथ सन्तोंके कुछ वचन कण्ठ कर लिये।'

* * *

—श्रीतुकाराम

१ विषय-प्रवेश

'तुकारामजीका ग्रन्थाध्ययन' शीर्षक देखकर बहुत-से लोग अचरज करेंगे कि 'क्या तुकारामने भी ग्रन्थोंका अध्ययन किया था ? ग्रन्थोंसे उन्हें क्या काम ? वह कभी किसी पाठशालामें जाकर या किसी गुरुके पास बैठकर कुछ पढ़े भी थे ? उनपर तो भगवत्कृपा हुई। भगवत्-स्फूर्ति होनेसे उनके मुखसे ऐसी अभंग-वाणी निकली !' यह अन्तिम वाक्य सही है, उन्हें भगवत्-स्फूर्ति हुई और इससे अभंगवाणी उनके मुखसे प्रकट हुई। यह बात सोलहों आने सच है। पर प्रश्न यह है कि भगवत्-स्फूर्ति होनेके पूर्व उन्होंने कुछ अध्ययन भी किया था या नहीं ? भगवत्-स्फूर्ति तुकारामजीको

ही क्यों हुई ? देहूमें या अन्यत्र और भी तो बहुत-से युवक थे। पर बोये बिना कुछ उगता नहीं और कष्ट किये बिना कुछ मिलता नहीं, कर्मका यह मुख्य सिद्धान्त है। तुकारामने भी भगवान्‌से मिलनेके लिये अनेक साधन किये। तुकाराम पाठशालामें जाकर पढ़े थे और परमार्थ सिखानेवाले गुरु भी उन्हें मिले थे। उनकी पाठशाला थी पण्ढरीका भागवत सम्प्रदाय और उनके गुरु थे उनके पूर्वमें होनेवाले भगवद्भक्त। पुण्डलीकने महाराष्ट्रमें भागवतधर्मका विश्वविद्यालय स्थापित किया तबसे पण्ढरीके विद्यालयसे संयुक्त आलन्दी, सासवड, त्र्यम्बकेश्वर, पैठण इत्यादि स्थानोंमें अनेक विद्यालय स्थापित हुए। इस विद्यालयसे अनेक भगवद्भक्त निर्माण होकर बाहर निकले थे और उन्होंने महाराष्ट्रमें सर्वत्र भागवतधर्मका जय-जयकार किया था। तुकारामके द्वारा देहूका विद्यालय स्थापित होना बदा था। पर इसके पूर्व उन्होंने पण्ढरी, आलन्दी और पैठणके विद्यालयोंमें योग्य गुरुओंके समीप स्वयं भी अध्ययन किया था। तुकाराम वारकरी सम्प्रदायकी पाठशालामें तैयार हुए और इस सम्प्रदायमें प्रचलित मुख्य-मुख्य ग्रन्थोंका उन्होंने भक्तिपूर्वक अध्ययन किया था। हमें इस अध्यायमें यही देखना है कि तुकारामजीने किन-किन ग्रन्थोंका अध्ययन किया, किन-किन सन्तोंके वचन कण्ठ किये, उनके प्रिय ग्रन्थस्थ कौन-से थे, उन्होंने ग्रन्थोंका अध्ययन किस प्रकार किया और उनमेंसे क्या सार ग्रहण किया। परन्तु इसके पूर्व हमें यह देखना चाहिये कि ग्रन्थाध्ययन-का सामान्यतः महत्त्व क्या है।

२ अध्ययनके बाद साक्षात्कार

सद्गुरु-कृपा होनेके पूर्व और कुछ काल पीछे भी ग्रन्थाध्ययन सबके लिये ही आवश्यक होता है। सबने सब समयोंमें शास्त्राध्ययनका महत्त्व माना है। पहले अपरा विद्या और पीछे परा विद्या, पहले परोक्ष ज्ञान और पीछे अपरोक्ष ज्ञान, पहले शास्त्राध्ययन और पीछे अनुभव, यह क्रम सनातनसे चला आया है। मुण्डकोपनिषद्में 'द्वे विद्ये वेदितव्ये' कहकर 'ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति' अपरा विद्या गिनाकर यह कहा है कि 'यया तदक्षरमधिगम्यते' (जिससे वह अक्षर ब्रह्म जाना जाता है) वह परा विद्या है। अपरा विद्या प्राप्त कर लेनेपर ही परा विद्या प्राप्त होती है। 'शब्दादेवापरोक्षधीः' अर्थात् वेदशास्त्रोंके अध्ययनसे ही अपरोक्षानुभव प्राप्त होता है, यही सिद्धान्त है। ज्ञान जैसे-जैसे जमता है वैसे-ही-वैसे विज्ञानका आनन्द प्राप्त होता जाता है। श्रीज्ञानेश्वर महाराजने 'अमृतानुभव' में पहले शब्दका मण्डन करके पीछे यह दिखा दिया है कि अपरोक्षानुभवके अनन्तर उसका किस प्रकार खण्डन हो जाता है। परन्तु शब्दका मण्डन करते हुए उन्होंने यह कहा है कि 'शब्द बड़े कामकी चीज है। 'तत्त्वमसि' शब्दके द्वारा ही जीवको अपने स्वरूपका स्मरण होता है। शब्द जीवको स्वरूप-स्थितिपर ले आनेवाला दर्पण है।' (अमृतानुभव प्र० ६। १) इसी प्रकार 'शब्द विहितका सन्मार्ग और निषिद्धका असन्मार्ग दिखानेवाला मशालची है। शब्द बन्ध और मोक्षकी सीमा निश्चित करनेवाला—इनके विवादका निर्णय करनेवाला न्यायाधीश

है।' (अमृत० प्र० ६।५) यहाँ 'शब्द' का अभिप्राय 'वेद' से है। 'वेद' शब्दका ही पर्याय है। शब्दसे ही जीवात्मा शिवात्मासे मिलता है। जीवात्माका परमात्मासे मिलन होनेपर यद्यपि शब्द पीछे हट आता है (यतो वाचो निवर्तन्ते), तथापि आत्मारामके मन्दिरमें पहुँचा आनेवाला 'शब्द' पथ-प्रदर्शक है और इसलिये उसका सहारा लिये विना जीवके लिये और कोई गति नहीं है।

३ शब्दका अभिप्राय

'शब्द' का अभिप्राय 'वेद' से ही है, तथापि वेदोंका रहस्य जो शास्त्र, पुराण और सन्त-वचन बतलाते हैं उनका भी समावेश इस 'शब्द में हो जाता है। अर्थात् 'शब्द' से वेद, शास्त्र, पुराण, सन्त-वचन, भव-बन्ध-मोचक शब्द-साहित्यमात्र ग्रहण करनेसे यही निष्कर्ष निकलता है कि शब्दका आश्रय किये बिना जीवको स्वहितका मार्ग मिलना दुर्घट है। इस पवित्र शब्द-साहित्यसे जीवको प्रवृत्ति-निवृत्ति, विधि-निषेध, बन्ध-मोक्षका यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है और अपने मूलका पता लगता है। तुकारामजीने धर्म-ग्रन्थोंके रूपसे वेद, शास्त्र, पुराण और सन्त-वचनोंको ही जहाँ-तहाँ ग्रहण किया है।

विश्वीं विश्वंभर। बोले वेदांतींचा सार ॥१॥
जगीं जगदीश। शास्त्रें वदती सावकाश ॥२॥
व्यापिलें हें नारायणें। ऐसीं गर्जती पुराणें ॥३॥
जनीं जनार्दन। संत बोलती वचन ॥४॥
सूर्याचिया परी। तुका लोकीं क्रीडा करी ॥५॥*

---

* ऐतिहासिक दृष्टिसे देखनेवाले इस अभंगमें यह देख सकते हैं कि

'विश्वमें विश्वम्भर हैं; साररूप वेदान्त यही कहता है। जगत्‌में जगदीश हैं, यही धीरे-धीरे शास्त्र बतलाते हैं। इस सबको नारायणने व्यापा है, यही पुराणोंकी गर्जना है। जनमें जनार्दन हैं, यही सन्तोंकी वाणी है। सूर्यके समान वही (श्रीहरि) लोकमें क्रीडा कर रहे हैं।'

वेद, शास्त्र, पुराण और सन्त-वचन सबका रहस्य एक ही है और वह यही है कि विश्वमें विश्वम्भर हैं, वही विश्वम्भर जो विश्वको अपने एकांशसे भरते हैं। वेदोंने यह आत्मस्फूर्तिसे बताया, शास्त्रोंने खण्डन-मण्डनपूर्वक चर्चा करते हुए सावकाश बताया, पुराणोंने गरजकर बताया जिसमें आबालवृद्ध और आचाण्डाल सब लोग सुन लें, और स्वयं अनुभव प्राप्त करके सन्तोंने बताया। चारोंके बतानेका ढङ्ग अलग-अलग हो सकता है, भाषा भिन्न-भिन्न हो सकती है, शैली भी विविध हो सकती है, पर सिद्धान्त एक ही है। सिद्धान्तकी दृष्टिसे उनमें एकवाक्यता है। वेद-शास्त्र जिसे आत्मा कहते हैं; पुराण राम-कृष्ण-शिवादि रूपसे जिसका वर्णन करते हैं, उसीको हमारे वारकरी भक्त विट्ठल नामसे पुकारते हैं। नामोंमें भेद भले ही हो, पर परमात्म-वस्तु एक ही है। नामरूपके भेदसे वस्तु-भेद नहीं होता। श्रुतिने जिसे पहचाननेके

तुकारामजीने हिन्दुस्थानके इतिहासके चार भाग किये हैं (१) वेदोपनिषत्काल, (२) शास्त्रों या षड्दर्शनोंका काल, (३) पुराणोंका काल और (४) साधु-सन्तोंका काल। इन चारों काल-विभागोंमें वैदिक धर्मकी परम्परा अविच्छिन्नरूपसे चली आयी है और 'विश्वीं विश्वंभर' (विश्वमें विश्वम्भर) ही हमारे धर्मका सार है।

लिये ॐ शब्दका सङ्केत किया उसीका वारकरी भक्तोंने विट्ठल कहा । श्रुतिने जिसका निर्गुण निराकारत्व बखाना, सन्तोंने उसीका सगुण-साकारत्व बखाना । लक्ष्य एक ही रहा । जबतक लक्ष्यमें भेद नहीं है तबतक वर्णन करनेकी पद्धतियोंमें भेद होनेपर भी लक्ष्य और सिद्धान्तकी एकता भङ्ग नहीं हो सकती । वेदोंका अर्थ, शास्त्रोंका प्रमेय और पुराणोंका सिद्धान्त एक ही हैं और वह यही है कि सर्वतोभावसे परमात्माकी शरणमें जाओ और निष्ठापूर्वक उसीका नाम गाओ । तुकारामजीने यही कहा है—'वेदोंने अनन्त विस्तार किया है पर अर्थ इतना ही साधा है कि विट्ठलकी शरणमें जाओ और निष्ठापूर्वक उसीका नाम गाओ । सब शास्त्रोंके विचार-का अन्तिम निर्धार यही है । अठारह पुराणोंका सिद्धान्त भी, 'तुका कहता है कि यही है ।'

वेद, शास्त्र और पुराण सिद्धान्तके सम्बन्धमें विसंवादी या परस्पर-विरोधी नहीं बल्कि एक ही सिद्धान्तको प्रकट करनेवाले हैं और इसलिये हमलोग यह कहा करते हैं कि हमारा सनातन धर्म वेद-शास्त्र-पुराणोक्त है, और हमारे नित्यकर्मोंका सङ्कल्प भी 'वेद-शास्त्र-पुराणोक्त फल-प्राप्त्यर्थं' होता है। जो परमात्मा वेदप्रति-पाद्य हैं उन्हींको 'सा चौ अठरांचा गोळा' (छः शास्त्र, चार वेद और अठारह पुराणोंका गोला) कहकर भक्तजन उनके 'श्याम रूपको आँखों देखना चाहते हैं।' तुकाराम कहते हैं—

ऐके रे जना । तुझ्या स्वहिताच्या खुणा ।
पंढरीचा राणा । मना माजी स्मरावा ॥१॥

सकल शास्त्रांचें हें सार। हें वेदांचे गव्हर।
पाहतां विचार। हाचि करिती पुराणें॥२॥

'सुन रे जीव! अपने स्वहितकी पहचान सुन ले। पण्ढरी-के राणाको मनमें स्मरण कर। सब शास्त्रोंका यह सार है, यही वेदोंका रहस्य है। पुराणोंका भी यही विचार है।'

वेद, शास्त्र, पुराण और सन्त-वचन सब नारायणपरक होनेसे इनमेंसे किसीका भी अध्ययन वैदिक धर्मका ही अध्ययन है! वेदोंको देखिये, शास्त्रोंको समझिये, पुराणोंको पढ़िये, अथवा साधु-सन्तोंकी उक्तियोंको ध्यानमें ले आइये, सबका सार एक ही है। यह सम्पूर्ण साहित्य इसीलिये निर्माण हुआ है कि जन्म-मृत्युका चक्कर छूटे, संसारको नश्वर जान जीव स्वकर्माचरण करे, परमात्म-बोध लाभकर निःसंशय स्थितिको प्राप्त करे, मृत्युको मारकर जीये, सहज सच्चिदानन्दरूप हो जाय। जल एक ही है, वापी, कूप, तड़ागादि केवल बाह्य उपाधि हैं। कोई नदी-किनारे रहकर नदी-के जलसे अपना काम कर ले, कोई सरोवरके जलसे काम चला ले, कोई कुँएका जल सेवन करे। ज्ञान उदकके समान है, जिसे पिपासा हो वह सहज साधनोंका उपयोगकर तृप्त हो, यही इस शब्द-साहित्यका मुख्य हेतु है। नदी, कूप, सरोवर, सागर सबका हेतु एक ही है और वह यही है कि तृषार्त्त जीव तृप्त हो लें। उपाधिका अभिमान या उपहास करके वाद-विवाद करना प्यास लगनेका लक्षण नहीं है। चोखामेला, रैदास चमार, सजन कसाई, कान्हूपात्रा-जैसे कनिष्ठ जातिमें उत्पन्न जीव भी सच्ची तृषा लगनेसे सत्सङ्गसे प्राप्त ब्रह्मानन्दरूप जल आकण्ठ पानकर तर गये।

परमार्थकी सच्ची तृषा लगनेपर जाति, रूप, धन, विद्यादि आगन्तुक कारणोंकी मीमांसा करनेको जी ही नहीं चाहता। एकनाथ-जैसे ब्राह्मण अपने ब्राह्मणत्वका अभिमान नहीं रखते और चोखामेला-जैसे अति शूद्र अपने 'हीनपन' से लज्जित भी नहीं होते। ज्ञानेश्वर, एकनाथने 'ब्राह्मणसमाज' नहीं स्थापित किये। नामदेव, तुकारामने 'पिछड़ी हुई जातियोंके सङ्घ' नहीं बनाये, और रैदास, चोखामेलाने 'अछूतोद्धारक मण्डल' भी नहीं खड़े किये! प्रत्युत सब जातियोंके सब मुमुक्षु जीवोंके लिये सब सन्तोंने अपने क़ीर्तनोंमें, ग्रन्थोंमें और अभंगोंमें अपनी वाणीका उपयोग किया है और सर्वत्र यही आशय प्रकट किया है कि 'यारे यारे लहान थोर। भलते याती नारी अथवा नर॥' (आओ, आओ, छोटे-बड़े सब आओ, चाहे जिस जातिके रहो, नर हो नारी हो, आओ।) तात्पर्य, वेद, शास्त्र, पुराण और सन्त-वचन जीवोंके उद्धारके लिये निर्माण हुए हैं और जिस किसीका मन भगवान्‌के लिये बेचैन हो उठा हो उसके लिये इन्हींमेंसे किसी एक या अनेक प्रकारोंका अवलम्बन करना आवश्यक है, क्योंकि इसके बिना परोक्ष ज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता। तुकारामजीने इनमेंसे 'पुराणों और सन्त-वचनोंका अवलम्बन किया और उनका सार हृदयमें संग्रह कर लिया।'

४ अध्ययनके विषय—पुराण और सन्त-वचन

तुकारामजीने वेदोंका अध्ययन नहीं किया। 'घोकाया अक्षर। मज नाही अधिकार॥' (अक्षर घोखनेका मुझे अधिकार नहीं) यह उन्होंने स्वयं ही तीन बार कहा है। पर उन्होंने यह नहीं कहा कि ब्राह्मण ही वेदके अधिकारी क्यों? हम शूद्रोंको यह अधिकार

क्यों नहीं ? इसके लिये वह ब्राह्मणोंसे कभी लड़े नहीं। ऐसे व्यर्थके वाद उपस्थित करनेवाला क्षुद्र मन उनका नहीं था। वह यह जानते थे कि ब्राह्मणोंको वेदाधिकार होनेपर भी सभी ब्राह्मण वेदाध्ययन नहीं करते और जो करते हैं वे सभी संसार-सागरसे मुक्त नहीं होते और हों भी तो कोई हर्ज नहीं, उनसे औरोंका मुक्ति-द्वार बन्द नहीं हो जाता; 'स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्' इस भगवद्वचनके अनुसार उनके लिये मोक्षके द्वार खुले ही हैं। जिन्हें वेदोंका अधिकार था उनमेंसे बहुत ही थोड़े वेदोंका अध्ययन करनेवाले थे, और इनमेंसे बिरला ही कोई वेदार्थ जानकर अर्थरूप-को प्राप्त होता था! इसके अतिरिक्त वेदार्थ अत्यन्त गहन है, शास्त्र अपार है और जीवन बहुत अल्प। ऐसी अवस्थामें वेदोंका रहस्य यदि सुलभ पुराण-ग्रन्थोंमें तथा प्राकृत ग्रन्थोंमें मौजूद है तब इस सुगम मार्गको छोड़कर सामने परोसकर रखे हुए भोजनसे विमुख होकर झूठ-मूठ परेशानी उठानेकी क्या आवश्यकता है? फिर सौ बातकी एक बात यह है कि जिसके चित्तकी सच्ची लगन लग गयी वह साधनोंके झगड़ेमें नहीं पड़ा करता, जो साधन सहज समीप और सुलभ होते हैं उन्हींका अवलम्बनकर अपना कार्य साध लेता है। इस प्रकार तुकारामजीने पुराणों और सन्त-वचनोंको ही अपने अध्ययनके लिये चुना और उनके प्रेमी स्वभाव-के लिये यही चुनाव उपयुक्त था। और इतनेसे भी उनका कार्य पूर्ण हुआ। वेदोंके अक्षर उन्हें कण्ठ करनेका अधिकार नहीं था तो भी वेदोंका अर्थ—अक्षर परब्रह्म—उन्हें प्राप्त हुआ। इस प्रकार

शब्दतः तो नहीं पर अर्थतः उन्होंने वेदोंका अध्ययन किया और यही तो चाहिये था ।

५ अध्ययनका रुख

तुकारामजीने अपने जीवनके कुछ वर्ष ग्रन्थाध्ययनमें व्यतीत किये इसमें सन्देह नहीं । उन्होंने अपने आत्मचरित्रपर अभंगोंमें कहा ही है कि 'विश्वास और आदरके साथ सन्तोंके वचनोंका पाठ किया ।' 'पढ़े हुए शब्दका ज्ञान बतलाता हूँ,' 'जैसा पढ़ाया वैसा पढ़ना मनुष्य जानता है; इत्यादि अभंगोंमें यही बात उन्होंने कही है । दूसरोंको उपदेश करते हुए भी उनके मुखसे इसी प्रकारके उद्गार निकले हैं—'वेदोंको पढ़कर हरिगुण गाओ,' 'ग्रन्थोंको देखकर कीर्तन करो ।' जिन ग्रन्थोंको उन्होंने देखा, विश्वास और आदरके साथ देखा । ग्रन्थकर्ताके प्रति आदरभाव रखकर तथा उनके द्वारा विवेचित सिद्धान्तों और कथित सन्त-कथाओंपर पूर्ण विश्वास रखकर तुकारामजीने उन ग्रन्थोंको पढ़ा, यह उन्होंने स्वयं ही बताया है । उनके पिताने उन्हें जमा-खर्च, बाकी-रोकड़, बहीखातेमें लिखने योग्य हिसाब-किताबका ज्ञान करा दिया था, पर जब उन्हें परमार्थकी भूख लगी तब उन्होंने परमार्थके ग्रन्थोंको बड़ी आस्थासे देखा । प्रपञ्चमें काम देनेवाली विद्या जीवनको सफल करानेवाली विद्या नहीं है । यह बोध जब उन्हें हुआ तब वह परमार्थके ग्रन्थ देखने लगे । भगवान्‌के लिये अक्षरों-को लेकर बड़ी माथा-पच्ची की । प्रपञ्चका मिथ्यात्व प्रतीत होनेपर वैराग्य दृढ़ हुआ और तब भगवत्-प्राप्तिके लिये प्राण व्याकुल हो उठे । तब—

मागील भक्त कोणे रीती। जाणोनि पावले भगवद्भक्ती।
जीवें भावें त्या विवरी युक्ती। जिज्ञासु निश्चिती या नांव॥

(नाथभागवत १९—२७४)

'पूर्वके भक्त किस प्रकार भगवद्भक्तिको प्राप्त हुए यह जानकर तन-मन-प्राणसे उन साधनोंका जो विचार करता है उसीको जिज्ञासु कहते हैं।'

इसी प्रकार तुकाजी, पूर्वके भक्त किन साधनोंसे भगवान्‌के प्रिय हुए इसका विचार करने लगे और यह विचार ग्रन्थोंमें ही होनेसे उन्हें ग्रन्थोंका अवलोकन करना पड़ा। पूर्वके भक्तोंकी कथाएँ जानकर उनका अनुकरण करनेके लिये उन्होंने पुराणों और सन्त-वचनोंका परिचय प्राप्त किया। सन्तोंके वचनोंको देखते-देखते उनका मनन होने लगा, मननसे अनायास पाठान्तर हुआ। मनन करते-करते अक्षर मुखस्थ हो गये, पाठान्तर और मननसे अर्थरूप हो गये। वही कहते हैं कि 'केवल शब्द कण्ठ करनेसे क्या होगा, अर्थको देखो, अर्थरूप होकर रहो, एकनाथ भी कहते हैं—

शब्द सांडूनियां मागें। शब्दार्थी माजी रिगे।
जें जें परिसतु तें तें होय अंगें। विकल्पत्यागें विनीतु॥

(नाथभागवत ७—२५९)

'शब्दको पीछे छोड़ दो और शब्दके अर्थमें प्रवेश करो। जो-जो सुनो वह विनीत होकर, विकल्पको त्यागकर स्वयं हो जाओ।'

जिसे जिसकी चाह होती है उसे वह जहाँ भी मिले वहींसे निकाल लेता है। तुकारामजीको भगवान्‌की चाह थी, इसीकी

धुन थी, इसलिये देवताओं और भगवान्का परिचय करानेवाले देवतुल्य सन्तजनोंकी कथाएँ जिन ग्रन्थोंमें थीं वे ही ग्रन्थ उन्हें प्रिय हुए और इन ग्रन्थोंमेंसे विशेषकर ऐसे ही वचन उन्हें कण्ठ हो गये जो हरि-प्रेम बढ़ानेवाले हैं—

करूं तैसें पाठांतर। करुणाकर भाषण॥१॥
जिहीं केला मूर्तिमंत। ऐसा संतप्रसाद॥ध्रु०॥
सोज्ज्वल केल्या वाटा। आइत्या नीटा मागिल्या॥२॥
तुका म्हणे घेऊं धांवा। करूं हांवा ते जोडी॥३॥

'सन्तोंके ऐसे वचनोंका पाठ करें जिनमें करुणा-प्रार्थना हो। जिन सन्तोंने भगवान्को सगुण-साकार होनेको विवश किया ऐसे सन्तोंके वचन उनका प्रसाद ही हैं। इन सन्तोंने पूर्वके सन्तोंके मार्ग झाड़-बुहारकर स्वच्छ किये हैं। ये मार्ग पहलेसे ही हैं, पर इन सन्तोंने इन मार्गोंको और सुगम कर दिया है। अब जल्दी करें, भगवान्को पुकारें और उनके चरणयुगल प्राप्त करें।'

इस अभंगको और विचारें तो तुकारामजीके मनका भाव स्पष्ट ज्ञात हो जायगा। परमार्थविषयक सहस्रों ग्रन्थ संस्कृत और प्राकृत भाषाओंमें थे, पर उन सबमें उन्हें वे ही ग्रन्थ प्रिय थे जिनमें 'करुणाकर भाषण' थे अर्थात् जिनमें भगवान्की करुणा-प्रार्थना थी, भगवान् और भक्तका प्रेम जिनमें व्यक्त हुआ था, जो प्रेमसे भगवान्की बलैया लेनेमें सहायक थे। केवल शास्त्रीय प्रक्रिया बतलानेवाले शास्त्रीय ग्रन्थ उन्हें नहीं रुचते थे। 'करुणाकर भाषण' भी नये पुराने अनेक कवियोंके काव्योंमें ग्रथित किये हुए मिलेंगे, पर केवल इतनेसे उनको सन्तोष नहीं हो सकता था।

उन्हें तो ऐसे सगुणभक्तोंके 'करुणाकर भाषणों' का पाठ करना था जिन्होंने भगवान्‌को 'मूर्तिमान्' किया हो, अर्थात् जिन्हें सगुण-साक्षात्कार हुआ हो, जिन्होंने भगवान्‌को प्रत्यक्ष देखा हो, भगवान्‌से प्रेमालाप किया हो। इन सगुण भक्तोंके 'करुणाकर भाषणों' का पाठ करनेका हेतु भी तुकारामजीने उपर्युक्त अभंगके चौथे चरणमें बता दिया है। उन सन्तोंको जो लाभ हुआ अर्थात् भगवान्‌को 'मूर्तिमान्' करके जो प्रेम-सुख उन्होंने प्राप्त किया वही प्रेम-सुख तुकाराम चाहते थे और उनका उत्साहबल इतना दिव्य था कि वह यह समझते थे कि 'भगवान्‌की गुहार कर' हम उसे प्राप्त कर लेंगे। जिन सन्तोंको भगवान्‌का सगुण-साक्षात्कार हुआ उन्हींके वचनोंका पाठ करनेका हेतु तुकारामजीने इस प्रकार व्यक्त कर ही दिया है। पर सन्त भी तुकारामजी ऐसे चाहते थे जो पूर्व-परम्पराको लेकर चले हों। कोई नया धर्मपन्थ चलानेवाले, नया सम्प्रदाय प्रवर्तित करानेवाले, कोई नया आन्दोलन उठानेवाले महात्मा वह नहीं चाहते थे। धर्मक्रान्ति या बगावत उन्हें प्रिय नहीं थी। पहलेसे ही जो मार्ग बने हुए हैं, पर बीचमें कालवशात् जो लुप्त या दुर्गम हो गये उन्हें फिरसे स्वच्छ और सुगम बनानेवाले महात्माओंके ही वचन उन्हें प्रिय थे। 'आम्ही (हम) वैकुंठवासी' अभंगमें तुकारामजीने अपने अवतारका प्रयोजन बताया है। उसमें भी यही कहा है कि प्राचीन कालमें 'ऋषि जो कुछ कह गये' उसी-को 'सत्यभावसे वर्तनेके लिये' हम आये हैं और 'सन्तोंके मार्ग झाड़-बुहारकर स्वच्छ करेंगे' यही हमारा काम है।

पुढिलांचे सोयी माझ्या मना चालीं।
मताची आणिली नाहीं बुद्धि॥

'पूर्वके सन्तोंके मार्गपर चलें यही मेरी मनःप्रवृत्ति है, मैंने अपनी बुद्धिसे कोई नया मत नहीं ग्रहण किया है।' तुकारामजी कहते हैं, 'मेरा साक्षीका व्यवहार है।' तुकाजीने बालक्रीड़ाके जो अभंग रचे उनमें उन्होंने यही कहा है कि 'शिष्टोंके बल-भरोसे गीत गाऊँगा।' दूसरे एक स्थानमें तुकाजी कहते हैं कि 'मेरी वाणी क्या है मूर्खकी बकवाद है, बच्चेकी तोतली बातें हैं, इस प्रकार अपनेको कवित्व-हीन बतलाते हुए यह भी बतला देते हैं कि 'आप सन्तजनोंका जूठन सेवन करके, आपलोगोंका सहारा पाकर ही मेरे मुखसे प्रासादिक वाणी निकली।' (आधारें बदली प्रसादाची वाणी। उच्छिष्ट सेवनीं तुमचिया ॥) तुकाजीने फिर भगवान्‌से यही प्रार्थना की है कि 'सन्त गेले तया ठाया। देवराया पाववी ॥' (पूर्वके सन्त जहाँ पहुँचे, वहीं हे भगवन्! मुझे पहुँचाओ।)

तात्पर्य, पूर्वपरम्पराको लेकर चलनेवाले तथा भगवान्‌को मूर्तिमान् करनेवाले पहुँचे हुए सन्तोंके ही वचनोंका पाठ तुकाजी करते थे और उन सन्तोंको जो भगवद्दर्शन हुए वे ही दर्शन तुकाराम चाहते थे। कौन ऐसे सन्त थे और कौन-से ग्रन्थ तुकाराम-प्रिय हुए यह विचार-प्रसङ्गसे आप ही आगे आनेवाला है। पुराण-ग्रन्थों और साधु-सन्तोंके ग्रन्थोंका ही सहारा तुकाजीने लिया और उनका सार अपने हृदयमें संग्रह किया। बृहदारण्यकमें कहा है, 'शब्दोंका अध्ययन बहुत न करे। कारण, वाणीकी वह व्यर्थकी थकान है।' ग्रन्थोंके सिद्धान्त ध्यानमें आनेपर ग्रन्थोंका प्रयोजन नहीं रहता। ग्रन्थोंके सिद्धान्त जहाँ ज्ञात हुए और यह

लगन लगी कि महात्माओंके अनुभव मुझे भी प्राप्त हों, आत्यन्तिक सुखका अधिकारी मैं भी बनूँ और इसके लिये जी जहाँ छटपटाने लगा वहाँ ग्रन्थाध्ययन धीरे-धीरे कम होने ही लगता है और अन्तरङ्गका अभ्यास तब आरम्भ होता है। पीछेकी अवस्थामें तुकारामजीने ही कहा है—

पाहों ग्रंथ तरी आयुष्य नाहीं हातीं ।
नाहीं ऐसी मती अर्थ कळे ॥ १ ॥
(देखूं ग्रंथ सारे तो आयु नहीं हाथ ।
मति भी न दे साथ अर्थ जानूं ॥ १ ॥)
होईल तें हो या विठोबाच्या नांवें ।
अर्जिलें तें भावें जीवीं धरूँ ॥ २ ॥
(होना हो सो होय विट्ठल-आसरे ।
आये भक्तिसे रे उर धरूँ ॥ २ ॥)

'सब ग्रन्थ देखना चाहें तो आयु अपने हाथमें नहीं । इतनी बुद्धि भी नहीं जो अर्थ समझमें आवे। इसलिये विठोबाके नामपर जो हो सो हो, जो कुछ (ज्ञान) मिलेगा उसे भावपूर्वक जीसे लगा रखूँगा, ग्रन्थके साररूप हरिको जब चित्त ले लेता है तब ग्रन्थका कार्य समाप्त हो जाता है। अस्तु, तुकारामजीने कौन-से ग्रन्थ देखे, किन सन्तोंके वचनोंका पाठ किया, या पठित ग्रन्थोंमें-से क्या सार ग्रहण किया, यह अब देखें।

६ महीपतिबाबाके उद्गार

तुकारामजीके ग्रन्थाध्ययनका वर्णन महीपतिबाबाने अपने

'भक्तलीलामृत' (अ० ३०) में अपनी प्रेम-परा-वाणीसे इस प्रकार किया है—

'नामदेवके अभंगोंका नित्य पाठ करते हुए (तुकाराम) नाचते-गाते थे। एकादशीको व्रत रहकर सन्तोंके साथ जागरण करते थे, उन्होंने अन्य सन्तोंके भी ग्रन्थ देखे। विख्यात यवन-भक्त कबीरका वचनामृत बड़ी प्रीतिसे पान करते थे। श्रीज्ञानेश्वरने अपने श्रीमुखसे जो महान् अध्यात्म ग्रन्थ कहा उसकी शुद्ध प्रति इस वैष्णव वीरने प्राप्त की और उसका अध्ययन किया। श्रीविष्णु-अवतार एकनाथने भागवतपर जो टीका की उसका भी शुद्ध ग्रन्थ इन्होंने बड़े प्रयाससे प्राप्त किया। इस ग्रन्थका मनन करनेके लिये तुकाराम भण्डार-पर्वतपर एकान्त स्थानमें जाकर बैठा करते थे। पूर्वाभ्यासमें तुकारामजीके सहाय स्वयं कैवल्यदानी भगवान् थे। पर्वतपर बैठकर ग्रन्थका पारायण करके अब वह अर्थान्वय ध्यानमें लाते थे। ग्रन्थके वचन स्मरण रखने और कण्ठ करनेमें तुकाराम जीको विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ता था, दिन-रात मनन करते थे, इससे अक्षर कण्ठस्थ हो जाते थे। एकनाथ महाराजके प्रासादिक वचन जिसमें भरे हुए हैं उस भावार्थ-रामायणका भी निज प्रीतिसे पारायण करते थे। श्रीमद्भागवतकी सरस कथाएँ उन्होंने पढ़ी और किन्हीं महापुरुषके मुखसे भी सुनी। श्रीहरिकी लीला विशेष 'आयास' के साथ देखी-सुनी। श्रीज्ञानेश्वरके योग-वासिष्ठ, अमृतानुभव ग्रन्थोंका मननकर अर्थकी खोज की। और पुराण भी बहुत श्रवण किये।'

महीपतिबाबाने जिन ग्रन्थोंका उल्लेख किया है उन्हें

तुकारामजीने 'एकान्तमें बैठकर देखा और उनका अर्थ ढूँढ़ा' इसमें सन्देह नहीं। नामदेवके अभंग 'पाठ करते हुए वह नाचा करते थे' यह तो स्पष्ट ही है। सर्वप्रथम नामदेवके ही अभंगोंका पाठ और मनन किया। कबीरके दोहे उन्होंने 'बड़ी प्रीतिसे' पढ़े यह बात इससे भी स्पष्ट हो जाती है कि तुकारामजीने स्वयं भी वैसे ही दोहे रचे हैं। ज्ञानेश्वरके ग्रन्थोंकी 'शुद्ध प्रतियाँ' उन्होंने प्राप्त की, महीपतिबावाका यह कथन बड़े ही महत्त्वका है। ज्ञानेश्वरके ज्ञानेश्वरी, अमृतानुभव और योगवासिष्ठ (?) ग्रन्थोंका उन्होंने 'मनन किया और अर्थ ढूँढ़कर' रखा। महीपतिबावाने इसी प्रसङ्गमें आगे चलकर कहा है कि 'हरिपाठके श्रेष्ठ अभंग जिन्हें श्रीज्ञानेश्वरने स्वमुखसे कहा उन अभंगोंको वैष्णव-वीर तुका प्रेम और आदरके साथ गाया करते थे।' अर्थात् ज्ञानेश्वरी, अमृतानुभव, योगवासिष्ठ और हरिपाठके अभंग, ज्ञानेश्वर महाराजके इन चार ग्रन्थोंका तुकारामजीने मननपूर्वक अध्ययन किया था। अब रही बात एकनाथ महाराजकी। नाथभागवतका शुद्ध ग्रन्थ उन्होंने बड़े 'प्रयाससे' प्राप्त किया और भण्डारा-पर्वतपर निर्जन स्थानमें बैठकर इन ग्रन्थोंका पारायण किया। नाथके 'भावार्थरामायण' का भी उन्होंने 'निज प्रीतिसे पारायण' किया। भागवतकी सरस कथाएँ पढ़ीं, किन्हीं महापुरुषद्वारा वर्णित कथाएँ भी श्रीकृष्णलीलाप्रेमार्थ 'आयास' के साथ सुनी। महीपतिबावाने तुकारामजीके अध्ययनका यह जो सुन्दर वर्णन किया है वह यथार्थ है, बाबाकी शोधकबुद्धि और मार्मिकता देखकर साश्चर्य आनन्द होता है। तुकारामजीके ग्रन्थाध्ययनके सम्बन्धमें महीपतिबावाने

जो कुछ लिखा है उसका समर्थन करनेके लिये तुकारामजीके अभंगोंमें ही कोई अन्तःप्रमाण मौजूद हों तो उन्हें अब देखें। नामदेव, कबीर, ज्ञानेश्वर और एकनाथके ग्रन्थोंको तो तुकारामजी-ने आस्थापूर्वक देखा ही था, पर और भी उन्होंने क्या-क्या देखा था यह भी हमलोग क्रमसे देखें। मेरे विचारमें तुकारामजी मूल-संस्कृत भागवत और गीता प्राकृत टीकाओंकी सहायताके बिना स्वयं समझ सकते थे और कितने ही संस्कृत स्तोत्र, सुभाषित, भर्तृहरिके नीति और वैराग्यशतक आदि ग्रन्थ भी उन्होंने देखे थे। तात्पर्य, तुकाराम बहुश्रुत थे और उनके अभंगोंसे यह अनुमान होता है कि वह संस्कृत भी सामान्यतः अच्छी जानते थे।

७ भागवतधर्मके मुख्य ग्रन्थ—गीता और भागवत

तुकाराम भागवतधर्मके विद्यालयमें भर्ती हुए, यह पहले कह ही चुके हैं। पिछले अध्यायमें यह भी दिखा चुके हैं कि उन्होंने भागवतधर्मका आचार स्वीकार कर लिया। अब जिन ग्रन्थोंमें भागवतधर्मके तत्त्वोंका प्रतिपादन किया हुआ हो उन ग्रन्थों-का अध्ययन भी सम्प्रदायके साथ आप ही प्राप्त होता है। भागवतधर्मके मुख्य ग्रन्थ दो हैं—गीता और भागवत। वेद-शास्त्रोंका सम्पूर्ण रहस्य गीता-ग्रन्थमें सञ्चित किया हुआ है और गीतावक्ता श्रीकृष्णचन्द्रका चरित्र भागवतमें वर्णित है। श्रीकृष्णके ज्ञानाधिकारी भक्त दो हैं, एक अर्जुन और दूसरे उद्धव। भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको गीतामें और उद्धवको श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धमें भागवतधर्मका रहस्य बताया है। इसीको मराठीमें यथाक्रम श्रीज्ञानेश्वर और एकनाथने विशद किया है। भागवतधर्म-

के गीता और भागवत मुख्य आधारस्तम्भ हैं और उनमें पूर्ण एकवाक्यता है। दोनों ग्रन्थोंकी शिक्षा एक है। दोनोंका यही एक उपदेश है कि सब कर्म कृष्णार्पणबुद्धिसे करके हरिभक्तिके द्वारा स्वयं तर जाय और दूसरोंको भी तारे। कुछ विद्वान् यह कहा करते हैं कि गीता प्रवृत्तिपरक है और भागवत निवृत्ति-परक; पर यथार्थमें दोनों ग्रन्थ प्रवृत्ति-निवृत्तिका परदा फाड़ने-वाले ग्रन्थ हैं। दोनों ग्रन्थोंमें ज्ञान और भक्तिका मधुर मिलन हुआ है।

गीता-भागवत करिती श्रवण। आणिक चिंतन विठोबाचें॥
तुका म्हणे मज घडो त्यांची सेवा। तरी माझ्या दैवा पार नाहीं॥

'जो गीता और भागवत श्रवण करते हैं और श्रीहरिका चिन्तन करते हैं, तुका कहता है कि उनकी सेवाका अवसर मुझे मिले तो मेरे सौभाग्यकी सीमा न रहे।' 'पांडुरंगा करूँ प्रथम नमना' वाले ओवीरूप शतचरणाभंगमें भागवतका स्वतन्त्र उल्लेख भी किया है—

'सत्य जो कुछ है, व्यासादिने बता दिया है। मैं उन्हींका उच्छिष्ट अपनी वाणीसे कहता हूँ। व्यासने कहा है कि भव-सिन्धुके पार जानेके लिये भक्ति ही मुख्य है। जनोंके उद्धारके लिये ही भागवत निर्माण किया········।'

तुकारामजीके कथनानुसार गीता और भागवतका 'भक्ति ही सार' है। गीता और भागवतका तुकारामजीको कितना दृढ़ परिचय था, यह अब देखा जाय।

८ गीताध्ययन

मूलगीता तुकाराम नित्य पाठ करते थे और इससे उनके

अभंगोंपर जहाँ-तहाँ गीताकी छाया पड़ी स्पष्ट दिखायी देती है। कुछ उदाहरण नीचे देते हैं—

गीता—**निर्दोषं हि समं ब्रह्म।**

अभंग—**ब्रह्म सर्वगत सदा सम। जेथें आन नाहीं विषम॥**

'ब्रह्म सर्वगत सदा सम है। जहाँ और कुछ भी विषम नहीं है।'

गीता—**अन्तकाले च मामेव स्मरन्।**

अभंग—**अंतकाळीं ज्याच्या नाम आलें मुखा।**
तुका म्हणे सुखा पार नाहीं॥

'अन्तकालमें जिसके मुखमें नाम आ गया उसके सुखका कोई पार नहीं।'

गीता—**पद्मपत्रमिवाम्भसा।**

अभंग—**मग मी व्यवहारीं असेन वर्तत।**
जैसें जळाआंत पद्मपत्र॥

'व्यवहारमें मैं ऐसे रहता हूँ जैसे जलमें कमलपत्र।'

गीता—**'द्वाविमौ पुरुषौ लोके'** और **'उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः'**

अभंग—**क्षरा अक्षरावेगळा। तुका राहिला सोवळा॥**

'क्षर-अक्षरसे अलग वह बेलाग है।'

गीता—**ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं**
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।

अभंग—जरी मागों पद इंद्राचें। तरी शाश्वत नाहीं त्याचें॥
स्वर्ग भोग मागूं पूर्ण। पुण्य सरल्या मागुती येणें॥

'यदि इन्द्रका पद माँगूँ तो वह शाश्वत नहीं है। पूर्ण स्वर्ग-भोग माँगूँ तो पुण्य समाप्त होनेपर लौटना पड़ेगा।'

'यावानर्थ उदपाने' (गीता २।४६) इस श्लोकका भावार्थ ज्ञानेश्वरीके अनुरूप तुकारामजीने इस प्रकार किया है—

त्यांनी गंगेचिया अंतावीण काय चाड।
आपलें तें कोड तृषेपाशीं॥

'गङ्गाका अन्त पाये बिना हमारा क्या काम रुका जाता है? हमारा मतलब तो प्यास बुझानेसे है।'

'ॐतत्सदिति निर्देशः' का अभिप्राय तुकारामजी यह बतलाते हैं—

ॐ तत्सत् इति सूत्राचें सार। कृपेचा सागर पांडुरंग॥१॥

(ॐ तत्सत् इति सूत्रका सार। कृपाके सागर पांडुरंग॥१॥)

गीता—कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते॥

अभंग—त्यागें भोग माझ्या येतील अंतरा।
मग मी दातारा काय करूँ॥

'ऐसे त्यागसे भोग मेरे अन्तरमें आ जायँगे तब मैं क्या करूँगा!'

गीता—उद्धरेदात्मनात्मानम् ।

अभङ्ग—आपणचि तारी आपण चि मारी ।
आपण उद्धरी आपणया ॥

'आप ही तारनेवाला है, आप ही मारनेवाला है। अपना आप ही उद्धार करनेवाला है।'

गीता—वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥

अभङ्ग—जीव न देखे मरण । धरी नवीं सांडी जीर्ण ॥

'जीव मरण नहीं देखता। नया धारण करता और पुराना छोड़ देता है।'

गीता—अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥

अभङ्ग—न व्हावीं तीं जालीं कर्मं नरनारी ।
अनुतापें हरी स्मरतां मुक्त ॥

'जिनके हाथों ऐसे कर्म हुए जो कभी न हों वे नर हों या नारी, अनुतापसे हरिका स्मरण कर मुक्त होते हैं।'

गीता—अनन्याश्चिन्तयन्तो मां × × × ।
× × × योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

अभङ्ग—संसारांचें वोझें वाहता वाहविता ।
तुजविण अनंता नाहीं कोणी ॥१॥
गीतेमाजी शब्द दुंदुभीचा गाजे ।
योगक्षेम काज करणें त्याचें ॥२॥

'संसारका बोझ ढोनेवाला और ढोवानेवाला हे अनन्त !
तेरे बिना कोई नहीं है । गीतामें दुन्दुभीका नाद निनादित
हो रहा है—योगक्षेम चलाना उसीका काम है ।'

अस्तु, इन उदाहरणोंसे यह पता लग जायगा कि मूल गीतासे तुकारामजीका कितना दृढ़ परिचय था । तुकारामजीके पास जो कोई परमार्थविषयक उपदेश सुननेके लिये आता, तुकाराम उसे गीताकी पोथी देते और यह कहते कि गीता और विष्णुसहस्रनामका पाठ किया करो । तुकारामजीने अपने जामाता और शिष्य मालजी गाडे येलवाडीकरसे गीता-पाठ करनेको कहा था । बहिणाबाईको उन्होंने स्वप्न दिया कि 'राम कृष्ण हरी' मन्त्रका जप करो और उसी समय गीताकी पोथी उनके हाथमें दी और कहा कि इसका नित्य पाठ किया करो । यह बात स्वयं बहिणाबाईने अपने अभङ्गमें कही है । तात्पर्य, तुकारामजी गीताका नित्य पाठ किया करते थे और गीताकी बहुत-सी प्रतियाँ स्वयं लिखकर अथवा शिष्योंसे लिखाकर अपने पास रखते थे । ये प्रतियाँ जिज्ञासुओंको देनेके काम आती थीं । यह भी हो सकता है कि गीताकी ऐसी प्रतियाँ लिख-लिखकर लोग उन्हें अर्पण करते हों । इस प्रकार तुकारामजी स्वयं नित्य गीता-पाठ करते थे और दूसरोंसे भी कराते थे ।

९ भागवत-परिचय

गीताके समान ही मूल भागवत भी उन्होंने अच्छी तरह देखा था । गीता पढ़ना ज्ञानेश्वरी पढ़ना है और भागवत पढ़ना एकनाथी भागवत पढ़ना है । ऐसी साम्प्रदायिक परिपाटी

होनेपर भी तुकारामजीने मूल गीता और मूल भागवतको अच्छी तरह देखा था, इसमें कोई सन्देह नहीं। तुकारामजीके अभङ्गोंमें या सभी सन्तोंकी कविताओंमें जिन प्रह्लाद, ध्रुव, गजेन्द्र, अजामिल, अम्बरीष, उद्धव, सुदामा, गोपी, ऋषि-पत्नी आदि भक्त-भक्तिनोंके बारम्बार नाम आते हैं उनकी कथाएँ भागवतपुराणमें ही हैं। ध्रुवाख्यान भागवतके चतुर्थ स्कन्धमें (अ० ८-९) है, जडभरतकी कथा पञ्चम स्कन्धमें (अ० ९, १०, ११), अजामिलकी कथा षष्ठ स्कन्धमें (अ० १, २, ३), प्रह्लाद-चरित्र सप्तम स्कन्धमें (अ० ५ से १०), गजेन्द्र-मोक्षका वर्णन अष्टम स्कन्धमें (अ० २, ३), अम्बरीषका आख्यान नवम स्कन्धमें (अ० ४, ५) और दशम स्कन्धमें सम्पूर्ण श्रीकृष्ण-चरित्र है। संसारके सब ग्रन्थोंमें भक्ति-सुखार्णवस्वरूप श्रीमद्भागवत ग्रन्थ अत्यन्त मधुर है। उसमें भी दशम स्कन्ध मधुरतर और उसमें फिर श्रीकृष्णकी बाललीला मधुरतम है। श्रीकृष्णकी बाल-लीलाओंके सम्बन्धमें आगे विस्तारपूर्वक वर्णन आनेवाला है इसलिये यहाँ लेखनीको रोक रखते हैं। अन्य सन्तोंके समान तुकारामजीको भागवतसे स्फूर्ति मिली। एकादश स्कन्धपर एकनाथ महाराजका भाष्य है और द्वादश स्कन्धमें कलिसन्तारक नाम-संकीर्तनकी महिमा वर्णित है। श्रीमद्भागवत भागवतधर्मका वेद है। श्रीज्ञानेश्वर महाराजने व्यासदेवके पद-चिह्नोंको ढूँढ़ते हुए और भाष्यकार (श्रीमत् शङ्कराचार्य) से मार्ग पूछते हुए गीतारहस्य विशद किया है, तथापि ज्ञानेश्वरीपर भागवतकी ही छाप अधिक पड़ी है। भारतवर्षमें श्रीकृष्णभक्तिका प्रचार प्रधानतः भागवतसे ही हुआ है। भागवत ग्रन्थ तुकारामजीने अनेक बार समग्र सुना,

देखा और अपनी भाषामें दोहराया है । भागवतके अनेक श्लोक उन्हें कण्ठ हो गये, उनका मर्म उनके हृदयमें उतर आया और उसकी भक्तकथाएँ उनकी भक्तिके लिये उद्दीपक हुईं । इस विषयमें किसीको कुछ सन्देह न रह जाय, इसलिये अन्तःप्रमाणोंके द्वारा ही यह देखा जाय कि तुकारामजीके विचार और वाणीपर भागवतका कितना गहरा प्रभाव पड़ा था—

(१) चतुर्थ स्कन्ध (अ० ८) में नारदजीने ध्रुवको भगवत्-स्वरूपका ध्यान बताया है । इसी प्रकार भागवतमें अन्यत्र श्रीमहाविष्णुका वर्णन है । दशम स्कन्धमें श्रीकृष्णका रूप-वर्णन भी वैसा ही है । तुकारामजीने श्रीपण्ढरपुरनिवासी श्रीविट्ठलका जो रूप-वर्णन किया है वह भागवतके उस रूप-वर्णनके साथ मिलाकर देखनेयोग्य है—

श्रीवत्साङ्कं घनश्यामं पुरुषं वनमालिनम् ।
शङ्खचक्रगदापद्मैरभिव्यक्तचतुर्भुजम् ॥ ४७ ॥
किरीटिनं कुण्डलिनं केयूरवलयान्वितम् ।
कौस्तुभाभरणग्रीवं पीतकौशेयवाससम् ॥ ४८ ॥

वनमालिनम्=**तुळशीहार गळां, रुळे माळ कंठीं वैजयन्ती ।**

गलेमें तुलसीका हार है, वैजयन्ती माला लटक रही है ।

घनश्यामं पीतकौशेयवाससम्=**कासे सोनसळा पांघरे पाटोळा ।**
घननीळ सावळा बाइयानो ॥ १ ॥
(**काछे पीतांबर पीतपट धारे ।**
घननील सांवरे मेरे कान्हा ॥)

किरीटिनं कुण्डलिनम्=मकर कुंडलें तळपती श्रवणीं।

मुकुट कुंडलें श्रीमुख शोभलें। इत्यादि

(मकर कुंडल जगमगैं स्रवन। मुकुट कुंडल श्रीमुख सोहन॥)

कौस्तुभाभरणग्रीवम्=कंठीं कौस्तुभमणि विराजीत।

'कण्ठमें कौस्तुभमणि सोह रहा है।'

(२) **'भक्तिं हरौ भगवति प्रवहन्'—भ्रव**

(प्रवहन् पद ध्यानमें रखिये)

प्रेम अमृताची धार। वाहे देवा ही समोर॥

'प्रेमामृतकी धारा भगवान्‌के सामने भी ऐसी ही प्रवाहित होती है।'

(३) **नायं देवो देहभाजां नृलोके**
कष्टान्कामानर्हते विड्भुजां ये।
तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं
शुद्ध्येद्यस्माद्ब्रह्मसौख्यं त्वनन्तम्॥

(५।५।१)

विड्भुज माने विष्ठा भक्षण करनेवाले श्वान-शूकर आदि तुच्छ योनियोंमें जो कष्टदायक विषय-भोग प्राप्त होते हैं वे ही यदि नर-देह प्राप्त होनेपर भी बने रहें तो यह तो बहुत ही घृणास्पद है। इसलिये (ऋषभदेव कहते हैं) पुत्रो! दिव्य तप करके चित्त-को शुद्ध करो, इससे अनन्त ब्रह्म-सुख प्राप्त करोगे। इस श्लोक-के साथ यह अभङ्ग मिलाकर देखिये—

तरीच जन्मा यावें। दास विठ्ठलाचे व्हावें॥१॥
नाहीं तरी काय थोडीं। श्वान सूकरें वापुडीं॥ध्रु०॥
जाल्याचें तें फळ। अंगीं लागों नेदी मळ॥२॥
तुका ह्मणे भले। ज्याच्या नांवें मानवले॥३॥

'(मनुष्य) जन्म तो ही लो जो विट्ठलनाथके दास हो। नहीं तो कुत्ते और सूअर (विड्भुज) क्या कम हैं? जन्म लेना तभी सफल है जब अङ्गमें मैल न लगने दे (सत्त्वं शुद्धयेत्) तुका कहता है, वे ही भले हैं जिनका मन भगवन्नाममें लग गया।'

(४) संसारमें गृह-सुत-दारा और द्रव्यादिके पीछे भटकनेवाले मनुष्यको इस भवारण्यमें प्रचण्ड बवण्डरसे उड़नेवाली धूलसे भरी हुई दिशाएँ नहीं सूझतीं—

क्वचिच्च वात्योत्थितपांसुधूम्रा
दिशो न जानाति रजस्वलाक्षः॥
(५।१३।४)

तुका म्हणे इहलोकीं च्या वेव्हारें।
नये डोळे धुरें भरूनि राहे॥

'तुका कहता है, इस लोकके व्यवहारसे आँखें धुएँसे भरी हुई न रखो।'

(५) षष्ठ स्कन्धमें अजामिलके कथा-प्रसङ्गसे कहा है—

न वै स नरकं याति नेक्षितो यमकिङ्करैः।
(२।४८)
तान्नोपसीदत हरेर्गदयाभिगुप्तान्॥
(३।२७)

इन दो चरणोंसे बिल्कुल मिलता हुआ तुकारामजीका यह अभङ्ग है—

यम सांगे दूतां। तुम्हां नाहीं तेथें सत्ता॥
जेथें होय हरिकथा। सदा घोष नामाचा॥१॥
नका जाऊं तया गांवां। नामधारका च्या शिवा॥
सुदर्शन यावा। घरटी फिरे भोंवती॥ध्रु०॥
चक्रगदा घेऊनी हरी। उभा असे त्यांचे द्वारीं॥

'यमराज अपने दूतोंसे कहते हैं कि जहाँ हरि-कथा होती है, नाम-संकीर्तन होता है वहाँ घुसनेका तुमलोगोंको कोई अधिकार नहीं है। नामधारकोंके मङ्गलग्राममें तुमलोग मत जाओ, वहाँ प्रत्येक गृहपर सुदर्शनचक्र घूमता रहता है, प्रत्येक द्वारपर श्रीहरि चक्र और गदा लिये खड़े रहते हैं।'

*　　*　　*　　*

(६) मन्ये धनाभिजनरूपतपःश्रुतौज-
स्तेजःप्रभावबलपौरुषबुद्धियोगाः ।
नाराधनाय हि भवन्ति परस्य पुंसो
भक्त्या तुतोष भगवान गजयूथपाय ॥
(७।९।९)

विप्राद्द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभ-
पादारविन्दविमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम् ।
मन्ये तदर्पितमनोवचनेहितार्थ-
प्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरिमानः ॥
(७।९।१०)

परम भक्त प्रह्लाद कहते हैं—'धन, अभिजन, रूप, तप, पाण्डित्य (श्रुत), ओज, तेज, प्रताप, बल, पौरुष, प्रज्ञा और अष्टाङ्गयोग—ये गुण भगवान्‌की प्रसन्नताके कारण नहीं होते। गजेन्द्र पशु था और उसमें इन गुणोंमेंसे एक भी गुण नहीं था। भगवान् केवल उसकी भक्ति पाकर प्रसन्न हुए।' (अब दूसरे श्लोक-में यही बतलाते हैं कि भक्तिके सिवा भगवान् और कुछ नहीं चाहते—) 'उपर्युक्त बारहों गुण यदि किसी ब्राह्मणमें हैं पर वह कमलनाभ भगवान्‌की सेवासे विमुख है तो उसकी अपेक्षा वह चाण्डाल श्रेष्ठ है जिसने अपना मन, वचन, कर्म, अर्थ और

प्राण भगवान्‌को समर्पित कर दिया है। कारण, हरि-भक्त चाण्डाल भी अपने कुलको पावन करता है, पर गर्वका पुतला बना हुआ नास्तिक ब्राह्मण अपना भी उद्धार नहीं कर सकता।' ये दोनों श्लोक तुकारामजीके दो अभङ्गोंमें भावरूपसे आ गये हैं—

नव्हती ते संत करितां कवित्व ।=पांडित्य
संताचे ते आप्त नव्हती संत ॥१॥=अभिजन
नव्हती ते संत वेदाच्या पठणें ।=श्रुत
नव्हती ते संत करितां तपतीर्थाटण ॥तप इ० इ०

'सन्त वे नहीं जो कवित्व करते हैं, जिनका बड़ा परिवार है, जो वेदपाठ या तप-तीर्थाटन आदि करते हैं।'

अब दूसरा अभङ्ग देखिये—

अभक्त ब्राह्मण जळो त्याचे तोंड । काय त्यासी रांड प्रसवली ॥१॥
वैष्णव चांभार धन्य त्याची माता। शुद्ध उभयतां कुळ याती॥ध्रु०॥
ऐसा हा निवाडा जाळासे पुराणीं। नव्हे माझी वाणी पदरिंची॥२॥
तुका ह्मणे आगी लागो थोरपणा।दृष्टि त्या दुर्जना न पडो माझी॥३॥

'जो ब्राह्मण होकर भी भगवान्‌का भक्त न हो उसका मुँह काला! उसे मानो राँडने जना हो। चमार है पर यदि वह वैष्णव है तो उसकी माता धन्य है जिसने उसे जन्म देकर उभय कुल पावन किये। पुराणोंमें ही यह निर्णय हो चुका है, यह मैं कुछ अपने पल्लेसे नहीं कह रहा हूँ। तुका कहता है, उस बड़प्पनमें आग लगे (जिसमें भगवद्भक्ति नहीं); उसपर मेरी दृष्टि भी न पड़े।'

इस अभङ्गमें उपर्युक्त दूसरे श्लोकका अर्थ स्पष्ट ही प्रतिफलित हुआ है और साथ ही तुकारामजी यह भी बतला देते हैं कि 'यह निर्णय पुराणोंमें ही हो चुका है।' किस पुराणमें कहाँ यह निर्णय हुआ है यह बतलानेकी अब कोई आवश्यकता न रही। भागवत-पुराणके उपर्युक्त श्लोकमें यह निर्णय किया हुआ सामने मौजूद है।

(७) प्रह्लाद दैत्यपुत्रोंको उपदेश करते हुए कहते हैं (स्कन्ध ७-६)—

पुंसो वर्षशतं ह्यायुस्तदर्धं चाजितात्मनः।
निष्फलं यदसौ राज्यां शेतेऽन्धं प्रापितस्तमः॥६॥
मुग्धस्य वाल्ये कौमारे क्रीडतो याति विंशतिः। इत्यादि

तुकाराम 'गातों वासुदेव' अभङ्गमें कहते हैं—

अल्प आयुष्य मानवी देह। शत गणिलें तें अर्ध रात्र खाय।
पुढें बालत्व पीड़ा रोग क्षय। इत्यादि

मानवी देहकी आयु अल्प है। १०० वर्षकी आयु गिनें तो आधी आयु तो रात ही खा जाती है। फिर बाल्यकालमें कुछ आयु निकल जाती है। शेप पीड़ा, रोग और क्षय चट कर जाते हैं।

(८)अष्टम स्कन्धमें(अ० २—३)गजेन्द्रका आख्यान है,उसके साथ तुकारामजीके गजेन्द्रसम्बन्धी उल्लेख मिलाकर देखनेयोग्य हैं। गजेन्द्रकी कथा और उसका मर्म तुकारामजी बतलाते हैं—

गजेंद्र तो हत्ती सहस्र वरुपें। जळामाजी नक्रें पिडीलासें॥१॥

सुहृदीं सांडिलें कोणी नाहीं साहे। अंतीं वाट पाहे विठो तुझी २
कृपेच्या सागरा माझ्या नारायणा। तया दोघाजणां तारियेलें ३
तुकाम्हणे नेलें वाहूनि विमानीं। मीही आइकोनी विश्वासलों ॥४॥

'गजेन्द्रको जलमें एक सहस्र वर्षसे ग्राहने पकड़ रखा था। गजेन्द्रके कोई सुहृद् उसे छुड़ा नहीं सके। तब अन्तमें हे विट्ठलनाथ! वह आपकी प्रतीक्षा करने लगा। हे कृपानिधान मेरे नारायण! उन दोनोंका आपने उद्धार किया। आप उन्हें विमानमें बैठाकर ले गये। यह सुनकर मुझे भी यह भरोसा हो गया।'

एक हजार वर्षतक गज-ग्राहका युद्ध हुआ यह बात भागवत-में भी है—'तयोर्नियुद्धयतोः समाः सहस्रं व्यगमन्।' 'कोई सुहृद् छुड़ा नहीं सके'—'अपरे गजास्तं तारयितुं न चाशकन्।' गजेन्द्र और ग्राह दोनोंको भगवान्‌ने तारा, यह बात भागवतमें ही कही है। 'विमानमें बैठा ले जाने' की बात भागवतमें इस रूपमें है—'तेन युक्तः अद्भुतं स्वभवनं गरुडासनोऽगात्।' इस प्रकार तुकारामजीने भागवतकी जिन-जिन भक्तकथाओंका उल्लेख अपने अभङ्गोंमें किया है उन कथाओंको, उल्लेख करनेके पूर्व, मूल भागवतमें अच्छी तरह देख लिया है। अर्थात् भागवतके साथ तुकारामजी-का प्रत्यक्ष और दृढ़ परिचय था, यह स्पष्ट है।

तुकारामजीकी यह बात भी विशेष मनन करनेयोग्य है कि 'भगवान् उन्हें विमानमें बैठाकर ले गये। यह सुनकर मुझे भी यह भरोसा हो गया।' भगवान् भक्तको विमानमें बैठाकर अपने धाम ले जाते हैं यह गजेन्द्र-अम्बरीष आदि भक्तोंके चरित्रोंमें देखा और इसका 'मुझे भी भरोसा हो गया।' तुकारामजीका यह

उद्धार उन्हींकी वैकुण्ठगमनकी कथाके साथ मिलाकर देखने-योग्य है ।

(९) **तैरेव सद्भवति यत्क्रियतेऽपृथक्त्वात्**
सर्वस्य तद्भवति मूलनिषेचनं यत् ॥
(८।६।२९)

यथा हि स्कन्धशाखानां तरोर्मूलावसेचनम् ।
एवमाराधनं विष्णोः सर्वेषामात्मनश्च हि ॥
(८।५।४९)

श्रीमद्भागवतमें मूलसेचनका दो बार आया हुआ यह दृष्टान्त, इसी अर्थके साथ, तुकारामजीके अभङ्गमें भी इस प्रकार आया है—

सिंचन करितां मूळ । वृक्ष ओलावे सकळ ॥१॥
नको पृथकाचे भरीं । पडो एक सार धरीं ॥२॥

'मूलका सिञ्चन करनेसे उसकी तरी समस्त वृक्षमें पहुँचती है । पृथक्‌के फेरमें मत पड़ो, जो सार वस्तु है उसे पकड़े रहो ।' ज्ञानेश्वरीमें भी यही दृष्टान्त आया है—'मूलसिञ्चनसे जैसे सहज ही शाखा-पल्लव सन्तोषको प्राप्त होते हैं' परन्तु 'अपृथक्त्वात्' पद भागवतमें ही है और उसीसे 'पृथक्‌के फेरमें मत पड़ो' यह तुकोक्ति निकली है ।

(१०) **अहं भक्तपराधीनः** (९।४।६३)

अरे भक्तपराधीना । तुका म्हणे नारायणा ॥१॥

(११) **वशीकुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा ॥**
(९।४।६६)

पतिव्रते जैसा भ्रतार प्रमाण । आम्हा नारायण तैशापरी ।

'पतिव्रताके लिये जैसे पति ही प्रमाण है, वैसे ही हमारे लिये नारायण हैं ।'

(१२) **भर्जिता क्वथिता धाना प्रायो बीजाय नेष्यते ॥**
(१०।२२।२६)

बीज भाजुनि केली लाही। आम्हां जन्म-मरण नाहीं ॥

'बीज भूँजकर लाई बना डाली, तब जन्म-मरण कहाँ रहा ?'

(१३) एकादश स्कन्धके दूसरे अध्यायमें 'कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा' (३६) इस श्लोकसे लेकर 'विसृजति हृदयं न यस्य साक्षात्........प्रणयरशनया धृताङ्घ्रिपद्मः' (५५) इस श्लोकतक भागवत-धर्मका वर्णन है। इसमें आद्य और अन्त्य दोनों पदोंका अर्थ तुकारामजीके अभङ्गमें है—

प्रेमसूत्रदोरी। नेतों तिकडे जातो हरी ॥१॥
मने सहित वाचा काया। अवघें दिलें पंढरिराया ॥२॥
(प्रेमसूत्रडोर। जाते हरि खींचो जिस ओर ॥
मन सह तन वचन। किया सब हरि-अर्पण ॥)
प्रणयरशना—प्रेमसूत्रकी डोर।

(१४) भागवतके निम्नलिखित श्लोकका तो तुकारामजीने पदशः भाषान्तर किया है—

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत् ॥

यह श्लोक एकादश स्कन्धमें (अ० १४।१४) है। कुछ हेर-फेरके साथ ऐसा ही श्लोक षष्ठ स्कन्धमें भी है (अ० ११। २५) इस श्लोकका अर्थ यह है कि जिसने मुझे आत्मार्पण किया है वह मेरा भक्त मेरे सिवा और कुछ भी नहीं चाहता। पारमेष्ठ्य अर्थात् परमेष्ठीपद अथवा सत्यलोक, महेन्द्रधिष्ण्य अर्थात्

इन्द्रपद, सार्वभौमपद, रसाधिपत्य अर्थात् पातालका आधिपत्य, योगसिद्धि, अपुनर्भव अर्थात् मोक्षकी भी वह इच्छा नहीं करता। इन पारमेष्ठ्यादि छः पदोंको सामने रखकर, तुकारामजीने देखिये, कैसे इस श्लोकका अनुवाद किया है—

परमेष्टीपदा । तुच्छ करीती सर्वदा ॥१॥

'परमेष्ठी पदको भी सदा तुच्छ समझते हैं। (कौन ?)'

हेंचि ज्यांचें धन । सदा हरीचें चिंतन ॥ध्रु०॥

'सदा हरिका चिन्तन ही जिनका धन है।'

इंद्रादिक भोग । भोगनव्हे तो भवरोग ॥२॥

'इन्द्रादिकोंके जो भोग हैं वे भोग नहीं, भवरोग हैं।'

सार्वभौम राज्य । त्यांसी कांहीं नाहीं काज ॥३॥

'सार्वभौम राज्यसे उन्हें कोई काम नहीं है।'

पाताळींचें आधिपत्य । ते तो मानिती विपत्य ॥४॥

'पातालके अधिपति होनेको वे विपत्ति ही समझते हैं।'

योगसिद्धिसार । त्यांसी वाटे तें असार ॥५॥

'योगसिद्धियोंके सारको वे निःसार समझते हैं।'

मोक्षायेवढें सुख । सुख नव्हे तेंचि दुःख ॥६॥

'मोक्षतकके सुखको वे सुख नहीं, दुःख ही समझते हैं।

तुका म्हणे हरी वीण । त्यांसि अवघा वाटे शीण ॥७॥

'तुका कहता है, हरिके बिना वे सब कुछ व्यर्थ समझते हैं।'

इतने स्पष्ट प्रमाण पानेके पश्चात् कोई भी यह नहीं कह सकता कि श्रीमद्भागवतके साथ तुकारामजीका दृढ़ परिचय नहीं था।

१० पुराणोंपर श्रद्धा

भागवतके अतिरिक्त अन्य पुराणोंको भी तुकारामजीने बड़े प्रेमसे पढ़ा था। पुराणोंके सम्बन्धमें उन्होंने अनेक बार जो प्रेमोद्गार प्रकट किये हैं उनसे यह मालूम होता है कि पुराणोंका भी उनके चित्तपर गहरा प्रभाव पड़ा था।

एक स्थानमें उन्होंने कहा है, 'मैंने पुराण देखे, दर्शनोंमें भी ढूँढ़-खोज की, पर तीनों भुवनमें ऐसा (मेरे नारायण-जैसा) कोई दूसरा न देखा। एक दूसरे स्थानमें कहते हैं, 'पुराणोंका इतिहास देखा, उसके मीठे रसका सेवन किया और उसीके आधारपर यह कविता कर रहा हूँ, यह व्यर्थका प्रलाप नहीं है।' एक स्थानमें तुकाराम भगवान्‌से प्रार्थना करते हैं कि 'हे भगवन्! मैं यहाँ (इन चरणोंमें) अनन्य अधिकारी कब, कैसे बन सकूँगा, यह मैं नहीं जानता। पुराणोंके अर्थोंका जब ध्यान करता हूँ तो जी तड़पने लगता है।' 'भक्तिके बिना भगवान् नहीं मिलनेके,' तुकाराम कहते हैं कि 'यही बात पुराण बतलाते हैं। पुराणोंमें यह प्रसिद्ध है कि असंख्य भक्तोंको भगवान्‌ने उबारा है, पुराण बतलाते हैं कि भगवान् ऐसे दयालु हैं। पुराणोंके वचन मेरे लिये प्रमाण हैं।'

इस प्रकार अनेक स्थानोंमें तुकारामजीने अपना पुराण-प्रेम व्यक्त किया है। पुराणोंकी भक्त-कथाएँ पढ़कर तुकाराम तन्मय हो जाते थे, इनकी-सी उत्कट भगवद्भक्ति मेरे चित्तमें कब उदय होगी, यही सोच उनको होता था और वह व्याकुल हो उठते थे। पुराणोंका अमृतरस पान करते हुए वह प्रेमाश्रुओंसे भीग जाते थे।

ध्रुवकी ध्याननिष्ठा देखकर वह श्रीविट्ठलरूपके ध्यानमें निमग्न हो जाते थे। नाम-स्मरणसे कितने असंख्य भक्त तर गये, यह सोचकर वह और भी अधिक उल्लासके साथ नाम-कीर्तनमें निमज्जित हो जाते थे। श्रीमद्भागवतादि पुराणोंके समवलोकनका ऐसा मृदु और मधुर सुसंस्कार तुकारामजीके शुद्ध चित्तपर पड़ा। 'नामाचे पवाडे गर्जती पुराणें' (पुराण गरजकर नामके गीत गाते हैं) वाले अभंगमें तुकारामजीने यह कहा है कि आदिनाथ शङ्कर, नारद, परीक्षित, वाल्मीकि आदि, नामके अलौकिक रागमें तन्मय हो गये और हम-जैसोंको मार्ग दिखा गये। अस्तु, यहाँतक हमलोगोंने यह देखा कि गीता तथा भागवतादि पुराणोंका अध्ययन तुकारामजीके ज्ञानार्जनका कितना बड़ा अङ्ग था।

११ विष्णुसहस्रनाम-पाठ

भागवतधर्मियोंमें विष्णुसहस्रनाम भी पहलेसे ही बहुत प्रिय और मान्य है। इसके नित्यपाठकी परम्परा भी बहुत प्राचीन है। यह विष्णुसहस्रनाम महाभारतके अनुशासनपर्वका ४९ वाँ अध्याय है। भगवान्‌का ध्यानपूर्वक नाम-सङ्कीर्तन चित्तशुद्धिका उत्तम उपाय है। नाम-स्मरण वेदोंमें भी विहित है। ऋग्वेदके अन्तिम अध्यायमें यह वचन है—'मर्ता अमर्त्यस्य ते भूरि नाम मनामहे। विप्रासो जात वेदसः' श्रीमद्भागवतमें तो अनेक स्थानोंमें, विशेष-कर अजामिलकी कथाके प्रसङ्गसे (स्कन्ध ६ अ० २) नाम-माहात्म्य बड़े प्रेमसे गाया गया है। नाम-स्मरणके लिये विष्णुसहस्रनाम बड़ा अच्छा साधन है। ज्ञानेश्वरीमें (अ० १२। ९०) ज्ञानेश्वर महाराजने यह स्पष्ट उल्लेख किया है कि 'सहस्रों नामोंकी नौकाओंके रूपमें

सजकर मैं संसारके पार पहुँचानेवाला तारक जहाज बना हूँ।' नामदेवरायके अभङ्गोंमें भी 'सहस्रनामके बटोहियोंको कन्धेपर चढ़ा लिया' ऐसा उल्लेख है। गीता और विष्णुसहस्रनामके नित्यपाठकी परिपाटी बहुत प्राचीन है। नाम-स्मरण भवसागर पार करनेका मुख्य साधन है, यह भागवत-धर्मका मुख्य उपदेश है। भागवतमें सहस्रशः यह उपदेश किया गया है। गीतामें भी 'सततं कीर्तयन्तो माम्' (अ० ९। १४), 'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि' (अ० १०। २५), ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म (अ० ८। १३) इत्यादि प्रकारसे नाम-स्मरणका निर्देश किया गया है। विष्णुसहस्रनाममाला नाम-स्मरणके लिये बनी-बनायी चीज मिल गयी, इससे लोग उसका उपयोग करने लगे और उसका इतना प्रचार हुआ। तुकारामजी भी विष्णुसहस्रनामका नित्य पाठ किया करते थे। वारकरी सम्प्रदायमें यह बात प्रसिद्ध है कि तुकारामजीने विष्णुसहस्रनामके एक लक्ष पाठ किये। तुकारामजीके अभङ्गोंमें ७-८ बार विष्णुसहस्रनामका नाम आया है—

(१) सहस्रनामकी नौकाको ठीक कर लो जो भवसागरके पार करा देती है।

(२) षट्शास्त्र, चार वेद, अठारह पुराणोंकी एकीभूत प्रतिमास्वरूप इस श्यामरूपको आँखोंमें भर लो और विष्णुसहस्रनाममन्त्रमाला फेरो।

(३) सहस्रनामकी प्रत्येक पुकार उत्तरोत्तर अधिकाधिक बल देनेवाली है।

(४) सहस्रनामका रूप भक्तोंका पक्षपाती है।

(५) मेरी पूँजी सहस्रनाममाला है।

(६) एक नाम भी जहाँ असीम है वहाँ सहस्र नामोंकी माला गूँथ डाली।

(७) जिसके रूप है न आकार, वह नाना अवतार धारण करता है, उसीने अपने सहस्र नाम रख लिये।

(८) सहस्र नामसे पूजा करना कलश ही चढ़ाना है।

तुकारामजीका यह कहना है कि विष्णुसहस्रनाम-नौकाका मैंने सहारा लिया, आपलोग भी लीजिये; इससे भव-सिन्धुको पार कर जाओगे। इस सहस्रनामावलिमें श्रीकृष्णके जो केशव, पुरुषोत्तम, गोविन्द, माधव, अच्युत, देवकीनन्दन, वासुदेव, गरुडध्वज, नारायण, दामोदर, मुकुन्द, हरि, भक्तवत्सल, पापनाशन आदि नाम हैं ये ही तुकारामजीके अभंगोंमें वार-वार आते हैं। कई नामोंपर उन्हें अभंग भी सूझे हैं—

(१) धर्मो धर्मविदुत्तमः।

धर्माची तूं मूर्ति। पाप पुण्य तुझे हातीं ॥१॥

'धर्मकी तुम मूर्ति हो। पाप-पुण्य तुम्हारे हाथमें है।'

(२) गुप्तश्चक्रगदाधरः।

घेऊनियां चक्रगदा। हाचि धन्दा करीतो ॥१॥

भक्तां राखे पायांपाशीं। दुर्जनांसी संहारी ॥२॥

'चक्र और गदा लिये वह यही किया करता है कि भक्तोंको अपने चरणोंके पास रखता और दुर्जनोंका संहार करता है।'

'चक्रगदाधरः' पदका यह विवरण है। सुदर्शनचक्रसे वह अम्बरीष-

जैसे भक्तोंको अपने चरणोंके समीप रखता और गदासे कंस-जैसे दुर्जनोंका संहार करता है।

(३) **अमृतांशोऽमृतवपुः।**

जीवाचें जीवन। अमृताची तनु। ब्रह्माण्डभूषण। नारायण॥१॥

१२ महिम्नादि स्तोत्र और सुभाषित

तुकारामजीके अभंगोंमें संस्कृत-श्लोकोंके प्रतिरूप या अनुवाद आ जाते हैं, जिनसे उनकी बहुश्रुतता और धारणा-शक्तिका पता लगता है—

(१) **सर्वं विष्णुमयं जगत्। विष्णुमय जगत वैष्णवांचा धर्म॥**

(२) **मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥**

माझे भक्त गाती जेथें। नारदा मी उभा तेथें॥१॥

मेरे भक्त जहाँ गाते हैं, हे नारद! मैं वहाँ खड़ा रहता हूँ।

(३) **कामातुराणां न भयं न लज्जा।**

कामातुरा भय लाज ना विचार।

कामातुरको न भय है, न लज्जा, न विचार।

(४) **क्षमा शस्त्रं करे यस्य दुर्जनः किं करिष्यति।**

अतृणे पतितो वह्निः स्वयमेवोपशाम्यति॥

क्षमाशस्त्र जया नराचिये हातीं। दुष्ट तयाप्रति काय करी॥१॥

तृण नाहीं तेथें पड़ला दावाग्नी। जायतो विझोनी आपसया॥२॥

'क्षमा-शस्त्र जिस मनुष्यके हाथमें है, दुष्टजन उसका क्या बिगाड़ सकते हैं? जहाँ तृण ही नहीं है वहाँ दावाग्नि सुलगकर क्या करेगी? आप ही बुझ जायगी।'

(५) मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम् ।

उलंघितें पांगुळ गिरी। मुकें करी अनुवाद ॥

(६) प्रतिष्ठा शूकरीविष्ठा गौरवं न तु रौरवम् ॥

मानदंभचेष्टा । हे तों सूकराची विष्ठा ॥१॥

(७) परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ॥

पुण्य परउपकार पाप ते परपीडा ।

आणिक नाहीं जोडा दुजा यासी ॥

'पुण्य परोपकार है और पाप परपीड़ा है। इसका और कोई जोड़ा नहीं है।'

(८) मृगमीनसज्जनानां तृणजलसंतोषविहितवृत्तीनाम् ।

लुब्धकधीवरपिशुना निष्कारणवैरिणो जगति ॥

काय केलें जळचरीं। ढीवर त्यांच्या घातावरी ॥१॥

हातों ठायीचा विचार। आहे याति वैराकार ॥ध्रु०॥

श्वापदांतें वधी । निरपराधें पारधी ॥२॥

तुका म्हणे खळ। संतां पीडिती चांडाळ ॥३॥

जलचर बेचारोंने क्या किया जो धीवर उनकी घातमें रहता है? पर यह ऐसा ही है; यह जातिस्वभाव है, इसकी देह ही इनके वैरकी है। (वैसे ही) व्याध निरपराध मृगोंको मारा करता है। (और) तुका कहता है, खल जो हैं चाण्डाल, वे सन्तोंको ही सताया करते हैं। लुब्धक, धीवर, पिशुन तीनों दृष्टान्त तुकारामजीने उठा लिये हैं और उन्हें अभंग-वाणीमें क्या खूबीसे बैठाया है।

भर्तृहरिके नीतिवैराग्यशतक और आचार्यके पाण्डुरङ्गाष्टक, षट्पदी और महिम्नादि स्तोत्र तुकारामजीके अवलोकन और पाठमें

रहे होंगे। पाण्डुरङ्गाष्टकमें इस आशयका एक श्लोक है कि भगवान्‌ने कटिपर जो हाथ रखे हैं वह यह जतलानेके लिये कि भक्तोंके लिये भवसागर कमरके नीचे ही है।

(९) **प्रमाणं भवाब्धेरिदं मामकानां**
नितम्बः कराभ्यां धृतो येन तस्मात्‌ ।
विधातुर्वसत्यै धृतो नाभिकोषः
परब्रह्मलिङ्गं भजे पाण्डुरङ्गम्‌ ॥

करा विट्ठल स्मरण। नामीं रूपीं अनुसन्धान।
जाणोनि भक्तां भवलक्षण। जघानप्रमाण दावीतसे ॥
कटीवरी ठेवुनी हात। जना दावित संकेत।
भव-जलाब्धीचा अंत। इतुलाचि ॥

'श्रीविट्ठलनाथका स्मरण करो, नाममें, रूपमें उन्हींका अनुसन्धान करो। भक्तोंको जानकर बतलाते हैं कि भवसागर जाँघके बराबर है। कटिपर हाथ रखकर (भक्त) जनोंको यह सङ्केत करते हैं कि भवजलाब्धिका अन्त यहींतक है।'

(१०) **असितगिरिसमं स्यात्‌ कज्जलं सिन्धुपात्रे**
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी ।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ॥

महिम्नःस्तोत्रका यह श्लोक प्रसिद्ध है। इस श्लोककी छाया आगे दिये हुए अभंगानुवादपर विशेषतः उसके चतुर्थ चरणानुवादपर कितनी पड़ी हुई है यह देखिये—

'जिसके गीत गाते हुए जहाँ श्रुतिशास्त्रोंको मौन हो जाना पड़ता है वहाँ मेरी वाणी ही क्या जो उस स्तुतिको पूरा करे ! जहाँ शेषनाग भी अपने सहस्र मुखोंसे स्तुति करते-करते थक गये, जहाँ सिन्धुपात्रमें सम्पूर्ण मही भी घुलकर स्याही हो जाय तो भी पूरा न पड़े, वहाँ मेरी वाणी ही क्या जो उस स्तुतिको पूरा करे ! तेरी कीर्ति तेरे सामने बखान करूँ तो अखिल ब्रह्माण्डमें भी वह न समा सकेगी; मेरुकी लेखनी, सागरकी स्याही और भूमिका कागज तो पूरा पड़ ही नहीं सकता।'

१३ तुकारामजीका संस्कृत-ज्ञान

तात्पर्य गीता, भागवत, कई अन्य पुराण तथा महिम्नादि स्तोत्रोंको तुकारामजीने बहुत अच्छी तरहसे पढ़ा था। जिन लोगोंकी यह धारणा हो कि तुकाराम लिखे-पढ़े नहीं थे वे आश्चर्य करेंगे। तुकारामजीने भण्डारा-पर्वतपर ज्ञानेश्वरी और नाथभागवतादि ग्रन्थोंके अनेक पारायण किये थे। वह मराठी बहुत अच्छी तरहसे लिख सकते थे। बाल-लीलाके जो अभंग उन्होंने बनाये उन्हें उन्होंने अपने हाथसे लिखा। अब वह संस्कृत जानते थे या नहीं और यदि जानते थे तो कितनी जानते थे, यह प्रश्न रहा। गीता और भागवतके अवतरण देकर उनके साथ उनके अभंगोंका जो मिलान किया गया है उससे यह प्रश्न बहुत कुछ हल हो जाता है। समानार्थक अवतरण सैकड़ों दिये जा सकते हैं परन्तु हमने केवल ऐसे ही अव-तरण दिये हैं जिनसे यह बात निर्विवादरूपसे स्पष्ट हो जाय कि तुकारामजी मूल संस्कृत-ग्रन्थोंको देखते थे और मूलके वचन गुन-गुनाते हुए ही कई अभंग उन्होंने रचे हैं। तुकारामजीने स्वयं कहा

है कि मैंने अक्षरोंपर बड़ा परिश्रम किया, 'पुराणोंको देखा और दर्शनोंमें खोज की।' इससे यह स्पष्ट है कि मूल संस्कृत-ग्रन्थोंको उन्होंने केवल सुना नहीं, स्वयं देखा और पढ़ा था। देखनेमें भी अन्तर हो सकता है। व्याकरणके नियम चाहे उन्होंने न घोखे हों, उन नियमोंकी उन्हें कोई आवश्यकता भी नहीं थी। पर भागवतादि ग्रन्थ मूल संस्कृतमें वह पढ़ते थे और उनका अर्थ समझनेमें उन्हें कोई कठिनाई न होती थी। इसके पूर्व उन्होंने किसी उत्तम विद्वान्के मुखसे श्रवण भी किया होगा और उससे संस्कृतके साथ उनका परिचय बढ़ा होगा। कुछ लोग यह कहते हैं कि वैराग्य हो आनेके पश्चात् तुकारामजी कुछ कालतक पैठणमें रहे वहाँ उन्होंने एक विद्वान् भगवद्भक्तके मुँहसे सार्थ सम्पूर्ण भागवत सुनी और पीछे भण्डारा लौटनेपर उन्होंने भागवतके अर्थ-बोधके लिये उसके अनेक पारायण किये। भागवतसम्प्रदायके भागवत-संहिताके सप्ताह बहुतोंने देखे होंगे अथवा चातुर्मास्यमें भागवत पुराण भी श्रवण किया होगा। यह परिपाटी अति प्राचीन है। तुकारामजीने भी सप्ताह और पुराण सुने होंगे। सप्ताहमें अनेक आस्थावान् श्रोता भागवतकी पोथी सामने रखकर शुद्ध पाठ भी किया करते हैं और नित्य पुराण-श्रवण करते-करते बुद्धिमान् पुरुषोंको ही क्यों, स्त्रियोंको भी महत्त्वके अच्छे-अच्छे श्लोक कण्ठ हो जाते हैं। कुछ लोगोंका यह मत है कि इसी तरहसे तुकारामजीको भी कुछ श्लोक याद हो गये, अन्यथा संस्कृतका उन्हें बोध नहीं था। पर ऐसा समझ बैठना युक्तियुक्त नहीं है। स्वयं तुकारामजी ही जब कहते हैं कि 'पुराणोंको देखा, दर्शनोंको ढूँढ़ा।' तब हमें

उसमें सन्देह करनेका कोई कारण नहीं है। 'पुराणोंको देखा' याने भावार्थ समझनेके लिये मैंने स्वयं पुराणोंको पढ़ा, और 'दर्शनोंको ढूँढ़ा' याने शास्त्र-ग्रन्थोंमें ढूँढ़-खोज की; और इनका तात्पर्यार्थ यही समझा कि 'विठोबाकी शरणमें जाओ, निजनिष्ठासे नाम-संकीर्तन करो।' तुकारामजीने दो-चार बार जो यह कहा है कि 'वेदोंके अक्षर पढ़नेका मुझे अधिकार नहीं' इसका भी मर्म जानना ही होगा। उनके कथनका अभिप्राय यह है कि सन्तोंके वचन मैंने याद किये, भागवतके कुछ श्लोक और स्तोत्र कण्ठ किये, इसी प्रकार यदि मुझे वेद-वचन कण्ठ करनेका अधिकार होता तो उपनिषदोंको देखकर उनसे भी नित्य पाठके योग्य वचन-संग्रह मैं कर लेता। शास्त्र-पुराण उन्होंने स्वयं देखे, वेदोंको भी देखते यदि अधिकार होता, यही इसका स्पष्ट अभिप्राय है। वह इतनी संस्कृत जान गये थे कि भागवतादि ग्रन्थोंको मूलमें ही देखकर उनका भावार्थ समझ लेते। उनकी श्रद्धा और बुद्धि अलौकिक थी, शास्त्र-पुराणोंके भावार्थको तुरन्त ग्रहण कर लेने-योग्य उनकी अन्तःकरण-प्रवृत्ति थी। इस कारण इन ग्रन्थोंको देखते-देखते उन ग्रन्थोंका अर्थ बोध होनेयोग्य संस्कृत-भाषाका ज्ञान प्राप्त हो जाना उनके लिये कुछ भी कठिन नहीं था। शास्त्रों और पुराणोंका रहस्य विशद करनेवाले प्राकृत ग्रन्थ भी मौजूद थे और उन ग्रन्थोंको भी उन्होंने देखा था। इसलिये मूल ग्रन्थोंको देखकर उनका भावार्थ जान लेना उनके-से प्रज्ञा-प्रतिभावान् पुरुषके लिये सहज ही था। वेद-शास्त्र-पुराणोंका रहस्य ज्ञानेश्वरी और नाथ-भागवतमें व्यक्त हुआ था, और इन ग्रन्थोंको तुकारामजीने

अपने हृदयसे लगा रखा था । तुकारामजीका आचार उत्तम ब्राह्मणोंके भी अनुकरण करनेयोग्य था । देव-पूजादिके मन्त्र उन्हें कण्ठ थे । पूजा समाप्त करते हुए 'मन्त्रहीनं क्रियाहीनम्' इत्यादि कहकर प्रार्थना की जाती है । तुकारामजी कहते हैं—

असो मन्त्रहीन क्रिया । नका चर्या विचारूं ॥१॥
सेवेमध्यें जमा धरा । कृपा करा सेवटीं ॥२॥

'कर्म मेरा मन्त्रहीन हुआ हो, रीत-अनरीत जो कुछ हो, कुछ मत विचारिये । सेवामें इसे जमा करिये और अन्तमें कृपा कीजिये ।'

भोजन-समयमें 'हरिर्दाता हरिर्भोक्ता' इत्यादि कहा करते हैं । तुकारामजीने उसीको अपनी वाणीमें यों कहा है—'दाता नारायण । स्वयं भोगिता आपण ॥' तुकारामजीका एक बड़ा ही सुन्दर अभंग है–'कासयानें पूजा करूं केशीराजा' एक बार ऐसा हुआ कि तुकारामजी सब पूजा-सामग्री पास रखकर पूजा करने बैठे, पूजा आरम्भ भी नहीं होने पायी और तुकारामजीको ध्यान लग गया । पूज्य-पूजक और पूजा-साहित्य, यह त्रिपुटी नहीं रही, तीनों एकाकार हो गये । जिस अभंगकी बात कह रहे थे वह इसी समय-का अभंग है । यह आचार्यके 'परा-पूजा' नामक प्रकरणके भावमें है । इससे कुछ लोग बड़ी अधीरतासे यह कह देते हैं कि तुकारामजी मूर्ति-पूजक नहीं थे । पर इस अभंगसे यदि कोई बात साबित होती है तो वह यही कि तुकारामजी बड़े आस्थावान् और नियमी मूर्ति-पूजक थे, और चन्दन, अक्षत, फूल, धूप, दीप, दक्षिणा, आरती, भजन, नैवेद्यके साथ नित्य शास्त्रोक्त रीतिसे भगवान्‌की प्रतिमाका

पूजन करते थे । नित्यकर्मके वह बड़े पक्के थे, जरा भी ढिलाई उनमें नहीं थी । उन्हींका वचन है 'कांहीं नित्यनेमावीण । अन्न खाय तोचि श्वान' (कुछ नित्य नियमोंके बिना जो अन्न खाता है वह कुत्ता है ।) केवल भण्डारेपर जाकर ग्रन्थ पढ़े, एकाकार भगवान्‌की शाब्दिक प्रार्थना की और रातको गाँवके देवालयमें दो पहर कीर्तन कर लिया, इतना ही तुकारामजीका कार्य-क्रम नहीं था, कुल-परम्परागत श्रीपाण्डुरङ्गकी पूजा भी वह नित्य-नियम-पूर्वक और अत्यन्त श्रद्धाके साथ करते थे । चैतन्यघन भगवान्‌की मूर्ति भी चैतन्यघन है, भगवान् सामने खड़े हैं, षोडश उपचारोंके साथ प्रेमपूर्वक उनका पूजन करना परमानन्दप्रद जीव-धर्म है । ऐसे आनन्दमग्न होकर वह भगवान्‌की पूजा करते थे । पूजामें सब मन्त्र पुराणोक्त ही हैं । भगवान्‌की पूजा करनेका अधिकार सब जीवोंको है । तुकारामजीकी सश्रद्ध-समन्त्र पूजा, उनका पवित्र रहन-सहन, उनका संस्कृत और प्राकृत भाषाओंके अध्यात्म-ग्रन्थोंका अवलोकन, नित्यपाठ और कीर्तन, यह सब इतना आस्थायुक्त था कि ऐसे आचारवान् पुरुष ब्राह्मणोंमें भी बहुत कम मिल सकते हैं । बहुजनसमाजपर उनके इस चरित्रका बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ा और उनकी भगवद्भक्तिका डङ्का सर्वत्र बजने लगा । पुराण-मताभिमानियोंको तुकारामजीका यह यश दुःसह होने लगा । उनकी ओरसे रामेश्वर भट्ट नामके एक पुरुष तुकारामजीसे लड़ने-झगड़नेके लिये आगे बढ़े । वह प्रसङ्ग आगे आवेगा । तुकारामजीके संस्कृत-ग्रन्थोंके अध्ययनका यहाँतक विचार हुआ, अब उनके प्राकृत ग्रन्थाध्ययनकी बात देखें ।

१४ ज्ञानेश्वरी

ज्ञानेश्वरीके साथ तुकारामजीका कितना गाढ़ा परिचय था यह दिखलानेके लिये ज्ञानेश्वरीके कुछ वचन और साथ ही उनसे मिलान करनेके लिये तुकारामजीके वचन उद्धृत करते हैं ।

(१) राम हृदयमें हैं पर भ्रान्त जीव बाह्य विषयोंपर लुब्ध होते हैं । ज्ञानेश्वरी (अ० ९) में इनके लिये जोंक और दादुरकी उपमाएँ दी हैं । 'गौका दूध कितना पवित्र और मीठा होता है और होता भी है कितना पास—त्वचाके एक ही परदेके अन्दर । पर जोंक उसका तिरस्कारकर अशुद्ध रक्तका ही सेवन करती है।' (५७) 'अथवा कमलकन्द और मेढक एक ही स्थानमें रहते हैं तो भी कमलमकरन्दका सेवन भौंरे ही करते हैं और मेढकके लिये कीचड़ ही बचता है ।' (५८) शतचरण अभंगमें तुकारामजीने भी यही दृष्टान्त दिया है—'नामनिन्दकके लिये भगवान् वैसे ही दूर हैं, जैसे जोंकके लिये दूध ।'

(२) ज्ञानेश्वरी अ० १२—९० में यह ओवी है कि 'सहस्रों नामोंकी नौकाओंके रूपमें सजकर मैं संसारमें तारक बना हूँ ।' तुकारामजीका अभंग है कि 'सहस्र नामोंकी नौकाको ठीक कर लो जो भव-सिन्धुके पार ले जाती है ।'

(३) बीज फूटकर पेड़ होता है, पेड़ गिरकर बीजमें समाता है । (ज्ञानेश्वरी १७—५९) तुकाराम कहते हैं—पेड़ बीजके पेटमें और बीज पेड़के अन्तमें ।

(४) पण्डित बालकका हाथ पकड़कर स्वयं ही अच्छे अक्षर

लिखता है (ज्ञाने० १३—३०८)। तुकाराम—बच्चेके लिये गुरुजी ही पटिया अपने हाथमें लेते हैं।

(५) सूर्यके तेजके सामने जुगुनूकी चमक क्या? (ज्ञाने० १—६७) तुकाराम—'सूरजके सामने जुगुनू पुट्ठे दिखावे।'

(६) 'अखिल जगत् महासुखसे तन जाता है।' (ज्ञाने० ९—२००) तुका कहता है, 'अखिल जगत् भगवान्से तन गया है। उसीके गीत गाओ, यही काम बाकी है।'

(७) यहाँ वे ही लीलामात्रसे (अनायास) तर गये जिन्होंने मेरा भजन किया। उनके लिये मायाजल इसी पार समाप्त हो गया। (ज्ञाने० ७—९७) तुकाराम—मुखसे नारायण-नाम गाने लगे तब भव-बन्धन कहाँ रहा? भव-सिन्धु तो इसी पार समाप्त हो जायगा।

(८) सन्त ज्ञानके देवालय हैं, सेवा उसका द्वार है, इसे दखल कर लो। (ज्ञाने० ४—१६६) तुकाराम—सन्तोंके चरणोंमें चुपचाप पड़े रहो।

(९) देवता भाट बनकर मृत्युलोककी स्तुति करने लगते हैं। (ज्ञाने० ६—४५६) तुकाराम—स्वर्गके देवता यह इच्छा करते हैं कि मृत्युलोकमें हमारा जन्म हो।

(१०) इन्द्रियाँ आपसमें कलह करने लगेंगी। (ज्ञाने० ६—१६) तुकाराम—मेरी इन्द्रियोंमें परस्पर कलह लगी।

(११) अपने ही शरीरके रोम कोई नहीं गिन सकता, वैसे ही मेरी विभूतियाँ असंख्य हैं। (ज्ञाने० १०—२१०) तुकाराम—विराट्के शरीरमें वैसे ही, गिनने लगें तो, अगणित केश हैं।

(१२) मेरी जिसमें प्राप्ति हो वही शुद्ध पुण्य है। (ज्ञाने० ९-३१६) तुकाराम—जिसमें नारायण हैं वही शुद्ध पुण्य है।

(१३) उस अनन्यगतिसे मेरा प्रेम है। (१०-१३७) तुकाराम—नारायण अनन्यके प्रेमी हैं।

(१४) जब गर्भिणी स्त्रीको परोसा गया तभी गर्भवासी अर्भककी तृप्ति हुई। (ज्ञाने० १३-८४८) तुकाराम—माताकी तृप्तिसे ही गर्भस्थ बालक तृप्त होता है····।

(१५) अपनी कोई स्वतन्त्र इच्छा न रखकर भगवान्‌की इच्छाके अनुकूल हो जाय, यह बतलाते हुए ज्ञानेश्वरजी जलका दृष्टान्त देते हैं—'माली जलको जिधर ले जाता है, जल उधर ही शान्तिके साथ जाता है, वैसे ही तुम बनो।' तुकारामजी कहते हैं—'जल जिधर ले जाइये उधर ही जाता है, जो कीजिये वही हो जाता है। राई, प्याज और ऊख एक ही जलके भिन्न-भिन्न रस हैं।'

ज्ञानेश्वरजीके दृष्टान्तको यहाँ तुकारामजीने और भी मधुर और विशद कर दिया है। उपाधि-भेदसे राई (तामस), प्याज (राजस) और ऊख (सात्त्विक) में जल त्रिविध होनेपर भी जल तो एक ही है। जलकी जैसी अपनी कोई इच्छा या आग्रह नहीं वैसे ही मनुष्यको निष्काम होना चाहिये।

(१६) नवें अध्यायमें गुह्य ज्ञान बतलाते हुए ज्ञानदेव सञ्जयकी सुखावस्था वर्णन करते हैं—

'(श्रीकृष्णार्जुनसंवादमें) चित्त मगन होकर स्थिर हो गया, वाणी जहाँ-की-तहाँ स्तब्ध हो गयी, आपादमस्तक सारा शरीर रोमाञ्चित हो उठा। आँखें अधखुली रह गयीं और उनसे आनन्द-

जल बरसने लगा। और अन्दर आनन्दकी जो लहरें उठीं उनसे बाहर शरीर काँपने लगा। (५२७,५२८) ऐसे महासुखके अलौकिक रससे जीवदशा नष्ट होने लगी। (५३०)'

* * * *

तुकाराम कहते हैं—

स्थिरावली वृत्ति पांगुळला प्राण।
अंतरीं ची खूण पावुनियां ॥ १ ॥
पुंजाळले नेत्र जाले अर्धोन्मीलित।
कंठ सद्गदित रोमांच आले ॥ ध्रु० ॥
चित्त चाकाटलें स्वरूपामाझारीं।
न निघेचि बाहेरी सुखावलें ॥ २ ॥
तुका म्हणे सुखें प्रेमेसी डुलत।
विरालों निश्चित निश्चिताने ॥ ३ ॥

(स्थिर हुई वृत्ति, रुद्धगति प्राण।
निज पहिचान, जब पायी ॥ १ ॥
आस्फालित नेत्र, हुए अर्धोन्मीलित।
कंठ गद्गदित, रोमहर्ष ॥ ध्रु० ॥
चित्त सुचकित, स्वरूप-निमग्न।
करे न गमन, ऐसा सुखी ॥ २ ॥
तुका कहे प्रेम, सुखसे डोलत।
निर्मुक्त निश्चित, निश्चित हो ॥३॥)

(१७) संसारमें रहते हुए अपना अक्रियत्व कैसे जाना जाय, यह बतलाते हुए ज्ञानेश्वरजीने बहुरूपिये (अ० ३-१७६) और स्फटिकका दृष्टान्त (अ० १५—२४९) दिया है। ये

दोनों दृष्टान्त तुकारामजी 'नटनाट्य अवघें संपादिलें सोंग', (नटनाट्य सारा रचाया स्वाँग) इस अभंगमें एकत्र ले आये हैं ।

(१८) अंगारोंकी सेजपर सुखकी नींद । (ज्ञानेश्वरी) खटमल की चारपाईपर सुखकी कल्पना (तुकाराम)

(१९) अद्वैतानुभवसे देह-भाव छूटनेपर, देहके रहते हुए भी देहसे अलग होनेके भावको प्राप्त होनेपर कर्म बन्धक नहीं होता । ज्ञानदेव इसपर मक्खनका दृष्टान्त देते हैं । दही मथकर जब उससे मक्खन निकाल लिया जाता है तब वह मक्खन छाछमें डालनेसे किसी प्रकार भी नहीं मिल सकता । इसी बातको तुकारामजी यों कहते हैं कि 'दहीसे मक्खन जब अलग कर लिया तब दोनों एक दूसरेमें मिलाये नहीं जा सकते ।'

(२०) प्यासा प्यासको ही पीये, भूखा भूखको ही खा जाय। (ज्ञा० १२-६३) तुकाराम–प्यास प्यासको पी गयी, भूख भूख-को खा गयी ।

(२१) सब प्राणी मेरे ही अवयव हैं, पर मायायोगसे जीव-दशाको प्राप्त हुए हैं । (ज्ञाने० ७—६६) तुकाराम—एक ही देहके सब अङ्ग हैं जो सुख-दुःख भोगते—भुगतते हैं ।

(२२) गीताके 'अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्' (अ० ९-३३) इस श्लोकपर ज्ञानेश्वरी टीका (४९१—५०७) और तुकारामजीके 'वाटे या जनाचें थोर वा आश्चर्य' तथा 'विषय-वोढीं भुलले जीव' ये दो अभंग मिलाकर पढ़नेसे यह बहुत ही अच्छी तरहसे ध्यानमें आ जाता है कि तुकारामजीके विचारोंपर ज्ञानेश्वरीके

अध्ययनका कितना गहरा प्रभाव पड़ा हुआ था। ये जीव भगवान्‌को क्यों नहीं भजते, किस बलपर उन्मत्त होकर विषय-भोगमें पड़े हुए हैं, इनकी इस दशापर ज्ञानेश्वर-तुकाराम दोनोंको ही बड़ी दया आयी है।

ज्ञा०—अरे, ये मुझे न भजें ऐसा कौन-सा बल इन्हें मिल गया है, भोगमें ऐसे निश्चिन्त होकर कैसे पड़े हैं? (४९३)

तु०—इनमें कौन-सा ऐसा दम है जो अन्तकालमें काम दे? किस भरोसे ये निश्चिन्त हैं? यमदूतोंको ये क्या जवाब देंगे?

ज्ञा०—विद्या है या वयस् है, इन प्राणियोंको सुखका कौन-सा ऐसा बल-भरोसा है जो मुझे नहीं भजते? (४९४) जितने भी भोग हैं वे सब एक देहके ही सुख-साधनमें लगे हैं और देहका यह हाल है कि यह कालके मुँहमें पड़ी हुई है। (४९५)

तु०—संसारमें कालका कलेवा बनकर कौन सुखी हुआ है?

ज्ञा०—जहाँ चारों ओर दावानल धधक रहा था वहाँसे पाण्डव कैसे न बच निकलते? ये जीव इतने उपद्रवोंसे घिरे हुए हैं तो भी कैसे मुझे नहीं भजते?

तु०—क्या ये जीव मृत्युको भूल गये, इन्हें यह क्या चसका लगा है? बन्धनसे छूटनेके लिये ये देवकीनन्दनको क्यों नहीं याद करते?

(२३) चाहे कोई कितना ही दिमाग खर्च करे, वह चीनीको फिरसे ऊख नहीं बना सकता; वैसे ही उसे (भगवान्‌को) पाकर कोई जन्म-मृत्युके इस चक्करमें नहीं पड़ सकता। (ज्ञा० ८—२०२)

तु०—**साखरेचा नव्हे ऊँस। आम्हां कैंचा गर्भवास? ॥ १ ॥**

'चीनीका जब फिरसे ऊख नहीं बनता तब हमें गर्भवास कैसे हो सकता है ?'

(२४) भगवान्‌के गुण गाते-गाते वेद मौन हो गये और शेषनाग भी थक गये—'ज्ञानमें वेदोंसे भी बड़ा कोई है ? या शेषनागसे भी बड़े और कोई बोलनेवाले हैं ? पर वह शेषनाग भी शय्याके नीचे जा छिपते हैं और वेद 'नेति नेति' कहकर पीछे हट जाते हैं। यहाँ तो सनकादि भी बौरा गये।' (ज्ञाने० ९—३७०-७१)

तु०—त्याचा पार नाहीं कळला वेदांसी।
आणिकही ऋषी विचारितां।
सहस्रमुखें शेष शिणला बापुडा।
चिरलिया धडा जिह्वा त्याच्या।
(आणि) शेष स्तुती प्रवर्तला।
जिह्वा चिरूनीं पलंग झाला॥१॥

'वेदोंने उनका पार नहीं पाया, ऋषि भी विचारते ही रह गये। सहस्रमुख शेष बेचारे थक गये, उनके धड़की जिह्वाएँ बन गयीं तो भी पार नहीं पा सके और शेष स्तुति करते-करते जिह्वा चीरकर पर्यंक बन गये।'

(२५) ज्ञानेश्वरीमें (अ० ६—७०से ७८ तक) यह वर्णन है कि देहाभिमानी जीव किस प्रकार शुकनलिका-न्यायसे आप ही अपने पैर अटकाकर आत्मघात करता है। इस शुकनलिका-न्यायपर तुकारामजी कहते हैं—

आपही तारक, आपही मारक। आप उद्धारक, अपना रे॥
शुकनलिन्याय, फांसा आप ही आप। देखतो स्वरूप, मुक्त जीव॥

'यह जीवात्मा आप ही अपना तारक आप ही अपना मारक है। आप ही अपना उद्धारक है। रे मुक्त जीव ! जरा सोच तो सही कि शुकनलिका न्यायसे तू कहाँ अटका हुआ है।'

(२६) बड़ोंके यहाँ छोटे-बड़े सभी एक-सा भोजन पाते हैं। (ज्ञाने० १८-४८)

तु०-समर्थां सी नाहीं वर्णावर्ण-भेद। सामग्री ते सिद्ध सर्व घरीं॥१॥

न म्हणे सुहृदसोयरा आवश्यक।
राजा आणि रंक सारिखेचि॥२॥

'समर्थोंके यहाँ वर्णावर्ण-भेद नहीं होता। सिद्धोंके यहाँ सभी सामग्री सिद्ध ही होती है। वहाँ अपने सगे-सम्बन्धियोंकी बात नहीं है, क्योंकि राजा और रंक सभी वहाँ समान हैं।'

१५ एक पुरानी पोथी

यहाँतक लिख चुकनेके पश्चात् देहूमें एक पुरानी पोथी ऐसी मिली जिसमें ज्ञानेश्वरीके बारहवें अध्यायकी ओवियाँ और इनमेंसे कई ओवियोंके नीचे उन्हीं अर्थोंके तुकारामजीके अभङ्ग लिखे हुए थे। बारहवें अध्यायमें सगुण भक्तिका उत्तम प्रतिपादन है और इस कारण वारकरी सम्प्रदायमें इसकी विशेष मान्यता है। यह पोथी तुकारामजीके ही खानदानमें उनके किसी पोते-परपोतेने लिखी होगी। सम्पूर्ण पोथी यहाँ उद्धृत करना असम्भव है। तथापि नमूनेके तौरपर दो-चार अवतरण यहाँ देते हैं—

१ ज्ञा०—व्यक्त और अव्यक्त, निःसंशय तुम्हीं एक हो। भक्तिसे व्यक्त और योगसे अव्यक्त मिलते हो। (२२)

तु०—जो कोई जैसा ध्यान करता है, दयालु भगवान् वैसे बन जाते हैं। सगुण-निर्गुणके धाम तो ईंटपर ये चरण धरे हैं।

* * *

योगी लखकर जिसका आभास पाते हैं वह हमें अपनी दृष्टिसे सामने दिखायी देता है।

२ ज्ञा०—एकदेशीय स्वरूप और सर्वव्यापक स्वरूप, दोनों समान ही हैं। (२५)

तु०—**म्हाणे विठ्ठल ब्रह्म नव्हे। त्याचे बोल नाईकावे ॥१॥**

'जो कहता है कि विठ्ठल ब्रह्म नहीं हैं वह क्या कहता है यह सुननेकी जरूरत नहीं।'

३ ज्ञा०—जो ॐकारके परे है, वाणीके लिये जो अगम्य है। (३१)

तु०—यदि मैं स्तुति करूँ तो वेदोंसे भी जो काम नहीं बना वह मैं कर सकता हूँ? पर इस वैखरीको उस सुखका चसका लग गया है। रसना वही रस चाहती है।

४ ज्ञा०—कर्मेन्द्रियाँ सुखपूर्वक उन अशेष कर्मोको करती रहती हैं जो वर्णविशेषके भागके अनुसार प्राप्त होते हैं। (७८) और भी जो-जो कायिक, वाचिक, मानसिक भाव हैं उन सबके लिये मेरे सिवा और कोई ठौर-ठिकाना नहीं है। (७९)

तु०—अपने हिस्सेमें जो काम आया वही करता हूँ, पर भाव मेरा तेरे ही अन्दर रहे। शरीर शरीरका धर्म पालन करता है, पर भीतरकी बात रे मन! तू मत भूल।

* * *

कहीं किसी औरका प्रयोजन नहीं, सब जगह मेरे लिये तू-ही-तू है। तन, वाणी और मन तेरे चरणोंपर रखे हैं, अब हे भगवन् ! और कुछ बचा न देख पड़ता।

५ ज्ञा०—अभ्यासके बलसे कितने अन्तरिक्षमें चलते हैं, कितनोंने व्याघ्र और सर्पके स्वभाव बदल डाले हैं। (१११) अभ्याससे विष भी पच जाता है, समुद्रपर भी चला जा सकता है; कितनोंने तो अभ्यासके बलसे वेदोंको भी पीछे छोड़ दिया है। (११२) इसलिये अभ्यासके लिये तो कुछ भी दुष्कर नहीं है। इसलिये अभ्याससे तुम मेरे स्थानमें आ जाओ। (११३)

तु०—अभ्याससे एक-एक तोला बचनाग खा जाते हैं, दूरोंसे आँखों देखा नहीं जाता। अभ्याससे साँपको हाथमें पकड़ लेते हैं, दूसरे देखकर ही काँपने लगते हैं, आयाससे असाध्य भी साध्य हो जाता है; इसका कारण, तुका कहता है कि अभ्यास है।

१६ एकनाथ महाराजके ग्रन्थ

अब एकनाथ महाराजके ग्रन्थोंसे तुकारामजीका कितना घनिष्ट परिचय था, यह देखा जाय। एकनाथी भागवत, भावार्थ-रामायण, फुटकर अभङ्ग इत्यादि साहित्य बहुत बड़ा है। नाथ-भागवत और अभङ्ग ही तुकारामजीके पाठ और अवलोकनमें विशेषरूपसे रहे होंगे। अन्तःप्रमाणके लिये अनेक अवतरण दिये जा सकते हैं; पर अधिक विस्तार न करके कुछ ही प्रमाण यहाँ देते हैं—

(१) मेरे भक्त जो घर आये वे सब पर्वकाल ही द्वारपर आये। ऐसे तीर्थ जब घर आते हैं, वैष्णवोंके लिये वही दशामी-दिवाली है। (नाथ-भागवत ११—१२६६)

सन्त जब घर आते हैं तब दसहरा-दिवालीका-सा आनन्द मिलता है । यह अनुभव तो सभीको है; पर इस अनुभवको मूर्त-रूप प्रदान किया एकनाथ महाराजने । उन्होंने एक अभङ्गमें भी कहा है—

आजी दिवाळीदसरा । श्रीसाधु संत आले घरा ॥१॥

'आज ही दिवाली और दसहरा है, श्रीसाधु-सन्त जो घर पधारे हैं ।'

तुकारामजीके अभङ्गका यह चरण तो अत्यन्त लोक-प्रिय है—

साधु संत येती घरा । तोची दिवाळी दसरा ॥१॥

'साधु-सन्त घर आये वही दसहरा-दिवाली है ।'

(२) आत्मबोधके लिये वैसी छटपटाहट हो जैसे जलके बिना मछली छटपटाती है । (ना० भा० ७–२३)

तु०—**जीवनावेगळी मासोळी । तुका तैसा तळमळी ॥**

'जलके बाहर मछली जैसे छटपटाती है, तुका भी वैसे ही छटपटाता है ।'

(३) **'संत आधी देव मग'**

(एकनाथ)

'पहले सन्त पीछे देवता ।'

देव सारावे परते । संत पूजावे आरते ॥१॥

(तुकाराम)

'देवताओंको परली तरफ कर दे, पहले सन्तोंको पूजे ।'

(४) **रांडवा केलें काजळकुंकु । देखोनि जग लागे थुंकूं ॥**

(ना० भा० ११–६६७)

'राँडका काजर लगाना, माँग भरना देखकर संसार उसपर थूकता है ।'

कुंकवाची उठाठेव। वोडकावाई काशाला ? ॥

(तुका०)

'राँडको सिन्दूर लेकर क्या करना है ?'

(५) 'लब्ध्वा जन्मामरप्रार्थ्यं मानुष्यम्'

(श्रीमद्भा० ११ । २३ । २२)

श्रीमद्भागवतकी इस कल्पनाको एकनाथजीने (अ० ९) और फैलाया है—

यालागीं नरदेह निधान। जेणें ब्रह्मसायुज्यीं घडे गमन।
देव वांछिती मनुष्यपण। देवाचें स्तवन नरदेहा ॥२५९॥
मनुष्यदेहींचेनि ज्ञानें। सच्चिदानंदपदवी घेणें।
एवढा अधिकार नारायणें। कृपावलोकनें दीधला ॥२३॥

इसलिये नर-देह ऐसा स्थान है कि जिससे ब्रह्म-सायुज्यकी गति मिलती है। इसीलिये देवता मनुष्य-जन्म चाहते हैं, और नर-देहकी स्तुति करते हैं। (२५९) मनुष्यदेहमें ही वह ज्ञान प्राप्त हो सकता है जिससे वह सच्चिदानन्द-पदवीको प्राप्त करे। नारायणने अपनी कृपा-दृष्टिसे (नर-देहको) इतना बड़ा अधिकार दे रखा है।

तुकारामजी कहते हैं—

इहलोकीचा हा देह। देव इच्छिताती पाहे ॥१॥
धन्य आम्ही जन्मा आलों। दास विठोवाचे झालों ॥ध्रु०॥
आयुष्याच्या या साधनें। सच्चिदानंदपदवी घेणें ॥२॥
तुका म्हणे पाठवणी। करूं स्वर्गीची निशाणी ॥३॥

'इहलोककी यह देह, देखो, देवता भी चाहते हैं। इस देहमें जन्म मिलनेसे हम धन्य हुए जो श्रीविट्ठलके दास हुए।

इसमें जो आयु मिली है वह सच्चिदानन्द-पदवीको प्राप्त करनेका साधन है। स्वर्गकी पताका, तुका कहता है कि भेंटमें भेजी जायगी।'

(६) **केवळ जीं अपवित्र। रिसें आणि बानरें।**

म्यां पूजिलीं गौळियांची पोरें। ताकपिरें रानटें॥

(ना० भा० १४-२९०)

'रीछ और बन्दर जिनमें कोई पवित्रता नहीं, और छाछ पीनेवाले असभ्य ग्वाल-बाल, इनका मैंने पूजन किया।'

गौळियांची ताकपिरें। कोण पोरें चांगलीं?॥

(तुकाराम)

'ग्वालोंके छाछ पीनेवाले बच्चे कौन-से बड़े अच्छे हैं?'

(७) चौपड़के खेलमें गोटीका मरना और जीना जैसा है, ज्ञानीकी दृष्टिमें जीवोंका बन्ध-मोक्ष भी वैसा ही है।

'सारी कौन-सी मरे पीछे, अपने पुण्यबलसे, वैकुण्ठधाम पहुँचती है? और कौन नरक-सङ्कटमें गिरती है? बद्ध-मुक्तकी बात ही समूल मिथ्या है!' (नाथभागवत २९-७६८)

सारी जीथी मरी, झूठी बात सारी।

बद्ध मुक्त वारी, बात कोरी॥

(तुकाराम)

सारी मरी-जीयी, यह बात झूठी है। वैसे ही बद्ध-मुक्त होनेवाली बात भी, तुका कहता है कि कोरी बात ही है।

(८) क्या गृहाश्रममें भगवान् नहीं हैं? तब वनमें पागल होकर क्यों भटकते हैं? वनमें यदि भगवान् होते तो हरिन, खरगोश, बाघ क्यों न तर जाते? आसन जमाकर ध्यान लगानेसे यदि

भगवान् मिलते तो बक-समुदायोंका क्षणमात्रमें उद्धार क्यों न होता ? एकान्त गुफामें रहनेसे यदि भगवान् मिलते तो चूहे तरना छोड़ घर-घर चीं-चीं क्यों करते रहते ? (नाथ-भागवत अ० ५)

कहो सांप खाता अन्न । करे क्या ध्यान, बक भी ? ॥ १ ॥
कपट भरा भीतर । भरा उदर, मलसे ॥ ध्रु० ॥
करे चूहा भी एकांत । गदहा भी भभूत, रमावे ! ॥ २ ॥
तुका जल नक्रालय । काग भी नहाय, कहो तो ! ॥ ३ ॥

(तुकाराम)

'क्या साँप अन्न खाता है ? (नहीं, वायु-भक्षण करके ही रहता है ।) और बकजी कैसा ध्यान करते हैं ! इनके भीतर केवल कपट भरा है, पेटमें बुराई भरी है। चूहा भी बिलमें एकान्त-में रहता है। गदहा भी सर्वाङ्गमें भभूत रमा लेता है । जलमें ही घड़ियाल रहता है। कौआ जल-स्नान करता है। पर इससे क्या ? इनके भीतर कपट भरा हुआ है, पेटमें बुराई भरी हुई है ! इससे इन्हें कोई साधु या परमार्थके साधक नहीं कहता। वायु-भक्षण, ध्यान, एकान्तवास, भस्म-लेपन, जलमें बैठकर या खड़े होकर अनुष्ठान या स्नान—ये सब ईश्वर-प्राप्तिके साधन हैं सही, पर इनको करते हुए भी यदि बुद्धि निर्मल न हो तो इनसे कोई लाभ नहीं हो सकता ।

(९) अद्वैत भक्ति और अभेद भक्तिके भाव और शब्द ज्ञानेश्वरीमें हैं । इसी भक्तिको एकनाथने 'मुक्तीवरील भक्ति' (मुक्तिके ऊपरकी भक्ति) कहा है। नाथ-भागवतमें ये शब्द दस-

पाँच बार आये हैं। (अ० ९ ओवी ७१० से ८१० तक) इसी 'मुक्तिके ऊपरकी भक्ति' का उल्लेख तुकारामजीके एक अभङ्गके एक चरणमें है—

मुक्तीवरील भक्ति जाण। अखंड मुखीं नारायण॥

'मुखमें अखण्ड नारायण-नाम ही मुक्तिके ऊपरकी भक्ति जानो।'

(१०) **देहको मिथ्या कहके त्यागोगे। तो मोक्ष सुखसे पाओगे॥**
इसे अच्छा जानके भोगोगे। तो अवश्य जाओगे नरकको॥
इसलिये इसे न त्यागे न भोगे। बीचो-बीच विभाग॥
आत्मसाधनमें यह लगे। स्वभावमें पगे स्वहितार्थ
(नाथ-भागवत अ० ९। २५२-२५३)

'देहको घृणित समझकर त्याग दें तो मोक्ष-सुखसे ही वञ्चित होना पड़े, यदि इसे अच्छा समझकर भोगें तो सीधे नरकका रास्ता नापना पड़े। इसलिये इसे न त्यागे न भोगे, मध्यभागमें विभाग करे, इसे निज स्वभावसे आत्महितके लिये आत्मसाधनमें लगावे।'

देहको सुख, न देवे भोग। न देवे दुःख, न करे त्याग॥
देह न हीन, न है उत्तम। तुका कहे तुम, करो हरि-भजन॥
(तुकाराम)

'शरीरको सुख-भोग न दे, दुःख भी न दे, इसका त्याग भी न करे। शरीर न बुरा है न अच्छा है; तुका कहता है, इसे जल्दी हरि-भजनमें लगाओ।'

नाथका भावार्थरामायण भी तुकारामजीने देखा था, इसमें सन्देह नहीं । भावार्थरामायणसे दो अवतरण लेते हैं—

(११) 'वैराग्यकी बातें तभीतक हैं जबतक कोई सुन्दर स्त्री नेत्रोंके सामने नहीं आयी है।' (भावार्थरामायण अरण्य अ० ३)

'वैराग्यकी बातें बस, तभीतक हैं जबतक किसी सुन्दर स्त्री-पर दृष्टि नहीं पड़ी ।' (तुकाराम)

(१२) 'श्रीरामनामके बिना जो मुख है वह केवल चर्म-कुण्ड है । भीतर जो जिह्वा है वह चमड़ेका टुकड़ा है । (भा० रामायण)

'जिसके मुँहमें नाम नहीं वह मुँह चमारका कुंडा है ।' (तुकाराम)

नाथ और तुकाराम दोनोंके ही अभंगोंके संग्रह प्रसिद्ध हैं । नाथके अभंगोंका पाठ और अध्ययन तुकारामजीने किया था और इसका तुकारामजीके चित्त और वाणीपर बड़ा प्रभाव पड़ा था । नाथ और तुकारामजीकी कुछ उक्तियाँ मिलाकर देखें । पहले नाथकी उक्ति देते हैं, पीछे तुकारामजीकी । पाठक इसी क्रमसे दोनोंको मिलाकर पढ़ें—

(१) एक सद्गुरुकी ही महिमा गाया करे, अन्य मनुष्योंकी स्तुति कुछ काम न देगी ।

—एक विट्ठलकी ही महिमा गाया करे, मनुष्यके गीत न गाये ।

(२) **चिंतनासी न लगे वेळ । कांहीं तया न लगे मोल ॥**
वाचे सदा सर्वकाळ । रामकृष्ण हरी गोविंद ॥ १ ॥

'चिन्तनके लिये कोई समय नहीं लगता, उसके लिये कुछ मूल्य नहीं देना पड़ता । सब समय ही 'राम कृष्ण हरि गोविन्द' नाम जिह्वापर बना रहे ।'

—**चिंतनासी न लगे वेळ । सर्व काळ करावें ॥**

'चिन्तनके लिये कुछ समय नहीं चाहिये, सब समय ही करता रहे ।'

(३) सदा 'राम कृष्ण हरि गोविन्द' का चिन्तन करो । यही एक सत्य सार है, व्युत्पत्तिका भार केवल व्यर्थ है ।

—यही एक सत्य सार है, व्युत्पत्तिका भार बेकार है ।

(४) द्रव्य लेकर जो कथा-कीर्तन करते हैं वे दोनों ही नरकमें जाते हैं ।

—कथा-कीर्तन करके जो द्रव्य देते या लेते हैं वे दोनों ही नरकमें जाते हैं ।

(५) गीता और भागवतपर एकनाथ और तुकाराम दोनों-का ही असीम प्रेम था । दोनोंने ही नाम-स्मरणका उपदेश दिया है और दोनोंके हृदयमें हरिहरैक्यभाव था—

आयुष्यअंतवरी नाम-स्मरण । गीताभागवताचें श्रवण ॥
विष्णुशिवमूर्तिचें ध्यान । हेंचि देणें सर्वथा ॥

'जबतक जीवन है तबतक नाम-स्मरण करे, गीता-भागवत श्रवण करे और हरिहरमूर्तिका ध्यान करे ····।'

—**गीताभागवत करिती श्रवण । आणिक चिंतन विठोबाचें ॥**

'गीता-भागवत श्रवण करते हैं, और विठोबाका चिन्तन करते हैं ।'

(६) आपके नामकी महिमा हे पुरुषोत्तम ! मैं नहीं समझ पाता।

—आपके नामकी महिमा हे पुरुषोत्तम ! मैं नहीं समझ पाता।

(७) कर्माकर्मके फेरमें मत पड़ो। मैं भीतरी बात बतलाता हूँ। श्रीरामका नाम अट्टहासके साथ उचारो।

—धर्मको जो समझते हैं और जो नहीं समझते, सब सुनो, मैं रहस्यकी बात बतलाता हूँ। मेरे विठोबाके नाम अट्टहासके साथ उचारो।

(८) स्त्रीके अधीन होकर पुरुष स्त्रैण न बने, उसके इशारे-पर नाचकर अपना परमार्थ खो न दे। एकनाथ और तुकाराम दोनोंका यही उपदेश है।

स्त्रीके अधीन जिसका जीवन हो जाता है उस अधमको नरकमें जाना पड़ता है। स्त्रीका रुख देखकर वह चलता है, और किसीकी बात उसे अच्छी नहीं लगती। (एकनाथ) स्त्रीके अधीन जिसका जीवन होता है उसको देखनेसे भी असगुन होता है। ये सब जन्तु संसारमें न जाने किसलिये मदारीके बन्दरकी तरह जीते हैं। स्त्रीकी मनोवाञ्छाको ही जो सत्य समझता है वह स्त्रैण सचमुच ही पूरा अभागा है। (तुकाराम)

यहाँ 'मदारीके बन्दर' की बात पढ़कर ज्ञानेश्वरीकी वह ओवी याद आती है जिसमें कहा है, 'स्त्रीके चित्तका जो आराधन करता है, उसीके रुखपर नाचता है वह मदारीका बन्दर-जैसा है।' (अ० १३–७९३)

(९) हरि-हरके अभेदके सम्बन्धमें दोनोंके ही अभङ्ग

देखने योग्य हैं। एकनाथके तीन अभङ्गोंका एक-एक चरण लेनेसे तुकारामजीका एक अभङ्ग बनता है!

हरिहरा भेद। नका करूँ अनुवाद।
धरितां रे भेद। अधम तो जाणिजे ॥१॥

यह एक अभङ्गका प्रथम चरण है। दूसरे एक अभङ्गका तीसरा चरण ऐसा है—

गोडीसी साखर साखरेसी गोडी।
निवडितां अर्थघडी दुजी नव्हे ॥

एक तीसरे अभङ्गका चरण इस प्रकार है—

एका वेलांटीची आढी। मूर्ख नेणती बापुडीं ॥१॥

इन तीनों चरणोंका भाव यह है कि 'हरि और हरमें भेदकी कल्पनाकर उसका फैलाव मत करो। जो ऐसा भेद धारण करेगा उसे अधम समझो। मिठासमें चीनी है और चीनीमें मिठास है, अर्थको विचारो तो चीज एक ही है।'

'एक आडीकी ही आड है, इस बातको मूर्ख बेचारे नहीं जानते।'

इन तीनों चरणोंमें जो भाव हैं वे तुकारामजीके जिस अभङ्गमें एकीभूत हुए हैं उस अभङ्गको अब देखिये—

हरिहरां भेद। नाहीं, नका करूं वाद ॥१॥
एक एकाचे हृदयीं। गोडी साखरेचे ठायीं ॥ध्रु०॥
भेदकासी नाड। एक वेलांटीं च आड ॥२॥
उजवा वाम भाग। तुका म्हणे एकचि अंग ॥३॥

'हरि-हरमें भेद नहीं है, झूठ-मूठ बहस मत करो। दोनों एक दूसरेके हृदयमें हैं, जैसे मिठास चीनीमें और चीनी मिठासमें है। भेद करनेवालोंकी दृष्टिके जो आडे आती है वह एक आडीकी ही आड है। दाहिना और बायाँ दो थोड़े ही हैं, अङ्ग तो एक ही है।'

(१०) **देव उभा मागें पुढें। वारी सांकडें भवाचें॥**

(एकनाथ)

'भगवान् आगे-पीछे खड़े संसारका संकट निवारण करते हैं।'

देव उभा मागें पुडें। उगवी कोडें संकट॥

(तुका०)

'भगवान् आगे-पीछे खड़े संकटसे उबारते हैं।'

(११) सद्गुरु-महिमाके विषयमें एकनाथ महाराज कहते हैं—

उनके उपकार कभी उतारे नहीं जा सकते। प्राण भी उनके चरणोंपर रख दूँ तो यह भी थोड़ा है।

सन्त-स्तवनमें तुकाराम महाराज कहते हैं—

इनसे उऋण होनेके लिये इन्हें क्या देना चाहिये? यह प्राण भी चरणोंपर रख दूँ तो थोड़ा है!

(१२) पण्ढरीका वह वारकरी धन्य है, उसका जन्म धन्य है, जो नियमपूर्वक पण्ढरी जाता है और वारी टलने नहीं देता। (एक०)

—पंढरीचा वारकरी। वारी चुकों नेदी हरी॥

(तुका०)

'पण्ढरीका वारकरी वारी और हरीको नहीं भूलता।'

(१३) दोचि अक्षरांचें काम। वाचे म्हणा रामनाम॥

(एक०)

(दो ही अक्षरों काम। वाचा कहो राम नाम॥)

दोचि अक्षरांचें काम। उच्चारावा रामराम॥

(तुका०)

(दो ही अक्षरोंका काम। उचारो श्रीराम राम॥)

(१४) बार-बार लोगोंसे कहता हूँ,

सबसे यही दान माँगता हूँ।

बार-बार यही कहता हूँ,

जगतसे यही दान माँगता हूँ॥

(एक०)

(१५) भागवत-सम्प्रदायमें हरि-हरका समान प्रेम है और एकादशी तथा सोमवार दोनों ही व्रतोंका पालन विहित है।

जो सोमवार और एकादशी-व्रत रहते हैं उनके चरण मैं अपने मस्तकसे वन्दन करूँगा। शिव-विष्णु दोनों एक ही प्रतिमा हैं ऐसा जिनका प्रेम है उन्हें वन्दन करूँगा। (एक०)

एकादशी और सोमवारका व्रत जो नहीं पालन करते उनकी न जाने क्या गति होगी! (तुका०)

(१६) जो मुझे नाम और रूपमें ले आये उन्होंने मुझपर बड़ी कृपा की। हे उद्धव! उन्होंने मुझे यह सुगम मार्ग दिखाया। (एक०)

—(भगवान्) नाम-रूपमें आ गये, इससे सुगम हो गये। (तुका०)

(१७) कहीं-कहीं ऐसा जान पड़ता है कि एकनाथ महाराजके अभङ्गका मनन करते हुए कहीं उनकी उक्तिकी पूर्तिके तौरपर और कहीं प्रेमसे उनकी बातका उत्तर देनेके लिये तुकारामजीने अभङ्ग रचे हैं। एकनाथ महाराजका एक अभङ्ग है, 'देवाचे ते आप्त जाणावे ते संत' (भगवान्‌के जो आप्त हैं वे ही सन्त हैं)। इसी अभङ्गकी मानों पूर्तिके लिये तुकारामजीने 'नऱ्हती ते संत करितां कवित्व' (सन्त वे नहीं हैं जो कविता करते हैं) इत्यादि अभङ्ग रचा है। बहिणाबाईका मूल 'सर्वसंग्रहगाथा' मुझे शिऊरमें उनके वंशजोंके पाससे मिला। उसमें बीचहीमें एक पन्नेपर एकनाथ महाराजका 'ब्रह्म सर्वगत सदा सम' इत्यादि अभङ्ग लिखा हुआ था। इस अभङ्गका ध्रुवपद है, 'ऐसे कासयानें भेटती ते साधु' (ऐसे महात्मा कैसे मिलते हैं)। इसी अभङ्गके नीचे तुकारामजीका 'ऐसे ऐसियाने भेटती ते साधु' (ऐसे महात्मा ऐसे मिलते हैं) इत्यादि अभङ्ग दिया हुआ है।

(१८) ज्ञानेश्वरीका नाथ-भागवतपर और इन दोनों ग्रन्थोंका तुकारामजीके अभङ्गोंपर विलक्षण परिणाम घटित हुआ देख पड़ता है। अर्जुन जब मोहसे विकल हो उठा तब 'स्नेहकी कठिनता' बतलाते हुए ज्ञानदेव कहते हैं—

भौंरा चाहे जैसे कठिन काठको मौजके साथ भेदकर उसे खोखला कर देता है, पर कोमल कलिमें आकर फँस ही जाता है। (२०१) वह प्राणोंको उत्सर्ग कर देगा पर कमल-दलको नहीं चीरेगा। स्नेह कोमल होनेसे ऐसा कठिन है। (२०२ अ० १)

भौंरेका यह दृष्टान्त एकनाथ महाराजने ग्रहण किया है,

साथ ही उसमें उन्होंने गृहस्थोंका नित्य परिचित बालकका मधुर दृष्टान्त जोड़ा है—

जो भौंरा सूखे काठको स्वयं कुरेद डालता है वह कोमल कमलके बीचमें आकर प्रीतिकी रीतिमें लग जाता है, केसरको जरा भी धक्का नहीं लगने देता। ऐसे ही बच्चा जब बापका पल्ला पकड़ लेता है तब बाप वहीं खड़ा रह जाता है, इसलिये नहीं कि बाप इतना दुर्बल है बल्कि इस कारणसे कि वह स्नेहमें फँसकर वहीं गड़ जाता है। (नाथ-भागवत २ । ७७७–७७९)

तुकारामजीने अपने अभङ्गमें इन दोनों दृष्टान्तोंका उपयोग किया है—

'जो भौंरा काठको कुछ नहीं समझता उसे फूल फँसा लेता है। 'प्रेम-प्रीतिका बँधा' किसी तरहसे नहीं छूटता। बच्चा पल्ला पकड़ लेता है तो बाप बालकके सामने लाचार हो जाता है। तुका कहता है, भावसे या भयसे भगवान्‌को भजो।'

तुकारामजीका एक और अभङ्ग है जिसमें बच्चेका दृष्टान्त फिरसे आया है—

प्रीतीचा कळह। पदरासी घाली पीळ।
सरों नेदी वाळ। मागेंपुढें पित्यासी॥१॥
काय लागे त्यासी बळ। हेडाविता कोण काळ।
गोविती सबळ। जाळी स्नेह सूत्राची॥

'प्रेमकी कलह है। बच्चा पल्ला पकड़कर ऐंचता-ऐंठता है। बापको इधर-उधर हिलने नहीं देता है। यदि बाप चाहे तो

बच्चेको झटक दे सकता है। इसमें कौन-से बड़े बलकी जरूरत है? झटका देनेमें देर भी कितनी लगेगी। पर स्नेह-सूत्रके जाल ऐसे हैं कि बलवान् भी उनमें फँस जाते हैं।'

एकनाथ महाराजकी शैलीमें फैलाव काफी रहता है, तुकारामजीकी वाक्शैली सूत्र-जैसी चुस्त और साफ होती है। ज्ञानेश्वरी और नाथ-भागवतका अध्ययन तुकारामजीने बहुत अच्छी तरहसे किया। ज्ञानेश्वरीको नाथ-भागवत विशद करता है। इन दोनों ग्रन्थोंका जिसने उत्तम अध्ययन किया हो. वही तुकारामजी-के सूत्ररूप वचनोंकी गुत्थियोंको सुलझा सकता है। उदाहरण-के तौरपर यह अभङ्ग लीजिये—

गोदेकाठीं होता आड। करुनी कोडकवतुक ॥१॥
देखण्यानीं एक केलें। आइत्या नेलें जिवनापें ॥ ध्रु०॥
राखोनियां होतो ठाव। अल्प जीव लावूनी ॥२॥
तुका म्हणे फिटे धणी। हे सज्जनीं विश्रांती ॥३॥

गोदावरीके किनारे एक कुआँ था। बरसातके जलसे लबालब भरा था और अपनी शानमें मस्त था। मैं भी वहाँ अपने जरा-से प्राणको लिये, जगह दबाये, बैठा था। पर देखनेवालोंने एक उपकार किया। वे मुझे नदीके बहते जलमें ले गये, वहाँ मेरी तृप्ति हुई। यह विश्राम सत्सङ्गसे ही मिला।

इतनेसे पूर्ण अर्थ-बोध नहीं होता। 'देखनेवालोंने उपकार किया।' ये 'देखनेवाले' कौन हैं? 'गोदावरी' कौन है और यह कुआँ क्या है? देखनेवाले सन्त हैं, ये ही नदीके बहते जलमें ले गये। यह इन्होंने बड़ा 'उपकार' किया। इस उपकारकी

कृतज्ञता प्रकट करनेके लिये यह अभङ्ग रचा गया है। यह सन्तपरक है। संसार-सागरको पार करनेके अनेक उपाय हैं। उनमें मुख्य ज्ञान और भक्ति हैं। भक्ति-मार्ग स्पष्ट, निर्विघ्न और नित्य-निर्मल है; ज्ञान-मार्ग मध्यम और कलाहीन है। भक्ति-मार्ग ही गोदावरी—अखण्ड प्रवाह कलकल-नादिनी नदी है और ज्ञान-मार्ग ही 'कुआँ' है। नाथ-भागवतके ११वें अध्यायमें ४८ वें श्लोकपर नाथ महाराजका जो भाष्य है उसमें इस अभङ्गका मूल है।

प्रायेण भक्तियोगेन सत्सङ्गेन विनोद्धव।
नोपायो विद्यते सध्र्यङ् प्रायणं हि सतामहम्॥

इसी श्लोकपर वह भाष्य है। श्लोकका भाव यह है कि 'सत्सङ्गसे मिलनेवाले भक्तियोगके बिना भगवत्-प्राप्तिका अन्य उत्तम उपाय प्रायः नहीं है। कारण, सन्तोंका उत्तम आश्रय मैं ही हूँ।' यह भगवद्वचन है, इसपर नाथ-भाष्य इस प्रकार है—

'खेतमें पानी देना हो तो मोट और पाट दो ही उपाय हैं। मोटसे कुएँमेंसे पानी निकालो तो बहुत कष्ट करनेपर थोड़ा ही पानी मिलता है। फिर मोटके साथ रस्सा और एक जोड़ी बैल भी चाहिये। फिर बराबर 'ना' 'ना' करते बैलोंको ठोंकते-पीटते, खींच-खाँच करते पानी निकालो तो उससे थोड़ी ही जमीन भीजेगी, पर नदीके पाटकी यह बात नहीं है। जहाँ उसके जल-प्रवाहके आनेके लिये रास्ता बन गया वहाँ रात-दिन घड़घड़ाता हुआ जल बहता ही रहेगा।' (१५२१—२२, २४)

यह मोटसे पानी निकालना ही ज्ञान-मार्ग है—

मोटेचें पाणी तैसें ज्ञान। करूनि वेदशास्त्रपठण।
नित्यानित्यविवेकासी जाण। पंडित विचक्षण बसती ॥१५३५॥

'मोटसे पानी निकालना जैसा है वैसा ही ज्ञान है। वेद और शास्त्र पढ़कर ये विचक्षण पण्डित नित्यानित्यविवेक करने बैठते हैं' तब क्या होता है?—

एक कर्माकडे ओढी। एक संन्यासाकडे ओढी॥

'एक कर्मकी ओर खींचता है, दूसरा संन्यासकी ओर।' कोई तप बतलाता है, कोई पुरश्चरण, कोई वेदाध्ययन, कोई दान और कोई योग बतलाता है। जिसकी मतिमें जो आया उसीको उसने ज्ञानका सार बतलाया।

'ज्ञान-मार्गकी ऐसी गति होती है। अनेक प्रकारके विघ्न आते हैं। विकल्प-व्युत्पत्ति उड़ जाती है। वहाँ मेरी 'निजप्राप्ति' नहीं होती।' (१५४१)

'पर मेरी भक्तिकी यह बात नहीं है। नाममात्रसे (मेरे भक्त) मुझे पाते हैं।' (१५४२)

* * *

गङ्गा-प्रवाह-जैसी हरि-नामकी घड़घड़ाहटमें विघ्न बेचारोंके लिये कोई ठौर-ठिकाना नहीं रहता। इसलिये 'भक्तिसे बढ़कर और कोई मार्ग नहीं है।'

यदि ऐसा है तो सब लोग भक्ति क्यों नहीं करते? इसका उत्तर यह है। 'यदि कोटि जन्मोंकी पुण्य-सम्पत्ति गाँठमें हो तो मेरे सन्तोंकी सङ्गति मिलती है। और सत्सङ्गतिसे ही भक्ति उल्लसित होती है।' (१५५१)

अस्तु, एकनाथ महाराजकी इन ओवियोंके भाव जब अन्तः-करणमें भरे हुए थे उसी समय तुकारामजीके चित्तमें यह अभङ्ग स्फुरित हुआ होगा, यह बात बिल्कुल स्पष्ट है। ग्रन्थाध्ययन तथा अन्य साधनोंसे प्राप्त होनेवाले ज्ञानके भरोसे जब मैं बैठा हुआ था तब सन्तोंने दया करके मुझे परमात्माकी भक्तिरूप महागङ्गामें लाकर छोड़ दिया। यही बात तुकारामजीको अपने अभङ्गमें कहनी थी। तुकारामजीने एकनाथ महाराजको 'जीके मेरे जीवन एक जनार्दन' कहकर कई स्थानोंमें स्मरण करके उनका 'वाक्ऋण' शोध किया है।

१७ नामदेवके अभङ्ग

अब नामदेवकी ओर चलें। नामदेवके अभङ्गोंकी 'गाथा' सुव्यवस्थितरूपसे छपी नहीं है इसलिये, तथा तुकारामजी नामदेवके ही अवतार थे इसलिये भी उनका सम्बन्ध अवतरण देकर दिखानेकी विशेष आवश्यकता नहीं है। जिन-जिन विषयोंपर नामदेवके अभङ्ग हैं प्रायः उन सभी विषयोंपर तुकारामजीके भी अभङ्ग हैं। नामदेवजीकी सगुण-भक्ति अत्युत्कट हार्दिक प्रेमसे भरी हुई है, उनकी मधुर भक्ति मधुरतम है। इस सम्बन्धमें नामदेव-जैसे नामदेव ही हैं। नामदेव अपने घरके सब लोगोंसहित, दासी जनाके भी सहित सर्वथा पाण्डुरङ्गके हैं और भगवान्‌से उनकी अर्जुनकी-सी सख्य-भक्ति है। नामदेवके घरके आदमी-जैसे ही भगवान् उनके साथ रात-दिन रहनेवाले, खेलनेवाले, बोलनेवाले, प्रेम-कलह करनेवाले घरके ही आदमी बन गये हैं। 'मैंने पाया निज मर्म। साधूं भागवत धर्म' इसीके लिये नामदेवका अवतार हुआ था। नामदेव इस

युगके उद्धव ही थे। भगवान्‌के साथ इनकी बड़े प्रेमकी घुल-घुलकर बातें हुआ करती थीं 'अरी मेरी माई संतनकी छांई। सुमिरत पनहाई प्रेमामृत।' इत्यादि कहते हुए वह भगवान्‌से बड़े ही मीठे लाड़ लड़ाते थे और भगवान् भी अपना षड्‌गुणैश्वर्य भूलकर उनके प्रेममें पग जाते थे। भक्त भगवान्‌की वह प्रेम-सरस कोमलता नामदेवकी ही वाणीसे जाननी चाहिये। नामदेव भगवान्‌से कहते हैं कि तुम पक्षिणी हो, मैं अण्डज हूँ, तुम मृगी हो, मैं मृगछौना हूँ, तुम मैया हो, मैं बच्चा हूँ, तुम कृष्ण हो, मैं रुक्मिणी हूँ, तुम समुद्र हो, मैं द्वारका हूँ, तुम तुलसी हो, मैं मञ्जरी हूँ। भगवान्‌के साथ नामदेवका ऐसा विलक्षण सख्य था। यह देखकर तथा मृदुतामें नवनीतको मात करनेवाली उनकी मधुर वाणी सुनकर पाषाण भी अपना जडत्व छोड़कर द्रवित हो जाय। बाकी सब बातोंमें नामदेवजीके ही संशोधित और परिवर्द्धित संस्करण तुकारामजी थे। तुकारामजीकी वाणीमें भगवद्भक्त, लोकोद्धारक महापुरुषकी जो दिव्य स्फूर्ति, जो ठसक, जो प्रखरता और जो ओज भरा है वह अलौकिक ही है। पर यहाँ हमें नामदेव-तुकारामकी परस्पर तुलना नहीं करनी है। नामदेव ही तुकारामके रूपमें धर्म-कार्यार्थ अवतरित हुए, इसलिये नामदेवका जो बड़ा काम बाकी था वही तुकारामजीने किया, यही कहना उचित है। दोनोंके अभङ्गोंमें जो साम्य है, उसका अब किञ्चित् अवलोकन करें। कई चरण दोनोंके अभङ्गोंमें बिल्कुल एक-से हैं, जैसे 'देवावीण ओस स्थळ नाहीं' यह नामदेवका चरण है, और तुकारामजीने कहा है, 'देवाबीण ठाव रिता कोठें आहे?'

दोनोंका मतलब एक ही है अर्थात् 'भगवान्‌से खाली कोई स्थान नहीं।' एकाध शब्दका हेर-फेर है, पर एक सामान्य कथन है और दूसरा प्रश्नरूपमें है। नामदेवका चरण है, 'पंढरीच्या सुखा। अंतपार नाहीं लेखा।' तुकारामजीका समचरण है, 'गोकुळीच्या सुखा अंतपार नाहीं देखा।' नामदेव कहते हैं, 'वीतभर पोट लागलेंसे पाठीं' (बित्ताभर पेट पीठसे जा लगा है), और तुकाराम कहते हैं, 'पोट लागलें पाठीशीं। हिंडवितें देशोदेशीं' (पेट पीठ-से लगा है और देश-देश घुमा रहा है।' 'झूठ' पर दोनोंके चार-चार अभङ्ग हैं। नामदेवने भक्तिकी उत्कटतासे सारा झूठ स्वयं ही ओढ़ लिया है। कहते हैं, 'मेरा गाना झूठा, मेरा नाचना झूठा, मेरा ज्ञान झूठा और ध्यान भी झूठा।' और तुकारामजी कहते हैं, 'लटिकें तें ज्ञान लटिकें तें ध्यान। जरी हरि-कीर्तन प्रिय नाहीं॥' (वह ज्ञान झूठा और वह ध्यान भी झूठा जो हरि-कीर्तन-प्रिय न हो।) तुकारामजीने झूठ स्वयं नहीं ओढ़ा है, झूठोंके पल्ले बाँध दिया है।

(१) नामदेवके एक अभङ्गका आशय है—'हम पण्ढरीमें थे, यह हमारी पुरातन पैतृक भूमि है। रानी रखुमाई हमारी माता और पाण्डुरङ्ग हमारे पिता हैं। (ध्रु०) पुण्डलीक हमारे भाई और चन्द्रभागा बहिन हैं। नामा कहता है, अन्तमें घर अपना चन्द्रभागाके किनारे है।'

इसी आशयका तुकोबाका अभङ्ग यों है—'हमारी पैतृक भूमि पण्ढरी है, घर हमारा भीमा-तीरपर है। पाण्डुरङ्ग हमारे पिता और रखुमाई हमारी माता हैं। (ध्रु०) भाई पुण्डलीक मुनि और बहिन

चन्द्रभागा हैं । तुकाका यह पुरातन परम्परागत अधिकार है जो चरणोंके पास रहता हूँ ।'

(२) भगवन्! मेरा मन अपने अधीन करके बिना दाम दिये स्वामित्व क्यों नहीं भोगते हो? मैं मुफ्तका नौकर तो मिला हूँ जो निरन्तर आपकी सेवा करनेके लिये उधार खाये बैठा हूँ। और तुम्हारे ऊपर कुछ भार भी तो नहीं रखता। (नामदेव)

इसी भावको, देखिये तुकारामजीने किस प्रकार व्यक्त किया है—

दाम देकर लोग सेवक ढूँढ़ते हैं। हम तो बिना कुछ लिये ही सेवक बनना चाहते हैं।

(३) बड़े आदमीका लड़का यदि चीथड़ा ओढ़े तो सब लोग किसको हँसेंगे? तुम तो अविनाशी त्रिभुवनके राजा हो और तुम्हीं मेरे स्वामी हो। (नामदेव)

बड़ेका लड़का यदि दीन-दुखी दिखायी दे तो हे भगवन्! लोग किसको हँसेंगे? लड़का चाहे गुणी न हो, स्वच्छतासे रहना भी न जानता हो तो भी उसका लालन-पालन तो करना ही होगा। (ध्रु०) तुका कहता है, वैसा ही मैं भी एक पतित हूँ, पर आपका मुद्राङ्कित हूँ। (तुकाराम)

(४) भोगावरी आम्हीं घातला पाषाण।
मरणा मरण आणियेलें॥
(विषयोंका भोग, जला डाला सारा।
मृत्युको ही मारा, निःसंशय॥)

यह दोनोंके ही एक-एक अभङ्गका प्रथम चरण है । आगेके चरण दोनोंके एक दूसरेसे भिन्न हैं ।

(५) 'विठाई माउली वोरसोनी प्रेमपान्हा घाली' ये शब्द-प्रयोग दोनोंके ही अभङ्गोंमें बार-बार आये हैं ।

(६) 'तत्त्व पुसावया गेलों वेदज्ञासी' (तत्त्व पूछने वेदज्ञके पास गये) यह नामदेवका अभङ्ग और 'ज्ञानियाचे घरीं चोजविला देव' (ज्ञानीके यहाँ भगवान्‌को ढूँढते) यह तुकारामजीका अभङ्ग, दोनोंका ही एक ही आशय है । वेदज्ञ, शास्त्री, पण्डित, कथा-वाचक आदि सबको देखा, पर तेरा प्रेमानन्द उनके पास नहीं है इसलिये तेरे ही चरणोंको चित्तमें और तेरा ही नाम मुखमें धारण किया है । इन अभङ्गोंमें दोनोंका यही अनुभव व्यक्त हुआ है ।

१८ कबीरकी साखी

उत्तर भारतके सन्त-कवियोंमें कबीरसाहबकी साखियोंका, तुकारामजीको विशेष परिचय था । तुकारामजीने स्वयं भी उनके ढङ्गपर कुछ दोहे रचे हैं, तथा कुछ अन्तःप्रमाणोंसे भी यह बात स्पष्ट है—

(१) तुकारामजी एक अभङ्गमें कहते हैं—

धर्म भूताची ते दया । संत कारण पेसिया ॥
नव्हे माझें मत । साक्षी करूनि सांगे संत ॥

'प्राणिमात्रपर दया करना ही धर्म है । यही सन्तका लक्षण है । यह मेरा मत नहीं । साक्षी करके सन्त ऐसा कहते हैं ।'

यह कौन सन्त हैं जिन्होंने 'साक्षी' करके 'प्राणिमात्रपर दया' करनेको 'धर्म' बताया है और इसीको 'सन्तका लक्षण' कहा है ?

यह वही सन्त हो सकते हैं जिनकी 'साखी आँखी ज्ञानकी' है और जो सब जीवोंको 'साँईके सब जीव हैं' बतलाते हैं, सन्तका लक्षण भी यही बतलाते हैं—

सदा कृपालु दुख पर हरन, वैर भाव नहिं दोय ।
क्षमा ज्ञान सत भाखिये, हिंसारहित जो होय ॥

(२) कबीर—

खाँड खिलौना दो नहीं, खाँड खिलौना एक ।
तैसे सब जग देखिये, किये कबीर विवेक ॥

तुकाराम—

खडा खाळी साखर, जाला नामाचाचि फेर ।
न दिसे अंतर, गोडी ठायीं निवडितां ॥१॥

'मिसरी, बूरा और चीनीमें नामोंका ही फेर है । मिठासको देखें तो कोई अन्तर नहीं ।'

(३) कबीर—

कामीका गुरु कामिनी लोभीका गुरु दाम ।
कबिराके गुरु संत हैं, संतनके गुरु राम ॥

तुकाराम—

लोभीके चित धन रहे, कामिनी चितमें काम ।
माताके चित पूत बसे, तूकाके मन राम ॥

तुकारामजीके समयमें कबीर भारतवर्षमें सर्वत्र विख्यात थे । कबीर (शाके १३६२–१४४०) और तुकारामके बीच सौ-सवा सौ वर्षका अन्तर था । तुकारामजी एक बार काशी भी गये थे । तब वहाँ उन्होंने कबीरकी कविता सुनी होगी ।

१९ चार खेलाड़ी

तुकारामजीके डण्डोंके खेलपर सात अभङ्ग हैं। इनमेंसे एक अभङ्ग है। 'खेळ खेळोनियां निराळे' (खेल खेलकर अलग)। इसमें खेल खेलकर भी अलग रहे हुए—प्रपञ्चके दावमें न आये हुए चार खेलाड़ियोंका उन्होंने वर्णन किया है। ये चार खेलाड़ी हैं, नामदेव, ज्ञानदेव (उनके भाई-बहिन), कबीर और एकनाथ। तुकाराम इन्हीं चार सन्तोंको सबसे अधिक याने गुरुस्थानीय मानते थे। ये ही इनके प्यारे चार खेलाड़ी हैं।

(१) एक खेलाड़ी है दरजीका लड़का नामा, उसने विट्ठलको मीर बनाया। खेला, पर कहीं चूका नहीं, सन्तोंसे उसे लाभ हुआ।

(२) ज्ञानदेव, मुक्ताबाई, वटेश्वर चाङ्गा और सोपान आनन्दसे खेले, कृष्णको उन्होंने मीर बनाया और उसके चारों ओर नाचे। सब मिलकर तन्मय होकर खेले, ब्रह्मादिने भी उनके पैर छुए।

(३) कबीर खेलाड़ीने रामको मीर बनाया और यह जोड़ी खूब मिली।

(४) एक खेलाड़ी है ब्राह्मणका लड़का एका, उसने लोगोंको खेलका चसका लगा दिया। जनार्दनको उसने मीर बनाया और वैष्णवोंका मेल कराया। तन्मय होकर खेलते-खेलते वह स्वयं ही मीर बन गया।

प्रत्येक खेलाड़ीका एक-एक मीर याने उपास्य था। इन चारोंके अतिरिक्त और भी बहुत-से खेलाड़ी हुए पर उनका वर्णन करनेमें तुकारामजी कहते हैं कि 'मेरी वाणी समर्थ नहीं है।' पर

तुकारामजी अपने श्रोताओंसे कहते हैं कि 'या चौघांची तरी धरि सोई रे' (इन चारोंके पीछे-पीछे तो चलो)—नामदेव, ज्ञानेश्वर, कबीर और एकनाथका अनुसरण तो करो। इस अभङ्गका ध्रुवपद इस प्रकार है—

एके घाई खेळतां न पडसी डाईं। दुचाळयानें ठकसिल भाई रे त्रिगुणांचे फेरीं तुं थोर कष्टी होसी या चौघांची तरि धरि सोई रे

'एक भावसे खेल खेलोगे तो (प्रपञ्चके) दाँवमें न फँसोगे। दुविधासे चलोगे तो ठगे जाओगे। त्रिगुणके फेरसे तुम बड़े कष्ट उठाओगे, इसलिये इन चारोंका आश्रयकर इनके मार्गपर चलो।' तुकारामजी जिनके मार्गपर चलनेका उपदेश लोगोंको दे रहे हैं उनपर उनका वैसा ही अटल विश्वास, गहरा प्रेम और महान् आदर होगा इसमें सन्देह ही क्या है। ऐसा प्रेम और आदर होने-से ही तुकारामजीने इनके ग्रन्थोंका बड़ी बारीकीके साथ अध्ययन किया, यह हमलोगोंने यहाँतक देखा ही है।

२० अध्ययनका सार

भागवत-धर्म-परम्पराके प्राचीन तथा अर्वाचीन साधु-सन्तों-की जो कथाएँ तुकारामजीने पढ़ीं या सुनीं उनका तुकारामजीके चित्तपर बड़ा असर पड़ा। इनसे उनके सिद्धान्त दृढ़ हुए, विचार स्थिर हुए, हरि-प्रेम बढ़ा और जीवनकी एक पद्धति निश्चित हो गयी। सन्त-कथा-श्रवणसे भक्ति-बल बढ़ा और विश्वास श्रीविट्ठलमें निर्मल, निश्चल हुआ। सन्तोंका सहारा मिला। सन्त-कथाएँ कामधेनुके समान इष्टकाम पूरण करनेवाली, भगवत्-प्रेमका आनन्द बढ़ानेवाली, सन्मार्ग दिखानेवाली, निश्चयका बल

देनेवाली और सिद्धान्तोंको जचा देनेवाली होती हैं । सन्त-कथाओंसे तुकारामजीने अपना इष्टभाव निकाल लिया और लाभवान् हुए । शीलवान्, साक्षात्कारप्राप्त तथा धर्म-नीति-प्रवण सन्तोंके चरित्रोंसे आत्महितके कौन-कौन-से रहस्य तुकारामजीने प्राप्त किये यह एक बार उन्हींके मुखसे सुनें—

(१) मानी भक्तीचे उपकार । ऋणिया म्हणवी निरंतर

'भगवान् भक्तिके उपकार मानते हैं, भक्तके ऋणी हो जाते हैं ।' इस अभङ्गमें अम्बरीष, बलि, अर्जुन और पुण्डलीकके दृष्टान्त देकर यह बात सिद्ध की है । अम्बरीषके लिये भगवान्‌ने दस बार जन्म लेकर 'दासका दास्य किया ।' भक्तिका उपकार उतारनेके लिये भगवान् राजा बलिके यहाँ द्वारपाल हुए । अर्जुनके सारथी बने । उसके पीछे-पीछे चले, और पुण्डलीकके द्वारपर तो अट्ठाईस युगसे खड़े ही हैं ।

(२) 'कनवाळू कृपाळू' । भगवान् भक्तके लिये चाहे जो कष्ट उठाते हैं, यह बात अम्बरीष और प्रह्लादके चरित्रोंमें तथा द्रौपदी-वस्त्र-हरण और दुर्वासाके धर्म-छल-प्रसङ्गमें प्रत्यक्ष है ।

(३) हरिजनांची कोणा न घडावी निंदा ।
साहत गोविंदा नाहीं त्याचें ॥

'हरि-भक्तोंकी कोई निन्दा न करे, गोविन्द उसे सह नहीं सकते ।' भक्तोंके लिये भगवान्‌का हृदय इतना कोमल होता है कि वह अपनी निन्दा सह सकते हैं पर भक्तकी निन्दा नहीं सह सकते । भक्तोंसे कोई छल-छन्द करे तो यह भी उनसे नहीं सहा जाता—

'दुर्वासा अम्बरीषको छलने आये तो भगवान्का सुदर्शन-चक्र उनको जलाता फिरा। द्रौपदीको जब क्षोभ हुआ तब भगवान्ने उसकी सहायता की और कौरवोंको ठण्डा ही कर दिया। पाण्डवों-से वैर करनेवाला वभ्रू भगवान्से नहीं सहा गया और पाण्डवोंके विरोधी बलरामको भी उन्होंने दूर (पृथ्वी-परिक्रमा करने) भेज दिया। पाण्डव-पुत्रोंकी हत्या करनेवाले अश्वत्थामाके मस्तकमें उन्होंने दुर्गन्ध रख ही छोड़ी।' इसलिये भगवान्की भक्ति करो और भक्तों-को अपनाओ।

(४) **शुकसनकादिकी उभारिला बाहो।**
परीक्षिती लाहो सातां दिवसा॥

'शुक-सनकादि हाथ उठाकर कहते हैं कि परीक्षित सात दिनमें तर गये।' भक्तोंपर भगवान्की ऐसी दया है। द्रौपदीने जब पुकारा तब भगवान् इतने अधीर हो उठे कि गरुडको भी उन्होंने पीछे छोड़ दिया। भक्तके पुकारनेकी देर है, भगवान्के पधारनेकी नहीं। इसलिये रे मन, जल्दी कर।

'उठते-बैठते भगवान्को पुकार। पुकार सुननेपर भगवान्से फिर नहीं रहा जाता।'

(५) भगवान्के प्रेमकी महिमा सुनो। भीलनीके बेर वह खाते हैं, वह प्रेमके बड़े भूखे हैं, प्रेमका अभाव ही उनके लिये अकाल (दुर्भिक्ष) है। सुदामाके चावल वह ऐसे ही फाँक गये। उन्होंने भक्ति ग्रहण की, बेरोंको जूठा नहीं देखा, चावलोंको थोड़ा नहीं देखा।

(६) प्रह्लाद-कथाका स्मरण करके तुकारामजी कहते हैं—

'भक्तकी आवाज आते ही उछलकर कूद पड़े और खम्भेको तोड़कर बाहर निकले। ऐसी दयालु मेरी विठामाईके सिवा और कौन है ?'

(७) 'दीन-दुखी पीड़ित संसारियोंके हे देवराणा ! तुम्हीं तरफ़दार हो। महासङ्कटोंसे तुम्हींने प्रह्लादको अनेक प्रकारसे उबारा है।'

(८) 'माझ्या विठोबाचा कैसा प्रेम-भाव' (मेरे विट्ठलनाथ-का कैसा प्रेम-भाव है) यह बतलाते हैं—

'भगवान् भक्तके आगे-पीछे उसे सँभाले रहते हैं, उसपर जो कोई आघात होते हैं उनका निवारण करते रहते हैं, उसके योगक्षेम-का सारा भार स्वयं वहन करते हैं और हाथ पकड़कर उसे रास्ता दिखाते हैं। तुका कहता है, इन बातोंपर जिसे विश्वास न हो वह पुराणोंको आँख खोलकर देखे।'

(९) भगवान् जिन्हें अपनाते हैं वे संसारकी दृष्टिमें पहले निन्द्य भी रहे हों तो भी पीछे वन्द्य हो जाते हैं—

अंगीकार ज्यांचा, केला नारायणें। निंद्य तेही तेणे, वंद्य केले ॥१॥
अजामेळ भिल्ली, तारिली कुंटणी। प्रत्यक्ष पुराणीं, वंद्य केली ॥ध्रु०॥
ब्रह्महत्याराशी, पातकें अपार। वाल्मीक किंकर, वंद्य केला ॥२॥
तुका म्हणे येथें, भजन प्रमाण। काय थोरपण, जाळावें तें ॥३॥

'नारायणने जिन्हें अङ्गीकार किया वे, जो निन्द्य भी थे, वन्द्य हो गये। भगवान्‌ने अजामिल, भीलनी और कुटनीतकको तारा और

उन्हें साक्षात् पुराणोंमें वन्द्य किया । ब्रह्महत्याके राशि अपार पाप जिसने किये उस वाल्मीकि किङ्करको भगवान्ने वन्द्य किया । तुका कहता है, यहाँ भक्ति ही प्रमाण है और बड़प्पन लेकर क्या होगा।'

भगवान्का जो भक्त है वही यथार्थमें वन्द्य है और वही श्रेष्ठ है । भगवान्का अङ्गीकार करना ही वन्द्यताका प्रमाण है। ज्ञानदेवने भी कहा है, 'भगवद्भक्तिके बिना जो जीना है उसमें आग लगे। अन्तःकरणमें यदि हरि-प्रेम नहीं समाया तो कुल, जाति, वर्ण, रूप, विद्या इनका होना किस कामका ? इनसे उलटे दम्भ ही बढ़ता है । अजामिल, कुटनी और वाल्मीकिका पूर्वाचरण और शबरीकी जाति निन्द्य थी, नारायणने इन्हें अङ्गीकार किया इसलिये ये जगद्वन्द्य हुए ।

(१०) 'तुज करितां नव्हे ऐसें कांहीं नाहीं !' मनुष्यकी पसन्द कोई चीज नहीं है। भगवान्को जो पसन्द हो वही शुभ है, वही वन्द्य है और वही उत्तम है । भगवान्की यह रीति भगवान्से कहते हुए तुकाराम प्रेमकी ढिठाईके साथ कहते हैं—

> सोळा सहस्र नारी ब्रह्मचारी कैसा ?
> निराहारी दुर्वासा नवल नोहे ॥ ३ ॥
> पंच भ्रतार द्रौपदी ते सती।
> करितां पितृशांति पुण्य धर्मा ॥ ४ ॥
> दशरथा पातकें ब्रह्महत्याराशी ।
> नवल त्याचे कुशीं जन्म तुझा ॥ ५ ॥
> मुनेश्वरा नाहीं दोष अणुमात्र।
> मांडवितां स्तोत्रबंध होती ॥ ६ ॥

'सोलह सहस्र नारी लिये बैठे थे वह ब्रह्मचारी कैसे? मनों अन्न डकार जानेवाले दुर्वासा निराहारी हैं यह भी बड़ी विचित्र बात है। पाँच-पाँच पति जिसके हैं वह द्रौपदी सती है! पितरोंका (भीष्म, द्रोणादिका) वध करनेवाले धर्मराज पुण्यात्मा बने ही हुए हैं! श्रवण-वध करनेवाले ब्रह्महत्यापाप-के पुञ्ज दशरथ इस योग्य हुए कि उनके यहाँ तुमने जन्म ग्रहण किया! वसिष्ठ-विश्वामित्र आपसमें लड़ते ही रहे, फिर भी वे वन्द्य मुनीश्वर ही हैं!' इन कथाओंका रहस्य तुकारामजी बतलाते हैं—

अशुभाचें शुभ, करितां तुज कांहीं।
अवघड नाहीं, पांडुरंगा ॥ ध्रु० ॥

'अशुभको शुभ कर देना तुम्हारे लिये क्या कठिन है।'

नीति-शास्त्र संसारमें सुव्यवस्था बना रखनेके लिये नीतिके कुछ नियम बाँध देते हैं; पर अन्तिम निर्णयको देखें तो मूल-सूत्र भगवान्‌के ही हाथमें है! भगवान् जिसे अङ्गीकार करेंगे वही श्रेष्ठ और वन्द्य होगा। भगवान्‌की मुहर जिसपर लगेगी वही सिक्का दुनियामें चलेगा। भगवान्‌के दरबारका हुक्म ही दुनियामें चलता है।

भगवान्‌ने गीतामें स्वयं ही कहा है—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

यह सब धर्मोंका सार है। हरि-शरणागति ही सब शुभाशुभ कर्म-बन्धोंसे मुक्त होनेका एकमात्र मार्ग है। जो शरणागत हुए वे ही तर गये। भगवान्‌ने उन्हें तारा, उन्हें तारते हुए भगवान्‌ने उनके अपराध नहीं देखे, उनकी जाति या कुलका विचार नहीं

किया। भगवान् केवल भावकी अनन्यता देखते हैं। अनन्य प्रेमकी गङ्गामें सब शुभाशुभ कर्म शुभ ही हो जाते हैं। भगवान् पूर्वकृत पापोंको क्षमा कर देते हैं और अनन्यता होनेपर तो कोई पाप हो ही नहीं सकता और इस प्रकार भक्त अनायास कर्म-बन्धसे मुक्त हो जाता है। अजामिल, गणिका, भीलनी, ध्रुव, उपमन्यु, गजेन्द्र, प्रह्लाद, पाण्डव इत्यादि सब भक्तोंको भगवान्‌ने उनके कुल, जाति और अपराधोंका विचार न करके तारा है।

'तुम्हारे नामने प्रह्लादकी अग्निमें रक्षा की, जलमें रक्षा की, विषको अमृत बना दिया। पाण्डवोंपर जब बड़ा भारी सङ्कट आया तब हे नारायण! तुम उनके सहायक हुए। तुका कहता है कि इस अनाथके नाथ तुम हो, यह सुनकर मैं तुम्हारी शरणमें आया हूँ।'

(११) भक्त भी ऐसे होते हैं कि भगवान्‌का अखण्ड स्मरण करते हैं—

पहा ते पांडव अखंड वनवासी।
परि त्या देवासी आठविती ॥ १ ॥
प्रह्लादासी पिता करितो जाचणी।
परि तो स्मरे मनीं नारायण ॥ २ ॥
सुदामा ब्राह्मण दरिद्रें पीडिला।
नाहीं विसरला पांडुरंगा ॥ ३ ॥
तुका म्हणे तुझा न पडावा विसर।
दुःखाचे डोंगर झाले तरी ॥ ४ ॥

'देखो पाण्डवोंको, अखण्ड वनवास भोग रहे हैं, पर भगवान्‌का स्मरण बराबर करते हैं। प्रह्लादको उसका पिता इतना कष्ट देता है पर प्रह्लाद मनसे नारायणका ही स्मरण करता है।

सुदामा ब्राह्मणको दरिद्रताने पीस डाला पर उसने पाण्डुरङ्गको नहीं भुलाया। तुका कहता है, पर्वतप्राय दुःख हो तो भी तुम्हारा विस्मरण न हो।'

(१२) भगवान् भक्तपर दुःखके पहाड़ ढाहते हैं, उनकी घर-गिरस्तीका सत्यानाश कर डालते हैं अर्थात् संसारके बन्धनोंसे छुड़ा लेते हैं।

विपदः सन्तु नः शश्वद्यासु सङ्कीर्त्यते हरिः।

इसी कुन्तीके वचनका ही अनुवाद तुकारामजीने 'हरि तू निष्ठुर निर्गुण' अभंगमें किया है और उसमें हरिश्चन्द्र, नल, शिवि, कर्ण, बलि, श्रियाल आदि सुप्रसिद्ध भक्तोंके हृदयद्रावक दृष्टान्त दिये हैं।

(१३) **तुज भावें जे भजति। त्यांच्या संसारा हे गति॥**

'जो भक्तिपूर्वक तेरा भजन करते हैं उनके प्रपञ्चकी यही गति होती है।' पर भक्त भी पीछे हटनेवाले नहीं हैं, अनन्य शरणागतिसे वे बाल-बराबर भी इधर-उधर नहीं होते। इसी-लिये—

'वैष्णवोंकी कीर्ति पुराणोंने गायी है—आदिनाथ शङ्कर, नारद-से मुनीश्वर, शुक-जैसे महान् अवधूत और कोई नहीं हैं। तुका कहता है, यह आर्तोंकी विश्रान्ति और सर्वश्रेष्ठ हरि-भक्ति है।'

(१४) 'नारायणीं जेणें घडे अंतराय' (नारायण जिनके कारण छूटते हैं) ऐसे माँ-बापको भी भक्त भगवान्‌के लिये छोड़ देते हैं, फिर स्त्री-पुत्र, धन-मान किस गिनतीमें है? प्रह्लादने पिताको छोड़ा, विभीषणने भाईका त्याग किया और भरतने माता और

राज्य दोनोंको तज दिया। भगवान्‌के भक्त ऐसे त्यागी, विरक्त और एकनिष्ठ होते हैं।

(१५) न मनावें तैसें गुरुचें वचन। जेणें नारायण अंतर तें ॥

'गुरुका भी ऐसा वचन न माने जिससे नारायणका विछोह हो' यही बात दिखलानेके लिये तुकारामजीने तीन बड़े मार्मिक उदाहरण दिये हैं—एक राजा बलिका, दूसरा ऋषि-पत्नियोंका और तीसरा गोपियोंका।

'शुक्राचार्य भगवद्भक्तिमें बाधक होने लगे इसलिये राजा बलिने उनकी एक आँख फोड़ डाली और अपने गुरुको एक आँखसे अन्धा कर दिया। ऋषि-पत्नियोंने ऋषियोंकी आज्ञाका उल्लङ्घन किया और अन्न उठाकर ले गयीं। ग्वालिनोंने आचार छोड़ दिया और भगवान्‌से भ्रष्ट आचार आरम्भ किया।'

विधि-नियम, शास्त्राचार और नीति-बन्धन इन सबका पालन अत्यावश्यक है, यह बात तुकारामजी किसीसे कम नहीं जानते थे। उन्होंने इन बन्धनोंको तोड़नेवाले दुराचारियों और दाम्भिकोंको बहुत बुरी तरहसे फटकारा है! विषय-सुखके लिये आचार-धर्मका उल्लङ्घन करनेवालोंके लिये नरककी ही गति है इसमें सन्देह ही क्या है? पर 'सतां गतिः' स्वरूप परमात्माकी प्राप्तिके लिये सर्वस्व न्योछावर करना पड़ता है, यह भक्ति-शास्त्रका सिद्धान्त है। भक्ति-शास्त्रकी दृष्टिसे धर्माधर्मविवेक तुकारामजी इस प्रकार बतलाते हैं—

देव जोडे ते करावे अधर्म। अंतरे तें कर्म नाचरावें ॥ १० ॥

'जिससे भगवान् मिलें वह (लोक-दृष्टिमें) अधर्म भी हो तो करे; जिससे भगवान् छूट जायँ वह कर्म न करे।'

बलि, ऋषि-पत्नी और गोपियोंकी अनन्य भक्तिपर भगवान् मुग्ध हो गये, अनन्य प्रेमके वशमें हो गये, और इन भक्त-प्रेमियों-के हाथों 'भगवान्से मिलानेवाला अधर्म' हुआ तो भी भगवान्ने उन्हें 'वह दिया जो और किसीको न दिया।' 'अन्दर-बाहर सम्पूर्ण वही हो गया!'

(१६) भगवत्-प्राप्तिका मुख्य साधन नाम-स्मरण है। नाम-स्मरणसे असंख्य भक्त तर गये। तुकारामजीने अपने अनेक अभङ्गों-में इनके उदाहरण दिये हैं। एक अभङ्गमें आदिनाथ शङ्कर, अखिल भक्त-गुरु नारद, महाकवि वाल्मीकि, सात दिनमें हरि-गुण-नाम-संकीर्तनसे सद्गति पाये हुए परीक्षित तथा एक दूसरे अभङ्गमें उपमन्यु, गणिका और प्रह्लादके नाम आये हैं।

(१७) 'भक्तोंके लिये हे भगवन्! आपके हृदयमें बड़ी करुणा है, यह बात हे विश्वम्भर! अब मेरी समझमें आ गयी। एक पक्षीका नाम रखा जो आपका नाम था, और इससे गणिकाका उद्धार हुआ। कुटनीने बड़े दोष किये, पर नाम लेते ही आपको करुणा आ गयी। तुका कहता है, हे कोमलहृदय पाण्डुरङ्ग! आपकी दया असीम है।'

(१८) कालरूप हौएसे डरे हुए जीवोंके पुकारते ही भगवान् कैसे दौड़े आते हैं। यह दिखानेके लिये जनक, राजा शिवि, गणिका, अजामिलके उदाहरण दिये हैं।

(१९) 'भक्तोंके यहाँ भगवान् अपने तनसे काम करते हैं। धर्मके यहाँ जूठन उठाते हैं। भीलनीके जूठे फल खाते हैं और ये उन्हें अत्यन्त प्रिय हैं। क्या भगवान्‌को अपने घर खानेको नहीं मिलता जो द्रौपदीसे सागकी पत्ती माँगते हैं? इन्होंने अर्जुनके घोड़ोंको नहलाया, अर्जुनके कितने सङ्कट निवारण किये। तुका कहता है, ऐसे भक्त ही भगवान्‌के प्यारे हैं। कोरे ज्ञानका तो, मुँह काला!'

इन पुराणोक्त भक्तजनोंके समान ही आधुनिक भागवत भक्तोंकी कथाएँ भी तुकारामजीको अत्यन्त प्रिय थीं और इनकी कथाओंसे भी तुकारामजीने यही तात्पर्य निकाला कि नाम-स्मरण-भक्ति ही सब साधनोंसे श्रेष्ठ है। तुकाराम महाराजके पूर्व महाराष्ट्रमें जो-जो सन्त भगवद्भक्त हुए उन सबके बारेमें तुकारामजीने अनेक बार प्रेमोद्गार निकाले हैं। ऐसे अनेक भक्तोंके नाम 'मङ्गलाचरण' में दिये हुए १२ वें अभंगमें आये हैं और तुकारामजीने यह कहकर ये नाम लिये हैं कि मेरा गोत्र बहुत बड़ा है, उसमें सभी सन्त और महन्त हैं और मैं उनका नित्य स्मरण करता हूँ।

(२०) पवित्र तें कुळ पावन तो देश।
जेथें हरिचे दास जन्म घेती॥ १॥

'वह कुल पवित्र है, वह देश पावन है जहाँ हरिके दास जन्म लेते हैं।' वर्णाभिमानसे कोई पावन नहीं हुआ और कनिष्ठ जातियोंमें भी साधु-महात्मा हुए हैं। तुकारामजी कहते हैं—

'अन्त्यजादि भी हरि-भजनसे तर गये, पुराण उनके भाट बन गये। तुलाधार वैश्य था, गोरा कुम्हार था, धागा और रैदास

चमार थे। कबीर जुलाहा था, लतीफ मुसलमान था, विष्णुदास सेनानाई था, कान्हूपात्रा वेश्या थी, दादू धुनिया था। पर भगवान्‌के चरणोंमें—भगवद्भजनमें कोई भेद नहीं। चोखामेला और बङ्का महार थे, पर सर्वेश्वरके साथ उनका मेल था। नामाकी दासी जनाकी कैसी भक्ति थी कि पण्ढरिनाथ उसके साथ भोजन करते थे। मैराल जनकका कुल क्या श्रेष्ठ था? पर उसकी भक्ति-महिमाका बखान कहाँतक करूँ?' तात्पर्य यह कि 'विष्णु-दासोंके लिये जात-कुजात नहीं है, यह वेद-शास्त्रोंका निर्णय है। तुका कहता है, आपलोग ग्रन्थोंमें देखिये, कितने पतित तर गये जिनकी कोई संख्या नहीं।'

(२१) भगवान् भावके भूखे हैं, ऊँच-नीच-भेद उनके यहाँ नहीं है—

'भगवान् ऊँच-नीच नहीं देखा करते, भक्ति जहाँ देखते हैं वहीं ठहर जाते हैं। दासी-पुत्र विदुरके यहाँ उन्होंने चावलकी कनियाँ खायीं, दैत्यके यहाँ रहकर प्रह्लादकी रक्षा की। रैदासके साथ भगवान् चमड़ा रँगा करते थे और कबीरसे छिपकर उनके वस्त्र बुन दिया करते थे। सजन कसाईके साथ काम करते थे और साँवता मालीके साथ खुरपेसे खुरपते थे। नरहरि सुनारके यहाँ सुनारी करते थे और चोखामेलाके साथ जानवरोंके शव उठा ले जाते थे। नामाकी जनाके साथ गोबर बटोरते थे और धर्माके यहाँ झाड़ते-बुहारते और पानी भरते थे। नामाके साथ निःसङ्कोच होकर भोजन करते और ज्ञानदेवकी भीत खींचते थे। सारथी बन-कर अर्जुनके घोड़े हाँके और प्रेमसे सुदामाके चावल खाये।

ग्वालोंके यहाँ स्वयं ही गौएँ चरायीं और बलिके द्वार पहरा दिये ॥ एकनाथका ऋण पटाया और अम्बरीषके लिये गर्भवास भोगा ॥ मीराबाईके लिये विषका प्याला पी गये और दामाजीका देन भरा त गोरा कुम्हारके मटके बनाये, मट्टी ढोयी और नरसी मेहताकी हुण्डी सकारी । और पुण्डलीकके लिये तो भगवान् अभीतक खड़े ही हैं।' उनकी लीला धन्य है ।'

(२२) 'भक्तऋणी देव बोलती पुराणें' (पुराण कहते हैं कि भगवान् भक्तोंके ऋणी हैं)। पुराणोंका यह वचन कैसे सत्य है, यह बतलाते हुए तुकारामजीने कबीर, नामदेव, एकनाथ और भानुदासके दृष्टान्त दिये हैं। कबीर एक नया बुना हुआ कपड़ा बेचनेके लिये बाजार चले। रास्तेमें एक दीन याचक मिला। आधा वस्त्र फाड़कर उन्होंने उसे दे दिया। पीछे एक ब्राह्मण मिले (जो ब्राह्मणवेशधारी भगवान् ही थे), आधा वस्त्र कबीरने उन्हें दे डाला और खाली हाथ घर लौटे। भगवान्ने उस वस्त्रका मूल्य कबीरको देना चाहा पर कबीरने उसे नहीं लिया।

नामदेवके पास जितना कपड़ा था वह उन्होंने रास्तेके पत्थरोंको भगवान् जानकर बाँट दिया तब भी ऐसी ही बात हुई थी।

एकनाथकी बात तो तुकारामजी कहते हैं कि 'प्रत्यक्ष ही है कि आलन्दीमें तीन मास बराबर वारकरी भक्तोंको एकनाथ खिलाते-पिलाते रहे, इससे उनपर ऋण हो गया, उसे भगवान्ने ही उतारा।

भानुदासने खेतमें बोनेके लिये जो बीज रख छोड़ा था उसीको पीसकर उन्होंने सन्तोंको खिला दिया, तब भगवान्को स्वयं ही उनके खेतकी बोवाई करनी पड़ी।

भक्त संसारमें विख्यात हों और उनके द्वारा जड़ जीवोंका उद्धार हो इसके लिये भगवान्‌ने अनेक अद्भुत लीलाएँ दिखाकर भक्तोंके काम किये हैं।

'नामदेवके लिये भगवान्‌ने अपना देवालय घुमा दिया, भगवान्‌ने उनके हाथों दुग्ध-पान किया; इससे नामदेव जगत्‌में विख्यात हुए। नरसी मेहताकी हुण्डी सकारी। धना जाटके खेत बो दिये। मीराबाईके लिये विषपान किया। लाखा कोलाटका ढोल पीटा। कबीरके कपड़े बुन दिये। कुम्हारके बच्चेको जिला दिया। अब तुका आपके चरणोंमें बार-बार विनती करता है कि हे पण्ढरिनाथ! मुझपर भी दया करो।'

२१ उपसंहार

यह प्रकरण बहुत बढ़ गया। परन्तु तुकारामजीके अध्ययनका यथार्थ स्वरूप हर पहलूसे पाठकोंके ध्यानमें आ जाय इसीके लिये इतना विस्तार किया है। इससे नये और पुराने दोनों प्रकारके विचारवालोंको अपने कुछ विचार बदलने पड़ेंगे। पुराने विचारके अनेक लोगोंकी यह धारणा थी कि तुकारामजीको ग्रन्थ पढ़नेकी कोई आवश्यकता नहीं थी, उन्होंने कोई ग्रन्थ पढ़े भी नहीं, इतना ही नहीं बल्कि वह लिखना-पढ़ना भी नहीं जानते थे। पर यह धारणा गलत है, यह बात उपर्युक्त विवेचनसे स्पष्ट हो गयी होगी, और सबके ध्यानमें यह बात आ गयी होगी कि तुकारामजी केवल लिखना-पढ़ना जानते थे, बल्कि उन्होंने गीता-भागवतादि संस्कृत-ग्रन्थों तथा ज्ञानेश्वरी-नाथ-भागवतादि प्राकृत ग्रन्थोंका बड़ी आस्था और सूक्ष्मताके साथ अध्ययन किया था, कुछ थोड़े-से ही

ग्रन्थ उन्होंने देखे पर बहुत अच्छी तरहसे देखे। इस विषयमें भी अब किसीको कोई सन्देह नहीं रह जायगा कि भागवत-जैसे ग्रन्थोंको पढ़ते-पढ़ते उन्हें संस्कृत-भाषाका इतना बोध हो गया था कि वह भागवतके श्लोकोंका भावार्थ अनायास समझ लेते थे। 'पुराण देखे, दर्शन ढूँढे' यह उन्हींका कथन है और इससे यह पता चलता है कि उनका अध्ययन कितनी उच्च कोटिका था। उस जमानेमें भी तुकाराम-जैसे शूद्रको समाजसे ऐसा अध्ययन करनेका अवसर मिलता था और तुकाराम-जैसे प्रज्ञावान् पुरुष उससे लाभ उठाते थे। इस बातको देखते हुए भी जो लोग यह कहा करते हैं कि हिन्दू-समाजने स्त्री, शूद्रादिको जान-बूझकर अज्ञानमें ही रखा, उनका यह कहना केवल मिथ्या प्रलाप है *। इसी प्रकार तुकाराम महाराजकी शिष्या बहिणाबाई, समर्थ रामदास-स्वामीकी शिष्याएँ आक्का और वेणू, ज्ञानेश्वरकालीन मुक्ताबाई और जनाबाई आदिके शिक्षा, अध्ययन और ग्रन्थकर्तृत्वको देखते हुए यह कैसे कहा जा सकता है कि हिन्दू-समाजने स्त्रियोंके मानसिक उत्कर्षकी ओर ध्यान नहीं दिया? ज्ञानस्रोतस्वतीसे ज्ञानामृत लेकर पान करनेका अधिकार सबको सभी समय है। परन्तु ज्ञानगङ्गोदक

---

* तुकारामजीके पूर्व संवत् १६२१ में शिङ्गणापुरके कवि महालिङ्गदासने 'विक्रमबतीसी' नामका एक बड़ा ओवीबद्ध ग्रन्थ लिखा जो २० वर्ष पहले मैं देख चुका हूँ। संवत् १७५५में अचञ्चितसुत काशीने 'द्रौपदीस्वयंवर' नामक ग्रन्थ लिखा जो प्रसिद्ध ही है। ये दोनों लेखक शूद्र थे।

[शूद्रोंको या स्त्रियोंको ज्ञान प्राप्त न हो यह लक्ष्य तो हिन्दू-समाजका कभी नहीं था, प्रत्युत अपने-अपने कर्मको करते हुए सब परमज्ञानको प्राप्त करें यही हिन्दू-समाजका प्रधान लक्ष्य रहा है।—भाषान्तरकार]

पान करनेकी इच्छा और अवसर सभीको नहीं होता, इस कारण क्या ब्राह्मण और क्या शूद्र सभी जातियोंपर अविद्याका प्रभाव ही अधिक पड़ा हुआ सर्वत्र दिखायी देता है। अस्तु।

तुकारामजीकी साक्षरता और अध्ययनके विषयमें पुराने विचारके लोगोंकी जैसी एक भ्रान्त धारणा थी वैसी उन आधुनिक विद्वानोंकी मति भी ठीक नहीं है जो तुकारामजीको ज्ञानेश्वर और एकनाथकी परम्परासे अलग कराया चाहते हैं। ज्ञानेश्वर और एकनाथकी वाक्तरङ्गिणीमें तुकाराम किस चावसे डुबकियाँ लगाते थे यह हमलोग देख चुके हैं। कोई भी ग्रन्थकार अपने पूर्वजोंसे प्राप्त सञ्चित धनको सुरक्षित रखकर ही उसकी वृद्धि करता है। इससे किसीकी प्रतिष्ठामें कोई बाधा नहीं पड़ती। बाप-दादोंसे मिली हुई सम्पत्तिको अपने अधिकारमें करके उसे भोगते हुए और बढ़ाना सत्पुत्रोंका तो काम ही है। ज्ञानेश्वर महाराजने व्यासदेवग्रथित गीताको ग्रहणकर उसे अपनी प्रतिभाके आभूषण पहनाये, एकनाथ महाराजने ज्ञानेश्वरी और भागवतको आत्मसात् करके उनसे अपनी वाणी रञ्जित की, और तुकाराम महाराजने ज्ञानेश्वर-एकनाथद्वारा निर्मित रत्नोंकी खानिका स्वत्वाधिकार प्राप्त किया और उनसे अपने अभङ्गोंके हीरे निकालकर उनसे संसारको चकित कर दिया। यह क्रम अनादिकालसे चला आया है और ऐसे विजयवीर्यशाली पूर्वजोंके कुलमें हमलोग उत्पन्न हुए हैं यह अपना धन्य भाग्य समझना चाहिये। परन्तु कुछ लोग जो तुकारामजीको ज्ञानेश्वर-एकनाथसे अलग करना चाहते हैं उनकी यह चेष्टा देखकर बड़ा अचरज होता है। 'ज्ञानदेव नामदेव एका तुका' श्रीपाण्डुरङ्ग

भगवान्‌के कानके चार मोतियोंकी चौकड़ी है जो सर्वजनमान्य, सर्वप्रिय और सर्वपूज्य है। इसे कोई तोड़-फोड़ नहीं सकता। श्रीज्ञानेश्वर महाराज सब सन्तोंके मुकुटमणि हैं, ज्ञानामाईका दुग्धपान कर बहुतेरे अध्यात्म-बलसे बलवान् हुए। ज्ञानेश्वरके शिष्य विसाजी खेचर नामदेवके गुरु थे अर्थात् ज्ञानेश्वर नामदेवके परम गुरु थे। एक और नामदेव विक्रमकी १६वीं शताब्दीमें हुए हैं, उन्होंने ओवियोंमें महाभारतके कुछ पर्व, कुछ अभङ्ग और कुछ सन्त-चरित्र लिखे हैं। नामदेवके अभङ्गोंका जो संग्रह छपा है उसमें मूल नामदेव और इन पीछेके नामदेव दोनोंकी कविताएँ एक दूसरीमें मिल गयी हैं और उनसे बड़ा भ्रम फैलता है। तथापि ज्ञानेश्वर-समकालीन नामदेव ही सर्वसन्तमान्य नामदेव हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। ज्ञानेश्वर, नामदेव और एकनाथ—इसी परम्परामें तुकारामजी आ जाते हैं। इस अध्यायमें हमलोग यह देख चुके हैं कि ज्ञानेश्वरी और एकनाथी भागवतके साथ तुकारामजीका कितना घनिष्ठ अन्तरङ्ग परिचय था। इस घनिष्ठताको कोई कैसे नष्ट कर सकता है—कैसे तुकारामको ज्ञानेश्वर और एकनाथसे अलग कर सकता है? नामदेव और तुकाराम ही भक्ति-पन्थके प्रवर्तक हुए और ज्ञानेश्वर-एकनाथका इससे कोई सम्बन्ध नहीं, यह त्रिखण्ड-पण्डितोंका मत भी भरपूर प्रमाणोंके सामने एक क्षण भी नहीं ठहर सकता।

यह भागवत-सम्प्रदाय बहुत प्राचीन है, ज्ञानेश्वर महाराजसे भी बहुत पहलेका है। इस सम्प्रदायके मुख्य प्रचारक अवश्य ही ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ और तुकाराम हुए। श्रेष्ठ पुरुषोंमें

भागवत-धर्मकी निष्ठा है पर व्यक्तिनिष्ठ सम्प्रदाय नहीं है, यह भगवान् श्रीकृष्णके उपासकोंका सम्प्रदाय है। श्रीकृष्णकी उपासना इस सम्प्रदायका परमधर्म है। जो कोई भी श्रीकृष्ण-भक्त होगा वह इस सम्प्रदायमें सम्मान्य है, उसकी जाति या वर्ण कुछ भी हो। ज्ञानेश्वर महाराज केवल इस कारण मान्य नहीं हैं कि वह ब्राह्मण थे, प्रत्युत इस कारणसे पूज्य हैं कि वह परम कृष्ण-भक्त थे। नामदेव और तुकाराम भी इसी कारणसे मान्य हैं। भागवत-सम्प्रदायमें जाति-पाँतिका बखेड़ा नहीं है और जाति-द्वेष और जातिसङ्कर भी नहीं है। उपर्युक्त चार प्रधान महामान्य महन्तोंके समान ही नरहरि सुनार, रैदास चमार, सजन कसाई, सूरदास, कबीर, वेश्या कान्हूपात्रा, चोखामेला महार, भानुदास, कान्हू पाठक, मीराबाई, गोरा कुम्हार, दादू धुनिया, शेखमहम्मद, मुक्ताबाई और जनाबाई, बेदरके हाकिम दामाजी, दौलताबादके किलेदार जनार्दन स्वामी, साँवता माली, तुलाधार वैश्य आदि सभी भगवद्-भक्तोंको यह सम्प्रदाय परमपूज्य मानता है। हरि-भक्तकी जाति नहीं पूछी जाती, वृत्ति नहीं पूछी जाती, पूर्व-चरित्र भी नहीं पूछा जाता। हरि-भक्तिकी कसौटीपर जो कोई बावन तोले, पाव रत्ती उतरे उसीको सन्त मानते हैं। इन सच्चे सन्तोंमें भी ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ, तुकारामको सन्तोंने ही महाराष्ट्रमें अग्रगण्य माना है। जातिके अभिमान या द्वेषसे इस चौकड़ीको कोई तोड़-कर अलग करना चाहे तो वह सम्भव नहीं है। 'ज्ञानदेव, नामदेव, एका, तुका' अथवा 'निवृत्ति, ज्ञानदेव, सोपान, मुक्ताबाई।' 'एकनाथ, नामदेव, तुकाराम' ये भजन ही जो महाराष्ट्रकी सर्वसम्मतिसे बने

हुए भजन हैं, इस बातके साक्षी हैं कि यह चतुष्टय एक है। एकात्म-भावसे इन्हें वन्दनकर हम यह प्रकरण समाप्त करते हैं।

यहाँतक तुकारामजीके ग्रन्थाध्ययनका विचार हुआ। संस्कृत-ग्रन्थोंमें गीता, भागवत, कुछ पुराण, भर्तृहरिके शतक और महिम्नादि स्तोत्र और मराठीमें ज्ञानेश्वरी, नाथ-भागवत, नामदेव-कबीरादि सन्तोंके पदोंके सूक्ष्म अध्ययनका तुकारामजीके आचार-विचारपर तथा भाषापर भी बड़ा भारी प्रभाव पड़ा है, यह बात पाठकोंके ध्यानमें अच्छी तरहसे आ गयी होगी। जिनके ग्रन्थोंका उन्होंने अनेक बार आदर और विश्वासके साथ पारायण किया, जिनकी उक्तियों और उनके अन्तर्गत भावनाप्रधान सुविचारोंके साथ वह मनसे इतने तन्मय हो गये, जिनकी कथित भक्ति-ज्ञान-वैराग्यपूर्ण सत्कथाओंके साथ उनका पूर्ण तादात्म्य हो गया उन्हीं-की विचार-पद्धति और भाषाशैलीका अभ्यास उन्हें भी हो गया, इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं। यह तो वही हुआ जो होना चाहिये था। परमार्थकी रुचि उत्पन्न होनेपर कुलपरम्पराप्राप्त तथा सहजसुलभ पण्ढरीके वारकरी सम्प्रदायका साधन-पथ तुकारामजीने हृदयकी सच्ची लगनके साथ ग्रहण किया और इसी पथपर चलते हुए इस पन्थके ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथादि पूर्वाचार्योंके ग्रन्थोंका उन्होंने अध्ययन किया और इनके द्वारा निर्दिष्ट मार्गसे जाकर भगवत्कृपाके पूर्ण अधिकारी हुए और अन्तमें भक्तिके उत्कर्षसे, सद्धर्मके आचरणसे तथा प्रबोधकी शक्तिसे उन्हींकी मालिकामें जा बैठे।

सातवाँ अध्याय

गुरु-कृपा और कवित्व-स्फूर्ति

सपनेमें पाया गुरु-उपदेश।
नाममें विश्वास दृढ धरा॥

—तुकाराम

१ विषय-प्रवेश

बड़ी उत्कण्ठाके साथ तुकारामजीका अभ्यास चल रहा था। वे सबसे यही जानना चाहते थे कि 'कब भगवान् मुझपर कृपा करेंगे,' 'क्या भगवान् मेरी लाज रखेंगे।' वह यह जाननेके लिये अत्यन्त अधीर हो उठे थे कि 'क्या मेरा भी उद्धार होगा' 'क्या नारायण मुझपर अनुग्रह करेंगे?' वे चाहते थे किसी ऐसें महात्माके दर्शन हो जायँ जिनसे यह आश्वासन मिले कि हाँ, भगवान् तुझपर कृपा करेंगे। उनका चित्त विकल था यह जाननेके लिये कि कब मेरी बुद्धि स्थिर होगी, कब भगवान्का रहस्य मैं जान लूँगा, कैसे यह शरीर छूटनेसे पहले नारायणसे भेंट होगी, कब उनके चरणोंपर लोटूँगा, कब उनके लिये गद्गदकण्ठ होकर मैं अपना देह-भाव भूलूँगा, कब वह मुझे अपनी चारों भुजाओंसे गले लगावेंगे, कब ये नेत्र उनका स्वरूप देखकर शान्ति और तृप्ति-लाभ करेंगे। बस, यही एक धुन थी। वह अपने ही मनसे पूछते कि क्या मुझे ऐसे सत्पुरुष मिलेंगे जिन्होंने भगवान्के दर्शन

किये हों। जिनके लिये प्रपञ्च छोड़ा, बहीखाता इन्द्रायणीमें डुबा दिया, धनको गोमांस-समान माननेकी शपथ की, घर-द्वारतक छोड़ दिया, स्वजनोंमें कुख्याति-लाभ की, एकान्तवास किया और वायु-वेगसे ग्रन्थाध्ययन तथा 'राम कृष्ण हरी'का सतत भजन किया वह विश्वव्यापक पाण्डुरङ्ग कहाँ कैसे मिलेंगे ? यह कौन बतलावेगा ? वह सत्पुरुष कब मिलेंगे जिन्होंने पाण्डुरङ्गके दर्शन किये हों ! इसी प्रतीक्षामें तुकारामजीके प्राण उथल-पुथल कर रहे थे। भगवान् कल्प-वृक्ष हैं, चिन्तामणि हैं, चित्त जो-जो चिन्तन करे उसे पूरा करनेवाले हैं, यह अनुभव जो सभी भक्तोंको प्राप्त होता है, इस समय तुकारामजीको भी प्राप्त हुआ। उन्हें महात्माके दर्शन हुए, स्वप्नमें दर्शन हुए और उन्होंने तुकारामजीके मस्तक-पर हाथ रखा, तुकारामजीको जो मन्त्र प्रिय था वही राम-कृष्ण-मन्त्र उन्होंने इनको दिया और तुकारामजीके जो परमप्रिय इष्ट थे पाण्डुरङ्ग,उन्हींकी निष्ठापूर्वक उपासना करनेको उन्होंने इनसे कहा। तुकारामजीको यह विश्वास हो गया कि मैं जिस रास्तेपर चल रहा था वह ठीक ही था। राम-कृष्ण-हरीका भजन पहलेसे ही हो रहा था पर वही मन्त्र अब अधिकारी महात्माके मुखसे प्राप्त हुआ, उपासनाका रहस्य खुला, निश्चय दृढ़ हुआ, चित्त समाहित हो गया। न्यायालयसे मामलेका क्या फैसला होगा यह तो पक्षकारोंको पहलेसे ही मालूम रहता है, वकील भी बतलाते रहते हैं पर जबतक जजके मुँहसे फैसला नहीं सुना जाता तब-तक चित्त स्वस्थ नहीं होता। कुछ वैसी ही बात यह भी है। अधिकारी पुरुषके मुखसे जब मन्त्र सुना जाता है अथवा धीर

पुरुषसे जब कोई आशीर्वाद मिलता है तब उससे जीवको शान्ति मिलती है। उसे अपना रास्ता सही होनेका विश्वास हो जाता है। ग्रन्थ पढ़कर भी जो बात समझमें नहीं आती वह एक क्षणमें ध्यानमें आ जाती है। बुद्धि जहाँ पहुँच नहीं पाती उस पदका साक्षात्कार होता है। स्वानुभव-प्राप्त साक्षात्कारसम्पन्न महात्माके एक क्षण समागमसे सब काम बन जाता है। पारमार्थिक कृतविद्य महापुरुषके दर्शनमात्रसे परमार्थ रोम-रोममें भर जाता है। तुकारामजीके पुण्य-बलसे उन्हें ऐसा अपूर्व शुभ संयोग प्राप्त हुआ।

२ सद्गुरु बिना कृतार्थता नहीं

सद्गुरु-प्रसादके बिना कोई भी अपना परमार्थ सिद्ध नहीं कर सका है। जो लोग यह समझते हैं कि हमने ग्रन्थोंका अध्ययन कर लिया है, परोक्ष ज्ञान हमें मिल चुका है, हमें अपनी बुद्धिसे ही ज्ञानका रहस्य अवगत हो चुका है, अब हमें किसीको गुरु बनानेकी क्या आवश्यकता है? हम जो कुछ जानते हैं उससे अधिक कोई गुरु भी क्या बतलावेंगे?—जो लोग ऐसा समझते हैं—वे अन्तमें अहङ्कारके जालमें ही फँसे हुए दिखायी देते हैं! गुरु-कृपाके बिना रज-तम धुलकर निर्मल नहीं होते, ज्ञान अर्थात् आत्म-ज्ञानमें पूर्ण और दृढ़तम निष्ठा भी नहीं होती, ज्ञानका साक्षात्कार होना तो बहुत दूरकी बात है। ज्ञानेश्वर महाराज (अ० १०—१७२ में) कहते हैं कि 'समग्र वेद-शास्त्र पढ़ डाले, योगादिकोंका भी खूब अभ्यास किया; पर इनकी सफलता तभी है जब श्रीगुरुकी कृपा हो।' कमाई तो अपने ही परिश्रमकी होती है तथापि उसपर जबतक श्रीगुरु-कृपाकी मुहर नहीं लगती तब-

तक भगवान्‌के दरबारमें उसका कोई मूल्य नहीं होता । अत्यन्त सूक्ष्म और विशुद्ध बुद्धिके द्वारा ज्ञान प्राप्त होनेपर भी दीपकसे पैदा होनेवाले काजलके समान ज्ञानसे उत्पन्न होनेवाला अहङ्कार सद्‌गुरुके चरण गहे बिना निःशेष नष्ट नहीं होता । श्रीराम और श्रीकृष्णको भी श्रीगुरु-चरणोंका आश्रय लेना पड़ा, तब औरोंकी तो बात ही क्या है ? वेद, शास्त्र, पुराण और सन्त सब इस विषयमें एकमत हैं । श्रुतिकी यह आज्ञा है कि 'श्रोत्रिय' अर्थात् श्रुति-शास्त्र-निपुण और 'ब्रह्मनिष्ठ' अर्थात् स्वानुभवसम्पन्न सद्-गुरुकी शरण लो, उससे ब्रह्मविद्याका अनुभव प्राप्त करोगे । 'शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपसमाश्रयम्' ऐसे सद्‌गुरुकी शरण लेनेको भागवतकारने कहा है और गीतामें भगवान्‌ने भी 'तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया' कहा है । 'आचार्यवान् पुरुषो वेद' आत्मवेत्ता महापुरुषके चरण गहनेको वेदोंने कहा है और श्रीमत् शङ्कराचार्य भी यही कहते हैं—

षडङ्गादिवेदो मुखे शास्त्रविद्या
कवित्वादि गद्यं सुपद्यं करोति ।
गुरोरङ्घ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥

महद् भाग्यसे सद्‌गुरुके दर्शन होते हैं और जब ऐसे दर्शन हों तब अनन्य मन हो उनकी शरणमें जाना और 'यथा देवे तथा गुरौ' अर्थात् भगवान्‌के समान ही उनका पूजन और भजन करना सनातन-रीति है । सद्‌गुरु सदा तृप्त ही रहते हैं, इससे अधिकारी जीवोंपर उन्हें करुणा आती है । कहते हैं—

'मेरा पेट तो भरा, पर अब ऐसी प्यास लगी है कि अन्य जीवोंकी आस पूरी करूँ। नावका भार आखिर जलपर ही रहता है; वह भार चाहे हलका हो या भारी इससे क्या ?'

अपरम्पार स्वानन्द-समुद्रमें चलनेवाली गुरुरूप नौकाके लिये दो-चार पथिकोंका भार ही क्या ? दो-चार चढ़ लिये या दो-चार उतर गये तो इसका उसपर बोझ ही क्या ? सच तो यह है कि सद्गुरुको सत्-शिष्यके मिलनका ही आनन्द है, इससे अद्वैतानुभवका आनन्द द्वैतरूपमें वह भोग सकते हैं। गीता-ज्ञानेश्वरीमें अर्जुनके प्रश्न करनेपर भगवान् यह कहकर अपना आनन्द व्यक्त करते हैं कि 'हे अर्जुन ! तुम प्रश्न करके मुझे मेरा वह आनन्द दिला रहे हो जो अद्वैतानन्दके भी परे है।' (ज्ञानेश्वरी १५–४५०) अबाध शब्द-शास्त्र, परिपूर्ण स्वानुभव, उत्तम प्रबोध-शक्ति, दैवी दयालुता और परमा शान्ति ये पाँचों गुण श्रीगुरुमें नित्य वास करते हैं। एकनाथी भागवत (अ० ३) में श्रीगुरुके लक्षण बतलाते हैं कि 'वह दीनोंपर तन, मन और वाणीसे बड़े दयालु होते हैं, शिष्यके भव-बन्धन काट डालते हैं, अहङ्कारकी छावनी उठा देते हैं। वह शब्द-ज्ञानमें पारङ्गत होते हैं, ब्रह्मज्ञानमें सदा झूमते रहते हैं, निज-भावसे शिष्यको प्रबोध करानेमें समर्थ होते हैं।'

गुरु-प्रसादके बिना ही कोई सन्त-पदवीको प्राप्त हुआ हो, ऐसा एक भी पुरुष नहीं है। सभी सन्तोंने गुरु-प्रसादका महत्त्व और माधुर्य बखाना है। गुरु-भक्तिके सहस्रों अवतरण दिये जा सकते हैं, पर विस्तार-भयसे संक्षेप ही करना पड़ता है। गुरु-

स्तुतिका साहित्य बहुत बड़ा है, वह अनुभवका साहित्य है और अत्यन्त हृदयङ्गम है। जिसे गुरु-प्रसाद मिला हो, गुरु-सेवाका परमानन्द जिसने भोग किया हो वही उसकी माधुरी जान सकता है। ज्ञानदेव और एकनाथ दोनोंने ही गुरु-भक्तिकी अपूर्व और अपार माधुरी पायी थी। इन्होंने सद्गुरु-समागम और सद्गुरु-सेवाका आनन्द खूब लूटा। दोनोंके ग्रन्थोंमें सब मङ्गलाचरण श्रीगुरु-स्तवन-परक हैं और ये अत्यन्त मधुर हैं। श्रीमद्भगवद्गीताके १२ वें अध्यायमें ७ वें श्लोकका 'आचार्योपासनम्' पद देखते ही श्री-श्रीज्ञानेश्वर महाराजकी गुरु-भक्तिकी धारा महाप्रवाहके रूपमें जो उमड़ पड़ी है वह सौ ओवियोंको पार करके भी उनके रोके नहीं रुकी है। उनकी गुरु-भक्तिका आनन्द जिन्हें लेना हो वे श्रीज्ञानेश्वर-चरित्रमें 'उपासना और गुरु-भक्ति' अध्याय पूरा पढ़ जायँ। उसी प्रकार एकनाथ महाराजकी गुरु-भक्तिका जिन्हें दर्शन करना हो वे एकनाथ-चरित्र देखें। गुरु-भक्तके लिये गुरु और उपास्य एक होते हैं। ज्ञानेश्वर और एकनाथने श्रीगुरु-मूर्तिमें ही भगवान्‌के दर्शन किये। तुकारामजीने भगवान्‌हीको श्रीगुरु देखा। गुरु साक्षात् परब्रह्म हैं और परब्रह्म परमात्मा ही गुरुके सगुण-रूपमें साधकको कृतार्थ करते हैं। गुरु-प्रसादके बिना कोई साधक कभी कृतार्थ नहीं हुआ। श्रीगुरु बोलते-चालते ब्रह्म हैं। उनकी चरणधूलिमें लोटे बिना कोई भी कृतकृत्य नहीं हुआ।

३ स्वामी विवेकानन्दका अनुभव

आधुनिक कालके सुविख्यात सत्पुरुष स्वामी रामतीर्थ और स्वामी विवेकानन्द भी श्रीगुरुके शरणागत होकर ही कृतार्थ हुए।

स्वामी विवेकानन्द अपने भक्ति-योग-विषयक प्रबन्धमें कहते हैं—'गुरुकी कृपासे मनुष्यकी छिपी हुई अलौकिक शक्तियाँ विकसित होती हैं, उन्हें चैतन्य प्राप्त होता है और उनकी आध्यात्मिक वृद्धि होती है और अन्तमें वह नरसे नारायण होता है। आत्म-विकासका यह कार्य ग्रन्थोंके पढ़नेसे नहीं होता। जीवनभर हजारों ग्रन्थोंको उलटते-पलटते रहो, उससे अधिक-से-अधिक तुम्हारा बौद्धिक ज्ञान बढ़ेगा, पर अन्तमें यही जान पड़ेगा कि इससे अध्यात्म-बल कुछ भी नहीं बढ़ा। बौद्धिक ज्ञान बढ़ा तो उसके साथ अध्यात्म-बल भी बढ़ना ही चाहिये, यह कोई कहे तो वह सच नहीं है। ग्रन्थोंके अध्ययनसे इस प्रकारका भ्रम होता है, पर सूक्ष्मताके साथ अवलोकन करनेसे यह जान पड़ेगा कि बुद्धिका तो खूब विकास हुआ तो भी अध्यात्म-शक्ति जहाँ-की-तहाँ ही रह गयी। अध्यात्म-शक्तिका विकास करानेमें केवल ग्रन्थ असमर्थ हैं, और यही कारण है कि अध्यात्मकी बातें करनेवाले लोग बहुत मिलते हैं पर कहनीके साथ रहनीका मेल हो ऐसा पुरुष अत्यन्त दुर्लभ है! किसी जीवको आध्यात्मिक संस्कार करानेके लिये ऐसे ही महात्माकी आवश्यकता होती है जो जीवकोटिसे पार निकल गया हो। यह ताकत ग्रन्थोंमें नहीं है। आध्यात्मिक संस्कार जिसका होता है वह है शिष्य और संस्कार करनेवाला है गुरु। भूमि तपकर जोत-जातकर तैयार हो, और बीज भी शुद्ध हो; ऐसे उभय संयोगसे ही अध्यात्मका विकास होता है।······ अध्यात्मकी तीव्र क्षुधाके लगते ही अर्थात् भूमिके तैयार होते ही उसमें ज्ञान-बीज बोया जाता है। सृष्टिका यही नियम है। आत्म-

प्रकाश ग्रहण करनेकी क्षमता सिद्ध होते ही प्रकाश पहुँचानेवाली शक्ति प्रकट होती है।............सत्यज्ञानानन्दस्वरूप सद्गुरु-को संसार ईश्वर-तुल्य मानता है। शिष्य शुद्धचित्त, जिज्ञासु और परिश्रमी होना चाहिये। जब शिष्य अपनेको ऐसा बना लेता है तब श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ, निष्पाप, दयालु और प्रबोधचतुर समर्थ सद्गुरु उसे मिलते हैं।............सद्गुरु शिष्योंके नेत्रोंमें ज्ञानाञ्जन लगाकर उसे दृष्टि देते हैं। ऐसे सद्गुरु बड़े भावसे जब मिलें तब अत्यन्त नम्रता, विमल सद्भाव और दृढ़ विश्वासके साथ उनकी शरण लो, अपना सम्पूर्ण हृदय उन्हें अर्पण करो, उनके प्रति अपने चित्तमें परम प्रेम धारण करो, उन्हें प्रत्यक्ष परमेश्वर समझो; इससे भक्ति-ज्ञानका अपना समुद्र प्राप्तकर कृतकृत्य होगे। ....महात्मा सिद्ध पुरुष ईश्वरके अवतार ही होते हैं। वे केवल स्पर्शसे, एक कृपा-कटाक्षसे, केवल सङ्कल्पमात्रसे भी शिष्यको कृतार्थ करते हैं, पर्वतप्राय पापोंका बोझ ढोनेवाले भ्रष्ट जीवको भी अपनी दयासे क्षणार्धमें पुण्यात्मा बनाते हैं। वे गुरुओंके गुरु हैं। मनुष्यरूपमें प्रकट होनेवाले साक्षात् नारायण हैं। मनुष्य इन्हींके रूपमें परमात्माको देख सकता है। भगवान् निर्गुण-निराकार हैं। पर हमलोग जबतक मनुष्य हैं तबतक हमें उन्हें मनुष्यरूपमें ही पूजना चाहिये। तुम जो चाहो कहो, चाहे जितना प्रयत्न करो, पर तुम्हें मनुष्यरूपी (सगुण) परमेश्वरका ही भजन करना होगा। निर्गुण-निराकारका पाण्डित्य चाहे कोई कितना ही बघारे, सगुण-का तिरस्कार करे; अवतारोंकी निन्दा करे, सूर्य, चन्द्र, तारागणोंको दिखाकर बुद्धिवादसे उन्हींमें देवत्व देखनेको कहे—पर उसमें

यथार्थ आत्मज्ञान कितना है यह यदि तुम देखो तो वह केवल शून्य है ! हमलोग मनुष्य हैं, परमात्मा हमसे सगुणरूपमें—सद्गुरुरूपमें ही मिलते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं ।' (स्वामी विवेकानन्दके समग्र ग्रन्थ भाग ३ पृ० ५१६-५२१ मूल अंग्रेजीसे)

स्वामी आगे और कहते हैं, 'भगवान्से मिलनेकी इच्छा करनेवाले मुमुक्षुके नेत्र श्रीगुरु ही खोलते हैं । गुरु और शिष्यका सम्बन्ध पूर्वज और वंशजके सम्बन्ध-जैसा ही है । श्रद्धा, नम्रता, शरणागति और आदरभावसे शिष्य गुरुका मन मोह ले तो ही उसकी आध्यात्मिक उन्नति हो सकती है । और विशेषरूपसे ध्यानमें रखनेकी बात यह है कि जहाँ गुरु-शिष्यका नाता अत्यन्त प्रेमसे युक्त होता है वहीं प्रचण्ड अध्यात्म-शक्तिके महात्मा उत्पन्न होते हैं । स्वानुभूति ज्ञानकी परम सीमा है, वह स्वानुभूति ग्रन्थोंसे नहीं प्राप्त हो सकती । पृथ्वी-पर्यटनकर चाहे आप सारी भूमि पादाक्रान्त कर डालें, हिमालय, काकेशस, आल्प्स-पर्वत लाँघ जायँ, समुद्रकी गहराईमें गोता लगाकर बैठ जायँ, तिब्बत-देश देख लें या गोबीका जंगल छान डालें, स्वानुभवका यथार्थ धर्म-रहस्य इन बातोंसे, श्रीगुरुके प्रसादके बिना, त्रिकालमें भी नहीं ज्ञात होगा ! इसलिये भगवान्की कृपासे जब ऐसा भाग्योदय हो कि श्रीगुरु दर्शन दें तब सर्वान्तःकरणसे श्रीगुरुकी शरण लो, उन्हें ऐसा समझो जैसे यही परब्रह्म हों, उनके बालक बनकर अनन्यभावसे उनकी सेवा करो, इससे तुम धन्य होगे । ऐसे परम प्रेम और आदरके साथ जो श्रीगुरुके शरणागत हुए, उन्हींको—और केवल उन्हींको—सच्चिदानन्द प्रभुने प्रसन्न होकर अपनी परमभक्ति और अध्यात्मके अलौकिक चमत्कार दिखाये हैं ।'

४ हीरेकी खोज

तुकारामजीका परमार्थ ऊपर-ही-ऊपरका नहीं था, इसलिये उन्होंने ऐसी जल्दबाजी नहीं की कि जो मिला उसीको उन्होंने गुरु मान लिया। बहुतोंको उन्होंने कसौटीपर कसकर देखा और दूरसे ही प्रणामकर विदा किया। जहाँ-तहाँ ब्रह्मज्ञानकी कोरी बातें ही सुन पड़ीं, कहीं उसका मूर्त लक्षण नहीं देख पड़ा। वह सच्चा ब्रह्मज्ञान चाहते थे। हाथ पसारकर उन्होंने यही याचना की थी कि—

निरें कोणापाशीं होय एक रज। तरी द्यारे मज दुर्बळाशीं॥

'निर्मल ब्रह्मज्ञान यदि किसीके पास हो तो उसका एक रजःकण मुझे दे दो।'

बड़ी दीनताके साथ उन्होंने यही पुकार की थी! पर 'जहाँ-तहाँ उन्होंने दिखावके पर्वत देखे, बिना नींवकी ही दीवार देखी।' पाखण्ड और दम्भ देखकर वह चिढ़ गये। उन्होंने पाखण्डी गुरुओं और दाम्भिक सन्तोंकी, अपने अभंगोंमें, खूब खबर ली है।

काम क्रोध लोभ चित्तीं। वरिवरि दाविती विरक्ती॥
तुका म्हणे शब्दज्ञानें। जग नाडियेलें तेणें॥१॥

'चित्तमें तो काम-क्रोध-लोभ भरा हुआ है पर ऊपरसे विरक्त बने हुए हैं। कोरे शब्दज्ञानसे संसारको धोखा दे रहे हैं।'

* * *

डोई वाढवूनि केश। भूतें आणिती अंगास॥१॥
तरी ते नव्हती संतजन। तेथें नाहीं आत्मखुण॥२॥

'सिरपर जटा बढ़ाये हुए हैं, भूत-प्रेत बुला लेते हैं। पर वे सन्तजन नहीं हैं, वहाँ कोई आत्मलक्षण नहीं है।'

* * *

रिद्धिसिद्धीचे साधक। वाचासिद्ध होती एक।
त्यांचा आम्हांसी कंटाळा। पाहों नावडती डोळां॥

'कोई ऋद्धि-सिद्धिके साधक हैं, कोई वाक्-सिद्ध हैं। पर इन सबसे हमारा जी ऊबा हुआ है, इन्हें हम आँखों नहीं देखना चाहते।'

* * *

दावुनि वैराग्याची कळा। भोगी विषयांचा सोहळा॥
ज्ञान सांगतो जनासी। अनुभव नाहीं आपणांसी॥१॥

'वैराग्यकी चमक दिखा देते हैं पर विषयोंको ही भोगते रहते हैं। लोगोंको ज्ञान बतलाते हैं पर स्वयं अनुभव कुछ भी नहीं करते।'

* * *

ऐसे दाम्भिक, अधकचरे और पेटू आदमी जहाँ-तहाँ भी कौड़ीके तीन-तीन मिलते हैं। तुकारामजीकी शुद्ध और सूक्ष्म दृष्टिको सच्चे-झूठेका निपटारा करते कितनी देर लगती? साधारण मनुष्य ऊपरी दिखावमें फँसते हैं, पर तुकारामजी फँसनेवाले नहीं थे। 'नव्हती ते संत करितां कवित्व' वाले अभंगमें वह बतलाते हैं कि जो कविता करते हैं वे सन्त नहीं हैं; सन्तोंके घरवाले सन्त नहीं हैं; अपना घर भरकर दूसरोंको निराशाका भाव बतानेवाले सन्त नहीं हैं; केवल कथा बाँचनेवाले, कीर्तन करनेवाले, माला-मुद्रा धारण करनेवाले,

भभूत रमानेवाले, जंगलोंमें रहनेवाले, कर्मठ, जप-तप करनेवाले सन्त नहीं हैं । ये सब बाह्य लक्षण हैं, इनसे किसीकी साधुता नहीं जानी जाती ।

तुका म्हणे नाहीं निरसला देह । तंववरी हे अवघे सांसारिक ॥

'जबतक देहका निरास नहीं हुआ, देहबुद्धि नष्ट नहीं हुई, तबतक ये सब सांसारिक ही हैं ।' तुकारामजी इन्हें 'अपने मुखसे सन्त नहीं कह सकते' जबतक इनके अन्दर द्रव्यका लोभ और बड़ाईकी इच्छा है । जिनका बाह्य वेश साधुका-सा है पर अन्तःकरण विषयासक्त है उन्हें तुकारामजी दूरसे 'हीरेके समान चमकनेवाले ओले' कहते हैं । ऐसे बने हुए सन्त अनेक होते हैं, पर इनमेंसे कोई भी तुकारामजीकी आँखोंमें धूल नहीं झोंक सका ।

सच्चे सन्त बहुत दुर्लभ हैं । सन्तोंको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते तुकारामजी थक गये । उनकी आशा निराशा हो गयी । उस समय उनके मुखसे ये उद्गार निकले हैं—

'ज्ञानियोंके यहाँ भगवान्‌को ढूँढ़ना चाहा, पर देखा यही कि अहंकार इन ज्ञानियोंके पीछे पड़ा है । वेद-पारायण पण्डितों और पाठकोंको देखा कि एक-दूसरेको नीचे गिरानेमें ही लगे हुए हैं । देखनी चाही इनकी आत्मनिष्ठा, पर उलटी ही चेष्टा दिखायी दी । योगियोंको देखा, उनमें भी शान्ति नहीं, मारे क्रोधके एक-दूसरेपर गुरगुराया करते हैं । इसलिये हे विट्ठल ! अब मुझे किसीका मुहताज मत करो । मैंने इन सब उपायोंको छोड़ तुम्हारे चरण दृढ़तासे पकड़ लिये हैं ।'

५ गुरु ही मुमुक्षुको ढूँढ़ते हैं

सन्त दुर्लभ तो हैं, पर अलभ्य नहीं। चन्दन महँगा मिलता है, पर मिलता तो है। कस्तूरी चाहे जब चाहे जहाँ मिट्टीकी तरह सस्ती नहीं मिलती, पर जिसके पास उसके दाम हैं उसे मिलती ही है। हीरे-जैसे रत्नोंको गरीब बेचारे देख भी नहीं सकते, पर धनी उन्हें खरीद सकते हैं। इसी प्रकार जिसके पास प्रचुर पुण्य-धन है उसे सत्सङ्ग-लाभ होता है। सत्सङ्ग दुर्लभ है, पर अमोघ भी है। भाग्यश्रीका जब उदय होना होता है तभी सन्त मिलते हैं, इनमें जिन्हें भगवान्की आज्ञा होगी वे स्वयं ही चले आवेंगे और कृतार्थ करेंगे। मुमुक्षुको गुरु ढूँढ़ना नहीं पड़ता, गुरु ही ऐसे शिष्योंको जो कृतार्थ होनेयोग्य हुए हों, ढूँढ़ा करते हैं। फलके परिपक्व होते ही तोता बिना बुलाये ही आकर उसपर चोंच मारता है। उसी प्रकार विरक्त जीवको देखते ही दयाकुल गुरु दौड़े आते हैं और आत्म-रहस्य बतलाकर उसे कृतार्थ करते हैं। सब सन्त सद्गुरुस्वरूप ही हैं, तथापि सब स्त्रियाँ माताके समान होनेपर भी स्तनपान करानेवाली माता एक ही होती है, वैसे ही सब सन्त सद्गुरुके समान होनेपर भी स्वानुभवामृत पान करानेवाली, ईश्वरनियुक्त सद्गुरु-माता भी एक ही होती हैं और मुमुक्षु शिशु जब भूखसे व्याकुल होकर रोने लगता है तब सद्गुरु-मातासे एक क्षण रहा नहीं जाता और वह दौड़ी चली आती और शिशुको अमृतपान कराती है। गुरु ईश्वरनियुक्त होते हैं, गुरु-शिष्यका सम्बन्ध अनेक जन्म-जन्मान्तरों-से चला आता है, और यह गुरु निश्चित समयपर निश्चित

शिष्यको कृतार्थ किया करते हैं। तुकारामजीके सद्गुरु बाबाजी चैतन्य इसी प्रकारसे भगवदिच्छानुसार यथाकाल यथोचित रीतिसे तुकारामजीके सामने प्रकट हुए और उन्हें उन्होंने अपना प्रसाद दिया।

६ बाबाजीका स्वप्नोपदेश

तुकारामजीको गुरूपदेश प्राप्त हुआ उस प्रसङ्गके उनके दो अभंग हैं। पहिला अभंग विशेष प्रसिद्ध है, उसीका आशय नीचे देते हैं—

गुरुराजने सचमुच ही मुझपर बड़ी कृपा की पर मुझसे उनकी कुछ भी सेवा न बन पड़ी। स्वप्नमें, गङ्गा-स्नान (इन्द्रायणी-स्नान) के लिये जाते हुए, रास्तेमें वह मिले और उन्होंने मस्तकपर हाथ रखा। उन्होंने भोजनके लिये एक पाव घी माँगा पर मुझे इसका विस्मरण हो गया। कुछ अन्तराय हो गया इसीसे उन्होंने जानेकी जल्दी की। उन्होंने गुरु-परम्पराके नाम बताये 'राघव चैतन्य' और 'केशव चैतन्य'। अपना नाम बताया बाबाजी चैतन्य और 'राम कृष्ण हरी' मन्त्र दिया। माघ शुक्ल दशमी गुरुवारको गुरुका वार सोचकर (इस प्रकार गुरुने) मुझे अङ्गीकार किया।

इससे निम्नलिखित बातें मालूम हुईं—

(१) सद्गुरुने तुकारामजीपर अनुग्रह किया और उन्हें 'राम कृष्ण हरी' का मन्त्र दिया।

(२) यह उपदेश उन्हें स्वप्नमें इन्द्रायणीमें स्नान करनेके लिये जाते हुए प्राप्त हुआ। गुरुने उनके मस्तकपर हाथ रखा।

(३) सद्गुरुने भोजनके लिये एक पाव घी माँगा पर तुकारामजी घी लाकर देना भूल गये। जागनेपर तुकारामजीको इस बातका बड़ा दुःख हुआ कि सद्गुरुकी कुछ भी सेवा न बन पड़ी और उन्हें यही समझ पड़ा कि सेवामें प्रत्यवाय होनेसे ही सद्गुरु जल्दीसे चले गये।

(४) सद्गुरुने अपनी गुरु-परम्परा बतायी—राघव चैतन्य, केशव चैतन्य और अपना नाम बाबाजी चैतन्य बताया।

(५) यह गुरूपदेश तुकारामजीको माघ शुक्ल दशमी गुरुवारको मिला।

(६) इस प्रकार सद्गुरुने तुकारामजीको अङ्गीकार किया।

तुकारामजी फिर कहते हैं—

'गुरुराज मेरे मनका भाव जानकर वैसा ही उपाय करते हैं। उन्होंने वही सरल मन्त्र बताया जो मुझे प्रिय था, जिसमें कोई बखेड़ा नहीं। इसी मार्गसे चलकर अनेक साधु-सन्त भवसागरसे पार उतर गये। जान-अजान जो जैसे शिष्य होते हैं गुरु उन्हें वैसा ही उपाय बतलाते हैं। शिष्योंमें कोई नदीके उतारमें तैरनेवाले, कोई सङ्गीके सङ्ग चलनेवाले, कोई जहाजपर चढ़नेवाले और कोई कमरबन्द कसे रहनेवाले होते हैं; जो जैसे होते हैं उन्हें उनके अधिकारके अनुसार वैसा ही उपाय बताया जाता है।

तुका कहता है, 'गुरुने मुझे कृपासागर पाण्डुरङ्ग ही जहाज दिया।' इससे तीन बातें मिलीं—

(७) मेरे मनका भाव जानकर सद्गुरुने ऐसा प्रिय और सरल मन्त्र दिया कि कहीं कोई बखेड़ा नहीं।

गुरूपदेश पानेके पूर्वसे ही तुकारामजी बड़े प्रेमसे श्रीविट्ठल-की उपासना करते थे और 'राम कृष्ण हरी'का ही मन्त्र जपा करते थे। विट्ठल उनके कुलदेव थे। उपास्यदेवका ही प्रिय मन्त्र गुरु-ने बताया इससे कोई बखेड़ा नहीं हुआ। यदि गुरुने गणेशकी उपासना और गणेशका मन्त्र दिया होता अथवा अन्य किसी देवताके मन्त्रकी दीक्षा दी होती या योग-यागादि साधन करनेको कहा होता तो अवश्य ही बखेड़ा होता। पहलेसे जो साधना हो रही है उसीको आगे चलानेका गुरुने उपदेश दिया, इससे तुकारामजीका उत्साह द्विगुण हो गया। ऐसा यदि न होता तो यह झगड़ा आ पड़ता कि पहलेसे जो उपासना चली आ रही है वह कैसे छोड़ दी जाय और गुरुकी बतायी उपासना भी कैसे न की जाय? इससे संशयको आश्रय मिल सकता था, मन विचलित होकर गड़बड़ा सकता था। पर गुरुने 'मुझे कृपासागर पाण्डुरङ्ग ही जहाज दिया', मेरा जो प्रिय था वही 'राम कृष्ण हरी' मन्त्र दिया और जो उपासना मैं कर रहा था उसीको निष्ठाके साथ आगे चलानेका उपदेश दिया; इससे कोई बखेड़ा नहीं पैदा हुआ।

(८) अनेक साधु-सन्त—ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथादि—इसी मार्गसे चलकर भवसागर पार कर गये।

तुकोबारायको जैसे विट्ठलकी उपासना प्रिय थी, 'राम कृष्ण हरी' नाम प्रिय था वैसे ही ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथादिका नित्य ग्रन्थ-सत्सङ्ग भी प्रिय था, क्योंकि इन्हींके ग्रन्थोंका वह नित्य पठन, श्रवण और मनन किया करते थे। सद्गुरुका ऐसा अनुकूल उपदेश मिलनेसे यह क्रम भी उनका बना रहा। गुरुने उन्हें

दत्तात्रेयका मन्त्र देकर श्रीगुरु-चरित्रके पारायण करनेको कहा होता तो उससे भी उनका काम बन जाता, पर पूर्व-संस्कारसे जो उपासना दृढ़ हो चुकी थी वह एकदम छोड़ देनी पड़ती और नया साधन नये ढंगसे करना पड़ता ! इससे भी कुछ-न-कुछ बखेड़ा ही होता । इस प्रकार स्वभावसे ही प्रिय उपास्य, प्रिय मन्त्र और प्रिय सम्प्रदाय-परम्परा छोड़नेकी कोई आवश्यकता नहीं पड़ी प्रत्युत उसीको और दृढ़ करनेका उपदेश गुरुसे प्राप्त होनेके कारण कोई बखेड़ा नहीं हुआ ।

(९) मुझे मेरा प्रिय मार्ग ही सद्गुरुने दिखा दिया, पर इसका यह मतलब नहीं है कि मेरे सद्गुरु यही एक मार्ग जानते थे या बतलाते थे; गुरुराज तो समर्थ हैं, वह जान-अजान सबको मार्ग बतलानेवाले हैं, जो शिष्य जिस अधिकारका हुआ उसे उसी अधिकारका उपदेश देते हैं—'उतार सांगडी तापे पेटी'—'उतार, संग, जहाज, कमरबन्द ।' ये सभी उपाय वह बतलाते हैं । इस चरणका, बल्कि यह कहिये कि इस अभंगका रहस्य समझनेके लिये ज्ञानेश्वरीका आश्रय लेना पड़ेगा । गीताके 'दैवी ह्येषा गुण-मयी' (अ० ७।१४) और 'तेषामहं समुद्धर्ता' (अ० १२।७) इन श्लोकोंपर ज्ञानेश्वर महाराजकी जो ओवियाँ हैं उन्हें सामने रख-कर इस चरणका अर्थ ठीक लगता है । जान-अजान सबको अपने-अपने अधिकारके अनुसार ही मार्ग बताया जाता है । 'जो अकेले हैं (अर्थात् ब्रह्मचारी, संन्यासी आदि) उन्हें योगमार्ग दिखाते और जो परिग्रही (गृहस्थ) हैं उन्हें नाम-नौकापर बिठाते हैं । माया-नदीको तैरकर पार करते हुए कोई 'उतार' के रास्तेसे जाते

हैं। अहंभाव त्यागकर 'ऐक्यके उतार' से जाते हैं। (ज्ञानेश्वरी ७-१००), कोई 'वेदत्रयीको संगी' बनाकर उनके संग चलते हैं (८४), कोई 'यजनक्रियाका कमरबन्द कमरमें कस लेते हैं' (८९) और कोई 'आत्म-निवेदनके जहाज' पर चढ़ते हैं। तुकारामजीके कथनका तात्पर्य भी यही है कि समर्थ सद्गुरुके पास सभी साधन मौजूद हैं, पर शिष्यकी रुचि देखकर वैसा इष्ट उसे बतलाते हैं। मुझे श्रीगुरुने ऐसा ही प्रिय मन्त्र बताया, इसलिये इन विविध साधनोंका कोई झमेला नहीं पड़ा।

और भी चार-पाँच स्थानोंमें गुरूपदेश-सम्बन्धी उल्लेख हैं। एक स्थानमें कहा है कि श्रीगुरुने 'कर स्पर्श करके सिरपर हाथ फेरा और कहा कि चिन्ता मत करो।' एक दूसरे स्थानमें कहा है कि श्रीगुरुने 'राम-कृष्ण-मन्त्र बताया, सब समय वाणीसे यही उच्चार करता हूँ।' श्रीसद्गुरुने स्वप्नमें तुकारामजीको दर्शन देकर 'राम कृष्ण' मन्त्र बताया, इसके सिवा और कुछ भेदकी बात बतायी हो तो उसे तुकारामजीने नहीं प्रकट किया है। साम्प्रदायिक रहस्य खुल्लमखुल्ला कोई बतलाता भी नहीं।

७ दिनकर गोसाईं

बाबाजी चैतन्यने तुकारामजीको स्वप्नमें जैसे उपदेश दिया, ऐसी ही घटना इसके २० वर्ष बाद नगर-जिलेमें भिंगारसे उत्तर-पूर्व १४ कोसपर वृद्धेश्वरमें भी हुई थी, जिसका उल्लेख मराठी-साहित्यमें मौजूद है। 'स्वानुभवदिनकर' नामक सुन्दर ग्रन्थके कर्ता दिनकर गोसावी (गोसाईं) समर्थ श्रीरामदासस्वामीके शिष्य थे। यह भिंगारके जोशी थे, इनका कुल-नाम मुळे था, पर

ज्योतिषी होनेके कारण यह पाठक कहलाने लगे। दिनकरका ऐन यौवनकाल था जब उन्हें वैराग्य प्राप्त हुआ और वह अपना गाँव छोड़कर वृद्धेश्वरकी सुरम्य कन्दरामें शाके १५७४ में जा रहे। उस एकान्त स्थानमें उन्होंने एक वर्ष यथाविधि पुरश्चरण किया। शाके १५७५ की फाल्गुनी पूर्णिमाकी रातमें नाम-स्मरण करते हुए उन्हें निद्रा लग गयी। दिनकर स्वामी कहते हैं, 'वह जागृतस्वप्ननिद्रान्त तुर्या अवस्था थी, मन अष्टभावसे विनीत था और नेत्र उन्मीलित थे। उस समय समर्थ श्रीरामदासस्वामीके भेषमें भगवान् श्रीरामचन्द्र सामने प्रकट हुए और उन्होंने उनके मस्तकपर अपना बायाँ हाथ रखा! और दिनकर गोसावी तुरन्त जाग पड़े। उन्हें परम आनन्द हुआ पर वही मूर्ति जागतेमें दर्शन दे इसके लिये उनका चित्त विकल हो उठा। और 'स्वानुभवके आनन्दसे वह चित्त तत्काल उसी लक्ष्यमें ध्यान-संलग्न हो गया।'

माताके न दिखायी देनेसे नन्हें बच्चेकी अथवा गौके समय-पर घर न आनेसे बछड़ेकी या धन खर्च हो जानेपर कृपणकी जो हालत होती है वही हालत दिनकरकी हुई। कुछ स्वप्न, कुछ जागृति, कुछ सुषुप्ति तीनों ही अवस्थाएँ कुछ-कुछ थीं, तीनोंकी सन्धि थी। उस सन्धिमें चित्त तुर्यावस्थामें जहाँ-का-तहाँ विरत होकर तटस्थ हो गया और भगवान् श्रीरामचन्द्रने समर्थ श्रीरामदास-स्वामीके रूपमें दिनकरके मस्तकपर बायाँ हाथ रखा। स्वप्नमें जिस मूर्तिके दर्शन हुए थे वह मूर्ति चित्तमें बैठ गयी और उन्होंने यह निश्चय किया कि जाग्रत्में उस मूर्तिके दर्शन जबतक नहीं होंगे तबतक अन्न-जल ग्रहण नहीं करूँगा। वह एक वर्षतक इस

हालतमें रहे । बाह्योपाधि उनकी छूट गयी, स्वप्न-मूर्ति अन्दर-बाहर व्याप गयी । इस प्रकार जब एक वर्ष पूरा हुआ तब संवत् १७११ फाल्गुन-मासकी पूर्णिमाको साक्षात् समर्थ प्रकट हुए । तब दिनकरके आनन्दकी कोई सीमा न रही । समर्थने उनके मस्तकपर दाहिना हाथ रखा और उन्हें कृतार्थ किया । दाहिना हाथ सद्गुरुके सिवा और कोई भी नहीं रख सकता । यह सम्पूर्ण कथा 'स्वानुभवदिनकर' ग्रन्थमें (कलाप १६ किरण ४) लिखी है ।

तुकारामजीके स्वप्नानुग्रह और दिनकर गोस्वामीके स्वप्नानुग्रहमें विलक्षण साम्य है । महीपतिबाबा कहते हैं कि श्रीपाण्डुरङ्गने बाबाजी चैतन्यके रूपमें तुकारामजीपर अनुग्रह किया और 'स्वानुभवदिनकर' यह बतलाता है कि श्रीरामचन्द्रने रामदासके रूपमें दिनकर गोस्वामीपर अनुग्रह किया । तुकारामजीके गुरु बाबाजी चैतन्य उनपर अनुग्रह करनेके कितने ही वर्ष पहले समाधिस्थ हो चुके थे, और सोते-जागते पाण्डुरङ्गकी ओर ही तुकारामजीकी आँखें लगी थीं इस कारण तुकारामजीको पाण्डुरङ्गके इस प्रकार दर्शन हुए; और दिनकर गोसाईंको स्वप्नमें देखी हुई मूर्तिको जागते हुए प्रत्यक्ष देखनेकी ही लगी हुई थी, इस कारण ठीक एक वर्ष पूरा होते ही श्रीगुरु-मूर्ति उनके सामने प्रत्यक्षमें प्रकट हुई । इन दोनों उदाहरणोंसे यह बात सिद्ध होती है कि जिसे जिसकी लगन लगती है उसे उसके स्वप्नमें और जागृतिमें भी दर्शन होते हैं । यह क्या चमत्कार है अथवा किस प्रकार महात्मा लोग दूसरोंके स्वप्नमें प्रवेशकर उन्हें ज्ञानदान कर आते

हैं यह हमारे-जैसे प्राकृत जीव भला कैसे समझ सकते हैं ? पर तुकाराम और दिनकर गोसाईं-जैसे निष्काम भगवद्भक्त जब यह बतलाते हैं कि स्वप्नमें गुरुने दर्शन देकर हमें उपदेश दिया तब उसपर अविश्वास करनेका कोई कारण नहीं है । ऐसी बातोंमें विश्वासके बिना प्रतीति नहीं होती और प्रतीतिके बिना विश्वास भी नहीं होता, इसलिये भावुकजन पहले विश्वास करते हैं, पीछे उनके पूर्वभाग्यसे अथवा भगवत्कृपा-बलसे प्रतीतिका समय भी कभी-न-कभी आता है । स्वप्नमें ही क्यों, गर्भतकमें उपदेश दिये जानेकी कथाएँ हमारे पुराणोंमें हैं । इन कथाओंको मिथ्या तो नहीं कह सकते । महात्मा चारों देहोंसे अलग और पूर्ण स्वाधीन होनेके कारण चारों देहोंपर उनका हुक्म चलता है । वे इन देहोंके मालिक होते हैं, अर्थात् चाहे जो देह वे जब चाहें धारण कर सकते हैं और चाहे जिस देहको जब चाहें छोड़ सकते हैं । बाबाजी चैतन्यने स्थूल देहका त्याग करनेके पश्चात् भण्डारा-पर्वतपर आत्मोद्धारके लिये सतत छटपटानेवाले तुकारामको शुद्धचित्त और अधिकारी जानकर उनपर अनुग्रह किया और जो उपासना वह कर रहे थे उसीको आगे भी करते रहनेके लिये प्रोत्साहित किया । इस प्रकारका प्रोत्साहन श्रेष्ठ कोटिके जीवोंसे कनिष्ठ कोटिके जीवोंको मिला करता है । सच पूछिये तो गुरु और शिष्यके बीच ऊँच-नीचका कोई भेद-भाव बाकी नहीं रहता । जैसे दो तालाब पास-पास लबालब भरे हुए हों और इनमेंसे पहले किसी एकका पानी दूसरेमें आ जाय और उस एक-को दूसरा गुरुत्वका मान प्रदान करनेकी तैयारी करे न करे इतने-

में ही दोनोंकी लहरें एक-दूसरेमें आने-जाने लगें और दोन
मिलकर एक महासरोवर बन जायँ, वैसा ही कुछ गुरु-शिष्यक
सम्बन्ध होता है। दोनों एक-दूसरेसे मिलकर एक हो जाते हैं
शिष्य गुरु-पदपर कब आरूढ़ होता है और कब दोनों एक हो
जाते हैं यह बतलानेमें जितना समय लग सकता है उतन
समय भी दोनोंके एक होनेमें नहीं लगता। 'उद्धरेदात्मना
त्मानम्' ही सत्य है, तथापि सबके ऊपर मुहर गुरुकी ही लगत
है। साधक जिस साधन-मार्गसे जा रहा हो उस मार्ग
पर चलते हुए उसे किसी ऐसे मार्ग-दर्शक पुरुषकी आवश्यकत
होती है जिसने वह मार्ग देखा हो, जो उस मार्गके अन्ति
गन्तव्य स्थानतक हो आया हो। वही गुरु है। उसके मिलनेसे
मोक्ष-मार्गके पथिकका ढाढ़स बँधता है, उसे यह निश्चय हो जाता
है कि हम जिस रास्तेपर चल रहे हैं वह रास्ता गलत नहीं है
मोक्ष-मार्गमें ऐसे अनेक गुरु मिल जाते हैं। साधु-सन्त ऐसे ह
मार्ग-दर्शक होते हैं। अन्तमें जो गुरु मिलते हैं वह इसे पूर्णकाम
करके अनुभव-सुख इसके पल्ले बाँधकर इसे पूर्ण बनाते हैं, वह
सद्गुरु हैं। सद्गुरुका कार्य अत्यल्प पर अत्यन्त उपकारक होता
है। वह जीवात्माको शिवात्मासे मिला देते हैं।

८ गुरु-नाम बारम्बार क्यों नहीं ?

इस विषयमें अब कोई सन्देह नहीं रह गया है कि तुकाराम-
जीके गुरु बाबाजी चैतन्य थे। तुकारामजीने स्वयं ही कहा है—
'बाबाजी सद्गुरु, दास तुका।' ज्ञानदेव, नामदेव और एकनाथ
के ग्रन्थोंमें बार-बार जैसे गुरुका नाम आता है वैसे तुकारामके

अभङ्गोंमें नहीं आता, यह बात सही है। पर इससे किसी-किसीका जो यह खयाल होता है कि तुकारामने कोई गुरु ही नहीं किया, किसी गुरुसे उपदेश नहीं लिया अथवा भगवान्‌ने ही उन्हें स्वप्न देकर अपना नाम बाबाजी चैतन्य बता दिया, यह खयाल बिल्कुल गलत है। एक अभङ्गमें तुकारामजीने कहा है, 'सद्गुरु-सेवन जो है वही अमृतपान है' और एक दूसरे अभङ्गमें उन्होंने स्पष्ट ही कहा है—'गुरु-कृपाका ही बल था जो पाण्डुरङ्गने मेरा भार उठा लिया। (तुका म्हणे गुरु कृपेचा आधार। पांडुरंगें भार घेतला माझा॥) गुरुकी आज्ञा और तुकारामजीके मनकी पसन्द एकरूप हुई, ध्याननिष्ठा दृढ़ हुई, नाम-सङ्कीर्तन-साधन स्थिर हुआ। गुरूपदेश उन्हें स्वप्नमें मिला, इससे अन्य सन्तोंके समान उन्हें गुरुका सङ्ग-लाभ नहीं हुआ। ज्ञानेश्वरके सामने निवृत्तिनाथकी, नामदेवके सामने विसाजी खेचरकी और एकनाथके सामने जनार्दनस्वामीकी मूर्ति अहोरात्र क्रीडा कर रही थी। गुरुके साथ सम्भाषण करनेका सुख इन सन्तोंने खूब लूटा। उनके दर्शन, स्पर्शन और पाद-सेवनका नित्य आनन्द प्राप्त करने और उनके शुद्ध स्वरूपको जाननेका परम मङ्गल अवसर इन्हें नित्य ही मिलता था। प्रतिक्षण उन्हें प्रतीति होती थी कि निर्गुण ब्रह्म ही गुरुरूपमें सगुण होकर आये हैं। तुकारामजीको गुरूपदेश स्वप्नमें मिला। उस समय गुरुने उनसे पावभर घी माँगा था; पर तुकारामजीको उसकी सुध न रही और आगे भी गुरु-सेवाका कोई अवसर नहीं मिला। गुरु भी पाण्डुरङ्गका ही ध्यान करनेको बताकर गुप्त हो गये। इसी कारणसे तुकारामजीके अभंगोंमें गुरु-वर्णन नहीं हुआ है

और गुरुका नामोल्लेख भी दो ही चार बार हुआ है। गुरू-पदेशके पश्चात् उन्होंने पाण्डुरङ्गका जो ध्यान किया, उन्हें जो सगुण-साक्षात्कार और निर्गुणबोध हुआ वह सब गुरुके उपदिष्ट मार्गपर चलनेसे ही हुआ, पाण्डुरङ्ग-स्वरूपमें ही गुरुस्वरूप मिल गया और गुरुकी आज्ञासे ही पाण्डुरङ्गकी सेवा की गयी, इस कारण पाण्डुरङ्गकी भक्तिमें ही गुरु-भक्ति भी हो गयी! इसीलिये तुकाराम-जीके अभङ्गोंमें गुरुका नामोल्लेख बहुत कम हुआ है। तथापि जितनेमें ऐसे उल्लेख हैं उनसे यही निश्चित होता है कि तुकारामजी-को स्वप्नमें बाबाजी चैतन्यने गुरूपदेश दिया। गुरूपदेश स्वप्नमें ही हुआ करता है! स्वरूप-जागृति होनेपर उपदेशकी आवश्यकता नहीं रहती और मोह-निद्रामें जब जीव रहता है तब उसे उपदेशकी इच्छा ही नहीं होती; अर्थात् मुक्तावस्था और बद्धावस्था ये दोनों अवस्थाएँ गुरूपदेशके लिये उपयुक्त नहीं। गुरूपदेश उसी मुमुक्षा-वस्थाके लिये है जब जीव न तो आत्मस्वरूपमें जाग रहा है न विषयोंकी मोह-निद्रामें सो रहा है, अर्थात् मध्यम स्वप्नकी अवस्था-में है।

९ गुरु-चैतन्यत्रयी

जिन बाबाजी चैतन्यने तुकारामजीको स्वप्नमें उपदेश दिया उनके विषयमें और भी कुछ ज्ञात होता तो अच्छा होता पर दुर्भाग्य-वश ऐसी कोई बात नहीं ज्ञात होती। दो-चार कथाएँ उनके विषयमें प्रसिद्ध हैं पर उनमें परस्पर विरोध ही अधिक है। इसलिये ऐसे टूटे-फूटे, अधूरे और परस्पर-विरोधी आधारपर तर्कसे चरित्रकी हवेली उठाना ठीक नहीं। सन्त-चरित्र कोई

कपोल-कल्पित उपन्यास नहीं है, आधारके बिना यहाँ कोई बात नहीं कही जा सकती। माघ शुक्ला दशमीको तुकारामजीको गुरूपदेश मिला, इसलिये वारकरी-मण्डल इस तिथिको विशेष पवित्र मानता है और उस दिन स्थान-स्थानमें भजन-पूजन-कीर्तनादि-द्वारा उत्सव मनाया जाता है, यही एक बात प्रस्तुत प्रसङ्गमें निश्चित है। तुकारामजीके गुरु कौन थे, कहाँ रहते थे, वह समाधिस्थ कब हुए, उनकी पूर्व-परम्परा क्या थी? इत्यादिके बारेमें वारकरियोंको कुछ भी ज्ञात नहीं है और इस विषयमें कोई ग्रन्थ भी नहीं मिला है। स्वप्नमें थोड़ी देरके लिये गुरुके दर्शन हुए और उन्होंने उपदेश दिया, 'राघव चैतन्य केशव चैतन्य' कहकर पूर्व-परम्परा-का सङ्केत किया और अपना नाम 'बाबाजी' बताया, तुकाराम-जीको 'राम कृष्ण हरी' मन्त्र दिया जो उन्हें प्रिय था और फिर अन्तर्द्धान हो गये। बस, इतना ही बाबाजी चैतन्यके विषयमें प्रमाण है, इसके अतिरिक्त और कोई विश्वसनीय बात नहीं ज्ञात होती। 'मानियेला स्वप्नीं गुरूचा उपदेश' (स्वप्नमें गुरुका उपदेश माना), तुकारामजीके इस कथनसे यह नहीं जान पड़ता कि उनके गुरु फिर कभी उनसे स्वप्नमें या जागतेमें मिले हों, अर्थात् तुकारामजीको गुरुसे इस उपदेशके बाद और भी कुछ मिला यह नहीं कहा जा सकता। ऐसी अवस्थामें तुकारामजीके गुरुके विषयमें चरित्रकार भी और क्या लिख सकता है? इसके सिवा अन्य बातोंपर स्वयं मेरा विश्वास नहीं है, वारकरियोंका भी विश्वास नहीं है तथा उनकी कोई आवश्यकता भी नहीं प्रतीत होती, यह

स्पष्ट बतलाकर अब उन कथाओंको भी जरा देख लें जो बाबाजी चैतन्यके विषयमें प्रसिद्ध हुई हैं।

'चैतन्यकथाकल्पतरु' नामक एक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। यह ग्रन्थ निरञ्जन बुवा नामक किसी पुरुषने संवत् १८४४ (शाके १७०९) प्लवङ्ग-नाम संवत्सरमें लिखा और कार्तिक शुक्ल एकादशीको लिखकर पूर्ण किया। इसमें राघव चैतन्य और केशव चैतन्यके विषयमें कुछ बातें हैं। ग्रन्थके अन्तमें यह कहा है कि यह ग्रन्थ एक प्राचीनतर ग्रन्थके आधारपर लिखा है, वह प्राचीनतर ग्रन्थ 'संवत् १७३१ (शाके १५९६) में परम भक्त कृष्णदास वैरागीने लिखा।' इन कृष्णदास वैरागीका कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है जिससे यह ग्रन्थ मिलाकर देखा जाय। अस्तु, निरञ्जन बुवाके इस ग्रन्थमें ६ अध्याय और ७६० ओवियाँ हैं। इसमें तुकारामजीकी गुरु-परम्परा इस प्रकार दी है—श्रीविष्णु—ब्रह्मदेव—नारद—व्यास—राघव चैतन्य—केशव चैतन्य उर्फ बाबाजी चैतन्य—तुकाजी चैतन्य। राघव चैतन्यको स्वयं वेदव्यासने उपदेश दिया। राघव चैतन्यने 'उत्तम नाम नगरमें माण्डवी-पुष्पावतीके तीरपर' बहुत कालतक तप किया। 'हाथ-पैरके नखोंकी नालियाँ बन गयीं; शरीरपर धूलके तह-के-तह जमा हो गये, जटा बढ़कर पृथ्वीको छूने लगी, शरीर सूख गया।' ऐसा तीव्र तप देखकर श्रीवेदव्यास प्रकट हुए और उन्होंने उन्हें प्रणवके साथ 'नमो भगवते वासुदेवाय' मन्त्रका उपदेश दिया। उत्तम-नगरका आधुनिक नाम ओतुर है। यह गाँव पूना-जिलेमें जुन्नरसे चार कोस-पर है। वहाँसे चार मीलपर पुष्पावती उर्फ कुसुमावती और कुकडी

नदीका सङ्गम है। राघव चैतन्यको ओतुर-ग्राममें गुरूपदेश प्राप्त हुआ। उनका राघव चैतन्य नाम गुरुका ही दिया हुआ था। गुरूपदेशके पश्चात् राघव चैतन्यने और भी तीव्र तप किया। कुछ काल पश्चात् वहाँ तृणामल्ल (तिनेवल्ली?) के देशपाण्डे नृसिंह भट्टके द्वितीय पुत्र विश्वनाथबाबा उनसे मिले। नृसिंह भट्ट बड़े कर्मनिष्ठ ब्राह्मण थे। तृणामल्लका शिवालय यवनोंने भ्रष्ट किया तब नृसिंह भट्ट वहाँसे चलते बने और घूमते-फिरते पुनवाडी (तत्कालीन पूना) पहुँचे। वहाँ वह अपनी सहधर्मिणी आनन्दीबाईके साथ सुखपूर्वक काल व्यतीत करने लगे। इनके तीन पुत्र हुए—त्र्यम्बक, विश्वनाथ और बापू। नृसिंह भट्टका जब देहान्त हुआ तब तीनों पुत्रोंमें कलह हो गया। विश्वनाथ 'उदासीन थे, त्रिकाल स्नान-सन्ध्या करते थे, धर्ममें बड़े उदार थे, पर घरका काम कुछ भी न देखते थे।' उनके दोनों भाइयोंने सलाह करके उन्हें घरसे निकाल दिया। विश्वनाथबाबाकी सहधर्मिणी गिरजाबाई भी अपने पतिके साथ हो लीं। पति-पत्नी तीर्थयात्रा करते हुए ओतुर-ग्राममें आये। दोनों ही विपत्तिके मारे भटक रहे थे। प्रारब्ध-बलसे वहाँ राघव चैतन्यसे उसकी भेंट हो गयी और राघव चैतन्यने उनपर कृपादृष्टि की। विश्वनाथबाबा ऋग्वेदी ब्राह्मण थे। संसारमें इन्होंने बहुत दुःख उठाया। भाइयोंने इन्हें घरसे निकाल दिया। स्त्रीने भी इन्हें दरिद्र पाकर कठोर वचन सुनानेमें कुछ कमी न की। 'सोहागके पूरे अलङ्कार भी इनके जुटाये न जुटे, कभी कोई अच्छी-सी साड़ी-तक नहीं ला दी, आधी घड़ी भी कभी इनके साथ सुखसे नहीं बीता।' यही उसका रोना था। सुनते-सुनते विश्वनाथबाबाके

कान थक गये। राघव चैतन्यके दर्शन पाकर वह उनकी शरणमें गये। उस समय उनकी आयु २५ वर्ष थी। कुछ काल बाद इनके एक पुत्र हुआ। उसका नाम नृसिंह भट्ट रखा गया। 'स्त्रीके ऋणसे इस प्रकार उद्धार हुआ और चित्त भी शुद्ध हो गया' तब विश्वनाथबाबाने गुरुसे संन्यास-दीक्षा माँगी। गुरुने उन्हें संन्यास दिया और उनका नाम केशव चैतन्य रखा। गुरु और शिष्य दोनों ही ओतुर-ग्रामसे कुछ दूर एक वनमें जा बसे और वहाँ ब्रह्मानन्द भोगने लगे। कुछ काल बाद दोनों ही तीर्थ-यात्राके लिये निकले। नासिक, त्र्यम्बकेश्वर, द्वारका, प्रयाग, काशी, जगन्नाथ आदि क्षेत्रोंकी यात्रा करते हुए कलबुर्गा पहुँचे। वहाँ जलकी अतिवृष्टिसे त्रस्त होकर वे एक मसजिदमें पहुँचे। वहाँ भीतके एक बीचके आलेमें उन्होंने अपनी खड़ाऊँ रखी, उस मसजिदके मुल्लाने आकर जब देखा कि खड़ाऊँ आलेमें रखी हैं तब उन यतियोंपर बेतरह बिगड़ा। उसने शहरके काजीसे इसकी फरियाद की। बात निजामशाहके कानोंतक पहुँची और उस गाँवके छोटे-बड़े सभी मुसलमानोंके आग लग गयी। और जहाँ-तहाँ बिना कारण ब्राह्मणोंपर अत्याचार होने लगे। स्वयं निजाम मसजिदमें पहुँचे। कहते हैं, उस अवसरपर उन दो यतियोंने कोई सङ्केत किया जिसके करते ही मसजिद जो उड़ी सो वहाँसे आध मीलपर जाकर ठहरी। यह चमत्कार देखकर निजाम चकित हुए और यह विश्वास हुआ कि ये दोनों फकीर कोई बड़े पीर हैं, तत्काल ही दोनों यति अन्तर्द्धान हो गये। निजाम उनसे मिलनेके लिये बहुत व्याकुल हुए। आलन्द-गुञ्जोटी नामक स्थानमें निजामको उनके दर्शन हुए। निजामने

अभय-दान माँगा। यतियोंने उन्हें अभयवचन दिया। निजामने इन यतियोंके सम्मानार्थ उस मसजिदमें दो स्मारक बनवाये और उनपर राघवदराज और केशवदराज नाम खुदवाये। राघव चैतन्य इस घटनाके कुछ काल बाद ही लोकोपाधिसे छूटनेकी इच्छा करते हुए समाधिस्थ हुए। उन्होंने अपने शिष्यको ओतुर जानेकी आज्ञा दी। राघव चैतन्यकी समाधि आलन्दगुञ्जोटीमें है। वहाँसे तीन कोसपर मान्यहाल नामक ग्राममें केशव चैतन्यने अपने लिये एक मठ बनवाया और कुछ कालतक इस मठमें रहे। यहाँ रहते हुए वह बार-बार गुरु-समाधिके दर्शनोंके लिये आलन्दगुञ्जोटी जाया करते थे। राघव चैतन्य बड़े रूपवान् पुरुष थे। उनके दिव्य रूपका कविने वर्णन किया है कि 'चन्द्रके समान सुन्दर मुख था, उसपर हेमवर्ण जटा सोहती थी, सर्वाङ्गमें भस्म रमाये रहते थे, बड़ी ही सुन्दर दिगम्बर मूर्ति थी।' केशव चैतन्य पीछे वहाँसे ओतुर चले गये। उनके शिष्योंने मान्यहाल-ग्राममें उनकी पादुका स्थापित कीं। यही केशव चैतन्य तुकोबारायके गुरु थे। बाबाजी इनका पूर्वाश्रमका नाम था। इस ग्रन्थके तीसरे अध्यायके अन्तमें कहा है, 'सब लोग इन्हें केशव चैतन्य कहते हैं, भावुक बाबा चैतन्य कहते हैं; दोनों नाम एक ही हैं जो अति आदरके साथ लिये जाते हैं।' अन्तिम अध्यायमें पुनर्बार यह उल्लेख है कि 'पूर्वाश्रममें बाबा भी कहते थे।' पहले तीन अध्यायोंमें यह विवरण है। इसके बाद चौथे और पाँचवें अध्यायमें केशव चैतन्यके चरित्रकी कुछ बातें कहकर छठेमें तुकारामजीको गुरूपदेश प्राप्त होनेकी बात उनके अल्प चरित्रके साथ कही गयी है। केशव चैतन्यके पुत्र नृसिंह

भट्ट और नृसिंह भट्टके पुत्र केशव भट्ट हुए। केशव चैतन्यने केशव भट्टपर अनुग्रह किया और जगदुद्धारके लिये अनेक चमत्कार भी दिखाये। केशव चैतन्यने संवत् १६२८ (शाके १४९३) प्रजापति-नाम संवत्सरमें ज्येष्ठ कृष्ण द्वादशीको ओतुर-ग्राममें समाधि ली। समाधि लेनेके पश्चात् भी उन्होंने अनेक चमत्कार किये। अपने पूर्वाश्रमके पोते केशव भट्टको सम्पूर्ण भागवत सुनायी। समाधि लेनेके पश्चात् ही वह काशीमें प्रकट हुए और एक ब्राह्मणपर कृपा की। इसी प्रकार कई वर्ष बाद तुकारामजीको स्वप्न देकर उन्होंने गुरूपदेश दिया। निरञ्जन बुवाने राघव चैतन्य और केशव चैतन्यके बारेमें जो कुछ लिखा है यहाँतक, उसीका सारांश हमने बताया है इसके सत्यासत्यकी जाँचका और कोई साधन अबतक उपलब्ध नहीं हुआ है। कृष्णदास वैरागीके जिस ग्रन्थके आधारपर निरञ्जन बुवाने अपना ग्रन्थ लिखा, वह ग्रन्थ संवत् १७३१में लिखा होनेसे अर्थात् तुकाराम महाराजके प्रयाणके पचीस वर्ष बादका ही लिखा हुआ होनेसे बहुत कुछ प्रमाणभूत हो सकता था। पर वह आज उपलब्ध न होनेसे 'चैतन्यविजयकल्पतरु' ग्रन्थकी कौन-सी बात कृष्णदास लिख गये हैं और कौन-सी बात निरञ्जन बुवा किसी अन्य आधारपर कह रहे हैं यह जाननेका इस समय कोई साधन नहीं है।

श्रीराघव चैतन्य सिद्ध पुरुष थे और श्रीकृष्णके परम भक्त थे इसमें सन्देह नहीं। हमारे गोमान्तकस्थ मित्र श्रीविट्ठलराय कामतने उनका अत्यन्त मधुर श्लोक दस वर्ष पहले हमारे पास भेजा था—

पुञ्जीभूतं प्रेम गोपाङ्गनानां
मूर्तिभूतं भागधेयं यदूनाम्।

सान्द्रीभूतं गुप्तवित्तं श्रुतीनां
श्यामीभूतं ब्रह्म मे सन्निधत्ताम् ॥

'गोपियोंके पुञ्जीभूत प्रेम, यादवोंके मूर्तिमान् भाग्य, श्रुतियोंके एकत्र घनीभूत गुप्त धन, ऐसे जो मेरे साँवरे ब्रह्म हैं वह निरन्तर मेरे समीप रहें।'

राघव चैतन्यकी और भी कुछ कविताएँ हैं ऐसा सुना है। केशव चैतन्यका एक पद मुझे बहिणाबाईकी गाथामें मिला। उसका आशय यह है कि 'विषयोंके लोभसे मन भटक रहा है; गृह, पुत्र, कलत्रमें ही सुख मान बैठा है। पर अब इसका दुःख मुझसे नहीं सहा जाता, इसलिये हे कमलापति हरि! आपसे विनय करता हूँ। हे दीनानाथ, दीनबन्धु! आपकी शरणमें हूँ। इस भवसागरको पार करनेका कोई उपाय नहीं दीखता। साधु-सङ्ग या साधु-सेवा मुझसे कुछ भी न बन पड़ी, शिश्नोदर-व्यापारके ही प्रवाहमें बहता रहा हूँ। अब इसमेंसे हे भगवन्! मुझे उबारो! हे दीनानाथ! दीनबन्धु! मैं आपकी शरणमें हूँ। मुझे चित्त-शुद्धिका रास्ता दिखाओ, वेद-शास्त्र पुराणोंकी गति सुझाओ, निरन्तर नवविधा भक्तिमें लगाओ, इसीमें आपकी भी शोभा है। हे दीनानाथ! दीनबन्धु! मैं आपकी शरणमें हूँ।'

१० चतुर्गुरु-परम्परा

तुकोबारायके तीन प्रधान शिष्य निलोबाराय, बहिणाबाई और महीपतिबाबा हुए। गुरु-परम्पराके सम्बन्धमें इनके अभंगोंका आशय नीचे देते हैं—

१ निलोबाराय

चैतन्यके मूल मुख्यतः महाविष्णु हैं, वहींसे सम्प्रदाय चला

है। हंसरूपी ब्रह्माको श्रीहरिने उपदेश दिया, वही चतुःश्लोकी भागवत है। वही गुप्त रहस्य ब्रह्माने नारदसे कहा, नारदने व्याससे कहा। राघव चैतन्यने अनुष्ठान किया तब श्रीकृष्णद्वैपायनने उनपर कृपा की। बोधको हृदयमें जमानेके लिये उन्होंने सिरपर हाथ रखा। राघव चैतन्यके चरणोंमें श्रीकेशव शरण गये, बाबाजी-पर उनकी पूर्ण कृपा हुई। बाबाजीने स्वप्नमें आकर निज प्रीतिसे तुकापर अनुग्रह किया। जगद्गुरु तुकाजी नामदेवके अवतार हुए। वहींसे सबका सम्प्रदाय चला। निला कहता है, उन्होंने मुझे उपदेश दिया, सबको सम्प्रदाय दिया।

२ बहिणाबाई

आदिनाथने पार्वतीको उपदेश दिया, मत्स्येन्द्रने उसे मत्स्य-गर्भमें सुना। शिवहृदयका वह अगाध मन्त्र भक्तियोगसे प्रसिद्ध हुआ है। उन्होंने उन गोरक्षनाथको कृपा-दान किया, वहाँसे वह गहिनीनाथको प्राप्त हुआ। गहिनीने श्रीनिवृत्तिनाथपर बचपनमें ही दया की और उन्हें अपना योग बताया। वहाँसे ज्ञानेश्वरको प्रसाद मिला, वह सिद्धासनपर आरूढ़ होकर प्रसिद्ध हुए। भक्तिके आकर श्रीसच्चिदानन्दबाबाको श्रीज्ञानेश्वरने अभय वर दिया। अनन्तर सुन्दर श्रीशिवरूप विश्वम्भरने राघवके हृदयमें वह मन्त्र रखा। केशव चैतन्य, बाबाजी चैतन्य तुकाजीपर प्रसन्न हुए। तुकाजीके चरणोंमें मेरा एकनिष्ठ भाव था इससे वह कृपा मुझे भी प्राप्त हुई।

३ महीपतिबावा

महीपतिबाबाने जो कुछ लिख रखा है वह वही है जो निलोबारायके उपर्युक्त अभंगके प्रथम आठ चरणोंमें है, नवाँ चरण

भिन्न है। उसमें महीपतिबाबा कहते हैं कि 'सब भक्तजनोंके लिये यह परम्परा है[१]।' महीपतिबाबाका यह अभंग उनके वंशजोंसे मिला है।

बहिणाबाई और निलोबाराय दोनों ही तुकारामजीके शिष्य थे। बहिणाबाई और निलाजीके शिष्य शङ्करस्वामी शिऊरकर एक गाँवके रहनेवाले थे। बहिणाबाई तुकारामजीकी साक्षात् शिष्या थीं और शङ्करस्वामी प्रशिष्य थे। शिऊरमें शङ्करस्वामीके ही घरमें मुझे उनकी गुरु-परम्परा लिखी हुई मिली और वैसी ही परम्पराका एक लेख शिऊरकरके शिष्य वासकरके सम्प्रदायवाले कीर्तनकार हरिभाऊँ गिंडेके यहाँ मिला। इस गुरु-परम्परा-वर्णनमें १५ श्लोक हैं। श्लोकोंकी शुद्धाशुद्धताका विचार न कर उन श्लोकोंको ज्यों-के-त्यों नीचे देता हूँ। पाठक केवल उनका तात्पर्य विचारें।

४ शङ्करस्वामीकी गुरुमालिका

॥ श्रीगुरुप्रसन्न ॥

गुरुमालिकास्तोत्र प्रारम्भः

योऽस्मै शिवस्तु प्रणवः प्रणवैकगम्यो
यो निर्गुणो प्रणवतत्त्वहरो हरश्च।
यो ह्यादिनाथ गुरुज्ञानप्रदोऽस्ति नित्यं
भक्त्या व्रजामि तमहं शिवसम्प्रदायम् ॥ १ ॥

ईशं च पृच्छति शिवा निजतत्त्वमैशं
तां शम्भुरहं कृपया अपयाति भेदम्।
ज्ञानं च यो दिशति गुह्यतमं पयोब्धौ
भक्त्या व्रजामि तमहं शिवसम्प्रदायम् ॥ २ ॥

गौरीशयोर्यमनुवादमगाधबोधं
तं ज्ञानवान् तनुशत्रुतनूद्भवेन ।
मच्छोदरे मुनिवरं प्रणमामि प्रीत्या
भक्त्या व्रजामि तमहं शिवसम्प्रदायम् ॥ ३ ॥

यः शङ्करोपमगुणैरतुलस्त्रिलोक्यां
मच्छीन्द्रनाथमुपदिष्टमनुक्रमेण ।
गोरक्षनाथमुनिशं गुरुसेवकं च
भक्त्या व्रजामि तमहं शिवसम्प्रदायम् ॥ ४ ॥

यो योगविद्गुरुवरः प्रवरस्त्रिलोक्यां
योगेश्वरो मुनिवरो गयनी प्रसिद्धः ।
गोरक्षनाथमुपदिष्टमनोज्ञतत्त्वं
भक्त्या व्रजामि तमहं शिवसम्प्रदायम् ॥ ५ ॥

ज्ञात्वा कलौ मतिहतांश्च जनान्पृथिव्यां
तानुग्रहाय च शिवेन निवृत्तिनाथम् ।
भक्तित्रिकं प्रकटितं गयनेरवाच्यं
भक्त्या व्रजामि तमहं शिवसम्प्रदायम् ॥ ६ ॥

आचार्य शङ्करकुलौ किल धर्मशास्ता
जातस्तथैव हरिरेव हि ज्ञानदेवः ।
लोके चकार हरिभक्तिप्रसिद्धमेव
भक्त्या व्रजामि तमहं शिवसम्प्रदायम् ॥ ७ ॥

श्रीमन्निवृत्तिरुपदेशितमात्मज्ञानं
श्रीज्ञानदेवकृपया हि जनैस्तदाप्तम् ।
देवा हि भक्तिसहितं विमलं हि ज्ञानं
भक्त्या व्रजामि तमहं शिवसम्प्रदायम् ॥ ८ ॥

ज्ञानेश्वरस्य पदकञ्जपरागरागी
संसारसारपरिभोगनिवृत्तरागः ।
सच्चित्सुखाख्यमुनिपुङ्गवस्ततोऽग्रे
विश्वम्भरोऽथ प्रवरो किल राघवाख्यः ॥ ९ ॥
चैतन्यकेशवस्थो किल केशवाच्च
बाबाजिसद्गुरुवरेण च कौतुकार्यः ।
अद्यापि यस्य चरितानि च कौतुकाय
भक्त्या व्रजामि तमहं शिवसम्प्रदायम् ॥ १० ॥
यः कौतुकाराम विभेदतास्या
यः कौतुकाराम हरिः प्रियानाम् ।
यः कौतुकाराम प्लवो भवाब्धौ
यः कौतुकाराम गुरुः प्रसिद्धः ॥ ११ ॥
ग्रामोऽस्ति यस्य किल पिंपलनेरनाम्ना
यः सर्वथा सुपथगामि तुकोपदिष्टम् ।
यस्य गृहे हरिकृतं सकलं हि कृत्यं
तं नीलकण्ठं प्रणम्यं प्रणमामि भक्त्या ॥ १२ ॥
ग्रामः शिवाख्यनिकटं शिवनाम शैलौ
रामेश्वराख्यशिवलिङ्गप्रसिद्ध यत्र ।
यो नीलकण्ठवरशिष्य हि शङ्कराख्य-
स्त्वग्रे ततो कलिमलापहरो अखण्डः ॥ १३ ॥
इत्थं शिवान्वयपरम्परा कलौ च
भक्तित्रिकं प्रकटितं भगवज्जनैर्यः ।
यात्राभिरेव विपुलैर्हरिनामघोषै-
रद्यापि कीर्तनरसैर्जनतारकैस्तैः ॥ १४ ॥

गुरुमालास्तोत्रमिदं यः पठेद्धरिसन्निधौ ।
सर्वकामफलं तस्य विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥१५॥

इति गुरुपरम्परास्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

राघव चैतन्यकी पूर्व गुरु-परम्पराके दो प्रकार यहाँ दिखायी देते हैं। निलोबाराय और निरञ्जन बुवाका एक मत है और बहिणाबाई तथा शिऊरकर शङ्कर स्वामीका दूसरा मत है। इस प्रकार एक ही गुरुकी दो पूर्व-परम्पराएँ हुईं—

१ निलोबारायकी

महाविष्णु
।
हंस (ब्रह्मा)
।
नारद
।
व्यास
।
राघव चैतन्य
।
केशव चैतन्य
।
बाबाजी चैतन्य
।
तुकाराम
।
निलाजी

२ बहिणाबाईकी

आदिनाथ
पार्वती —— । —— मत्स्येन्द्रनाथ
।
गोरक्षनाथ
।
गहिनीनाथ
।
निवृत्तिनाथ
।
ज्ञानेश्वर
।
सच्चिदानन्द
।
विश्वम्भर
।
राघव चैतन्य
।
केशव चैतन्य
।
बाबाजी चैतन्य
।
तुकाराम
।
बहिणाबाई

बहिणाबाई और निलोबाराय दोनों ही तुकारामजीके शिष्य थे। तब दोनोंकी गुरु-परम्परा भिन्न-भिन्न कैसी? बहिणाबाई तुकारामजीके संग देहूमें कई वर्ष रहीं, इसलिये उनका जो यह कहना है कि तुकारामजी श्रीज्ञानेश्वर महाराजकी ही परम्परामें हैं, यह अविश्वसनीय कैसे माना जाय? और निलोबारायकी बात भी झूठ कैसे हो सकती है? निलोबारायका तुकाराम महाराजसे प्रत्यक्ष परिचय नहीं था, कभी साक्षात् भेंट भी नहीं हुई थी, तथापि तुकारामजीने उन्हें स्वप्नमें उपदेश दिया था, अपना करताल और वीणा उन्हें दी थी। परम्परा आगे चलानेके अष्टाधिकार निलाजी-को ही प्राप्त हुए थे। वारकरी-मण्डलमें निलाजीकी मान्यता विशेष है। निलाजीके शिष्य शङ्कर स्वामी और शङ्कर स्वामीके शिष्य मलाप्पा वासकर भी वारकरी-मण्डलमें मान्य हैं। वासकरका अखाड़ा देखा, उसे अग्रपूजाका मान प्राप्त है। ऐसी अवस्थामें निलोबाराय-की दी हुई परम्परा कैसे अमान्य हो सकती है? फिर निलाजीके शिष्य जो परम्परा बतलाते हैं वह बहिणाबाईकी बतायी परम्परासे सर्वथा मिलती है। बहिणाबाईके कोई शिष्य दीनकवि नामसे हो गये हैं। उन्होंने जो परम्परा दी है वह भी बहिणाबाईकी बतायी हुई परम्परासे मिलती है। इनके कथनानुसार 'क्षीरसिन्धुमें चन्द्रमौलि शङ्करने आत्माराममें मिलनेके लिये पार्वतीको जो ज्ञानशक्ति बोध कराया' वह मत्स्येन्द्रनाथको प्राप्त हुआ, उनसे गोरक्षनाथको, गोरक्षनाथसे गयनीनाथको, उनसे निवृत्तिनाथको, निवृत्तिनाथसे ज्ञाननाथ (ज्ञानेश्वर महाराज) को, उनसे बाबा (सच्चिदानन्दबाबा) को, सच्चिदानन्दबाबासे योगिराज विश्वनाथको,

उनसे शुद्ध चैतन्यस्वरूप राघव चैतन्यको, उनसे केशव चैतन्यको, केशव चैतन्यसे बाबा चैतन्यको, उनसे तुका चैतन्यको, तुकाजीसे बहिणाबाईको और बहिणाबाईसे इस दीन कविको मिला। यह परम्परा दीन कविने अपने अष्टादश प्रकरणात्मक पञ्चीकरण नामक ग्रन्थमें दी है। यह ग्रन्थ संवत् १७८७ (शाके १६५२) साधारण नाम संवत्सरमें कृष्णाके उत्तर तटपर लिखा गया। आदिनाथसे ज्ञाननाथतककी परम्परा ज्ञानेश्वरीके उपसंहारमें स्वयं ज्ञानेश्वर महाराजने दी है। राघव चैतन्यसे तुकाराम चैतन्यतककी परम्परा स्वयं तुकाराम महाराजने दी है, इसलिये ये पूर्वापर दोनों परम्पराएँ निर्विवाद हैं। कालानुक्रमसे देखते हुए ज्ञानेश्वर महाराज और तुकाराम महाराजके बीच लगभग ३२५ वर्षका अन्तर है। इतना समय सच्चिदानन्दबाबा, विश्वनाथ (विश्वम्भर और विश्वनाथ एक ही हैं), राघव चैतन्य और केशव चैतन्य इन चार ही पुरुषोंमें बाँटना पड़ता है, अर्थात् प्रत्येक पीढ़ी ८० वर्षकी माननी पड़ती है, जिसपर इस चौकस जमानेमें यह शङ्का उठ सकती है कि इतिहासशास्त्रकी दृष्टिसे यह असम्भव है। इसका समाधान भी दो तरहसे किया जा सकता है। एक तो यह कि योगी-महात्माओं-की आयु सामान्य आयुःप्रमाणसे नहीं नापी जा सकती। दूसरी बात यह कि यह भी सम्भव है कि इस परम्परामें इस कालके बीच और भी कुछ महात्मा हुए होंगे पर उनकी विशेष प्रसिद्धि न होनेसे उनके नाम विस्मृत हो गये होंगे। जो हो, बहिणाबाई और निळाजी राय दोनों ही स्वानुभवसम्पन्न महान् सन्त थे, दोनोंके ही अभंगोंपर गुरु-कृपाकी पूरी छाप लगी हुई है। हाँ,

दोनोंकी दी हुई गुरु-परम्परामें जो भेद है वह ऊपर दरशा दिया है । वारकरी-मण्डलमें निलाजी रायकी बड़ी मान्यता है । वारकरी-मण्डलमें कीर्तन-सम्बन्धी यह सामान्य निर्बन्ध है कि कीर्तनमें किसी ऐसे पुरुषके वचनोंका प्रमाण न दिया जाय जो तुकाराम महाराजके पश्चात् हुआ हो, पर अकेले निलाजी रायके वचनोंके लिये यह निर्बन्ध नहीं है । उनके वचन ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ, तुकारामके वचनोंके समान ही मान्य हैं और उनके रचे अभंगोंपर कीर्तन भी होते हैं । अब बहिणाबाईकी दी हुई परम्परा यदि सत्य मानी जाय तो तुकाराम ज्ञानेश्वर महाराजकी परम्पराके ही अन्दर आते हैं और यह निश्चित होता है कि महाराष्ट्रकी इस एक ही परम्परामें ज्ञानेश्वर और तुकाराम दोनों महापुरुष हुए । 'ज्ञानेश्वर माउली (माता) तुकाराम' एक भजन है, उसका रहस्य इसी भावसे ध्यानमें आता है और यह जान पड़ता है कि यह भजन सम्पूर्ण सम्प्रदायका ही जयजयकार है । पर निलाजीकी दी हुई परम्परा मानी जाय या बहिणाबाईकी, यह प्रश्न ज्यों-का-त्यों रह ही जाता है ।

११ गुरुत्रयी-नाम-संकेत

पहले निरञ्जनबावाके जिस ग्रन्थसे राघव चैतन्य और केशव चैतन्यका चरित्र दिया है वह ग्रन्थ साम्प्रदायिक नहीं जान पड़ता । निरञ्जनबावा यह कहते हैं कि केशव चैतन्य ही बाबाजी चैतन्य हैं, पर सम्पूर्ण परम्परा इस मतके विरुद्ध है । राघव चैतन्य, केशव चैतन्य और बाबाजी चैतन्य तीनों भिन्न-भिन्न पुरुष हैं और

पहले दूसरेके गुरु और दूसरे तीसरेके गुरु हैं—यह गुरु-परम्परा है। स्वयं तुकाराम महाराज कहते हैं—

राघव चैतन्य केशव चैतन्य। सांगितली खूण माळिकेची॥
बाबाजी आपुलें सांगितलें नाम। मंत्र दिला रामकृष्णहरी॥

'राघव चैतन्य केशव चैतन्य' यह परम्पराका संकेत बताया। बाबाजी अपना नाम बताया और 'रामकृष्णहरी' मन्त्र दिया।

बाबाजी ही तुकारामजीके गुरुका नाम था। अपना 'बाबाजी' नाम बतलाते हुए उन्होंने 'राघव चैतन्य और केशव चैतन्य' शब्दोंद्वारा परम्पराका सङ्केत किया। यदि केशव और बाबाजी एक ही मान लें तो 'परम्परा' का तो कुछ भी सङ्केत या निशान नहीं रह जाता। एक पुरुषकी परम्परा नहीं होती। राघव और केशवकी परम्परामें मैं बाबाजी हूँ, यही उनके कथनका स्पष्ट अभिप्राय है। इस अभङ्गमें तुकारामजीने अपनी 'त्रयी' बतलायी है। वंश दो प्रकारके माने जाते हैं—मांसवंश और विद्यावंश। गुरूपदेशके अनन्तर सच्चे गुरु-भक्त सर्वथा गुरुके ही होकर रहते हैं। कन्याका विवाह होनेपर जैसे ससुराल ही उसका घर हो जाता है, ससुरालके सम्बन्धसे उसका सब भावी नाता होता है और वह पूर्ण पति-परायणा होती है, वैसे ही गुरूपदेश प्राप्त होनेपर शिष्य पूर्ण गुरु-परायण होता है। 'पतिव्रताके लिये जैसे पति प्रमाण है' (पतिव्रते जैसा भ्रतार प्रमाण) वैसे ही गुरु-भक्तोंके लिये गुरु प्रमाण है। निवृत्तिनाथ ज्ञानेश्वर महाराजके ज्येष्ठ बन्धु थे, पर ज्ञानेश्वर महाराजने उनसे गुरूपदेश लिया तब दोनोंमें नया नाता जुड़ा, पहला सम्बन्ध समाप्त हो गया। वे तब गुरु-शिष्य हुए,

भाई-भाई न रहे। इसीलिये ज्ञानेश्वर महाराजने जहाँ-तहाँ अपनेको निवृत्तिदास या निवृत्तिनाथ-सुत कहा है। इसी न्यायसे एका जनार्दन, विठा रेणुकानन्दन इत्यादि गुरु-भक्तोंके नाम पड़ गये। गुरु-शिष्यका सम्बन्ध ही ऐसा है। हम संसारी जीव भी 'नारायणवासुदेवविश्वनाथशर्माणां जामदग्न्यगोत्राणाम्' इसी प्रकारसे अपनी 'त्रयी' के नाम लेते हैं, उसी प्रकार तुकारामजीने उपर्युक्त अभङ्गमें अपनी त्रयीके नाम लिये हैं। तुकारामजीके गुरु बाबाजी चैतन्य, परम गुरु केशव चैतन्य और परात्पर गुरु राघव चैतन्य हैं—यह उनकी गुरुत्रयी है और साम्प्रदायिक परम्परामें वह इसी रूपमें मानी जाती है। इसलिये किसी-किसीने जो यह लिख मारा है कि ये तीनों अथवा दोनों गुरु-भाई थे वह गलत है। तुकारामजीके बादकी परम्परामें भी ये तीनों पुरुष अलग-अलग माने जाते हैं। कैसे, सो आगे देखें—

तुकारामजीके अभङ्गोंकी जो पोथियाँ पण्ढरी और देहूमें उनके वंशजोंके पास अथवा अन्यत्र उनके शिष्योंके वंशजोंके पास हैं उनमें आरम्भमें ही तीनोंको अलग-अलग नमन किया है। पण्ढरीमें तुकाराम महाराजके वंशजोंके पास अभङ्गोंकी जो 'गाथा' है उसमें आरम्भहीमें यह उल्लेख है—'श्रीगुरुपरम्परा ॥ श्रीराघव चैतन्य ॥ श्रीकेशव चैतन्य ॥ श्रीबाबा चैतन्य ॥ गुरुमन्त्र रामकृष्णहरी ॥'

'इन्दुप्रकाश' से प्रकाशित गाथामें भी आरम्भमें—श्रीनिवृत्तिनाथाय नमः ॥ श्रीज्ञानेश्वराय नमः ॥ श्रीराघवचैतन्य श्रीकेशवचैतन्य श्रीबाबा चैतन्य सद्गुरुभ्यो नमः ॥ यह उल्लेख है। निलाजी राय अपने परम्पराके अभङ्गोंमें कहते हैं, 'राघव चैतन्य-

ने अनुष्ठान किया, उनपर द्वैपायन प्रसन्न हुए। राघवके चरणोंमें केशवशरण गये और उनकी (केशवकी) बाबाजीपर पूर्ण कृपा हुई।' बहिणाबाई कहती हैं,....'राघवके हृदयमें वह मन्त्र रखा, केशव चैतन्य, बाबाजी चैतन्य तुकाजीपर प्रसन्न हुए।' केशव और बाबाजी दोनों यदि एक ही होते तो 'चैतन्य' पद दोनों नामोंके साथ अलग-अलग न लगता। फिर 'प्रसन्न हुए' में क्रिया बहुवचनान्त है। 'देवाशीं भांडण' (भगवान्‌से झगड़ा) नामक प्रकरणके २४वें अभङ्गमें बहिणाबाई कहती हैं, 'इसने (भगवान्‌ने) बाबाजीके हाथों तुकाजीका ऋण उतारा।' महीपतिबाबाने भी गुरु-परम्परा देते हुए इन तीनों पुरुषोंको अलग-अलग बताया है—'राघव चैतन्य जग-विख्यात। केशव चैतन्य महाभक्त। बाबा चैतन्य प्रसिद्ध सन्त। ज्यांणीं भक्ति-पंथ स्थापिला॥ (भक्तलीलामृत अ० ५–२९७) बहिणाबाईके शिष्य दीन कविने इसीका समर्थन किया है। रङ्गनाथ स्वामीने अपनी 'सन्तमालिका' में 'राघव चैतन्य, केशव चैतन्य। बाबा चैतन्य, तुकोबा।' कहकर तुकारामजीकी त्रयीके साथ तुकारामजीका स्मरण किया है। देहूकी अनेक हस्तलिखित पोथियोंमें, 'राघव चैतन्यके शिष्य केशव चैतन्य, उनके शिष्य बाबाजी चैतन्य, उनके शिष्य तुकाजी चैतन्य' यही लिखा हुआ मिला है। ये पोथियाँ तुकाजीके ही वंशजोंके यहाँ परम्परासे लिखी और रखी हुई हैं, अतः प्रामाणिक हैं। इन सब प्रमाणोंसे 'चैतन्य-कल्पतरु'कार निरञ्जनबाबाका यह कथन कि केशव चैतन्य ही बाबाजी चैतन्य हैं, समूल कट जाता है और यह सप्रमाण निश्चित होता

है कि राघव चैतन्य तुकाजीके परात्पर गुरु थे, केशव चैतन्य परम गुरु थे और बाबाजी चैतन्य अपने गुरु थे ।

१२ बङ्गालके चैतन्य-सम्प्रदायसे सम्बन्ध नहीं

ऊपरके विवेचनसे तुकारामजीकी गुरुत्रयी निश्चित हुई । पर राघव चैतन्यकी पूर्वपरम्परा निश्चितरूपसे जाननेका कोई अमोघ साधन उपलब्ध नहीं है । बडवाल सिद्धके साथ उनका सम्बन्ध जोड़नेकी जो चेष्टा की गयी है वह व्यर्थ है, उसके लिये कुछ भी प्रमाण नहीं है । उसी प्रकार बङ्गालके श्रीकृष्ण चैतन्य-सम्प्रदायके साथ भी तुकारामजीका कोई सम्बन्ध नहीं जान पड़ता । बङ्गालमें श्रीकृष्ण चैतन्य या गौराङ्ग प्रभु पन्द्रहवीं शताब्दीमें विख्यात श्रीकृष्ण-भक्त हुए । बंगालभरमें उन्होंने श्रीकृष्ण-भक्तिका प्रचार किया और आज भी बङ्गालमें श्रीकृष्णका नाम जो इतना प्यारा है वह उन्हींके प्रभावका फल है । श्रीचैतन्य महाप्रभुका अत्यन्त प्रेम-रस-भरित चरित्र अंग्रेजी भाषामें स्वर्गीय शिशिरकुमार घोषने लिखा है । अंग्रेजी जाननेवाले पाठक उसे अवश्य पढ़ें । उस ग्रन्थके २६२वें पृष्ठपर (सन् १८९८ ई० का संस्करण) शिशिर बाबू लिखते हैं—'पूनाके सन्त तुकाराम गौराङ्ग प्रभुके अथवा उनके शिष्यके शिष्य थे, यह बतलानेकी कोई आवश्यकता नहीं अर्थात् यह बात स्पष्ट ही है ।' इस बातके समर्थनमें उन्होंने ये बातें लिखी हैं कि गौराङ्ग प्रभु पण्ढरपुर होकर गये थे, पण्ढरपुरमें तुकारामजी रहते थे, गौराङ्ग प्रभु स्वप्नमें उपदेश दिया करते थे, इत्यादि । इन बातोंसे कुछ लोगोंकी यह धारणा हो गयी है कि स्वयं गौराङ्ग प्रभु अथवा उनके किसी शिष्यसे तुकारामजीने

उपदेश ग्रहण किया था । परन्तु बङ्गालके चैतन्य-सम्प्रदायके साथ तुकारामजीका कुछ भी सम्बन्ध नहीं दीख पड़ता । तुकाराम-जीका जिस समय जन्म हुआ उस समय कृष्ण चैतन्यको समाधिस्थ हुए ७५ वर्ष बीत चुके थे । चैतन्य प्रभुका समय संवत् १५४२–१५९० है, इसके ७५ वर्ष बाद तुकाजीका जन्म हुआ । कृष्ण चैतन्य ही बाबा चैतन्य होकर तुकारामजीको स्वप्नमें उपदेश दे गये, ऐसा कहें तो कृष्ण चैतन्यकी पूर्वपरम्परा वही होगी जो बाबाजी चैतन्य तुकारामजीसे कह गये अर्थात् राघव चैतन्य और केशव चैतन्य । पर यह बात किसीको स्वीकार न होगी । इसलिये यह बात भी नहीं मानी जा सकती कि श्रीचैतन्य तुकारामजीके गुरु थे । अब यदि कोई यह कहे कि राघव चैतन्य ही कृष्ण चैतन्यके शिष्य थे तो श्रीकृष्ण चैतन्यके प्रसिद्ध शिष्योंमें राघव चैतन्य नामके कोई भी शिष्य नहीं हैं और इस बातका कहीं कोई प्रमाण नहीं है कि राघव चैतन्यके गुरु कृष्ण चैतन्य थे । इसलिये कृष्ण चैतन्य अथवा उनके कोई शिष्य तुकारामजीके गुरु थे, यह बात प्रमाणित नहीं होती । फिर दूसरी बात यह है कि बङ्गाल-उत्कलमें श्रीकृष्ण चैतन्यका जो सम्प्रदाय है वह मध्वाचार्यके द्वैत-सम्प्रदायसे निकला है । इस सम्प्रदायमें राधा-कृष्णकी भक्ति प्रधान है । तुकारामजीकी उपासनामें अथवा यह कहिये कि महाराष्ट्रके किसी भी भक्तकी उपासनामें राधाकी विशेष महिमा नहीं है । तुकारामजी-का भक्तिमार्ग भी द्वैत नहीं, अद्वैत है । तुकारामजीके अभङ्गोंमें अद्वैत-सिद्धान्त स्पष्ट ही है । इसलिये किसी भी द्वैत-सम्प्रदायके साथ तुकारामजीका नाता नहीं जोड़ा जा सकता । चैतन्य-

सम्प्रदाय और महाराष्ट्रीय भागवत-सम्प्रदाय दोनों ही कृष्ण-भक्ति-के सम्प्रदाय हैं सही, पर चैतन्य-सम्प्रदायकी कोई भी विशिष्टता तुकारामजीके अभङ्गोंमें नहीं है और महाराष्ट्रीय भागवत-धर्मके प्रवर्तक ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथादि कृष्ण-भक्तोंके आचार-विचारोंसे रत्तीभर भी भिन्नता तुकारामजीके चरित्र और अभङ्गोंमें नहीं है। फिर ऐसी कौन-सी बात है जिससे यह कहा जा सके कि उनके चित्तपर जो संस्कार थे वे महाराष्ट्रके नहीं, महाराष्ट्रसे बाहरके थे? ऐसी निराधार बात कहनेमें हेतु भी क्या हो सकता है? बङ्गालके श्रीकृष्ण चैतन्यके प्रति हमारा पूर्ण प्रेम और आदर है, पर यह भी स्पष्ट बतला देना आवश्यक है कि चैतन्य-सम्प्रदायके साथ उनका कुछ भी लगाव मानना सर्वथा निराधार है। कृष्ण-भक्तिके वैष्णव-सम्प्रदाय भारतवर्षमें अनेक हैं, पर प्रत्येक सम्प्रदायकी अपनी कोई-न-कोई विशिष्टता है। पण्ढरपुरके वैष्णव-सम्प्रदायकी भी कुछ विशिष्टता है। यह विशिष्टता पहले ज्ञानेश्वरीमें प्रकट हुई और उसी लकीरपर नामदेव, एकनाथ, तुकाराम आदि सभी सन्त चले हैं। इन सबकी सब बातोंमें एक मति है। महाराष्ट्रीय स्वभावमें जो एक प्रकारकी दृढ़ता है, एक प्रकारका ऐसा अपनापन है कि अपना छोड़ना नहीं और दूसरेका सहसा लेना नहीं, और तुकारामजीके स्वभावमें भी मराठोंकी जो लगन और तेजी है उसको देखते हुए भी बङ्गालके चैतन्य-सम्प्रदायके साथ तुकारामजीका कुछ भी मेल नहीं बैठता।

१३ कवित्व-स्फूर्ति

तुकारामजीने आत्मचरितके अभंगोंमें यह कहा है कि स्वप्नमें गुरूपदेश होनेके पश्चात् ही मुझे कवित्व-स्फूर्ति हुई, यह पाठकोंको

स्मरण होगा। तुकारामजीकी इस उक्तिसे ही यह स्पष्ट है कि गुरूपदेशके पूर्व उन्होंने कोई कविता नहीं की। यह कवित्व-स्फूर्ति उन्हें नामदेवकी प्रेरणासे हुई। व्युत्पत्तिके बलपर कविता करनेवाले कवि बहुत होते हैं, पर प्रसादगुण दैवी स्फूर्तिके बिना नहीं उत्पन्न होता। तुकारामजीको कवित्व-स्फूर्ति कैसे हुई, इस विषयमें उनके दो अभंग हैं। एकमें तुकाराम कहते हैं कि 'नामदेव पाण्डुरङ्गके साथ स्वप्नमें आये और यह काम बता गये कि कविता करो, वाणी व्यर्थ व्यय न करो, तुले हुए शब्दोंमें कविता किये चलो, तुम्हारा अभिमान श्रीविट्ठलनाथने ओढ़ लिया है। यह कहकर उन्होंने मुझे सावधान किया। नामदेवने शतकोटि अभंगोंकी संख्या पूर्ण करनेको कहा, जो अभंग उन्होंने रचे थे उनसे जो बाकी रहे वे मैंने पूरे किये।' दूसरे अभंगमें तुकारामजी-ने भगवान्से प्रार्थना की है कि 'हे भगवन्! आप मुझे अपनी शरणमें लेंगे तो मैं आपके सङ्ग, सन्तोंकी पंक्तिमें आपके चरणोंके पास रहूँगा। कामनाका ठाँव छोड़कर आया हूँ, अब मुझे उदास मत करो। आपके चरणोंमें सबके अखीरमें भी मुझे स्थान मिले तो भी सन्तोष है। मेरी चित्तवृत्ति अभी मलिन है। आपका आधार मिलनेसे मुझे विश्रान्ति मिलेगी। नामदेवकी बदौलत तुका-को स्वप्नमें भगवान् मिले। वही प्रसाद चित्तमें भरा हुआ है।'

दोनों अभंगोंका स्पष्टार्थ ऊपर दे दिया है। उससे यही समझ पड़ता है कि तुकारामजीको स्वप्नमें पाण्डुरङ्ग और नामदेवके दर्शन हुए, और नामदेवने भगवान्के सामने तुकारामजीसे कहा कि अब लोगोंसे तुम व्यर्थकी बातचीत करनेमें अपनी वाणी मत खर्च

करो, कविता करो; मुखसे अभंग-पर-अभंग निकालते चलो, पाण्डुरङ्ग-ने तुम्हारा अभिमान ओढ़ लिया है, वह सदा तुम्हारे पीछे खड़े रहेंगे और तुम्हारी वाणीमें प्रेम, प्रसाद, स्फूर्ति भरते रहेंगे। नामदेवने शतकोटि अभंग रचनेका संकल्प किया था पर यह संकल्प पूरा होनेमें कुछ कसर रह गयी थी, वह तुकारामजीने पूरी की। इस प्रकार शतकोटि संख्या * पूर्ण हुई। दूसरे अभंगमें तुकाराम-ने भगवान्‌से जो प्रार्थना की है उसमें तुकाराम अपनी यही इच्छा प्रकट करते हैं कि 'भगवान् मुझे अपने चरणोंमें शरण दें और मैं ज्ञानदेव, नामदेव, एकनाथ, कबीर आदि महात्माओं-का सत्सङ्ग लाभ करूँ, उनके अनुभवोंको अनुभव करूँ, उन्हींके

---

* महीपतिबाबाने 'भक्तलीलामृत' अ० ३२ में शतकोटि संख्याका हिसाब यों दिया है—नामदेवने चौरानवे कोटि चालीस लाख अभंग रचे, पीछे नौ लाख अभंग ललितके रचे और बाकी पाँच कोटि इक्यावन लाख अभंग रचनेको तुकारामसे कहा! तुकारामजीके मुखसे कुल कितने अभंग निकले, इसकी गणना करना असम्भव है। इस सम्बन्धमें दो अभंग प्रसिद्ध हैं। 'वेदाचे अभंग केले श्रुतिपर' यह अभंग इन्दुप्रकाश-गाथाके चरित्र-भागमें है। इसमें यह कहा है कि तुकारामजीने एक कोटि अभंग भक्तिपरक, एक कोटि ज्ञानपरक, एक कोटि अनुभवपरक, पचहत्तर लाख वैराग्यपरक, पचहत्तर लाख नामपरक इस प्रकार साढ़े चार कोटि, और साठ हजार उपदेशपरक, साठ हजार रूपवर्णनपरक तथा कुछ श्रुति, आत्मबोध आदिपर रचे। कुल हिसाब इसमें पाँच कोटि सत्तर लाखका दिया है। इसके सिवा एक अभंग मुझे और मिला है जिसमें यह कहा है कि तुकारामजीने सात कोटि अभंग रचे जिनमेंसे साढ़े छः कोटि स्वयं गणेशजीने अपने हाथसे लिखे! यह जो कुछ हो, इस समय हमारे लिये तो तुकाराम महाराजके साढ़े पाँच हजार ही अभंग बचे हैं।

साथ रहूँ चाहे उनकी पंक्तिमें मुझे सबके बाद ही स्थान मिले, क्योंकि वे पुण्यपुञ्ज सिद्ध महात्मा हैं और मेरी चित्तवृत्ति अभी मलिन है। पर भगवन्! आपका और इन सन्तोंका आश्रय मिलनेसे मेरी मति शुद्ध हो जायगी और मैं आपके निजरूपमें समरस होकर परमानन्द प्राप्त करूँगा।' स्वप्नमें भगवान् मिले, इसके लिये तुकाराम नामदेवके कृतज्ञ हैं, कहते हैं कि नामदेवकी ही यह कृपा है जो स्वप्नमें भगवान् मिले। स्वप्नसे जागनेपर तुकारामजीने इस स्वप्नको अन्य स्वप्नोंके सदृश मिथ्या नहीं माना। वह सत्य-स्वप्न था, भगवान् और भक्तके मिलनकी वह एक विशेष अवस्था थी और तुकारामजीने यह अनुभव किया कि उस मिलन और भगवत्कृपाका आनन्द स्वप्नके बाद भी हृदयमें भरा हुआ है। तुकारामजीने यह जाना कि सचमुच ही भगवान्‌का मुझपर अनुग्रह हुआ है!

आठवाँ अध्याय

चित्तशुद्धिके उपाय

तुका मन राखो, अंकुस-अधीन।
प्रतिदिन नवीन, जागरण ॥ १ ॥

*   *   *

एकांतमें बैठ, शुद्ध करो चित्त।
सो सुख अनंत, पार नाही ॥ १ ॥
आयके हियमें, रहेंगे गोपाल।
साधन सुफल, घर बैठे ॥ २ ॥

१ अध्यात्म-सार

जीव ब्रह्म ही है, ब्रह्मसे भिन्न नहीं। और यही यदि शास्त्रका सिद्धान्त और सन्तोंका अनुभव है तो इसकी प्रतीति सब जीवोंको क्यों न हो? ब्रह्म सर्वगत और सदा सम है; परमात्मा समीप अन्तरमें हैं, भूतमात्रके हृदयमें हैं, वह सर्वभूतान्तरात्मा हैं, सर्वव्यापी और सर्वसाक्षी हैं; जलमें, थलमें, काष्ठ और पाषाणमें सर्वत्र रम रहे हैं, उनसे कोई स्थान खाली नहीं; यह यदि सत्य है तो सबको सब समय वह सुलभ क्यों नहीं होते? वह परमात्मसुख 'यदि पवित्र और रम्य, वैसे ही सुखोपाय सुगम्य और सुसुख परम धर्म्य है' (ज्ञानेश्वरी अ० ९। ५५) तो सब जीव उसीपर क्यों नहीं टूट पड़ते? कौड़ी-कौड़ीके लिये जो लोग रात-दिन मरा करते हैं वे अनायास मिलनेवाले इस परम सुखके पीछे क्यों

नहीं पड़ते ? उससे किनारा काटकर संसार दुःख-सागर है, भवनदी दुस्तर है, मायामोह दुर्घट है, विषय-वासना बड़ी कठिन है, इत्यादि रोना नित्य रोते हुए भी ये लोग संसारमें ही क्यों अटके रहते हैं ? अपना सहजसिद्ध अमरपद छोड़कर ये जन्म-मृत्युके नाम-को क्यों रोया करते हैं ? उन्हें मोक्ष दुर्लभ और परमार्थ दुर्गम क्यों जान पड़ता है ? जप-तप-ध्यानादि नानाविध साधनोंके कष्ट क्यों उठाते हैं ? निजका स्वानन्द-साम्राज्य छोड़ विषयकी नकली चमकवाले काँचके टुकड़े बटोरनेवाले कङ्गाल बने क्यों फिरते हैं ?

सत्पुरुषोंको यही तो बड़ा अचरज लगता है ! जीव जो ऐसी उलटी बोली बोलते हैं, उसे सुनकर उन्हें बड़ी हँसी आती है ! मृत्युलोककी यह उलटी रहन-सहन देखकर वे विस्मित होते हैं ! वे यह कहते हैं, 'यह भाषा छोड़ दो' इसे उलटकर बोलो, उलटकर देखो । इस समझको छोड़ो कि मैं जीव हूँ, सांसारिक हूँ, दुखी हूँ; और यह कहो कि मैं ब्रह्म हूँ, मैं मुक्त हूँ, मैं सुखी हूँ, तो तुम सचमुच ही ब्रह्म, मुक्त और सुखी हो । चाभीको दाहिने घुमा रहे हो सो बायें घुमाओ तो ताला खुल जायगा । जिधर जा रहे हो उधर पीठ फेर दो, आगे न देख पीछे देखो, बाहरकी ओर आँख लगाये हो सो अन्दरकी ओर लगाओ, प्रवाह छोड़ उद्गमकी ओर मुड़ो तो सचमुच ही तुम मुक्त हो, सुखी हो, ब्रह्मस्वरूप हो । इसमें कठिनाई ही क्या है ? यही तो परमार्थ है । जीव अपने संकल्पसे ही बँधा है, संकल्पसे ही मुक्त है । मैं बद्ध जीव हूँ, यही रोना रो रहे हो, इसीसे जन्म-मरण, पाप-पुण्य, विधि-निषेध और बन्ध-मोक्षके चक्करमें पड़े हो; पर पैरों-

को छुड़ाकर नलिका-यन्त्रसे उड़ जानेवाले तोतेकी तरह यह जीव यदि अहं और मम दोनों संकल्प छोड़ दे तो यह उसी क्षण ब्रह्म ही है। कौन किसको बाँधता है, कौन किसको छुड़ाता है? यह सब संकल्पकी माया है। मन जैसा संकल्प करता है, वैसा ही चित्र उसपर खिच जाता है। संकल्प, कल्पना, संसार, वासना, वृत्ति, मन, माया—ये 'सातों एक रूप' हैं। जिस संकल्पसे जीव बँधा है उसके छूटते ही जीव मुक्त है। अहं और ममकी दो रस्सियों-से यह बँधा है, इन रस्सियोंको काटते ही जीव स्वभावतः ही मुक्त है। संकल्पके खादके जलते ही जीवका कालापन कट जाता है और वही उज्ज्वल सोना होता है। कल्पनाका ही बन्धन होता है और कल्पनाका ही मोक्ष होता है और जीव जहाँ-का-तहाँ बन्धमोक्षरहित निर्विकल्प निरञ्जन आनन्दस्वरूप सदासे है ही, परन्तु—

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि॥

(गीता ९। ३)

जीवकी ऐसी श्रद्धा हो तो तत्क्षण ही मुक्त है। पर जीवकी ऐसी श्रद्धा सहसा नहीं होती इसीलिये परमार्थके लिये उसे इतना प्रपञ्च करना पड़ता है, अनेक साधन करने पड़ते हैं, अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं।

२ चिरञ्जीव पद

यह सारा वेदान्त तुकारामजीने सैकड़ों बार पढ़ा, सुना और कहा भी था। वह अपने निश्चित साधन-मार्गपर चले जा रहे

थे। पण्ढरीकी वारी, एकादशी व्रत, कथा-कीर्तन-श्रवण, सद्ग्रन्थ-पाठ इत्यादि वह नियमपूर्वक करते थे। गुरुका प्रसाद उन्हें मिल चुका था। नामदेवरायने स्वप्नमें उन्हें दर्शन दिये और कवित्वकी स्फूर्ति प्रदान की तबसे कीर्तन करते हुए तथा अन्य अवसरोंपर भी उनके मुखसे अभंग धाराप्रवाह निकलते ही जाते थे। श्रोता गद्गद होकर उन्हें धन्यवाद देते थे। चारों दिशाओंमें उनकी कीर्ति फैल रही थी। बहुत लोग उन्हें सन्त कहकर पूजने लगे थे, उनके चरणोंमें मस्तक रखकर कोई उनके वक्तृत्वकी, कोई कवित्वकी और कोई उनके साधुत्वकी भूरि-भूरि प्रशंसा किया करते थे! इस प्रकार उनकी प्रतिष्ठा बढ़ती ही जा रही थी, उस समय उनकी २७-२८ वर्षकी आयु रही होगी। इस वयस्में इतनी लोकमान्यता विरलेको ही नसीब होती है। परन्तु अधकचरे पारमार्थिक इतनेसे ही सन्तुष्ट होकर गुरु बन जाते और शिष्य बनानेकी दूकान खोल देते हैं, गुरुपनेके आडम्बरपर चढ़ते हैं और अन्तमें बुरी तरहसे नीचे गिरते हैं। ऐसे उदाहरण हमारे-आपके सामने भी बहुत हैं। चार-पाँच वर्ष साधन किया, स्वप्नमें दो-चार दृष्टान्त मिल गये, साक्षात्कारकी झलक-सी मिल गयी, बस हो गये कृतकृत्य! सीधे-सादे, भोले-भाले, आस-पास जमा होने लगे, स्तुति-स्तोत्र गाने लगे, बस गुरुजी जम गये और ऋद्धि-सिद्धिका जरा-सा चमत्कार देखकर उसीमें अटक गये, जिस रास्तेसे ऊपर चढ़े थे वह रास्ता भी भूल गये, होते-होते जितना ऊपर चढ़े थे उससे दूना नीचे जा गिरे! ऐसी विडम्बनाएँ अनेक हुआ करती हैं! जिसका परमार्थ-साधन दम्भसे ही आरम्भ होता है उनकी बात छोड़ दीजिये,

पर जो शुद्ध अन्तःकरणसे परमार्थ साधनेकी चेष्टा करते हैं उनमें-से भी कितने ही इसी तरह घहराकर नीचे जा गिरते हैं। ऐसे लोगोंके लिये एकनाथ महाराजने 'चिरञ्जीव पद'के नामसे ४२ ओवियोंका एक फड़कता हुआ प्रकरण लिखा है। साधकोंके सावधान रहनेके लिये वह बड़ा ही उपकारक है। इसमें एकनाथ महाराजने यह बतलाया है कि विषय केवल सांसारिकोंका ही नाश नहीं करते, प्रत्युत साधकको भी अनेक प्रकारसे धोखा देते हैं। साधकके लिये सबसे पहले यह आवश्यक है कि उसे अनुताप और वैराग्य हुआ हो। वह देहसुखसे यदि ललचायेगा तो उसके परमार्थकी जड़ ही कट जायगी।

'त्याग केला पूज्यते कारणें। सत्संग सोडूनि पूजा घेणें।
शिष्यममता धरोनि राहणें। हें वैराग्य राजस॥'

अर्थात् पूज्य होनेके लिये जो त्याग किया जाता है, सत्संग छोड़कर जो पूजा ली जाती है और शिष्योंकी ममता जो नहीं छूटती, वह राजस वैराग्य है। यह वैराग्य परमार्थको डुबाने-वाला होता है। घर छोड़ा और मठ बनवाया, स्त्री-पुत्र छोड़े और शिष्य बटोरे तो इससे क्या बना? विषय-भोगेच्छा जिस वैराग्यसे निर्मूल हो और प्रारब्धकी गतिसे जो भोग प्राप्त हों उनमेंसे भी मनको निःसंग अलग निकाल लेते बने, वैसा सात्त्विक वैराग्य ही साधक-के लिये आवश्यक है। विषय-भोग और लौकिक प्रतिष्ठाको साधक सर्वथा त्याग दे। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये पाँचों विषय किस प्रकार साधकको ठगते हैं यह देखिये। जब लोग किसीमें जरा-सा भी वैराग्य देख पाते हैं तब वे उसकी स्तुति करने और उसे पूजने लगते हैं। कभी-कभी तो यहाँतक कहने लगते

हैं कि यह भगवान्‌के अवतार हमें तारनेके लिये आये हैं। 'महाराज' कहकर उसे सम्बोधन करते हैं। अपने ये गीत साधकको प्यारे लगते हैं, दूसरी बातें अब उसे अच्छी नहीं लगतीं। पर बड़े मजेकी बात यह है कि ये ही लोग पीछे उसकी निन्दा भी करने लगते हैं। पर यह स्तुतिके ही शब्दोंमें भूला रहता है और स्वहितसे हाथ धो बैठता है। शब्द इस प्रकार साधकको नष्ट करता है। इसके आसपास इकट्ठे होनेवाले 'भक्त' इसे बैठनेके लिये उत्तम आसन देते हैं, सोनेके लिये पलङ्ग ला देते हैं, पहननेके लिये उत्तम-से-उत्तम वस्त्र अर्पण करते हैं, देवी-देवताओंके योग्य इन्हें भोग लगाते हैं, नर-नारी सेवा-शुश्रूषा करते हैं, हाथ, पैर, सिर दबाते हैं, उस मृदुस्पर्शमें यह अटक जाता है, फिर उसे देहकष्ट कठिन जान पड़ते हैं। इस प्रकार स्पर्शविषय साधककी साधनामें बाधक होता है। इसी प्रकार लोग साधकको मेवा, मिठाई, उत्तमोत्तम पक्वान्न खिलाते हैं, उसकी जिस चीजपर इच्छा चलती है वही वे ला देते हैं, गलेमें फूलोंके हार पहनाते हैं, भालमें केसर-कस्तूरीकी खौर और चन्दनका लेप लगाते हैं, मधुर गायन सुनाते हैं इत्यादि प्रकारसे रूप, रस, गन्ध भी उसे धोखा देते हैं। और साधक सावधान न होनेसे इन 'भक्तों' की ममतामें फँसता है। कोमल काँटेके समान इसका कोमल वैराग्य ऐसी संगतसे टूटकर नष्ट हो जाता है। यह लोक-प्रतिष्ठाके पीछे पड़ता है। इस प्रकारसे सहस्रों साधक अपनी हानि कर बैठते हैं। इस प्रकार गिरे हुए साधक फिर ऊपर नहीं उठ सकते। हाँ, 'जरी कृपा उपजेल भगवंतीं। तरीच मागुता होय विरक्त॥' 'यदि

भगवान्‌को दया आ जाय तो ही वह फिरसे विरक्त हो सकता है।' सच्चा विरक्त कैसा होता है? एकनाथ महाराज उसके लक्षण बतलाते हैं—

'....जो स्थान प्रिय होता है उसे वह त्याग देता है। सत्सङ्गमें सदा स्थिर रहता है, प्रतिष्ठा पानेके लिये कभी बेचैन नहीं होता, अपना कोई नया पन्थ नहीं चलाता, वह समझता है कि उससे अहंता बढ़ेगी, जीविकाके लिये वह किसीकी ठकुरसुहाती नहीं करता। प्रापञ्चिक लोगोंमें बैठना, व्यर्थ बातचीत करना, अपना बड़प्पन दिखाना, अच्छा खाना, यह सब उसे पसन्द नहीं होता। वह लोकप्रियता नहीं चाहता, वस्त्रालङ्कार नहीं चाहता, परान्नका स्वाद नहीं चाहता, द्रव्य जोड़ना नहीं चाहता। स्त्रियोंमें बैठना या स्त्रियोंको देखना या स्त्रियोंसे पैर दबवाना या उनका बोलना उसे पसन्द नहीं। अपनी स्त्रीसे भी मतलब-भरका ही वास्ता रखना चाहिये, आसक्त होकर चित्तको कदापि उसमें लगाये न रहना चाहिये। नर-नारी शुश्रूषा करते हैं, भक्ति-ममता उपजाते हैं, पर जो शुद्ध पारमार्थिक है वह स्त्रियोंकी सोहबत कभी नहीं करता। अखण्ड एकान्तमें रहना चाहिये, प्रमदाके साथ तो कभी नहीं; जो निःसङ्ग निरभिमान है उसी-का सङ्ग करना चाहिये। परिवारके भरण-पोषणके लिये और कुछ न मिले तो न सही, सूखा अन्न ही सही; ऐसी स्थितिमें जो रहना है, वही शुद्ध वैराग्य है।

ऐसी स्थिति नाहीं ज्यासी। तेव कृष्णप्राप्ति कैंची त्यासी॥
यालागीं कृष्णभक्तासी। ऐसी स्थिति असावी॥ ३८॥

'ऐसी स्थिति जिसकी न हो उसे कृष्ण-प्राप्ति कैसी ? इसलिये कृष्ण-भक्त जो हो उसकी ऐसी स्थिति होनी चाहिये ।'

एकनाथ महाराजने यह कैसा अच्छा रास्ता दिखा दिया है ! सच्चे विरक्तमें ये सब लक्षण स्वभावतः ही होते हैं । जिनका वैराग्य सुकुमार हो वे इस आदर्शको सदा अपने सामने रखें । चाल-चलनमें ढीले-ढाले रहनेवाले अन्तमें फँसते ही हैं और ऐसे लोगोंकी संख्या सदा सर्वत्र ही बहुत काफी होती है । तुकोबाराय-जैसे सच्चे आदर्श विरक्त अत्यन्त दुर्लभ होते हैं और उन्हींको कृष्ण-मिलनका आनन्द और चिरञ्जीव पद प्राप्त होता है । तुकारामका वैराग्य अत्यन्त ज्वलन्त था, आत्म-संशोधन-सम्बन्धी उनकी सावधानता अखण्ड थी, अन्तरङ्गमें कौन-कौन चोर घुस बैठे हैं उन्हें ढूँढ़-ढूँढ़कर पकड़ना और कान पकड़-पकड़कर निकाल बाहर करनेके काममें उनकी तत्परता असामान्य थी । आत्म-परीक्षणका ऐसा अभ्यास ही वह चीज है जिससे चित्त-शुद्धि होती है, मलिन संस्कार धुल जाते हैं, और नये जमने नहीं पाते । साधकको हाथ धोकर इसके पीछे पड़ना पड़ता है । अब हमें यह देखना है कि तुकारामजीने यह अभ्यास कैसे किया ? ग्रन्थाध्ययन हुआ, गुरूपदेश हुआ, तथापि आत्म-शोधनका कार्य अपने-आप ही करना पड़ता है । इसके लिये सदा चौकन्ना रहना पड़ता है । मन सरपट भागनेवाला घोड़ा है । वैराग्यके लगामसे उसकी चाल काबूमें करके उसे वशमें करना होगा । मनोनिग्रहके बिना सब साधन व्यर्थ होते हैं । मनोजय न होनेसे बड़े-बड़े उग्र तप भङ्ग हो गये हैं, बड़े-बड़े वीर चारों कोने चित

गिरे हैं और बड़े-बड़े पण्डित ज्ञानके शिखरसे गिरकर रसातल पहुँचे हैं। मन बड़ा बली है, दुर्जय है, दुर्धर है। तुकारामजी कहते हैं कि 'बड़े-बड़े बुद्धिमानोंको इसने चौपट किया है।' इसलिये विषयोंकी ओर सतत दौड़नेवाले इस मनोव्याघ्रपर आसन जमाकर जो इसे पीछे खींचेगा वही पुरुष सबसे बड़ा करामाती है। 'बात कुछ भी नहीं है पर मन अपने हाथमें नहीं है' यही तो सबका रोना है, इसलिये—

मागें परतवी तो बळी। शूर एक भूमंडळीं॥

'इसे जो पीछे फिरा लेगा वही बली है, वही एक इस भूमण्डलमें सूरमा है।'

अस्तु, तुकारामजीने मनसे कैसे-कैसे युद्ध किया, भगवान्‌की कृपा और सहायतासे उसे राहपर ले आनेके लिये क्या-क्या उपाय किये, आशा, ममता, तृष्णा, प्रतिष्ठा, गर्व, लोभ इत्यादि वृत्तियोंको सावधानतासे कैसे जीता और इस प्रकार चित्त-शुद्धिका मार्ग धैर्य और निग्रहसे कैसे तय किया यही अब देखना है।

२ सिद्धको साधनसे क्या काम ?
लोकप्रियताका रहस्य

भावुकोंके चित्तमें यह शङ्का उठ सकती है कि तुकारामजी तो सिद्ध पुरुष थे, उनका तो संसार-कल्याणके लिये वैकुण्ठ-धामसे अवतार हुआ था, उन्हें चित्त-शुद्धिके साधनोंकी क्या आवश्यकता पड़ी? तुकारामजी जब स्वयं ही यह बतला रहे हैं कि संसारको वेदनीतिका मार्ग दिखाने, भगवद्भक्तिका डङ्का बजाने

और सन्तोंका मार्ग परिष्कृत करनेके लिये हम वैकुण्ठधामसे भगवान्‌का सन्देशा लेकर आये हैं तब सामान्य जनोंके समान उन्होंने चित्त-शुद्धिके उपाय ढूँढ़े और उन उपायोंद्वारा साधना करके वे लोक-कल्याण-कार्य करनेमें समर्थ हुए इत्यादि बातोंमें क्या रखा है? संसारका उद्धार करनेके लिये जिनका आगमन हुआ उनका चित्त अशुद्ध ही कब था जो उन्हें उसे शुद्ध करनेकी आवश्यकता पड़ी? वह तो मूलतः ही मनके स्वामी थे, उन्हें मनोजय करने या मलिन वृत्तिको शुद्ध करनेके लिये कुछ साधना करनी पड़ी, यह कहना ही विपरीत जान पड़ता है! इस प्रकरणको पढ़ते हुए भावुक पाठकोंके चित्तमें ऐसी शङ्का उठ सकती है, इसलिये उसका समाधान पहले ही करना उचित है। भगवान् और भगवदवतारस्वरूप महात्माओंके जो चरित्र हैं वे उनकी मनुष्यरूपमें अवतीर्ण होकर की हुई लीलाएँ हैं। उनके चरित्रभरमें ज्ञाताओंको विभूतिमत्त्व स्पष्ट ही दिखायी देता है। विभूतिमत्त्वके बिना उनके चरित्र इतने पावन, उज्ज्वल और लोक-कल्याणकारक हो ही नहीं सकते थे। विभूतिमत्त्वके बिना ऐसी निर्विघ्न कार्यसिद्धि, इतनी तेजस्विता, इतना यश उन्हें प्राप्त हो ही नहीं सकता था। मनने जो चाहा, कर दिखाया, यह सामान्य बात नहीं है। यह सब सच है, तथापि विभूतियों-को भी मनुष्यदेह धारण करनेपर मनुष्योचित लोकव्यवहार करना ही पड़ता है। ऐसा यदि न हो तो सामान्य जीवोंको उनके चरित्रसे कोई लाभ न होता—कोई बोध ग्रहण करनेका अवसर ही न मिलता। महात्माओंके चरित्रोंके दो अङ्ग होते हैं—

एक दैवी और दूसरा मानवी। दैवी अङ्ग देखकर हमलोग साश्चर्य कौतुक अनुभव करते हैं और उससे उनका विभूतिमत्त्व पहचानते हैं; और मानवी चरित्र हमारे अनुकरण करनेके लिये उदाहरणस्वरूप होता है। श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने विश्वरूप दिखाकर अपने ईश्वरत्वकी प्रतीति करा दी और—

मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥

—यह बतलाकर वर्णाश्रमादि धर्मसे लोक-संग्रहार्थ नियम भी बाँध दिये। भैंसेसे वेद कहलवाना, भीतको चलाना इत्यादि चमत्कारोंके द्वारा ज्ञानेश्वर महाराजने अपना ईश्वरत्व दिखा दिया और पैठणके ब्राह्मणोंसे शुद्धिपत्र प्राप्त करनेके उद्योग-के द्वारा मनुष्योचित व्यवहारका दृष्टान्त भी सामने रखा। तुकोबारायने इहलोकसे चलते-चलाते अन्तमें सदेह वैकुण्ठ-गमन करके अपना विभूतिमत्त्व संसारको दिखा दिया और जीवनभर साधक-की अवस्थामें रहकर संसारको भगवद्भक्तिका सीधा मार्ग भी बतला दिया 'भूत-दया ही सन्तोंकी पूँजी है' इस अपनी कहनी-को उन्होंने अपनी रहनीसे ही चरितार्थ कर दिखाया है। इस बातको तुकोबारायके चित्तशुद्धिके उपायोंका विवरण पढ़ते हुए ही नहीं, उनके सम्पूर्ण चरित्रको अवलोकन करते हुए पाठक ध्यानमें रखें। तुकोबाराय जितना अपना हृदय खोलकर बोले हैं उतना और कोई नहीं बोला है। सबको एक ही जगह जाना होता है। कोई कूदता-फाँदता जाता है, कोई धीरे-धीरे चलता है। शेर एक ही छलाँगमें बारह हाथ पार करता है। कोई पिपीलिका-मार्गसे जाते हैं, कोई विहङ्गम-मार्गसे जाते हैं। कोई

गणितज्ञ चार ही कड़ियोंमें हिसाब लगाकर सवालका जवाब निकाल लेता है, किसीको बारह कड़ियाँ हिसाब लगाना पड़ता है। पहलेकी बुद्धिमत्ताकी प्रशंसा की जाती है, पर हिसाब फैलाकर सम्पूर्ण क्रम दिखानेकी रीति सभी विद्यार्थियोंकी समझमें आती है। चार ही कड़ीमें सवालका जवाब ले आनेकी रीति जानते हुए भी जो शिक्षक बीचकी कोई कड़ी न छोड़कर सम्पूर्ण क्रम समझाकर दिखा देता है वह अत्यन्त लोकप्रिय होता है, उसकी बतायी रीति सबकी समझमें आती है, उसीके बताये मार्गसे सब चलते हैं, और जो कोई उसके पाँव-पर-पाँव रखकर चलता है वह भी गन्तव्य स्थानको पहुँचता है। तुकारामजीका यही मार्ग था और ऐसे मार्गदर्शक होनेके कारण ही वह अत्यन्त लोकप्रिय हुए!

संसारतापें तापलों मी देवा !

'हे भगवन्! संसारके तापसे मैं दग्ध हो चुका।' यहाँसे लेकर—

तुका झाला पांडुरंग !

'तुका पाण्डुरङ्ग हो गया।'—तक बीचमें जो-जो पड़ाव हैं उन सबको तुकोबारायने अपने अभंगोंमें स्पष्ट दिखाया है।

पतित मी पापी शरण आलों तुज ।

'मैं पतित पापी तेरी शरणमें आया हूँ।' यहाँ पहला पत्थर गड़ा, और—

बीज भाजुनी केली लाही।
आम्हां जन्ममरण नाहीं ॥

'बीज भूँजकर लाई बना डाला। अब हमें जन्म-मरण नहीं रहा।'—यहाँ आकर यात्रा समाप्त हुई, आखिरी पत्थर गड़ा। इसके बीचमें मील-मीलपर पत्थर गाड़कर उन्होंने भक्तिमार्गके इस रास्ते-में ऐसी सुविधा कर दी है कि तुकारामजीकी अभंगवाणी हृदयमें धारणकर कोई भी इस पन्थका पथिक मील-मीलपर गड़े हुए पत्थरों-को देखते हुए चलता चले। आजतक बहुतोंने बहुत रास्ते बनाये होंगे; पर छोटे-बड़े, सुजान-अजान, ब्राह्मण-चाण्डाल, सबल-दुर्बल, पुण्यवान्-पापी सबके लिये निधड़क जानेयोग्य ऐसा सुगम, प्रशस्त और आनन्द देनेवाला रास्ता जैसा तुकारामजीने बना दिया वैसा और किसीने कहीं न बनाया। भूमि तो वेदोनारायणकी ही है, पर तुकारामजीने कुछ पुराने और कुछ नये स्वयं फोड़कर तैयार किये हुए पत्थर देकर यह राजमार्ग—राजमार्ग नहीं, सन्त-मार्ग—तैयार किया है। इस मार्गपर जिसे जो अभीष्ट हो वह मिलता है। मार्ग भी परिचित जान पड़ता है। तुकारामजीकी सोहबतसे मनका उत्साह बढ़ता है। मार्ग लम्बा होनेपर भी सुगम जान पड़ता है। यहाँ अपने मनका सङ्कल्प पूरा होता है, जो चाहिये वही मिलता है, अनायास ही रास्ता तय हो जाता है। रास्तेमें सुरम्य उपवन हैं, चाहे जितना रमिये और त्रिविध तापसे मुक्त होइये। स्थान-स्थानमें अभंग-दर्पण लगे हुए हैं, उनमें निश्चिन्त होकर अपना रूप निहारिये और उसकी मैल निकालकर उसे स्वच्छ कीजिये। चलता रास्ता होनेसे संग-साथकी कमी नहीं। निर्भय और सुरम्य मार्ग है। तुकारामजीने जी-जान लड़ाकर, बड़े कष्ट उठाकर यह दिव्य मार्ग निर्माण किया है। उनके साथ हम-

लोग यहाँतक चले आये हैं, आगे भी उन्हींका संग पकड़े चलते चलें। उन्होंने कैसे-कैसे कष्ट सहे इसकी कथा उन्हींके मुखसे सुनें। वह स्वयं अनेक कष्टोंको पार कर गये हैं पर इस मार्गपर उनकी दृष्टि है। चोर-डाकू इस मार्गपर बहुत कम आते हैं। चलिये तो अब तुकारामजीने कैसे मनोजय किया, लोक-लाज कैसे छोड़ी, जन-सम्बन्ध तोड़कर वह एकान्तवासमें कैसे रमे, घरमें घुसे हुए अहङ्कारादि चोरोंको उन्होंने कैसे खदेड़ा, भगवान्‌से कैसे सहायता माँगी और पायी, एकान्तवास और सत्सङ्गमें कितने प्रेमके साथ उन्होंने नाम-सङ्कीर्तन किया जो सब साधनोंका सार है, यह सब उनके चरित्रका मनोरम भाग उन्हींके मुखसे निश्चिन्त होकर श्रवण करें और उन्हींकी कृपासे हमलोग भी उनके पीछे-पीछे चलें।

४ मनोजयका उपाय

तुकारामजीने अपने मनको कितना मनाया है! मनोजयके बिना परमार्थ मिथ्या है। संसारका साम्राज्य मिल सकता है, पर मनोजय करना बड़ा ही कठिन है। इसलिये सार्वभौम राज्य प्राप्त करनेवाले चक्रवर्ती राजाकी अपेक्षा मनको अपने वशमें रखनेवाले साधुकी योग्यता सभी देशोंमें बहुत बड़ी मानी जाती है। यूरोपमें ईसा और सुकरातकी जो प्रतिष्ठा हुई वह किसी राजाकी कभी न हुई। हमारे इस पुण्य-भारतवर्ष-देशमें भी 'असंख्य जीव पैदा हुए, पैदा होकर मर मिटे; राव भी हुए, रंक भी हुए और सब आये और चले गये।' पर शुक्राचार्य, भीष्म, हरिश्चन्द्र, हनूमान्, भरत, शङ्कराचार्य, तुलसीदास, मीराबाई, रामदास, एकनाथ, तुकाराम, ज्ञानदेव, छत्रपति शिवाजी, अहल्याबाई इत्यादि मनोजयी पुरुषोंका

जो मान है वह दूसरोंका नहीं है। इसका कारण यही है कि मन-पर जीन कसकर अन्तःशत्रुओंको पछाड़नेवाले वीरकी योग्यता घोड़ेपर सवार होकर युद्धमें शत्रु-संहार करनेवाले योद्धाकी अपेक्षा कहीं अधिक है। प्रह्लादने अपने पितासे कहा—'पिताजी! पहले अपने चित्तमें बैठे हुए आसुरभावको निकालिये, क्योंकि वही आपका यथार्थ शत्रु है। 'समं मनो धत्स्व न सन्ति विद्विषः' मनको समत्वमें रखिये, उच्छृङ्खल और कुमार्गकी ओर सहज ही भागे जाने-वाले मनसे प्रबल और कोई शत्रु नहीं है, मनकी समता बनाये रहना ही अनन्तकी पूजा है।' (भागवत ७।८।१०) योगवासिष्ठ और भागवतमें मनोनिग्रहके उत्तम साधन बताये हैं। भागवतके (स्कन्ध ११।२३) भिक्षुगीतको पाठक अवश्य पढ़ें। हमारे सुख-दुःख-के कारण दूसरे लोग नहीं, देवता नहीं, गृह-कर्म-काल भी नहीं, प्रत्युत हमारा ही मन है। संसार मनःकल्पित है। त्रिगुणात्मक अनन्त वृत्तियाँ मनसे उठती हैं। दान, धर्म, यम-नियम, कर्म, ज्ञान, व्रत, तप इन सबका उद्देश्य मनको ही नियत करना है।

परो हि योगो मनसः समाधिः।

अर्थात् मनकी समाधि—समता ही परम योग है। जिसका मन समाहित है—शान्त, स्थिर है उसे दानादि करनेकी कोई आवश्यकता नहीं और जिसका मन समाहित नहीं है उसके लिये ये साधन अनुपयुक्त हैं। इन्द्र-चन्द्रादि देव मनके अङ्कित हुए, पर मन किसीके वशमें नहीं रहता। ऐसे दुर्जय मनपर जो सवार होगा, वह बलवानोंसे भी बलवान् है! मन कालमें नहीं समाता, मनको रोग नहीं होता, मन कृश नहीं होता, मनको पकड़ना चाहें

तो उसका ठौर-ठिकाना नहीं मिलता । ऐसे मनको कोई वशमें भी कैसे करे ? एकनाथ महाराजने कहा है—

जेविं हिरेनि हिरा चिरिजे ।
तेवीं मनेंचि मन धरिजे ॥

'जैसे हीरेसे हीरा चीरा जाता है वैसे ही मनको मनसे ही धरना होता है ।' मनोजयका यह सर्वोत्कृष्ट उपाय है । हीरेसे हीरा चीरा जाता है, वैसे ही मन मनसे ही जीता जाता है । मनको पुचकारकर हरि-गुरु-भजनमें जोतना, उसीमें रमाना, स्वरूपमें लगाये रहना यही एकमात्र मनोजयका उपाय है ।

मना सज्जना भक्तिपंथेंचि जावें ।

'रे सज्जन मन ! भक्तिके ही रास्तेपर चला कर' समर्थ रामदास स्वामीका उपदेश है । इस मनोबोधके २०५ श्लोकोंद्वारा उन्होंने मनको मना-मनाकर हरि-भजनका चसका लगाया है । मन चञ्चल और दुर्निग्रह है, यह अर्जुनने जब कहा तब भगवान्‌ने—

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥
(गीता ६ । ३५)

यही मनोजयका उपाय बताया है । इसपर ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं—

वैराग्याचेनि आधारें । जरी लाविलें अभ्यासाचिये मोहरे ॥
तरी केतुलेनि एकें अवसरें । स्थिरावेल ॥ ४१९ ॥
यया मनाचें एक निकें । जे देखिले गोडीचिया ठाया सोके ॥
म्हणोनि अनुभवसुखचि कवतिकें । दावीत जाइजे ॥ ४२० ॥

'वैराग्यके सहारे यदि इस मनको अभ्यासमें लगाया जाय तो कुछ काल बाद वह अवश्य स्थिर होगा । (४१९) मनकी एक बात बड़ी अच्छी है, जिस चीजका इसे चसका लगता है उसमें वह लग ही जाता है । इसलिये इसे आत्मानुभवका सुख बराबर देते रहना चाहिये ।' (४२०)

एक ओरसे वैराग्यकी धूनी रमाकर चित्तसे विषयोंका त्याग करना और दूसरी ओरसे हरि-चिन्तनका आनन्द लेना, इस प्रकार वैराग्य और अभ्यास दोनों अस्त्र-शस्त्रोंकी मारसे मनोदुर्ग दखल करना होता है । गुरुभक्त गुरुभक्तिका अभ्यास करें, प्रेमी सगुण-भक्तिका अभ्यास करें और ज्ञानी स्वरूपानुसन्धानका अभ्यास करें । सबका तात्पर्य और फल एक ही है । गुरु, सगुण और निर्गुण तीनों तत्त्वतः एक ही हैं । यथारुचि कोई भी अभ्यास दृढ़ हो जाना चाहिये । इस मनमें एक बड़ा भारी गुण यह है कि यह जहाँ लग जाता है वहाँ लग ही जाता है, फिर वहाँसे हटता नहीं । उसे यदि यह प्रपञ्च ही प्यारा है तो उसे बराबर यह समझाते रहना चाहिये कि यह विश्व-रचना दग्धपटवत् है और ऐसा वैराग्य दृढ़ करना चाहिये कि मन विषयोंसे ऊब जाय और दूसरी ओरसे उसे परमार्थका चसका लगाते हुए हरि-भजनमें समाधि देनी चाहिये । मनसे ही मनको मारना, हरि-भजनमें लगाकर उन्मन करना, हरिस्वरूपमें मिलाकर मनको मनकी तरह रहने ही न देना, यही तो मनोजय है ! एकनाथ महाराज कहते हैं—

या मनाची एक उत्तम गती । जरी स्वयें लागलें परमार्थीं ।
तरी दासी करी चारी मुक्ती । दे वांधोनी हातीं परब्रह्म ॥

'इस मनकी एक उत्तम गति है। यदि यह कहीं परमार्थमें लग गया तो चारों मुक्तियोंको दासियाँ बना छोड़ता है और परब्रह्मको बाँधकर हाथमें ला देता है।' ऐसे परब्रह्म हस्तगत हो जाता है। इतना बड़ा लाभ मनके वश करनेसे होता है।

गति अधोगति मनाची हे युक्ति। मन लावी एकांतीं साधुसंगें॥

'मनकी बड़ी अधोगति है, पर इस युक्तिसे उस मनको सत्सङ्गसे एकान्तमें लगाओ।'

५ मनपर विजय

मनोजयका यह रहस्य और यह महत्त्व ध्यानमें रखकर अब यह देखें कि तुकारामजीने मनको कैसे जीता।

मन करा रे प्रसन्न। सर्व सिद्धींचें साधन॥
मोक्ष अथवा बंधन। सुख समाधान इच्छा ते॥

'अरे! मनको प्रसन्न करो जो सब सिद्धियोंका साधन है, जो ही मोक्ष अथवा बन्धनका कारण है। (उसे प्रसन्न कर) उस सुख-समाधानकी इच्छा करो।'

उत्तम गति अथवा अधोगति देनेवाला मन है। मन ही सबकी माता है। साधक, पाठक, पण्डित, श्रोता, वक्ता सबसे तुकाराम हाथ उठाकर यह कह रहे हैं कि 'मनको छोड़ और कोई देवता नहीं, पहले इसे प्रसन्न कर लो।' मनको प्रसन्न करना उसे विषय-प्रवाहसे खींचकर हरि-भजनके लङ्गरमें बाँधना है, मनकी बड़ी रखवाली करनी पड़ती है, यह जहाँ-जहाँ जाय वहाँ-वहाँसे इसे बड़ी सावधानीके साथ खींच लेना पड़ता है!

तुका म्हणे मना पाहिजे अंकुश। नित्य नवा दीस जागृतीचा ॥

'तुका कहता है कि मनपर अङ्कुश चाहिये, जिसमें जागृतिका नित्य नवीन दिवस उदय हो।'

नित्य जागकर इस मनको सँभालना पड़ता है, मदोन्मत्त हाथी जैसे अङ्कुशके बिना नहीं सँभलता वैसे ही यह चञ्चल मन अखण्ड सावधान रहे बिना ठिकाने नहीं रहता। तुकारामजीने मनको कभी देव कहा, कभी चञ्चल कहा, कभी दुर्जन कहा पर हर बार भगवान्‌को यादकर उसे सँभालनेका भार उन्हींपर रक्खा। मनुष्य अपनी बुद्धिसे इस चञ्चल मनको कहाँतक रोक सकता है? कितना सावधान रह सकता है? एक क्षणमें पचासों जगह चक्कर लगा आनेवाले इस मनको, भगवान् दया करें तो ही रोक सकते हैं।

आवरितां मन नावरे दुर्जन। घात करी मन माझें मज ॥
अंतरीं संसार भक्ति बाह्यात्कार। म्हणोनि अंतर तुझ्यापायीं ॥

'मनको रोकना चाहें तो यह दुर्जन नहीं रुकता। मेरा मन मुझे ही हानि पहुँचाता है। इसके अन्तरमें संसार भरा हुआ है, भक्ति केवल बाहर है। इसलिये यह अन्तर आपके चरणोंमें रखता हूँ।'

यह मन संसारकी बातें ही सोचता रहता है। हे भगवन्! मेरे-तेरे बीच यही एक बड़ी भारी बाधा है। मैं तो भजन-पूजन करता हूँ पर अन्दर मन संसारका ही ध्यान करता रहता है, वह ध्यान नहीं छूटता; यह तो मुझे भक्तिका ढोंग ही लगता है। हे नारायण! आओ, दौड़ आओ, तुम्हीं इस अन्तरमें आकर भरे रहो।

काम क्रोध आड पडले पर्वत । राहिला अनंत पैलीकडे ॥१॥
नुल्लंघवे मज न सांपडे वाट । दुस्तर हा घाट वैरियांचा ॥२॥

'काम-क्रोधके पर्वत आड़े आ पड़े हैं और भगवान् अनन्त परली तरफ रह गये ! मैं इन पहाड़ोंको नहीं लाँघ सकता, और कोई रास्ता नहीं मिलता । वैरियोंका यह घाट तो बड़ा ही दुस्तर है ।'

इस मनके कारण, हे भगवन् ! मैं बहुत ही दुखी हूँ । क्या मनके इन विकारोंको तुम भी नहीं रोक सकते ?

आवरितां तुझे तुज नावरती । थोर वाटे चित्तीं आश्चर्य हें ॥३॥
तुका म्हणे माझ्या कपाळाचा गुण । तुला हांसे कोण समर्थासी ॥४॥

'तेरे (ये विकार) तेरे रोके भी नहीं रुकते, यह तो चित्तको बड़ा अचरज लगता है, तुका कहता है, यह मेरे ललाटकी कर्म-रेखा है, तुझे कोई क्या हँसेगा ?'

मनकी अनन्त ऊर्मियोंको देखकर कभी-कभी तुकारामजी अत्यन्त निराश हो जाते थे ! 'तुका म्हणे माझा न चले सायास' (अब मेरा बस नहीं चलता ।) यह भगवान्से दिल खोलकर कह देते थे ।

आतां कैचा मज सखा नारायण । गेला अंतरोन पांडुरंग ॥

'अब नारायण मेरे सखा कहाँ रहे ? वह तो मुझे छोड़कर चले गये !'

भगवन् ! मैं तो दुखी हुआ हूँ, पर आप दुखी मत होइये ।

'मेरा मन ऐसा चञ्चल है कि एक घड़ी, एक पल भी स्थिर नहीं रहता । अब हे नारायण ! तुम्हीं मेरी सुध लो, मुझ दीनके पास दौड़े आओ ।'

इस मनको जितना ही बन्द कर रखो उतना वह बेकाबू हो जाता है——

'इसे बहुत रोको, बन्द कर रखो तो यह खीज उठता है, फिर चाहे जिधर भागता है; इसे भजन प्रिय नहीं, श्रवण प्रिय नहीं, विषय देखकर उसी ओर भागता है।'

सोते-जागते इसे कब-कहाँतक रोका जाय ?

मज राखे आतां। तुका म्हणे पंढरिनाथा ॥७॥

'हे पण्ढरीनाथ ! अब तुम्हीं मेरी रक्षा करो।'

नित्य इस मनका विचार करता हूँ तो देखता यह हूँ कि 'यह तो बेबस विषय-लोभी है।' अपने बलसे इसे रोक रखना चाहता हूँ पर 'इस उलझनको सुलझानेका कोई उपाय न देख' निराश होता हूँ। 'अनंत उठती चित्ताचे तरंग' (अनन्त उठतीं चित्तकी तरंगें) यह हे भगवन् ! क्या आप नहीं जानते ?

कोण तुम्हांवीण मनाचा चालक। दुजें सांगा एक नारायणा ॥

'आपके बिना इस मनका दूसरा कौन चालक है, हे नारायण ! यह तो बताइये।'

आपके सिवा और कोई यदि मनका चालक हो तो कृपा कर उसका पता-ठिकाना बता दीजिये, तो आपको क्यों कष्ट दें, उसीको जाकर पकड़ें ?

'मनका निरोध करता हूँ पर विकार नष्ट नहीं होता। ये विषय-द्वार बड़े ही दुस्तर हैं। यदि आप अन्तरमें भरे रहते तो मैं निर्विषय होकर तदाकार हो जाता।'

मनका निरोध करनेका बड़ा यत्न किया पर मनके दुष्ट विकार नष्ट नहीं होते। विषयोंके द्वाररूप ये इन्द्रियाँ बड़ी कठिन हैं, ये सदा ही बाहरसे विषयोंको अन्दर ले आया करती हैं। मन और इन्द्रियोंका सख्य बड़ा पुराना होनेसे ज्यों ही ये इन्द्रियाँ विषयोंको ले आती हैं त्यों ही यह मन श्रवण, मननादि साधनोंके जमा किये हुए विचार क्षणार्धमें भुलाकर विषयाकार बन जाता है। अतएव हे नारायण! आप ही अन्तःकरणको व्यापे रहें तो ही निस्तार है। अन्तरमें आपको आसन जमाये देखकर ये विषय बाहर-के-बाहर ही रहेंगे। हे भगवन्! हे करुणाकर नारायण! अब वेगसे आओ। मेरे अन्तरमें भरकर आप ही यहाँ सदा विराजें। आप कहेंगे कि 'तुम इन इन्द्रियोंको सम्हालो, हम मनको देख लेंगे।' देखिये, भगवन्! ऐसा न कहिये।

'एकका भी दमन मुझसे नहीं होता, सबका नियमन कैसे करूँ?'

इन्द्रियोंका दमन करते बनता नहीं, मन वशमें आता नहीं! सारा अन्धकार-ही-अन्धकार है!

तुका म्हणे झाली अंधळ्याची परी। आतां मज हरी वाट दावीं॥

'तुका कहता है कि अन्धेकी-सी हालत मेरी हो गयी है, हे हरे! अब मुझे (हाथ पकड़कर) रास्ता बताओ।'

* * *

बीचमें ही कभी वह मनको मीठे शब्दोंद्वारा मनाते भी थे। कहते, रे मन! तू अब पण्ढरीकी लौ लगा, फिर तू जो कहेगा, मैं मानूँगा।

मना एक करीं । म्हणे मी जाईन पंढरी ।
उभा विटेवरी । तो पाहेन सांवळा ॥१॥

'रे मन ! एक काम कर—यह कह दे कि मैं पण्ढरी जाऊँगा और वहाँ ईंटपर खड़े श्यामको देखूँगा ।'

रे मन ! यह कह कि मैं 'राम कृष्ण हरी' कहूँगा, उल्लासके साथ हरि-कथा सुनूँगा, सन्तोंके पैर पकड़ूँगा । तू इतना जरूर कर कि—

'मैं रंगशिलापर (हरि-प्रेमसे) नाचूँगा तब तू भी अन्दरकी मैल छोड़कर तैयार रह और तालपर ताली बजाता चल ।'

रे मन ! इन इन्द्रियोंके पीछे भटकते-भटकते अब तू थक गया होगा । तुझे अखण्ड विश्रान्तिका स्थान दिखाता हूँ, हम-तुम वहाँ चलकर अखण्ड सुख-सम्भोग करें ।

'रे मन ! अब भगवान्‌के चरणोंमें लीन हो जा, इन्द्रियोंके पीछे मत दौड़ । वहाँ सब सुख एक साथ हैं और वे कभी कल्पान्तमें भी नष्ट होनेवाले नहीं । जाना-आना, दौड़ना-भटकना, चक्करमें पड़ना—यह सब वहाँ छूट जाता है, वहाँ पर्वतोंपर चढ़नेका कोई परिश्रम नहीं करना पड़ता । अब मुझे तुझसे इतना ही कहना है कि तू कनक और कान्ताको विषतुल्य मान । तुका कहता है, उपकार करना तेरे हाथमें है, तू चाहे तो हम-तुम भव-सिन्धुके पार उतर सकते हैं ।'

* * *

मनको इस तरह समझाकर तुकाराम फिर उसकी फरियाद

भगवान्‌के पास ले जाते, भगवान्‌पर ही सारा भार छोड़ते, शरणागत हो जाते, प्रेमवश भगवानपर क्रोध भी करते, कहते—

तुम्ही देवा माझा करा अंगीकार।

'भगवन्! आप मुझे अङ्गीकार कीजिये।' ऐसा अब मैं नहीं कहूँगा। जो होना था, वह तो हो चुका। आपकी और मेरी भी पत तो जाती रही—

आतां दोहीं पक्षीं लागलें लांछन। देवभक्तपण लाजवीलें॥

'अब तो दोनोंको लाञ्छन लग ही गया। आपका देवपना और मेरा भक्तपना दोनों ही लाञ्छित हुए।'

आपके लिये सब ठीक ही है, क्योंकि आप विश्वनाथ हैं, बड़े हैं। लोग यह कैसे कहें कि आपकी पत जाती रही! पर मेरी हालत जो हुई—आखिर क्या हुई? बताऊँ? सुनो—

'एकान्तमें अकेला यह मन एक पल भी एक स्थानमें स्थिर नहीं रहता। पैरोंमें महत्त्वकी बेड़ियाँ पड़ गयीं, गलेमें स्नेहकी फाँसी लगी। देहको तो ऐसी आदत पड़ गयी है कि जो सुख देखा वही उसे चाहिये। और मुँह ऐसा हो गया है कि कदन्न उसे स्वीकार नहीं। तुका कहता है कि मैं अवगुणोंकी खानि बना हूँ, निद्रा और आलस्यका तो पूछना ही क्या है!'

मैं आखिर किस काम आया? लोग मुझे साधु मानने लगे, महात्मा कहने लगे, यह महत्त्व मुझे क्या मिला, मेरे पैरोंमें बेड़ियाँ पड़ गयीं! कारण, हालत तो मेरी यह है कि स्त्री-पुत्र, घर-द्वारके ममत्व-स्नेहकी फाँसी मेरे गलेमें लगी हुई है। यह मनका हाल हुआ, और तनका यह हाल है कि जो सुख सामने आता है वही यह

माँग बैठता है। जीभ भी ऐसी चटोरी हो गयी है कि यह कदन्न खा ही नहीं सकती, इसे उत्तम मिष्टान्न और षड्रस भोजन चाहिये। निद्रा और आलस्य दिन-दिन बढ़ते ही जा रहे हैं। इस प्रकार सब दोषोंका घर बन बैठा हूँ। थोड़ी देर एकान्तमें बैठकर स्थिर होकर तेरा ध्यान करना चाहूँ तो यह मन एक पल भी स्थिर नहीं रहता! भगवन्! बताओ, मेरा भक्तपना अब कहाँ रहा और आपका भगवान्‌पना भी कहाँ रहा—दोनोंहीपर तो स्याही पुत गयी!

न संडवे अन्न। मज न सेववे वन ॥ १ ॥
म्हणउनी नारायणा। कींव भाकितों करुणा ॥ २ ॥

'अन्न छोड़ा नहीं जाता, मुझसे वन सेया नहीं जाता। इसलिये हे नारायण! यही कहता हूँ कि करुणा करो।'

मेरे अन्दर क्या-क्या दोष हैं, उन सबको मैं जानता हूँ, पर क्या करूँ? मनपर बस नहीं चलता, इन्द्रियोंको खींचते नहीं बनता, वाणीसे कहता तो बहुत-कुछ हूँ पर कथनी-जैसी करनी नहीं बन पड़ती। ऐसी विषम अवस्थामें जब मन और इन्द्रियाँ एक तरफ हो गयी हैं और दूसरी तरफ मैं हूँ—मेरी उनकी ऐसी तनातनी है तब आप ही मध्यस्थ होकर इस कलहको मिटाइये, इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है।

माझे मज कळों येती अवगुण। काय करूँ मन अनावर ॥ १ ॥
आतां आड उभा राहे नारायणा। दयासिंधुपणा साच करीं ॥ ध्रु० ॥
वाचा वदे परी करणें कठीण। इंद्रियां आधीन झालों देवा ॥ २ ॥
तुका म्हणे जैसा तैसा तुझा दास। न धरी उदास मायबापा ॥ ३ ॥

'मेरे दुर्गुण मुझे जान पड़ते हैं, पर क्या करूँ ! मनपर वस नहीं चलता । अब आप ही हे नारायण ! बीचमें आ जाइये, और अपने दयासिन्धु होनेको सत्य कर दिखाइये । वाणी तो कहती है पर करना कठिन है । मैं इन्द्रियोंके इतना अधीन हो गया हूँ तुका कहता है, मैं जैसा भी हूँ, तुम्हारा दास हूँ ! मेरे माँ-बाप मुझे उदास मत करो ।'

मैं जैसा हूँ ऐसा ही तुम मुझे अपना लो और अपने दयासिन्धु होनेको सत्य कर दिखाओ । 'मनको रोको, मनको रोको' कह कर भगवान्से कितनी विनती की, पर मन नहीं रुकता, नहीं स्वाधीन होता; और दयासिन्धु चुपचाप बैठे हैं, कुछ बोलते तब नहीं ! इस भावनासे खड़बड़ाकर तुकाराम कहते हैं—

काय करूं आतां या मना । न संडी विषयाची वासना
प्रार्थितांही राहे ना । आदरें पतना नेऊं घाली ॥ १ ।
आतां धांवे धांवे आ श्रीहरी । वायां गेलों नाहीं तरी
न दिसे कोणी आवरी । आणिक दुजा तयासी ॥ ध्रु० ।
न राहे एके ठायीं एक घडी । चित्त तडतडां तोडी
भरले विषय भोवडी । घालूं पाहे उडी भवडोहीं ॥ २ ।
आशा तृष्णा कल्पना पापिणी । घात मांडला माझा यांणीं
तुका म्हणे चक्रपाणी । काय आजूनी पाहसी ॥ ३

'क्या करूँ अब इस मनको ? यह विषयकी वासना तो नहीं छोड़ता, मनानेसे भी नहीं मानता, ठीक पतनकी ओर लिये जा रहा है । हे श्रीहरि ! अब दौड़ो, दौड़ो, नहीं तो मैं अब गया और कोई नहीं दिखायी देता जो इस मनको रोक रखे । एक घ

भी एक स्थानमें नहीं रहता , बन्धन तड़ातड़ तोड़कर भागता है। विषयोंके भँवरभरे भव-सागरमें कूदा चाहता है। आशा-तृष्णा-कल्पना-पापिनी मेरा नाश करनेपर तुली हुई हैं और तुका कहता है हे चक्रपाणि ! तुम अभी देख ही रहे हो ।'

पत्थरका भी कलेजा निकल पड़े ऐसे करुण स्वरसे मनको संयत करनेके लिये तुकाराम नारायणसे इतना गिड़गिड़ाये, पर नारायण चुप ! तुकाराम इतने विकल, इतना यत्न करनेवाले, फिर भी भगवान् मौन साधे बैठे हैं ! क्यों ? क्या इसका यह मतलब है कि भगवान् यह चाहते थे कि तुकाराम ऐसे ही विकल होकर प्रयत्न करते रहें ? क्या इसी विफल प्रयत्नमें मनोजयका बीज है ? शायद भगवान् बाह्यतः इसीलिये तटस्थ थे । भगवान् यह देख रहे थे कि तुकारामजीकी लगन इतनी जबरदस्त है कि उसपर भगवत्कृपा करनी ही होगी, यही निश्चय करके भगवान् तुकारामजीके मनोजयके उद्योगको कौतुकके साथ देख रहे थे !

तुका म्हणे नाहीं चालत तांतडी।
प्राप्तकाळघडी आल्यावीण ॥

'तुका कहता है, अधीरतासे कुछ नहीं होगा जबतक उसका समय न आ जाय ।'

अत्यन्त कोमलहृदय भक्त-वत्सल भगवान् पाण्डुरङ्ग इसीलिये मौन साधे तुकारामजीकी ओर अत्यन्त प्रेमसे देख रहे थे, बीच-बीचमें प्रसादकी झलक दिखा देते थे, पर जबतक इष्टकाल उपस्थित नहीं हुआ है तबतक तुकारामको चित्त-शुद्धिके उद्योगमें ऐसे ही लगे रहने दो, इसी विचारसे भगवान् तटस्थ बने हुए थे ।

चित्त-शुद्धिके पूर्ण होते ही, आस्थाकी भूमिके तपकर तैयार होते ही वह करुणा-घनश्याम बरसे, पर उस मधुर मङ्गलमय प्रसङ्गकी ओर चलनेके पूर्व अभी हमलोग यह देख लें और समझ लें कि तुकाराम अपने चित्तके सब विकारोंको दूर करके चित्तको पूर्ण शुद्ध करनेके कैसे-कैसे उपाय कर रहे थे।

६ धन, स्त्री और मान

परमार्थ-पथमें धन, स्त्री, और मान—तीन बड़ी खाइँयाँ हैं। पहले तो इस पथपर चलनेवाले पथिक ही बहुत थोड़े होते हैं फिर जो होते हैं उनमेंसे कुछ तो पहली पैसेकी खाईमें ही खो जाते हैं। इससे जो बचते हैं वे आगे बढ़ते हैं। इनमेंसे कुछको दूसरी खाईं (स्त्रीकी) खा जाती है। इससे बचकर जो आगे बढ़े वे तीसरी खाईं (मानकी) में खपते हैं! इन तीनों खाइँयोंको जो पार कर जाते हैं वे ही भगवत्कृपाके पात्र होते हैं पर ऐसा पुरुष विरला ही होता है।

विरळा ऐसा कोणी। तुका त्याचे लोटांगणीं॥

'ऐसा विरला जो कोई हो, तुका उसके चरणोंमें लोटता है।'

तुकारामजीका मनःसंयम बड़ा ही प्रचण्ड था, इससे पहली दो खाइँयोंको तो वह अनायास पार कर गये, तीसरी खाईंको पार करनेमें उन्हें भी कुछ कठिनाई पड़ी, ऐसा जान पड़ता है। तुकाराम रणधीर महावैष्णव वीर थे, उनका वीरताका बाना ऐसा कसा हुआ था कि कहींसे उसमें कोई ढिलाई नहीं, पहलेसे ही वह कसौटीपर कसा हुआ था इसलिये वह तीनों खाइँयोंको पार कर गये। पहले धनकी खाईं आती है। पर तुकारामजीने वैराग्यकी

प्रथम अवस्थामें ही धनको पत्थरके समान क्या बल्कि गोमांस-के समान माननेका निश्चय किया, अपना सब बही-खाता इन्द्रायणी-के दहमें डुबाकर लेन-देनके झगड़ेसे मुक्त हो गये; छत्रपति श्रीशिवाजी महाराजने उनके पास हीरे-मोती भेजे थे, तुकारामजीने उन्हें देखातक नहीं और लौटा दिया। वैराग्य-लाभके पश्चात् अन्ततक उन्होंने धनको स्पर्शतक नहीं किया; इससे यह जान पड़ता है कि उन्हें धनका मोह कभी हुआ ही नहीं। दूसरा मोह स्त्रियोंका होता है। इस विषयमें भी उनका चरित्र आरम्भसे ही अत्यन्त उज्ज्वल था। अपनी स्त्रीका भी जहाँ स्मरण नहीं वहाँ पर-स्त्री-की बात ही क्या? उनकी दिनचर्या ही ऐसी थी कि रातको श्रीविट्ठल-मन्दिरमें कीर्तन समाप्त होनेपर घण्टे-दो-घण्टे वह यदि सो ही गये तो मन्दिरमें या अपने घरमें सो लेते थे, उषाकालमें उठकर स्नान करके श्रीविट्ठल-पूजा करके सूर्योदयके समय इन्द्रायणीके पार हो जाते थे, सो रातको फिर गाँवमें आते और आते ही कीर्तन करने लग जाते! दिनभर भण्डारा-पर्वतपर ग्रन्थाध्ययन और नाम-स्मरणमें रमे रहते थे। इस दिनचर्यामें दिनको भी, स्त्रीसे मिलनेका अवसर नहीं मिलता था। इस कारण जिजाबाईको बड़ा कष्ट था और वह घाटपर या अड़ोस-पड़ोसमें अन्य स्त्रियोंके पास अपना रोना रोती हुई प्रायः दिखायी देती थीं! जिस पुरुष-में ऐसा प्रखर वैराग्य हो उसे स्त्रीका मोह क्या? पर-पुरुषको मोहनेवाली स्त्रियाँ तो उन्हें रीछनी-सी जान पड़ती थीं।

तुका म्हणे तैशा दिसतील नारी। रिसाचिया परी आम्हा पुढें॥

'तुका कहता है, वैसी नारियाँ हमारे सामने आती हैं तो रीछनी-

सी लगती हैं।' रीछनी गुदगुदी करके प्राण हरण करती हैं। वैसे ही परमार्थी पुरुष यह जाने कि स्त्रियोंका सङ्ग नाश करनेवाला है और उनसे दूर रहे। यही तुकारामजीके मनका निश्चय था। स्त्रैण पुरुषोंकी, दो-चार अभङ्गोंमें उन्होंने खूब खबर ली है। साधक कैसा होना चाहिये, यह बतलाते हुए वह कहते हैं—

एकांतीं लोकांतीं स्त्रियांसी भाषण। प्राण गेला जाण करूँ नये॥

'एकान्तमें या लोकान्तमें (भीड़-भड़क्केमें) भी स्त्रियोंसे भाषण, प्राण जाय तो भी, न करे।'

साधकमें इतनी दृढ़ता होनी चाहिये, तभी तो उसका वैराग्य टिक सकता है। इस दृढ़ताके न होनेसे नये-पुराने सैकड़ों गुरु, बाबाजी, महाराज, परम्पराभिमानी और सुधारक दयादाक्षिण्य और वनितोद्धारकी बातें करते-करते कहाँ-से-कहाँ जाकर गिरते हैं यह तो हमलोग नित्य ही देखा करते हैं! तुकाराम या समर्थ रामदास-जैसे वैराग्यशिखामणि सत्पुरुषोंका ही यह काम है कि स्त्री-जातिकी उन्नतिका उपाय करें, यह अधकचरोंका काम नहीं है। जिन्होंने अपना उद्धार नहीं किया या नहीं जाना वे दूसरोंका उद्धार क्या करेंगे? उद्धार और उन्नतिके नामपर केवल अपनी अधोगति कर लेंगे। इसलिये इन बातोंमें साधकोंको साधन-अवस्थामें अत्यन्त सावधान रहना चाहिये। इसीमें उनका कल्याण है। अस्तु! तुकारामजी वैराग्यके मेरुमणि थे। एक बारकी कथा है कि वह भण्डारा-पर्वतपर हरि-चिन्तनमें निमग्न थे जब एक स्त्री अपने मनसे हो या किसीके उभारनेसे हो, तुकारामजीकी परीक्षा करने उनके पास एकान्तमें गयी। उस अवसरपर तुकारामजीके

मुखसे दो अभङ्ग निकले हैं। एक उस स्त्रीका भाव जाननेपर भगवान्‌से निवेदन किया है और दूसरेमें उस स्त्रीसे उन्होंने अपना निश्चय बताया है। वे दोनों अभङ्ग प्रसिद्ध हैं—

स्त्रियांचा तो संग,न को नारायणा। काष्ठा या पाषाणा मृत्तिकेच्या
नाठवे हा देव, न घडे भजन। लांचावलें मन, आवरेना ॥ध्रु०॥
दृष्टिमुखें मरण, इंद्रियांच्या द्वारें। लावण्य तें खरें, दुःखमूळ ॥२॥
तुका म्हणे जरि, अग्नि जाला साधु। तरी पावे वाधूं संघट्टणें ॥३॥

'हे नारायण! स्त्रियोंका सङ्ग न हो, काठ, पत्थर और मिट्टीकी भी स्त्रीकी मूर्तियाँ सामने न हों। उनकी माया ऐसी है कि भगवान्‌का स्मरण नहीं होता, भगवान्‌का भजन नहीं होता, उनसे परचा हुआ मन वसमें नहीं आता। उनके नेत्रोंके कटाक्ष और मुखके हाव-भाव इन्द्रियोंके रास्ते मरणके कारण होते हैं। उनका लावण्य केवल दुःखका मूल है। तुका कहता है, अग्नि यदि साधु भी हो जाय तो भी उसका संसर्ग बाधक (जलानेका कारण) ही होता है। इसलिये इनसे बचाओ, इनका सङ्ग जिसमें न हो।'

तुकारामजी फिर उस स्त्रीको सम्बोधन कर कहते हैं—

पराविया नारी, रखुमाईसमान। हें गेलें नेमून, ठायींचेंचि ॥१॥
जाईं वो तूं माते! न करी सायास। आम्हीं विष्णुदास, तैसे नव्हों
न साहावे मज, तुझें हें पतन। नको हें वचन, दुष्ट वदों ॥२॥
तुका म्हणे तुज, पाहिजे भ्रतार। तरी काय नर, थोडे झालें ॥३॥

'पर-स्त्री रुक्मिणीमाताके समान है, यह तो पहलेसे ही निश्चित है इसलिये माँ! तुम जाओ, मेरे लिये कोई चेष्टा न करो।

हमलोग विष्णु-दास हैं—वह नहीं हैं। तुम्हारा यह पतन मुझसे नहीं सहा जाता, फिर ऐसी बुरी बात मत कहो। तुका तो यही कहता है कि यदि तुम पति चाहती हो तो संसारमें नर क्या कम हैं?'

तुकारामजीने उसे भी रखुमाई कहा, माता कहा, अपना निश्चय बताया और विदा किया। तात्पर्य, परमार्थमें कनक और कान्ताकी जो दो बड़ी भारी बाधाएँ हैं वे तुकारामजीके चित्तमें कभी विंध नहीं सकीं, इससे इस विषयमें उन्हें मनोनिग्रहका कोई विशेष प्रयत्न करनेका कारण ही नहीं था। जन्मते ही वे शीलवान् और विरक्त थे। पर-धन और परदाराकी इच्छा पामरोंके ही चित्तमें उठा करती है। तुकारामजीने उनके सम्बन्धमें कहा है कि 'पर-स्त्रीको माता कहते हुए उनका चित्त आप ही अपनेको लज्जित करता है।' जो लोग ऐसी अशुभ वृत्तियोंसे पीड़ित हैं पर जो विवेक और वैराग्यसे उनका निरोध करते हैं उनकी वीरता भी प्रशंसनीय है। परन्तु जिनके हृदयाकाशमें ऐसी हीनवृत्तियोंके बादल उठते ही नहीं, वे ही सच्चे सदाचारी हैं। जिस सदाचारमें फिसलनेका भय या संशय रहता है वह सच्चा सदाचार ही नहीं है। पाप-कल्पनाकी हवा भी पुण्यपुरुषोंके चित्तको लगने नहीं पाती। ऐसे पुरुष ही शुचि और पवित्र होते हैं। तुकाराम ऐसे ही पुरुष थे यह कहनेकी आवश्यकता नहीं। जिनकी निष्कलङ्क शुचितासे देहू-सा गाँव पुण्य-क्षेत्र हो गया और इन्द्रायणी पतित-पावनी हुई, जिनके दर्शनसे हजारों जीव तर गये, जिनके नाम-संकीर्तनसे प्रसिद्ध पापी पछताकर पुण्यात्मा हो गये, वह तुकोबाराय विशुद्ध शुभ्र पुण्यराशि थे यह कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं। तात्पर्य, कनक और

कान्ता, जिसके चक्करमें सारा संसार पड़ा हुआ है, तुकाराम उनसे सदा ही विमुक्त रहे। उनका वैराग्य अचल था।

मनुष्यमात्र मानकी इच्छा करता है। कौन नहीं चाहता कि लोग हमें अच्छा कहें, लोगोंमें हमारी बात और इज्जत रहे? केवल दो ही ऐसे हैं जिन्हें मानकी परवा नहीं होती, एक वह जो किसी व्यसनमें फँसा, दुराचारमें धँसा रहता है और दूसरा वह जो सत्यासत्यमें मनको साक्षी रखकर नारियलके वृक्षके समान सीधा ही बढ़ा जाता है! ये दोनों ही निःसङ्ग और निर्लज्ज बने रहते हैं! पहला रहता तो है सङ्गमें ही, पर व्यसन-दुराचारसे वह इतना पाषाणहृदय हो जाता है कि उसे लोक-निन्दा या लोक-स्तुतिकी कुछ भी परवा नहीं रहती। दूसरा चित्त-शुद्धिके लिये तथा अपने उद्योगकी सिद्धिके लिये जान-बूझकर जन-समुदाय-से अलग ही रहता है और आत्म-विश्वास होनेसे निन्दा-स्तुतिकी परवा नहीं करता। दोनों ही प्रकारोंके मनुष्य संसारमें बहुत ही कम हैं, बाकी सब लोग लौकिक मानके ही पीछे लगे हुए हैं। आचार-विचार, लोक-लाज या वैदिक कर्मानुष्ठानमें सबका बस यही ध्यान रहता है कि लोग हमें अच्छा कहें। इसके परे वे और कुछ नहीं देख सकते, नहीं समझ सकते। गृहाचार और लोकाचारका पालन प्रायः इसीलिये किया जाता है कि यदि ऐसा नहीं करेंगे तो लोग बदनाम करेंगे। सबसे हिले-मिले रहना, सबके यहाँ आना-जाना, बात-चीत, दावत-पार्टी, लाइब्रेरी, सभा-सोसायटी, व्याख्यान सर्वत्र नाम और मान लगा हुआ है, कहीं यह न हो ऐसा नहीं है। चन्दा भी लोग नाक-भौं सिकोड़कर दे डालते हैं इसीलिये कि अपनी

बात रहे, मेल-माफकत बनी रहे । सामान्य जनोंका यही लौकिक आचार है । जीवनका कोई महान् ध्येय नहीं, कोई बड़ा कर्मानुष्ठान नहीं, समयका कोई मूल्य नहीं, जन्मकी सार्थकताका कुछ ध्यान नहीं, जबतक जीवन है तबतक जी रहे हैं, न उस जीवनका कुछ मतलब है, न उस जीनेका, सिवा इसके कि एक दिन पैदा हुए और एक दिन मर जायँगे ! ऐसे ही जीव लौकिक मानके बड़े भोक्ता होते हैं ! जो कार्य-कर्ता पुरुष हैं इनका काम ऐसे लौकिक मानके पीछे पड़े रहनेसे नहीं चल सकता । अस्तु, तुकोबाराय सत्यासत्यमें मनको साक्षी रखकर अपने परमार्थ-मार्गपर चलते गये, लोग बात कहते हैं इसका विचार करनेकी उन्होंने आवश्यकता ही नहीं रखी—लौकिक मानका ही त्याग कर दिया । यह त्याग उन्होंने तीन प्रकारसे किया—(१) लोगोंका ही त्याग किया, (२) एकान्तमें रहने लगे और (३) निन्दा-स्तुतिकी कुछ परवा नहीं की । यह सब उन्होंने कैसे किया, यही आगे देखना है ।

७ 'अरतिर्जनसंसदि'

परमार्थके साधकको चाहिये कि लोगोंके फेरमें कभी न पड़े । लोग दोमुँहे होते हैं । ऐसा भी कहते हैं, वैसा भी कहते हैं । प्रपञ्चमें रहिये तो कहेंगे कि दोषी है और प्रपञ्च छोड़ दीजिये तो कहेंगे कि आलसी है । आचार-पालन कीजिये तो कहेंगे कि आडम्बर है और आचार छोड़ दीजिये तो कहेंगे महा-भ्रष्ट है । सत्सङ्ग कीजिये तो 'बड़े भगत बने हैं' कहकर उपहास करेंगे और सत्सङ्ग न करें तो कहेंगे कि बड़ा अभागा है ! निर्धन-

को दरिद्र कहेंगे और धनीको उन्मत्त कहेंगे। बोलिये तो वाचाल और न बोलिये तो अभिमानी! मिलने जाइये तो खुशामदी और न जाइये तो अभिमानी! विवाह करें तो लम्पट, न करें तो नपुंसक! निःसन्तानको कहेंगे चाण्डाल है; और जहाँ बाल-गोपाल दिखायी देंगे, वहाँ कहेंगे यह तो पापकी जड़ है। मृदङ्ग जैसे दोनों तरफसे बजता है वैसे ही लोग दोमुँहसे बात करते हैं। तात्पर्य, 'वमनकी तरह जन भी ग्रहण करते नहीं बनते'; इसलिये जो अपना हित चाहता हो वह 'जनको त्यागकर' हरि-भजनका सरल मार्ग आदर और प्रेमसे स्वीकार करे। 'संसारमें तो धनवान्‌का ही मान होता है।' अपने माता-पिता, भाई-बहिन, स्त्री-पुत्रतक भी द्रव्य होनेसे ही अधिक मानते हैं, यह अनुभव तो सभीको है। इसके अपवाद भी हैं पर उनसे सिद्धान्त ही पुष्ट होता है। पर प्रश्न यह है कि धनके पीछे पड़कर उसीमें सारा जीवन लगा देनेका अन्तिम फल क्या है? 'साथमें तो लँगोटी भी नहीं जाती'। मृत्यु-समयमें अपने प्यारे भी तो किसी काम नहीं आते। तुकारामजी कहते हैं, 'धनको अशाश्वत भाग्य समझो।' अशाश्वतमात्रसे तुकारामजीका जी जैसे उचाट हुआ और शाश्वत परमात्म-सुख प्राप्त करनेका निश्चय हुआ, वैसे ही जन और जनाचारमें समय और बुद्धि लगाना उनके लिये भार हो गया, सङ्गसे जी ऊबा और निःसङ्ग प्रिय होने लगा।

नको नको मना गुंतूं मायाजाळीं।
काळ आला जवळी ग्रासावया॥

'हे मन! मायाजालमें मत फँसो, काल अब ग्रसना चाहता है।' इस प्रकार मनको उपदेश देते हुए तुकाराम श्रीपाण्डुरङ्गकी

शरणमें गये। एकान्तमें हरि-नाम-संकीर्तनका सुख यथेष्ट लूटते बनता है और लोग भी वहाँ तंग करने नहीं आते, इसलिये तुकाराम एकान्तमें ही रमने लगे। तुकारामजीका एक अभङ्ग है—'देवाचा भक्त तो देवासीच गोड' (भगवान्‌का भक्त भगवान्‌को ही प्यारा होता है)। इस अभङ्गमें तुकारामजी बतलाते हैं कि भगवान्‌का प्यारा भक्त औरोंका प्यारा नहीं होता, लोग उसे पागल समझते हैं, कोई भी उसे अपना नहीं कहता, वह निर्जन वनमें या ऐसे ही स्थानोंमें रहता है जहाँ लोग नहीं रहते, वह प्रातःस्नान कर भभूत रमाता और कण्ठमें तुलसी-माला धारण करता है, उसका यह भेस देखकर अपने-पराये सभी उसकी निन्दा करते हैं। यह सब तुकारामजीने मानो अपना ही चरित्र संक्षेपसे कहा है, और फिर कहते हैं—'जन्मकर वह सबसे अलग हुआ, इसीलिये वह दुर्लभ होकर भगवान्‌को प्रिय हुआ। तुका कहता है, इस संसारसे जो रूठा उसीने सिद्ध-पन्थपर पैर रखा।' तुकाराम गाँवमें केवल कीर्तनके लिये आते थे, पर इतनेसे भी उपाधि हुई। तुकाराम यह सोचते थे कि सब लोग कीर्तन-श्रवण करें, नाम-सुख भोगें और आत्मोद्धार कर लें। पर कितने ही लोग ऐसे थे कि घर ही सो रहते और कितने ऐसे भी थे कि कीर्तन सुनने आते थे पर मन लगाकर कभी सुनते नहीं थे! इसलिये तुकारामजी कहते हैं—

'मैं अपना ही विचार करूँ तो अच्छा है, इनके उद्धारका विचार करूँ तो इससे इन्हें क्या! मेरी भी इन्हें क्या परवा? अपना-अपना हित तो सभी जानते हैं, इनकी इच्छाके विरुद्ध इन्हें

भगवन्नाम-कीर्तनमें लगाते दुःख होता है। हरि-कीर्तन कोई सुनें, न सुनें, या अपने घर सुखसे सो रहें, जो इच्छा हो करें। तुका कहता है, मैं अपने लिये करुणा-प्रार्थना करता हूँ। जिसकी जो वासना होगी वही उसे फलेगी।'

८ कुतर्कियोंके कारण मनःक्षोभ

इस प्रकार भगवान्‌को प्रसन्न करनेके लिये ही वह अब कीर्तन करने लगे। पर इस अवस्थामें भी अनेक प्रकारके तर्क-कुतर्क लेकर लोग उनके पास आते, कोई वाद उपस्थित करते या कोई शङ्का उठाते और उन्हें तंग करते। तुकारामजीको यह भी बड़ी उपाधि जान पड़ी।

कोणाच्या आधारें, करूं मी विचार।
कोण देईल धीर, माझ्या जीवा॥

'किसके आधारपर मैं विचार करूँ? मेरे जीको धीरज कौन देगा?' सन्तोंकी आज्ञासे मैं भगवान्‌के गुण गाता हूँ। मैं शास्त्री नहीं, वेदवेत्ता नहीं, सामान्य शूद्र हूँ। ये लोग आकर मुझे तंग करते हैं, मेरा बुद्धिभेद किया चाहते हैं, बतलाते हैं कि भगवान् निर्गुण-निराकार हैं, इसलिये हे भगवन्! अब तुम्हीं बताओ तुम्हारा भजन करूँ या न करूँ—

कलियुगीं वहु कुशळ हे जन। छळितील गुण तुझे गातां॥३॥
मज हा संदेह झाला दोहींसवा। भजन करूं देवा किंवा नको॥४॥

'कलियुगमें लोग बड़े कुशल हैं। तुम्हारे गुण जो गायेगा उसे ये सतावेंगे। इसलिये मुझे यह सन्देह हो गया है कि अब

तुम्हारा भजन करूँ या न करूँ !' हे नारायण ! अब यही बाकी रह गया है कि इन लोगोंको छोड़ दूँ या मर जाऊँ !

'किसीके घर मैं तो भीख माँगने नहीं जाता, फिर भी ये काँटे जबर्दस्ती मुझे कष्ट देने आ ही जाते हैं। मैं न किसीका कुछ खाता हूँ न किसीका कुछ लगता हूँ ! जैसा समझ पड़ता है भगवन् ! तुम्हारी सेवा करता हूँ।'

नाना प्रकारके शुष्क वाद करनेवाले अहंमन्य विद्वान् और भगवद्भजनका विरोध करनेवाले पाखण्डी मानो हाथ धोकर तुकारामजीके पीछे पड़े थे। तुकारामजीकी निष्ठाको कसौटीपर कसनेके लिये मानो उन्होंने रण-कंकण बाँधा हो। प्रायः प्रत्येक साधकको उत्पीडन करनेके लिये ऐसे लोग सदा-सर्वत्र ही तैयार रहते हैं, पर इन शब्द-छलवादियों और पाखण्डियोंका यही उपयोग होता है कि उनके द्वारा साधकका वैराग्य दृढ़ होता है। भक्तका भक्ति-प्रेम और भी बढ़ता है। साधकको अपने दोष ढूँढ़नेमें भी इनसे बड़ी सहायता मिलती है। तुकारामजीने एक अभंगमें जो यह कहा है कि 'निन्दकका घर पड़ोसमें होना चाहिये' (निन्दकाचें घर असावें शेजारीं) इसका भी यही मर्म है। निन्दक, पीडक, वाचाल, कुतर्की, संशयी आदि जीवोंकी आगे जो भी गति होती हो, पर इसमें सन्देह नहीं कि साधकके आत्मोद्धार-साधनमें इनसे बड़ा काम निकलता है, इसलिये उसके लिये ये एक प्रकारसे गुरु-स्थानीय ही हैं ! अस्तु।

'पाखण्डी मेरे पीछे पड़े हैं ! हे विट्ठल ! मैं उनसे क्या कहूँ ! जो मैं नहीं जानता वही ये मुझसे छलपूर्वक पूछते हैं।

मैं इनके पाँव गिरता हूँ तो भी नहीं छोड़ते तेरे चरणोंको छोड़ और कुछ मैं नहीं जानता। मेरे लिये सब जगह तू ही तू है।'

* * *

नको दुष्ट संग। पडे भजनांमधीं भंग ॥१॥

तुज निषेधितां। मज न साहे सर्वथा ॥२॥

एका माझ्या जीवें। वाद करूँ कोणांसवें ॥३॥

तुझे वर्णुं गुण। कीं हे राखो दुष्ट जन ॥४॥

काय करूँ एका। मुखें सांग म्हणे तुका ॥५॥

'दुष्ट-सङ्ग न हो, उससे भजन भङ्ग होता है। तुझे नीचा दिखाते हैं यह मुझसे जरा भी नहीं सहा जाता। अपने अकेले जीसे मैं किस-किससे वाद करूँ? तेरे गुण बखानूँ या इन दुष्ट-जनोंको रखूँ? तुका कहता है, बताओ, एक मुखसे क्या-क्या करूँ?'

* * *

ऐसे लोगोंके सङ्गसे तुकारामजीका सत्वस्थ धैर्य भी कभी-कभी भङ्ग होता और क्रोधका वेग उनसे न रोका जाता! ऐसे एक बार वह भगवान्‌पर क्रुद्ध होकर कहते हैं—

आम्हां गांजी जन। तरी कां मेला नारायण ॥१॥

'लोग मुझे इतना सता रहे हैं तो भी क्या नारायण मर गये?'

आम्हीं जनां भ्यावें। तरि कां न लाजिजे देवें ॥२॥

तुका म्हणे देश। झाला देवा घीण ओस? ॥३॥

'मैं लोगोंसे डरता रहूँ और फिर भी भगवान् लज्जित नहीं होते? तुका कहता है, भगवान्‌से क्या देश खाली हो गया?'

दुष्टोंसे तंग आकर एक बार तुकारामजी बेतरह बिगड़े, पीछे उन्हें पश्चात्ताप हुआ और क्रोधचाण्डालका छूत लगा जानकर

उन्होंने नाम-गङ्गामें स्नान किया! भक्तोंसे जब कोई दोष हो जाता है तब उसका प्रायश्चित्त नाम-स्मरण ही होता है। तुकारामजी कहते हैं—

आजी शिवला मांग। माझें विटाळलें अंग ॥१॥
यासी घेऊँ प्रायश्चित्त। विट्ठल विट्ठल हृदयांत ॥ध्रु०॥
झाली क्रोधासी भेटी। तोंडावाटे नर्क लोटी ॥२॥
अनुतापें न्हाऊँ। तुका म्हणे रवी पाहूं ॥३॥

'आज चाण्डाल छू गया, मेरे शरीरमें छूत लग गया। इसका अब प्रायश्चित्त करूँ—हृदयमें विट्ठल विट्ठल नाम लूँ। क्रोधसे भेंट हुई, मुँहसे नरक निकला। अब अनुतापमें नहा लूँ, भगवान् भास्करको देख लूँ।'

दुर्जनोंका यह सङ्ग तुकारामजीको बहुत कष्टदायक हुआ। भक्त, भावुक और प्रेमी सज्जनोंका सङ्ग तो उन्हें नित्य ही प्राप्त था, यह हमलोग पहले देख ही चुके हैं। जबतक कुछ लोग प्रिय हैं और कुछ अप्रिय हैं, जबतक प्रियाप्रियकी यह भावना बनी हुई है तबतक गुण-दोष-विचार भी मनमें उठा करते हैं, द्वैतभाव बना रहता है, अपना-पराया भेद नष्ट नहीं होता। घर-बाहरकी यह सब उपाधि दूर करनेके लिये एकान्तवास ही सर्वोत्तम उपाय है।

'दूसरोंके अन्तःकरण अपने अन्तःकरणमें आते हैं, सुख दुख होता है, अच्छा बुरा लगता है। तुका कहता है कि इन सब सम्बन्धोंको नष्ट करनेका उपाय एकान्तवास ही है।'

९ एकान्तवासका परम सुख

एकान्तवासमें अनुपम लाभ और अपार आनन्द है। केवल एकान्त ही आधी समाधि है। लोगोंकी भीड़से जब तुकारामजीका

चित्त उचटा तब उन्हें एकान्त अधिक प्रिय हुआ। 'निरोधका वचन मुझसे नहीं सहा जाता' क्योंकि उससे जीको बड़ा कष्ट होता है। 'जन-सङ्ग छोड़कर एकान्तमें बैठ रहना मुझे अच्छा लगता है।' सङ्ग चित्त-वृत्ति-निरोधमें बड़ा बाधक है।

संगे वाढे शीण न घडे भजन
त्रिविध हे जन बहु देवा॥

'जनसङ्गसे आलस्य ही बढ़ता है, भजन नहीं बनता। भगवन्! ये त्रिविध जन ही अधिक हैं।' 'इनके अनेक छल-छन्द देखनेमें आते हैं।' आनन्दकन्द भगवान् गोविन्दका ही छन्द जो चाहे वह इन नाना छन्दोंके फन्दोंमें न पड़े। एकान्तमें एकनिष्ठ-भाव स्थिर रखते बनता है, हरि-प्रेम जमाते बनता है। शाब्दिकोंको अपने हितका बोध नहीं होता, और तो क्या, हरि-प्रेमी उन्हें शत्रु जान पड़ता है। इसलिये 'अब अकेले ही चुपचाप बैठ रहना अच्छा है।' एकान्त-सुखकी माधुरी क्या बखानी जाय? स्वयं चखकर देखनेसे ही उसका स्वाद मिल सकता है। एकान्तका प्रिय होना ही ज्ञान-भाग्यका महालक्षण है। ज्ञानेश्वर महाराज गीता-ज्ञानेश्वरीके अध्याय १३ वेंमें ज्ञानीके लक्षण बतलाते हैं—

'पवित्र तीर्थ, शुद्ध धौत नदीतट, रमणीय उपवन और गुहा आदि स्थानोंमें रहना जिसे अच्छा लगता है; (६१२) जो गिरि-गुहाओंमें और सरोवरोंके किनारे ही आदरपूर्वक बस जाता है और नगरमें आकर रहना पसन्द नहीं करता; (६१३) जिसे एकान्तवास अत्यन्त प्रिय होता है, जनसंसदसे जिसे अरति हो जाती है उसीको ज्ञानकी मनुष्याकार मूर्ति जानो।' (६१४)

भण्डारा पहाड़

पृष्ठ ३५९
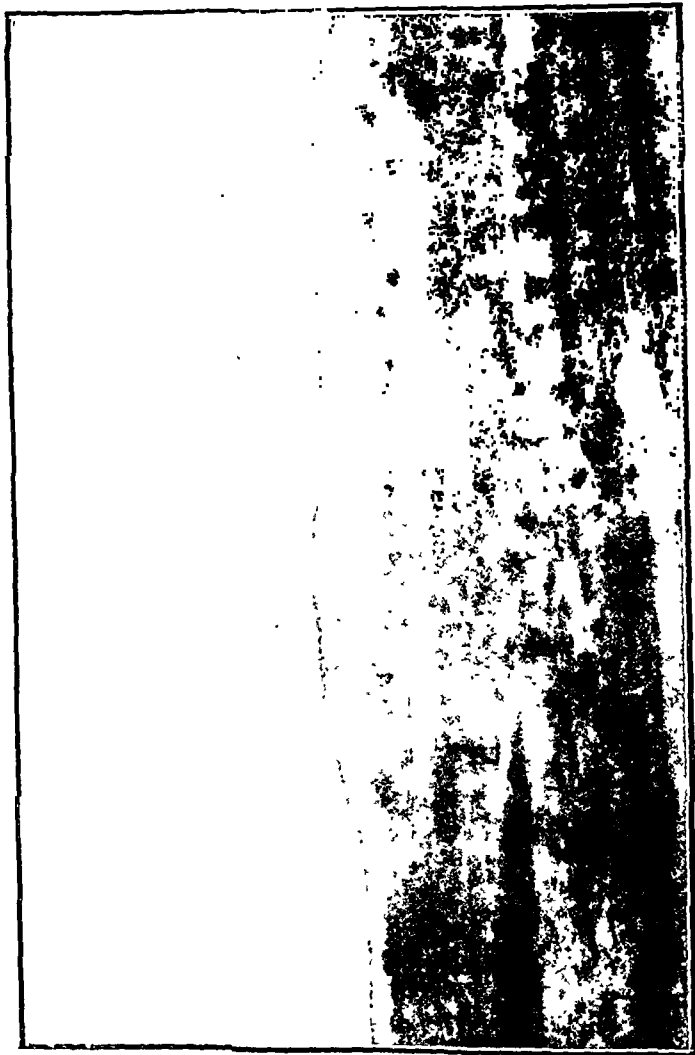
ज्ञानीका यह लक्षण तुकारामजीपर ठीक-ठीक घटता है। जनपदसे उनका चित्त हटा, नगरमें रहना उन्होंने छोड़ ही दिया। गोराडा, भामनाथ या भण्डारा, इन्हींमेंसे किसी पर्वतपर वह सारा दिन रहते थे। भण्डारा-पर्वतपर पश्चिम तरफ एक गुहा है और उसके पास ही एक झरना है। इसी स्थानमें वह रहते थे। पर्वतके शिखरपरसे चारों ओरका दृश्य बड़ा ही सुहावना है—दूर-दूर-तक छोटे-बड़े अनेक पर्वत हैं, चारों ओर हरियाली छायी हुई है, बीचमें इन्द्रायणी बह रही हैं और जहाँ-तहाँ छोटे-बड़े अनेक जल-प्रवाह दिखायी देते हैं। ऐसे सुशोभित उस भण्डारा-पर्वतको तुकारामजीके समागमसे तपोवन होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनके हरि-नाम-सङ्कीर्तनसे भण्डारा-पर्वत गूँजता था। वहाँकी तरु-लताएँ और पशु-पक्षी तुकारामकी पुण्य-मूर्तिके नित्य दर्शन कर आनन्दित होते थे और उनका आनन्द तुकारामजीके हृदयमें भी प्रतिध्वनित होता था। श्रीविट्ठलरंगमें रँगे हुए भण्डारा-पर्वतके इन तपोनिधिकी दिव्य मूर्तिके जिन नेत्रोंने दर्शन किये होंगे वे नेत्र धन्य हैं; और-तो-और, वहाँके वृक्ष, पौधे, लताएँ, फल-फूल तथा उस पुण्य-भूमिमें विहार करनेवाले पशु-पक्षी और वहाँके चिरकालसे मौन साधे हुए पाषाण भी धन्य हैं। तुकारामजीको एकान्तवास बहुत ही प्रिय और पथ्यकर हुआ। निर्मलीकी जड़ पानीमें डाल देनेसे पानी जैसे स्वच्छ हो जाता है, वैसे ही एकान्तवाससे उनके चित्तकी मलिन वृत्तियाँ स्वच्छ हो गयीं, उनका अन्तःकरण रमणीय और प्रसन्न हो गया। गीताके छठे अध्यायमें 'शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य' आसन लगानेके लिये 'शुचि देश' का जो सङ्केत किया है उसपर

भाष्य करते हुए ज्ञानेश्वर महाराजने एकान्तवासका बड़ा ही मनोरम वर्णन किया है । वह शुचि अर्थात् पवित्र देश ऐसा सुरम्य होता है कि 'वहाँ सुख-समाधानके लिये एक बार बैठनेसे फिर (जल्दी) उठनेकी इच्छा नहीं होती, वैराग्य दूना हो जाता है। सन्तोंने जो स्थान बसाया वह सन्तोषका सहायक, मनका उत्साह-वर्धक और धैर्यका देनेवाला होता है। ऐसे स्थानमें जो अभ्यास करता है वह हृदयमें अनुभव वरण करता है । रम्यताकी यह महिमा वहाँ अखण्ड रहती है ।' (१६४–१६६) तात्पर्य, एकान्त-वासके शुचि प्रदेशमें ज्ञान–वैराग्यका बल दूना होता है, इच्छा हो या न हो तो भी अभ्यास स्वयं ही हृदयमें प्रवेश करता है, चित्तके मलिन संस्कार नष्ट हो जाते हैं और चित्त प्रसन्न होता है, इतना सुख और समाधान होता है कि दिन-रात कैसे बीतते हैं सो भी नहीं जान पड़ता, भगवत्प्रेमके तरङ्गोंमें विहार करते-करते जीव-भाव ही विलीन हो जाता और अखण्ड अद्वयानन्दका अनुभव प्राप्त होता है; इसीलिये तो साधु-सन्त गिरि-कन्दराओंमें, नगरसे दूर जलाशयके तीरपर सर्वसङ्ग परित्याग करके बैठ जाते हैं । नगरोंमें बैठे-बैठे चाहे जितने ग्रन्थ पढ़ जाइये या लिख डालिये, व्याख्यान सुनिये या दीजिये, दिन-रात चर्चा कीजिये, तो भी शब्दोंके खिलवाड़के सिवा और कुछ भी इनसे हाथ न आवेगा, अनुभव और उसका आनन्द इनसे बहुत दूर है । नर-नारियोंसे भरे हुए नगरोंमें अनेक प्रकारके संसर्ग होते हैं, उनसे गुण-दोष अपने अन्दर भी आ ही जाते हैं; शब्दोंका कोलाहल खूब होता है, पर निःशब्दका आनन्द नहीं मिलता । एकान्तके बिना ज्ञान

नहीं ठहरता, अनुभवका दिव्य सुख नहीं प्राप्त होता। सभी सत्पुरुष इसीलिये अपने जीवनके कुछ वर्ष एकान्तवासमें बिताते हैं। घर-गिरस्तीके सम्बन्धमें इस आशयकी एक कहावत भी है कि 'कमाना शहरका और खाना देहातका' इसी प्रकार परमार्थके विषयमें भी कह सकते हैं कि सत्सङ्गसे उपार्जन करे और एकान्तमें भोगे। एकान्तके बिना परमार्थ अङ्गीभूत नहीं होता, मन निर्मल नहीं होता। तुकारामजीने जो कुछ अध्ययन किया, प्रायः एकान्तमें किया। देहू गाँवमें उनका आना-जाना लगा रहता था, पर इतनेसे भी उनका चित्त दुखी हुआ, और इसका बदला उन्होंने एकान्तमें बैठकर ही चुकाया। एकान्तवासके अपने अनुभवके सम्बन्धमें उनके दो अभङ्ग हैं—

> वृक्षवलीं आम्हां सोइरीं वनचरें।
> पक्षीये सुस्वरें आळवीती ॥ १ ॥
> येणें सुखें रुचे एकांताचा वास।
> नाहीं गुणदोष आंगा येत ॥ ध्रु० ॥
> आकाशमंडप पृथिवी आसन।
> रमे तेथें मन क्रीडा करूँ ॥ २ ॥
> कंथाकुमंडल देहउपचारा ।
> जाणवीतो वारा अवसरू ॥ ३ ॥
> हरिनामें भोजनप्रवडी विस्तार।
> करूनी प्रकार सेवूं रुची ॥ ४ ॥
> तुका म्हणे होये मनासीं संवाद।
> आपलाची वाद आपल्यासी ॥ ५ ॥

इस एकान्त उपवनमें, 'वृक्षवल्ली और वनचर ही हमारे अपने लोग हैं। पक्षी भी सुस्वर गायनकर मनाते रहते हैं। इसी सुखके कारण एकान्तवास अच्छा लगता है, किसीके गुण-दोष अपनेको नहीं लगते। ऊपर आकाशका मण्डप तना है, नीचे पृथिवीका आसन है; जहाँ मन रमता है वहीं बैठकर आनन्द करता हूँ। हरि-नाम-रसके उत्तम भोजन तैयारकर यथारुचि सेवन करता हूँ। तुका कहता है, मन-ही-मन संवाद-सुख भोगता हूँ, आप ही अपनेसे वाद-विवाद कर लेता हूँ।' ये सब सुख एकान्तमें प्राप्त होते हैं, इसलिये एकान्त मुझे प्रिय है।

खेळों मनासवें जीवाच्या संवादें।
कौतुकें विनोदें निरंजनीं ॥ १ ॥
पचीं पडिलें तें रुचे वेळोवेळां।
होतसे डोहळा आवडीसी ॥ ध्रु० ॥
एकांताचें सूख जडलें जिव्हारीं।
वीट परिचारीं बरा आला ॥ २ ॥
जगाऐसी बुद्धि नव्हे आतां कदा।
लंपट गोविंदा झालों पायीं ॥ ३ ॥
आणिक ते चिंता नलगे करावी।
नित्य नित्य नवी आवडी हे ॥ ४ ॥
तुका म्हणे धडा राहिला पडोन।
पांडुरंगीं मन विसांवलें ॥ ५ ॥

'निरञ्जन (मायातीत) के चरणोंमें बैठकर कौतुक और विनोदके साथ अपने जीकी बातें किया करता और मनके साथ

खेलता रहता हूँ। जो पच जाता है वही बार-बार रुचता है, वह रुचि बराबर बढ़ती ही जाती है। एकान्तका सुख ही अब हृदयमें बैठ गया है, जनसंग और बाह्य उपाधियोंसे चित्त उचट गया है। अब जग-जैसी बुद्धि ही नहीं रही, भगवान्‌के चरणोंका लम्पट हो गया हूँ। अब और कोई चिन्ता नहीं करनी पड़ती, यह माधुर्य ऐसा है कि नित्य नया आनन्द मिलता है। तुका कहता है, अब यही अभ्यास हो गया है। श्रीपाण्डुरङ्गमें मनको विश्राम मिल गया है।'

श्रीपाण्डुरङ्गके चरणोंमें आपको वह विश्राम-सुख मिला कि आपके मनकी सारी चिन्ता और व्याकुलता दूर हो गयी, और श्रीपाण्डुरङ्गके चरणोंमें आपको वह आनन्द मिलने लगा जिसके निरन्तर भोगते रहनेकी इच्छा ही बढ़ती जाती है, और यही इच्छा, यही रुचि नित्य-नये स्वाद ले रही है। यह नित्य-नया आनन्द भोगिये, खूब भोगिये; काल आनेपर इसी आनन्दके गर्भसे श्रीकृष्णका जन्म होनेवाला है, तब हमें भी उनके जन्मपर बधाई-की मिठाइयाँ मिलेंगी। उन्हींके लिये हम अधीर हो उठे हैं।

१० अहंकार कैसे गला ?

जीवमें अहंकार सहज ही होता है। आत्मस्वरूपको वह ढाँके रहता है, इसीलिये शास्त्र बतलाते हैं कि अहंकार तामस है। इस तमोमय अहंकारके अनन्त प्रकार हैं! देह मैं हूँ, जीव मैं हूँ, ब्रह्म मैं हूँ, ये सब अहंकारके ही भेद हैं। देह मैं हूँ, इसे मलिन अहंकार कह सकते हैं और ब्रह्म मैं हूँ, इसे उज्ज्वल अहंकार कह सकते हैं। 'देह मैं हूँ' कहनेके साथ ही अहंकारकी

लाखों चिनगारियाँ निकलती हैं। रूप, धन, विद्या, गुण, कीर्ति आदि जीवके अहंकारके विषय होते हैं। देश, भाषा, धर्म, वर्ण, जाति, कुल आदि भी अहंकारके विषय बनते हैं। वेदान्त-शास्त्र यह बतलाता है कि गुण-दोष प्रकृति-स्वभाव हैं इसलिये जीवको उनसे कोई हर्ष-विषाद न होना चाहिये, एककी स्तुति और दूसरेकी निन्दा करनेका भी वस्तुतः कोई कारण नहीं है; पर मजा यह है कि ज्ञानी-अज्ञानी सबके सिरपर यह अहंकार सवार रहता है। प्रकृतिके परे जो परमात्मा हैं उनकी ओर जबतक आँखें नहीं लग जातीं तबतक यह अहंकार किसीको भी नहीं छोड़ता। जीव और परमात्माके बीच यह परदा लटक रहा है, जबतक यह नहीं हटता तबतक परमात्माके दर्शन भी नहीं होते। ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि 'बहु धन त्याग दो, अपना शब्द-ज्ञान भूल जाओ, सबसे छोटे बन जाओ, ऐसा करनेसे मेरे समीप आओगे।' (ज्ञानेश्वरी ९–३७८) यह सच है, पर भगवत्कृपाके बिना अहंकार सर्वथा दूर नहीं होता। जैसे-जैसे अहंकारका एक-एक परदा फटता जायगा वैसे-वैसे परमात्मा सम्मुख होते जायँगे, जब सब परदे फट जायँगे तब उनसे मिलन होगा। अहंकार विद्वानोंके पीछे तो सबसे अधिक लगता है। ज्यों ही कोई कला या विद्या प्राप्त हुई त्यों ही यह उसके आड़में अपना आसन जमाता है। कोई गुण या विद्या न होते भी अहंकारका उग्र हो उठना केवल अज्ञान और मूर्खत्वका लक्षण है। चित्तमें ऐसे अहंकारको पालते-पोसते हुए ऊपरी दिखावमें नम्रता धारण करना धूर्तोंकी एक धूर्तता है, उससे कल्याणका साधन कुछ भी नहीं

होता। अहंकार मौजूद है और इसे जानकर क्लेश भी होता है, यह साधकका लक्षण है। और अहंकार 'है तो कहाँ है, इसका कोई स्मरण ही नहीं' यह ज्ञानवान्‌का लक्षण है। अस्तु। तुकारामजीको पहले-पहल जब लोग जानने और मानने लगे, उनका जहाँ-तहाँ सम्मान होने लगा, लोगोंपर उनकी वाणीका प्रभाव पड़ता दीखने लगा तब अहंकारकी कुछ उपाधि उन्हें भी होने लगी थी। पर तुकारामजी गाफिल नहीं थे, उन्होंने इस चोरको अन्दर घुसते देख लिया और भगवान्‌को पुकारा, ऐसा पुकारा कि अहंकारकी वृत्ति ही उनकी मिट गयी। भगवत्प्रेम जैसे-जैसे बढ़ता है कर्ता भगवान् हैं, मैं नहीं—यह जो कुछ है भगवान्‌का है मेरा नहीं, यह भाव जैसे-जैसे बलवान् हो उठता है तैसे-तैसे अहंकारकी हवाका बहना भी बन्द होता जाता है—

पदोपदीं नारायणा। तुमची करीन भावना॥

'पद-पदपर हे नारायण! तुम्हारा ही ध्यान करूँगा'—इस अन्तरङ्ग अभ्याससे यह सब नारायणरूप भासने लगता है और उसके साथ अहंकार भी नष्ट होता जाता है। अहंकारादि सब जीव-भावोंके नष्ट होनेका एक ही उपाय है और वह है चित्तको प्रेमानन्दके साथ नारायणके ध्यानमें लगा देना। तुकारामजीने भक्तिके बलसे ही इन सब वृत्तियोंको जीता। अहंकार, लोकप्रियता, मान—ये सब लोकैषणाओंके बादल उत्कट भक्तिके सूर्योदयके होते ही गल गये। इस उत्कट भक्तिका उन्हें जो अभ्यास करना पड़ा वह उन्हींके मुखसे सुनें। एकान्तमें भगवान्‌को

पुकारते हुए उनके मुखसे जो वचन निकले हैं उन्हें सावधान होकर श्रवण करें—

हीन माझी याती। वरि स्तुति केली संतीं ॥१॥
अंगीं वसूं पाहे गर्व। माझें हरावया सर्व ॥ध्रु०॥
मी एक जाणता। ऐसें वाटतसे चित्ता ॥२॥
राख राख गेलों वायां। तुका म्हणे पंढरिराया ॥३॥

'जाति मेरी हीन होनेपर भी सन्तोंने मेरी स्तुति की। इससे मेरे अन्दर गर्व घुस पैठना चाहता है इसलिये कि मेरा सर्वस्व हरण करे। चित्तको ऐसा जान पड़ रहा है कि मैं ही एक ज्ञाता हूँ। तुका कहता है, हे पण्ढरिनाथ! मेरा जीवन व्यर्थ नष्ट हो रहा है, अब रक्षा करो, प्रभु, रक्षा करो।'

* * *

मजपुढें नाहीं आणीक बोलता। ऐसें कांहीं चित्ता वाटतसे ॥१॥
याचा कांहीं तुम्हीं देखावा परिहार। सर्वज्ञ उदार पांडुरंगा ॥ध्रु०॥
कामक्रोधें नाहीं सांडिलें आसन। राहिले वसो न देहामध्यें ॥२॥
तुका म्हणे आतां जालों उतराई। कळों यावें पाईं निरोपिलें ॥३॥

'चित्तको कुछ ऐसा जान पड़ रहा है मानो मेरे सामने और कोई वक्ता ही नहीं है। हे सर्वज्ञ उदार पाण्डुरङ्ग! इसका कुछ परिहार तो कीजिये। काम-क्रोधने अभी आसन नहीं छोड़ा, देहमें जमे ही हुए हैं। तुका कहता है, अब मेरे ऊपर कुछ भार न रहा। आप जानें, आपके चरणोंमें सब निवेदन कर दिया।'

इस प्रकार भगवान्‌के सामने अपना हृदय खोलकर रख देना और हर काममें उनसे सहायता माँगना बड़ी उत्कट भक्ति है।

चित्तमें अहङ्कारकी ऐसी वृत्तियाँ उठती हैं जिनसे यह भासने लगता है कि मैं बड़ा पण्डित हूँ, मैंने बहुत पढ़ा है, कितने ग्रन्थ देख डाले हैं, मैं उत्तम वक्ता हूँ, ज्ञाता हूँ, उत्तम कीर्तनकार हूँ इत्यादि। परन्तु भगवन्! ये वृत्तियाँ सर्वस्व छीननेवाली हैं, इसलिये आप ही दयाकर इनका परिहार कीजिये। हे नारायण! आप सर्वज्ञ हैं, उदार हैं, समर्थ हैं। आप इस अहङ्कारको मेरे चित्तसे निकाल बाहर कीजिये।

कथनीं पठणीं करुनि काय। वांचुनि रहणी वायां जाय॥१॥

'कथनी-पठनी करके क्या होगा? बिना रहनीके सब व्यर्थ ही जाता है।'

ग्रन्थावलोकन खूब किया और लोगोंको ज्ञान भी खूब बताया, पर वह ज्ञान रहनीमें—आचरणमें यदि न आया तो उससे क्या लाभ? मुखसे तो अमृतवाणी निकल रही है पर स्वयं भूखसे व्याकुल हैं तो ऐसी वाणी हुई तो क्या और न हुई तो क्या? चीनीकी चासनीमें यदि पत्थर डाल दें तो उस पत्थरको उस चासनीसे क्या? मधुमक्खी मधु जमा कर रखती है पर उसके छत्तेको कोई और ही मार ले जाता है। लोभी कौड़ी-कौड़ी जोड़कर द्रव्य संग्रह करता है और उसे जमीनमें अपने हाथसे गाड़ रखता है पर वह दूसरोंके हाथ आता है, इसके हाथ और मुँहमें मट्टी ही लगती है। इस प्रकार अनेक मार्मिक दृष्टान्त देकर तुकारामजी कहते हैं—

आपुलें केलें आपण खाय। तुका वंदी त्याचे पाय॥८॥

'अपना किया जो आप खाता है तुका उसके चरण-वन्दन करता है।'

महाप्रयास करके गुरु-शास्त्र-मुखसे ज्ञानार्जनकर जो उस ज्ञानान्नको स्वयं भक्षण करता हो, अपने ज्ञानभोगसे जो आप ही तृप्त होता हो, जिसका ज्ञान आचरणमें उतर आया हो वही वक्ता धन्य है। स्वयं ज्ञान भोगकर जो दूसरोंको ज्ञान-भोज देता है वह ज्ञानदाता धन्य है! हरिकीर्तन करते हुए ज्ञानानन्दकी वर्षा करके श्रोताओंके अन्तःकरणोंको शान्त और निर्मल करनेवाला जो हरिभक्त कीर्तनकार उस ज्ञानानन्दकी वृष्टिमें भींगकर शान्त हुआ हो, तुकारामजी कहते हैं कि उसके चरणोंका मैं दासानुदास हूँ, मुझमें यह सामर्थ्य नहीं, लोग मेरी कथा सुनकर डोलने लगते हैं। पर मुझे अपनी वाणी नीरस ही जान पड़ती है, क्योंकि भगवन्! आपका उसमें प्रसाद नहीं, आपका उसमें आसन नहीं।

'अब हे पाण्डुरङ्ग! और क्या कहूँ? कोरी बातोंसे ही इस वैखरीकी खातिर मत कीजिये। वह प्रेमाभक्ति दीजिये जो सौभाग्यकी सीमा है। तुकाको अपना प्रसाद दीजिये।'

११ स्वदोष-निवेदन

भगवन्! मैं नित्य आपके गुण बखानता हूँ, श्रोताओंपर भक्तिभाव छा देता हूँ, लोग मेरी प्रशंसा करते हैं, पर मेरे अन्दर वह रस नहीं, कहनी जैसी करनी नहीं!

'तुम्हें देखनेकी इच्छा करता हूँ, पर इसके अनुकूल आचरण नहीं बनता; जैसे कोई बाहरी वेश बना ले, सिर मुँड़ा ले, दण्ड धारण कर ले, पर मन न मुँड़ावे।'

* * *

'मैं अपने ही चतुर बन बैठा हूँ, पर हृदयमें कोई भाव नहीं है, केवल यह अहङ्कार हो गया है कि मैं भक्त हूँ। अब यही बाकी रह गया है कि नष्ट हो जाऊँ, क्योंकि काम-क्रोध अन्दर आसन जमाये हुए बैठे ही हैं। लोगोंके गुण-दोष ढूँढ़ते-निकालते मेरे ही अन्दर आकर बैठ गये, बुद्धिमें प्राणियोंके प्रति मात्सर्य आ गया। तुका कहता है, लोगोंको मैं उपदेश देता हूँ पर मैं तो एक दोषको भी पार नहीं कर पाया।'

मैं कीर्तन करता हूँ, नाचता हूँ, गाता हूँ; पर अन्तःकरण मेरा अभी पत्थर-सा ही कठोर बना हुआ है, वह प्रेम ही अभी नहीं मिला जो उसे पिघला दे। प्रेमकी बातें तो मैं बहुत कहता हूँ पर प्रेमसे चित्त अभी नृत्य नहीं करता, नेत्रोंसे प्रेमाश्रुधारा नहीं बह निकलती। चिन्तनसुखसे हृदय अभीतक प्रेममय नहीं हो उठता।

बोलविसी तैसे आणी अनुभवा। नाहीं तरी देवा विटंबना॥

'जैसे तुम बुलवाते हो वैसा अनुभव यदि नहीं होता तो हे भगवन्! यह विडम्बना ही नहीं तो और क्या है?'

मीठा हो पर उसमें मिठास न हो तो वह मीठा क्या? शरीर-शृङ्गार हो पर उसमें प्राण नहीं, स्वांग हो पर उसमें तन्मयता नहीं, रूप हो पर उसमें गुण नहीं, सम्पत्ति हो पर सन्तति नहीं तो इनके होनेमें क्या रखा है? तुकारामजी कहते हैं कि ऐसा ही मेरा हाल हो रहा है और अन्दर प्रेमभावका पता ही नहीं लगता कि कहाँ है। इससे अच्छा तो तुकारामजी कहते हैं कि यही है कि लोगोंमें मेरी बदनामी हो, साधु कहकर जो

लोग मेरी सेवा करते हैं वे सब निन्दा करते हुए मेरा तिरस्कार करें, क्योंकि ऐसा होनेसे मैं तुम्हारी सेवा एकान्त मनसे कर सकूँगा।'

'पापकी मैं गठरी हूँ। अपने पैरोंमें मैंने अपनी चरणसेवा-रूप चोर बैठा रखा है। दण्ड दो मुझे हे नारायण! और मेरा मान-अभिमान उतारो। हे भगवन्! धूर्तता करके लोगोंसे मैं अपनी सेवा कराता हूँ। तुका तेरा हुआ न संसारका, दोनोंसे गया, केवल चोर बना रहा!'

सच्चे हरि-प्रेमसे अन्तरंग रँगने लगा, सारा खेल श्रीहरिका है, वही कर्ता, हर्ता, भर्ता है, जीवके अहंभावके लिये कहीं जरा-सी भी जगह नहीं, नरकका द्वार अभिमान भगवान्से अलग करनेका ही काम करता है, यह सत्य जैसे-जैसे तुकारामजीको प्रतीत होने लगा तैसे-तैसे जन-मान पानेकी इच्छा उनकी समूल नष्ट हो गयी। लोग साधु-महात्मा कहकर भजते हैं, देवता कहकर पूजते हैं, स्तुति-स्तोत्र गाते हैं, प्रेम और आग्रहसे उत्तम मिष्टान्न भोजन कराते हैं, इस समूचे लोकादरकाण्डसे तुकारामजीका जी ऊब गया, उनके ध्यानमें यह बात आ गयी कि यह जन-मान मुझे धरतीपर पटककर मेरे परमार्थका सत्यानाश करनेवाला है। जिस मान, सेवा, स्तुति और गौरवके लिये ज्ञानी भी तरसा करते हैं उसके तापसे तुकारामजीका चित्त दग्ध होने लगा, जन-मानका वह ताप उनके लिये दुस्सह हो उठा!

भक्त म्हणे जन। परी नाहीं समाधान ॥१॥
माझें तळमळी चित्त। अंतरलें दिसे हित ॥२॥
कृपेचा आधार। नाहीं, दम्भ जाला फार ॥३॥

'जन कहते हैं, तुम भक्त हो; पर इससे समाधान नहीं होता। चित्त विकल रहता है, हित दूर ही रह जाता है। कृपाका आधार नहीं, केवल दम्भ बढ़ गया है।'

* * *

नव्हे सुख मज न लगे हा मान। न राहे हे जन काय करूं ॥१॥
देह उपचारें पोळतसे अंग। विषतुल्य चांग मिष्टान्न हें ॥ध्रु०॥
नाइकवे स्तुति वानितां थोरीव। होतो माझा जीव कासावीस।२।
तुज पावे ऐसी सांग कांहीं कळा। नको मृगजळा गोवूंमज ॥३॥
तुका म्हणे आतां करीं माझें हित। काढावें जळत आगींतूनी ॥४॥

'इसमें मुझे कोई सुख नहीं है, ऐसा मान मुझे नहीं चाहिये, पर ये लोग नहीं मानते, क्या करूँ ? देहके इन उपचारोंसे शरीर झुलस रहा है, यह उत्तम मिष्टान्न विष-सा लग रहा है। लोग बड़ी प्रशंसा करते हैं पर मुझसे वह सुनी नहीं जाती, जी छटपटाया करता है। तुम जिसमें मिलो ऐसी कोई कला बताओ, मृग-जलके पीछे मत लगाओ। तुका कहता है, अब मेरा हित करो, इस जलती हुई आगसे निकालो।'

* * *

लोक म्हणती मज देव। हा तों अधर्म उपाव ॥ १ ॥
आतां कळेल तें करी। शीस तुझे हातीं सुरी ॥ध्रु०॥
अधिकार नाहीं। पूजा करिती तैसा कांहीं ॥ २ ॥
मन जाणे पापा। तुका म्हणे मायबापा ॥ ३ ॥

'लोग मुझे (ईश्वर) बतलाते हैं, यह तो अधर्म ही पल्ले बाँध लेना है। अब जैसा समझ पड़े वैसा करो, यह शीश तुम्हारे

हाथमें और कृपाण भी तुम्हारे हाथमें है। लोग मुझे जैसा पूजते हैं वैसा तो मेरा कोई अधिकार नहीं है; क्योंकि मन तो पापोंको जानता है। तुका कहता है, तुम्हीं मेरे मा-बाप हो।'

संसार तो बाहरी रंग देखता है, उसीपर मोहित होता है, पर मनका हाल तो मन ही जानता है। लोगोंसे अपनी पूजा कराना तो अधर्म है, अधोगतिका मार्ग है और फिर मैं तो इसके योग्य नहीं। इसलिये कहते हैं कि मुझे दण्ड दीजिये, अपना शिर मैंने आपके हाथोंमें दे दिया है, अधर्मका उच्छेद करनेके लिये ही तो आपका अवतार है।

'तुम्हारे गुण तो गाता हूँ, पर अन्तःकरणमें तुम्हारा भाव नहीं है, केवल संसारमें शोभा पानेका यह एक ढंग हो रहा है। पर तुम पतितपावन हो, अपनी इस बातको सच करो। मुखसे मैं दास कहाता हूँ पर चित्तमें माया-लोभ-आस भरी हुई है। तुका कहता है, मैं जैसा वेश दिखाता हूँ वैसा अन्दर लेश भी नहीं है।'

* * *

'बिना सेवा किये ही दास कहाता हूँ और धूर्ततासे अपना पेट भरता हूँ। तुम्हारे चरणोंमें झूठ भी कहीं चल सकता है? हे पाण्डुरङ्ग! अन्दरका हाल तो तुम जानते हो।'

* * *

तुम्ही कृपा केली नाहीं। माझें चित्त मज ग्वाही ॥ २ ॥

तुका मज देवा। मज वायां कां चाळवा ॥ ४ ॥

'तुम्हारी कृपा मैंने नहीं प्राप्त की, मेरा चित्त ही इसमें मेरा साक्षी है । मुझ तुकाको हे भगवन् ! क्यों नष्ट होने देते हो?'

कळों आला भाव माझा मज देवा।
पायांवीण जीवा आट केली ॥ १ ॥
जोडूनी अक्षरें केली तोंडपिटी।
न लगे शेवटीं हातीं कांहीं ॥ध्रु०॥
देव जोडे म्हणून सांगतसे लोकां।
माझा मीच देखा दुःख पावे ॥ २ ॥
तुका म्हणे माझे गेले दोन्हीं ठाव।
संसार न पाय तुझे देवा ॥ ३ ॥

'मेरा भाव क्या है सो मुझे अब मालूम हो गया। हे भगवन् ! मैंने जो कुछ किया वह तुम्हारे चरणोंके बिना जीवको केवल कष्ट दिया। अक्षर जोड़कर गाल बजाया, उससे अन्तमें कुछ भी हाथ न आया। लोगोंसे कहता फिरा कि भक्तको भगवान् मिलते हैं, पर मैं स्वयं ही दुःख भोग रहा हूँ। तुका कहता है, इस तरह मेरे दोनों ठाँव गये, संसारसे हाथ धो बैठा और तुम्हारे चरण भी नसीब नहीं हुए।'

* * *

काय आतां आम्ही पोटचि भरावें।
जग चाळवावें भक्त म्हणू ॥ १ ॥
ऐसा तरी एक सांगाजी विचार।
बहु होतों फार कासावीस ॥ध्रु०॥

काय कवित्वाची घालूनियां रूढी ।
करूं जोडाजोडी अक्षरांची ॥ २ ॥
तुका म्हणे काय गुंपोनि दुकाना ।
राहों नारायणा करूनि घात ॥ ३ ॥

'तो क्या अब पेट ही भरनेका धन्धा करूँ ? भक्त कहलाऊँ और जगके पीछे चलूँ ? और कुछ नहीं तो यही एक बात बता दीजिये, जी बहुत ही छटपटा रहा है, उसे कुछ तो शान्ति मिले । क्या कविता बनानेकी रूढि चलाकर अक्षरोंको जोड़ा करूँ ? तुका कहता है, हे नारायण ! बताओ क्या करूँ ? क्या दूकानका जाल बुनकर आत्मघात करके रहूँ ?'

* * *

नामाचा महिमा बोलिलों उत्कर्ष ।
अंगा कांहीं रस नयेचि तो ॥ १ ॥
तुका म्हणे करा आपुला महिमा ।
नका जाऊं धर्मावरी माझ्या ॥ २ ॥

'नामकी महिमा बड़े उत्कर्षके साथ बखानी, पर उसका रस कुछ भी अपने अन्दर नहीं पाया । तुका कहता है, भगवन् ! अब आप अपनी महिमा दिखाइये, मेरे धर्मका खयाल मत कीजिये ।'

ग्रन्थोंको देखा और सुना, वे ही देखी-सुनी बातें मैंने लोगोंसे कही, पर मेरे ही अन्तःकरणमें नहीं बैठीं । 'जो बोल जैसे सीखे, वैसे मुँहसे निकाले, पर वैसा रस तो नहीं मिला ।' अनेक सङ्कल्प चित्तमें भरे हुए हैं, सङ्कल्पका नाश तो नहीं हुआ; यह करूँगा, वह करूँगा इत्यादि बातें मन अभी सोचता ही

रहता है। बुद्धिमें स्थिरता नहीं। 'बुद्धि नाहीं स्थिर। तुका म्हणे शब्दा धीर॥' तात्पर्य, ग्रन्थोंका ज्ञान मैं कीर्तनमें लोगोंको बड़े आवेशके साथ बतलाता हूँ सही, पर मेरा चित्त अभी हरि-प्रेमसे नहीं भीगा, बुद्धि व्यवसायात्मिका नहीं हुई, नानाविध सङ्कल्पोंसे ग्रसी हुई है और मेरी यह हालत है कि कहता कुछ हूँ और करता कुछ और हूँ, नामकी महिमा लोगोंको बतलाता हूँ, पर वह नाम-रस मेरे अन्तःकरणमें नहीं उतरा।

'तोतेको जो सिखा दीजिये वही वह पढ़ा करेगा, मेरी भी वैसी ही दशा है। स्वप्नके राज्य-भोगसे कोई राजा नहीं बनता, परमार्थविषयक मेरा अनुभव भी वैसा ही स्वप्न है। वाणी ही ऐसी अलंकृत क्यों हुई जिससे भगवान्‌के चरण तो दूर ही रह गये? 'पढ़े हुए शब्दोंका ज्ञान बतलाता हूँ' पर उससे मुझे क्या लाभ?'

सन्तोंसे भी तुकारामजी विनय करते हैं—

'यह बड़ा अलङ्कार मुझे शोभा नहीं देता, मेरे लिये तो यह नकली ही है। मैं तो आपलोगोंकी चरणरजका एक कण हूँ; आप सन्तोंके पैरोंकी जूती हूँ। मुझे निजस्वरूपकी कुछ भी पहचान नहीं, भजन कर लेता हूँ सो भी दूसरोंकी देखा-देखी। मुझे क्षरकी पहचान नहीं, अक्षरकी पहचान नहीं; महाशून्यकी पहचान नहीं; आत्मानात्मविवेक नहीं। तुका क्या है, कुछ भी नहीं, आपके चरणोंमें वह अपना मस्तक रखता है। इतना ही उसका अधिकार जानिये।' इसलिये 'सन्त' नामसे मुझे अलंकृत मत कीजिये, मैं उसका पात्र नहीं। सन्त वही है जिसे आत्म-

साक्षात्कार हुआ हो, जिसने क्षर, अक्षर और सबका अपने अन्दर लय करनेवाले महाशून्यको जाना हो, जिसकी बुद्धिमें आत्मा-नात्मविवेक सिद्ध हुआ हो। 'सन्त' नामका अलङ्कार उसीको शोभा देता है, मुझे नहीं।

महात्मा तुकाराम सन्तोंसे प्रार्थना करते हैं कि आपलोग कृपाकर मेरी स्तुति न करें। स्तुति अभिमानका विष पिलाकर मुझे मार डालेगी। भगवान् अभिमानको क्षमा नहीं करते! मुझे यदि अभिमान हुआ तो मेरे श्रीविट्ठलनाथ मुझे छोड़ देंगे और आपलोग भी छोड़ देंगे।

न करावी स्तुति माझी संतजनीं।
होईल यावचनीं अभिमान॥ १॥
भारें भवनदी नुतरवे पार।
दूरावती दूर तुमचे पाय॥ ध्रु०॥
तुका म्हणे गर्व पुरवील पाठी।
होईल माझ्या तुटी विठोबाची॥ २॥

'सन्त-सज्जन मेरी स्तुति न करें, उनके स्तुति-वचनोंसे मुझे अभिमान होगा। उस भारसे भव-नदीके पार उतरते नहीं बनेगा और आपके चरण दूरसे और दूर हो जायँगे। तुका कहता है, गर्व हाथ धोकर मेरे पीछे पड़ जायगा और मेरे विट्ठलनाथ मुझसे बिछुड़ जायँगे।'

१२ सत्सङ्ग

अब हमलोग सत्सङ्गका विचार करें। तुकारामजीको

कीर्तनके प्रसङ्गसे सत्सङ्ग लाभ हुआ, भगवान्‌के गुणानुवाद सुनने और गानेका अवसर मिला।

कथा त्रिवेणी संगम। देव भक्त आणि नाम॥

यह आनन्द अद्‌भुत है। वाद करनेवाले, निन्दा करनेवाले, छलनेवाले और पाखण्ड रचनेवाले इन सबकी सङ्गतिसे तुकाराम-जीको कष्ट ही हुआ; पर इसकी क्षतिपूर्ति सज्जनोंके सङ्गसे हो गयी। संसारमें प्रेमी, भावुक और श्रद्धालु सभी स्थानोंमें सदा ही होते हैं। ऐसे लोग कीर्तन-प्रसङ्गसे तुकारामजीकी ओर खिंचे चले आये। इनके सत्सङ्गमें तुकारामजीके आनन्दका क्या पूछना है?

तुका म्हणे येणें आनंदी आनंदु। गोविंदें गोविंदु पिकविला॥

'तुका कहता है, इससे आनन्द-ही-आनन्द हो गया, गोविन्द (बीज) से गोविन्दकी फसल तैयार हो गयी।'

तुकाराम सत्सङ्गके लाभ बतलाते हैं—

हरिदास जब मिलते हैं तब सब पाप-ताप, दैन्य और जंजाल छूट जाता है। तुका कहता है, वैष्णवोंके चरण-दर्शन करनेसे मनको समाधान हुआ।

* * *

वैराग्याचें भाग्य। संतसंग हाचि लाभ॥१॥
संत कृपेचे हे दीप। करी साधका निष्पाप॥ध्रु०॥
तुका प्रेमें नाचे गाये। गाणियांत विरोनि जाये॥२॥

'सत्सङ्ग-लाभ ही वैराग्यका सौभाग्य है। सन्त-कृपाके ये

दीप साधकको निष्पाप कर डालते हैं। इन सन्तोंके बीचमें तुका प्रेमसे नाचता-गाता है और गानोंमें लीन हो जाता है।'

*　　　*　　　*

'जिसके हृदय-सम्पुटमें नारायण भर गये अथवा जो भावुक और विश्वासी हैं, तुका कहता है, मैं उन्हें वन्दन करता हूँ।'

*　　　*　　　*

'सन्त-चरणोंकी रज जहाँ पड़ती है वहाँ वासनाका बीज सहज ही जल जाता है। तब राम-नाममें रुचि होती है, और घड़ी-घड़ी सुख बढ़ने लगता है। कण्ठ प्रेमसे गद्गद होता, नयनोंसे नीर बहता और हृदयमें नामरूप प्रकट होता है। तुका कहता है, यह बड़ा ही सुलभ सुन्दर साधन है, पर पूर्व-पुण्यसे ही यह प्राप्त होता है।'

*　　　*　　　*

'सन्त-चरणोंकी रजका अनुभव मुझे अपने अन्दर प्राप्त हुआ, इसके सेवनसे वह सुख मिला जिसमें कोई दुःख नहीं होता।'

*　　　*　　　*

'काया, वाचा, मनसा मैं हरिदासोंका दास हुआ। कारण, हरिदासोंके हरि-कीर्तनमें प्रेम-ही-प्रेम भरा है, करताल और मृदङ्गका कल्लोल है। दुष्टबुद्धि सब नष्ट हो जाती है और हरि-कीर्तनमें समाधि लग जाती है।'

*　　　*　　　*

'सन्त-मिलनकी बड़ी इच्छा थी, बड़े भाग्यसे वह मिलन हुआ। तुका कहता है, इससे सब परिश्रम सफल हो गया।'

*　　　*　　　*

यहाँ 'सन्त' शब्दका अर्थ अच्छी तरहसे समझ लेना चाहिये। तुकारामजीने इन अभङ्गोंमें हरिदास (हरि-कीर्तन करनेवाले), भावुक, प्रेमी वारकरी इन सबको ही सन्त कहा है। 'सन्त' शब्दका इतना व्यापक प्रयोग जो तुकारामजीने किया, इससे क्या समझा जाय ? क्या उस समय सन्तोंकी इतनी भरमार हो गयी थी या तुकाराम अपनी सिधाईसे सबको ही सन्त समझते और कहते थे ? नहीं, ये दोनों कल्पनाएँ गलत हैं। सच्चे सन्त तो सदा ही दुर्लभ होते हैं। ऐसे सन्त तुकारामजीके समयमें थे और तुकारामजीका उनसे समागम भी हुआ था। चिन्तामणि देव, पूनेके अनगढ़शाह, नगरके शेख महम्मद, बोधले बाबा और दैठणकर बोवाके साथ उनकी भेंट-मुलाकात थी और वृद्धावस्थामें समर्थ रामदाससे भी उनकी भेंट हुई थी। पर ऐसे सन्त तो विरले ही होते हैं। सच्चे सन्तोंके लक्षण तुकारामजीने अपने अभङ्गोंमें दिये हैं। तुकाराम सन्त किसको मानते थे, सन्तोंकी उनकी कसौटी क्या थी इसका वर्णन पहले आ चुका है। सन्तोंके सम्बन्धमें उनकी कसौटी सामान्य नहीं थी। फिर यह बात भी नहीं है कि तुकाराम किसीको अज्ञानसे या भोलेपनसे सन्त कहते। उन्होंने बने हुए भेसधारी साधुओं, पाखण्डियों और दाम्भिकोंकी खूब खबर ली है। तुकारामजीकी सत्यनिष्ठा इतनी ज्वलन्त, भक्ति इतनी आन्तरिक और वाणी न्यायमें ऐसी निठुर थी कि झूठ उन्हें जरा भी सह्य नहीं था। उनके समयमें न तो सन्तोंकी ही रेल-पेल थी, और न तुकाराम ही भोले-भाले थे। तब उन्होंने 'सन्त' शब्दका प्रयोग इतना ढीला-ढाला क्यों किया है ? इसका

समाधान यह है कि कई स्थानोंमें तो उन्होंने इस शब्दका प्रयोग गौरवार्थ किया है। सब वारकरी तुकाराम नहीं थे। किसी भी सम्प्रदायमें सामान्य जन-समूह जैसा होता है वैसे ही वारकरी भी थे। पर सम्प्रदाय-प्रवर्तकोंको अपना सम्प्रदाय बढ़ानेके लिये सामान्योंमें भी जो कुछ विशेष हुए, जिनमें उत्साह, दक्षता आदि गुण कुछ अधिक मात्रामें दीख पड़े उन्हें गौरवान्वित कर और अधिक कार्यक्षम बनानेके हेतु उन्हें सम्मान देकर उत्साहित करना होता है। इसमें कोई धूर्तता या झूठ हो ऐसी बात नहीं है। जो लोग यह समझते हैं कि हमारा सम्प्रदाय जनसमाज और राष्ट्रके लिये कल्याणकारक है, इसका प्रचार होना आवश्यक है, इससे लोगोंका उद्धार होना चाहिये, वे हर तरहसे उस सम्प्रदायको बढ़ानेका उद्योग करते हैं।* इसके लिये उन्हें उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ सब प्रकारके लोगोंको सम्हाले रहना पड़ता है। इस न्यायसे नामदेव-एकनाथके समयसे यह रिवाज-सा चला आया था कि गलेमें माला डाले नियमपूर्वक पण्ढरीकी वारी करनेवालोंको, कथा-कीर्तन-भजनमें रमनेवालोंको, श्रीविट्ठलनाथकी प्रेमसे उपासना करनेवाले वारकरियोंको, विशेषकर कीर्तनकारोंको तथा भजनमण्डलियोंके नेताओंको 'सन्त' ही कहकर गौरवान्वित किया जाता था। तुकारामजीने भी इसी प्रकारसे अनेक स्थानोंमें

---

* इस समय भी ऐसा ही होता है। देशका काम करनेवालोंको 'देश-भक्त' कहकर गौरवान्वित किया जाता है। शिवाजी महाराजकी-सी देश-भक्ति जिसमें हो वही सच्चा देश-भक्त है, पर देशकी किञ्चित्-सी सेवा करनेवालोंको भी देश-भक्त कहकर गौरवान्वित करना अनुचित नहीं कहा जा सकता।

'सन्त' शब्दका प्रयोग गौरवार्थ ही किया है। जो श्रीविट्ठलके दास हैं, भजन करनेवाले वारकरी भक्त हैं, भजन-कीर्तनमें जिनका साथ होनेसे कीर्तनका आनन्द सबको प्राप्त होता है, लोक-कल्याण-साधक कीर्तन-सम्प्रदायकी वृद्धिमें जिनसे सहायता मिलती है, उन्हें कृतज्ञताके साथ गौरवान्वित करना सौजन्यका ही लक्षण है। तुकारामजीके सङ्ग करताल बजाते हुए भजन करनेवाले भक्त या उनका कीर्तन सुननेवाले श्रोता सभी तो तुकाराम नहीं थे। देश-भक्तोंमें शिवाजी-जैसा कोई विरला ही होता है वैसे ही वारकरियों-में भी तुकाराम कोई विरला ही हो सकता है! इसके अतिरिक्त अपना भक्ति-प्रेमानन्द जिनका सङ्ग होनेसे बढ़ता है, ज्ञान-वैराग्य प्रज्वलित हो उठता है, जिनके मिलनसे हृदयमें भक्ति-रसकी बाढ़ आती है, उनमें कोई दोष भी हो तो भी उन दोषोंकी उपेक्षा करना या काल पाकर ये दोष नष्ट होनेवाले हैं यह जानकर उनका प्रेम बनाये रहना सज्जनोंका तो स्वभाव ही है। समुदायमें सब प्रकारके लोग होते ही हैं। तुकारामजी कहते हैं—

'हरि-भक्त मेरे प्यारे स्वजन हैं। उनके चरण मैं अपने हृदय-पर धरूँगा। कण्ठमें जिनके तुलसीकी माला है, जो नामके धारक हैं वे मेरे भव-नदीमें तारक हैं। आलस्यके साथ हो, दम्भसे हो अथवा भक्तिसे हो, जो हरिका नाम गाते हैं वे मेरे परलोकके साथी हैं। तुका कहता है, मैं उनके उपकारोंसे बँधा हूँ, इसलिये सन्तोंकी शरणमें आया हूँ।'

* * *

हो कां दुराचारी । वाचे नाम उच्चारी ॥ १ ॥
त्याचा दास मी अंकित । कायावाचामनेसहित ॥ ध्रु० ॥
नसो भाव चित्तीं । हरिचे गुण गातां गीतीं ॥ २ ॥
करी अनाचार । वाचे हरिनाम उच्चार ॥ ३ ॥
हो कां भलतें कुळ । शुचि अथवा चांडाळ ॥ ४ ॥
म्हणवी हरिचा दास । तुका म्हणे धन्य त्यास ॥ ५ ॥

'चाहे वह दुराचारी ही क्यों न हो, पर यदि वाणीसे हरि-नाम लेता है, तो मैं काया-वाचा-मनसा उसका दास हूँ। सर्वथा उसके अधीन हूँ। उसके चित्तमें भक्तिका कोई भाव न हो, बिना भावके हरि-गुण गाता हो; अनाचार करता हो पर हरिनाम उच्चारता हो; चाहे जिस कुलमें उत्पन्न हुआ हो—शुचि हो या चाण्डाल हो, पर अपनेको हरिका दास कहता हो तो तुका कहता है, वह धन्य है।'

कोई कैसा भी हो—दुराचारी, अनाचारी, अभक्त, अकुलीन जैसा भी हो वह यदि हरि-नाम लेनेवाला है तो तुकारामजी उसे धन्य कहते हैं; कहते हैं, मैं उसका दास हूँ। इसमें तत्त्वकी तीन बातें हैं। एक तो यह कि हरि-नाममें इतनी सामर्थ्य है कि कोई कितना भी पतित क्यों न हो वह इसके द्वारा उद्धार पाता है—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
(गीता ९ । ३०)

कोई मनुष्य पहले दुराचारी रहा हो, पर पीछे जब वह हरि-भजनके मार्गपर आ जाय तब उसे साधु ही समझना चाहिये;

कारण, उसका निश्चय पवित्र है, वह सन्मार्गपर आरूढ़ है, अर्थात् यथाकाल उसका उद्धार होगा ही। 'इसलिये यदि वह दुराचारी भी रहा तो भी वह अब अनुताप-तीर्थमें नहा चुका, नहाकर वह सर्वभावसे मेरे अन्दर आ गया।' (ज्ञानेश्वरी ९-४२०) दुराचारीके लिये दुराचारीके नाते यह बात रही। तुकारामजी कहते हैं कि हरिका नाम लेने और गानेवाला मुझे अपनी ही जातिका प्रतीत होता है। हरि-भक्त ही क्यों, हरिके मार्गपर जो आ गया वह भी, तुकारामजी कहते हैं कि मेरा सखा है। तीसरी बात यह है कि दूसरोंके दोष देखनेमें मेरा कोई लाभ नहीं। बनियेकी दूकानसे गुड़ लेना है तो गुड़ ले लो, उसकी जात-पाँत पूछनेसे क्या मतलब? 'दूसरोंके गुण-दोष मैं क्यों कहता फिरूँ', 'उनमें कोई दोष भी हो तो मुझे उससे क्या?' दूसरोंके दोष देखूँ भी तो 'वे दोष मेरे अन्दर उनसे भी अधिक हैं।' मुझसे अधिक दुष्ट और लबार और कौन है? मैं दोषोंकी राशि हूँ; अपने ही घरमें जब इतना कूड़ा भरा हुआ है तब उसे साफ न कर दूसरेके घर झाड़ू देने जाना कौन-सी बुद्धिमानी है? अपने भी और दूसरोंके भी गुण-दोष देखनेसे तुकारामजीका जी ऊब गया था। 'अब मेरे गुण-दोष मत बखानिये' यह वह दूसरोंसे भी कहा करते थे। कीर्तनके प्रसङ्गसे यदि कोई गुण-दोष-चर्चा निकल ही पड़ी तो वह किसी व्यक्तिकी निन्दाके रूपमें नहीं, ईर्ष्या-द्वेष नहीं, बल्कि इसी आन्तरिक प्रेमसे होती थी कि वे दोष निकल जायँ। 'मानके लिये या दम्भके लिये मैं किसीकी छलना नहीं करता, यह श्रीविट्ठलके इन चरणोंकी शपथ करके कहता हूँ।'

अस्तु, तुकारामजीने अपनी अन्तःशुद्धिके द्वारा अपने भजन-कीर्तन-प्रेमी संगियोंको पूज्य मानकर उनके संगसे अपना भगवत्-प्रेम बढ़ानेका काम लिया। इनमें कोई साधारण भक्त रहे होंगे तो कोई बड़े अधिकारी पुरुष भी रहे होंगे। तुकारामजीको अनेक ऐसे सज्जन मिले जिनसे उन्होंने कोई-न-कोई गुण सीखा। उनसे हरि-चर्चा और सत्सङ्गका उन्हें बड़ा लाभ हुआ। विश्रामके स्थान, प्रेम-मूर्ति, सत्-शील, ब्रह्मनिष्ठ हरि-भक्तोंके साथ उनका समागम उनके घरपर, भण्डारा-पर्वतपर, कीर्तनके अवसरपर तथा मन्दिरोंमें समय-समयपर होता ही रहा। जो सन्त नहीं थे उन्हें भी सन्त मानकर तथा उनमें जो कोई गुण होता उसे ग्रहणकर वह अपना भगवत्प्रेम बढ़ानेका अभ्यास अन्तःकरणपूर्वक बराबर करते ही रहते थे। 'सन्तोंके यहाँ प्रेम-ही-प्रेम रहता है', दुःखका नाम भी नहीं रहता; क्योंकि उनका धन स्वयं श्रीविट्ठल है। सन्त प्रेम-सुख ही लेते-देते रहते हैं। 'सन्तोंका भोजन क्या है अमृत-पान है, सदा कीर्तन ही करते रहते हैं', तुकारामजी कहते हैं, ऐसे दयालु सन्त मुझे 'निरन्तर सावधान रखते हैं, उनके उपकार' कहाँतक बखानूँ। इस प्रकार सन्तोंकी महिमा तुकारामजीने बार-बार गायी है। हरि-कथा-माताका अमृत-क्षीर जिनके सत्सङ्गसे, तुकाराम कहते हैं कि मैं सेवन कर पाता हूँ उन मेरे दयालु हरि-भक्तोंके दासोंका मैं दास हूँ। 'दीन और दुर्बलके लिये सुख-राशिस्वरूप हरि-कथा, माता सन्तोंके समागममें ही पन्हाती हैं। अस्तु, इस प्रकार सन्तोंके संगसे तुकारामजीने अपने अन्तरङ्गमें सन्त होकर लाभ उठाया।

१३ नाम-स्मरणानन्द

यहाँतक हमलोगोंने यह देखा कि तुकारामजीने अखण्ड सावधान रहकर किस प्रकार मनोजयका अभ्यास किया, मनसे कैसे-कैसे झगड़े किये और निपटे, कनक-कान्ताके विषयमें उनका कैसा ज्वलन्त वैराग्य था, वाद और छलना करनेवालोंकी उपाधि-से तथा जनसंसदसे उकताकर उन्होंने एकान्त-वास कैसे स्वीकार किया, एकान्त-सुखसे उनका चित्त कैसे शान्त हुआ, अहङ्कार कैसे नष्ट हुआ, अपने दोष वह कैसे भगवान्‌के चरणोंमें निवेदन करते थे और उनका कैसा सत्सङ्ग था। अब आत्म-शुद्धिके प्रयत्नों-का जो शिरोरत्न है उस नाम-संकीर्तनके विषयमें कुछ लिखकर यह प्रकरण समाप्त करेंगे।

एकान्तसे उन्हें जो आनन्द मिला वह एकान्तका फल तो था ही पर इसमें साक्षात् सुखका जो अंश था वह नाम-स्मरणके अभ्यासका ही फल था। केवल एकान्तसे जन-संसर्ग या बाह्योपाधियों-से होनेवाले दुःखका नाश हो सकता है और उससे शान्तिका सुख मिल सकता है। पर यह सुख अप्रत्यक्ष है। प्रत्यक्ष सुखका जो झरना तुकारामजीके हृदयमें झरने लगा वह नाम-संकीर्तनके अभ्यासका ही फल हो सकता है। कीर्तन-भजनादिमें समशील साधु-सन्तों और भावुक भक्तोंके सत्सङ्गसे तो वह नाम-स्मरणका लाभ उठाते ही थे, पर जब एकान्त मिला तब उससे सारा समय नाम-स्मरणके लिये ही खाली मिला। हरि-कीर्तनमें सन्त-समागम-का तथा करताल, वीणा, मृदङ्गादिकी सहायतासे होनेवाले नाद-ब्रह्म-का आनन्द तो अपूर्व है ही, पर उतनेसे काम नहीं चलता।

अखण्ड नाम-स्मरणका आनन्द अहर्निश प्राप्त हुए विना चित्त-शुद्धिका साक्षात्कार नहीं हो सकता। एक पहर कीर्तन हुआ, उतने कालतक तन्मयता हो गयी, पर बाकी समयमें भी मनको कहीं-न-कहीं समाधि दिये विना उसके छल-छन्दसे छुटकारा नहीं मिल सकता। तुकाराम विष्णुसहस्रनामके पाठ तो किया ही करते थे, पर इससे भी अधिक उन्होंने यह किया कि अखण्ड नाम-स्मरणका चसका लगा लिया। यही उनका साधनसर्वस्व है। नाम-स्मरणका चसका लगना बड़ा ही कठिन है, पर जहाँ एक बार यह चसका लगा वहाँ फिर एक पल भी नामसे खाली नहीं जाता। नाम-स्मरण यह है कि चित्तमें रूपका ध्यान हो और मुखमें नामका जप हो। अन्तःकरणमें ध्यान जमता जाय, ध्यानमें चित्त रँगता जाय, चित्तकी तन्मयता हो जाय, यही वाणीमें नामके बैठ जानेका लक्षण है। 'चित्तमें (ध्यान) न हो तो न सही, पर वाणीमें तो हो' यह नाम-स्मरणकी पहली सीढ़ी है। तुकारामजीका नामाभ्यास यहींसे आरम्भ हुआ और जिस अवस्थामें उसकी पूर्णता हुई उस अवस्थामें तुकारामजी कहते हैं कि 'वाणी-ने इस नामका ऐसा चसका लगा लिया है कि मेरी वाणी अब नामोच्चारसे मेरे रोके भी नहीं रुकती। इस बीचके अभ्यासका जो आनन्द है वह अनुभवसे ही जाना जा सकता है। उसे कहकर बतलाना असम्भव है। कुलाचार, सम्प्रदाय-परम्परा, पुराण और साधु-सन्तोंके ग्रन्थ, गुरूपदेश सबने तुकारामजीको यही बतलाया कि नाम-स्मरण ही श्रेष्ठ साधन है, यह हमलोग पहले देख ही चुके हैं। केवल कहनेसे क्या होगा, उसे करके दिखाना होगा।

तुकारामजीने नामका अभ्यास किया और वह धन्य हुए। श्रीपाण्डुरङ्गका रूप देखने या ध्यानमें लानेसे तुकारामजीके चित्तमें प्रेमानन्द हिलोरें मारने लगता था और वह स्वयं उस आनन्दमें नाचते-गाते हुए तल्लीन हो जाते थे।

'कटिपर कर धरे तुम्हारी मूर्तिको देखकर मेरा जी ठण्डा होता है, ऐसी इच्छा होती है कि इन चरणोंको पकड़े रहूँ। मुखसे गीत गाता हूँ, हाथसे ताली बजाता हूँ, प्रेमानन्दसे तुम्हारे मन्दिरमें नाचता हूँ। तुका कहता है, तुम्हारे नामके सामने ये सब बेचारे मुझे तुच्छ जान पड़ते हैं।'

* * *

'वह मूर्ति देखी जो मेरे हृदयकी विश्रान्ति है।'

* * *

'तुम्हारे प्रेम-सुखके सामने वैकुण्ठ बेचारा क्या है?'

* * *

'धन्य है यह काल जो गोविन्दके सङ्कल्प वहन करता हुआ आनन्दरूप होकर बहा जा रहा है।'

* * *

'गुण गाते हुए, नेत्रोंसे रूप देखते हुए तृप्ति नहीं होती। पाण्डुरङ्ग मेरे कितने सुन्दर हैं, सुवर्णश्यामकान्ति कैसी शोभा देती है। सब मङ्गलोंका यह सार है, सुख सिद्धियोंका भण्डार है। तुका कहता है, यहाँ सुखका कोई ओर-छोर नहीं।'

श्रीविट्ठलरूपमें चित्त-वृत्ति जब इतनी तन्मय हुई हो, पाण्डुरङ्गको हृदय-सम्पुटमें स्थिर करनेका जब ऐसा दृढ़ अभ्यास हो

रहा हो तब इस अभ्यासके लिये अखण्ड नाम-स्मरण और ध्यानसे बढ़कर और भी कोई उपाय कभी किसीने बतलाया है ? नाम-स्मरण सबके लिये सब समय अत्यन्त सुलभ है ।

नाम घेतां न लगे मोल । नाममंत्र नाहीं खोल ॥

'नाम लेते कुछ मूल्य नहीं देना पड़ता और नाम-मन्त्रमें कोई गूढ़ बात भी नहीं है' और यह साधन भी ऐसा है कि तुरन्त फल देनेवाला है, नकद व्यवहार है । 'मुखीं नाम हातीं मोक्ष । ऐसी साक्ष बहुतांसी' (मुखमें नाम हो तो हाथमें मुक्ति रखी हुई है, बहुतोंको इसकी प्रतीति मिल चुकी है ।) पर दूसरोंका हवाला क्यों ? 'तुकारामजी कहते हैं, राम-नामसे हम कृतकृत्य हुए ।' यह तुकाराम अपना अनुभव बतलाते हैं । जीभको एक बार नामकी चाट लग जानी चाहिये, फिर 'प्राण जानेपर भी नामको वह नहीं छोड़ती ।' नाम-चिन्तनमें ऐसा विलक्षण माधुर्य है । चीनी और मिठास जैसे एक हैं वैसे ही नाम और नामी भी एक ही हैं, पर यह अनुभव नाम-स्मरणानन्द भोगनेवालोंको ही प्राप्त होता है । नाम केवल साधन नहीं है, नाम-छन्दसे साध्य-साधनकी एकता प्रत्यक्ष होती है । *तुकारामजीने अपार नाम-सुख लूटा, बल्कि यह कहिये कि अखण्ड* नाम-सुख भोगनेके लिये और यह सुख दूसरोंको दिलानेके लिये ही उनका अवतार हुआ था । उठते-बैठते, खाते-पीते, सोते-जागते, चलते-फिरते उनका नाम-चिन्तन चला ही करता था और 'चिन्तनसे तद्रूपता' का अनुभव भी उन्हें होता था । नाम-चिन्तनसे जन्म-जरा-भय-व्याधि सब छूट जाते हैं । 'भव-रोग-जैसा रोग भी जाता है, फिर और चीज ही क्या है ?' तुकारामजीने नामका

आनन्द कैसे लिया, उससे उनके संसार-पाश कैसे कट गये, हरि-प्रेमका चसका बढ़नेसे रसना कैसी रसीली हो गयी, इन्द्रियोंकी दौड़ कैसे थमी, अनुपम सुख स्वयं कैसे घर ढूँढ़ता हुआ चला आया, इस विषयमें सहस्रों अवसरोंपर उन्होंने अपने मधुर अनुभव अनुपम माधुरीके साथ वर्णन किये हैं। भगवान्‌की छविको देखते, चित्तमें उसका ध्यान करते हुए नाम-रङ्ग चित्तपर आ जाते थे और नाम-रङ्गमें चित्तके रँगते-रँगते श्रीरङ्ग अन्तःकरणमें आकर प्रकट होते और नाम-नामीकी एकरूपतामें तुकाराम घुल जाते थे। एक विट्ठलके सिवा तब और कुछ नहीं रह जाता था। तुकारामजीके यहाँका यह परमामृत भोजन देखकर जिसके लार न टपके ऐसा भी कोई अभागा हो सकता है? अब तुकारामजीके श्रीमुखसे नामामृत-माधुरीका किञ्चित् आस्वादन हमलोग भी कर लें—

नाम घेतां मन निवे। जिव्हे अमृतचि स्रवे।
होताती बरवे। ऐसे शकुन लाभाचे॥ १॥
मन रंगलें रंगलें। तुझ्या चरणीं स्थिरावलें।
केलियां विट्ठलें। कृपा ऐसी जाणावी॥ २॥

'नाम लेते मन शान्त होता है, जिह्वासे अमृत झरने लगता है और लाभके बड़े अच्छे शकुन होते हैं। मन तुम्हारे रंगमें रँग गया, तुम्हारे चरणोंमें स्थिर हो गया। श्रीविट्ठलनाथने ऐसी कृपा की, इसलिये ऐसा हुआ।'

* * *

बैसूं खेळूं जेवूं । तेथें नाम तुझें गावूं ॥ १ ॥
रामकृष्णनाममाळा । घालूं ओवूनियां गळा ॥ २ ॥

'जहाँ भी बैठें, खेलें, भोजन करें वहाँ तुम्हारा नाम गायेंगे । राम-कृष्णके नामकी माला गूँथकर गलेमें डालेंगे ।'

*　　　　*　　　　*

संग आसनीं शयनीं । घडे भोजनीं गमनीं ॥ ३ ॥
तुका म्हणे काळ । अवघा गोविन्दें सुकाळ ॥ ४ ॥

'आसन, शयन, भोजन, गमन सर्वत्र सब काममें श्रीविट्ठलका सङ्ग रहे । तुका कहता है, गोविन्दसे यह अखिल काल सुकाल है ।'

*　　　　*　　　　*

इन्द्रियांची हांव पुरे । परि हें उरे चिंतन ॥

'इन्द्रियोंकी हवस मिट जाती है । पर यह चिन्तन सदा बना रहता है ।'

*　　　　*　　　　*

काळ ब्रह्मानन्दें सरे । उरलें उरे चिंतन ॥

'ब्रह्मानन्दसे काल समाप्त हो जाता है । जो कुछ रहता है वह चिन्तन ही रहता है ।'

*　　　　*　　　　*

समर्पिली वाणी । पांडुरंगीं घेते धणी ॥१॥
धार अखंडित । ओघ चालियेला नित्य ॥२॥

'यह समर्पित वाणी पाण्डुरङ्गकी ही इच्छा करती है। इस रसकी धारा अखण्ड है, इसका प्रवाह नित्य है।'

* * *

बोलणेंचि नाहीं। आतां देवाविणें कांहीं ॥१॥
एकसरें केला नेम। देवा दिले क्रोध काम ॥२॥

'अब भगवान्‌को छोड़ और कुछ बोलना ही नहीं है। बस, यही एक नियम बना लिया है। काम-क्रोध भी भगवान्‌को दे चुका।'

* * *

पवित्र तें अन्न। हरिचिंतनीं भोजन ॥१॥
तुका म्हणे चवी आलें। जेंकां मिश्रित श्रीविठ्ठलें ॥३॥

'वही अन्न पवित्र है जिसका भोग हरि-चिन्तनमें है। तुका कहता है, वही भोजन स्वादिष्ट है जिसमें श्रीविट्ठल मिश्रित हैं।'

लागलें भरतें। ब्रह्मानन्दाचें वरतें ॥ १ ॥
तुका म्हटे वाट। बरवी सांपडली नीट ॥ ४ ॥

'ब्रह्मानन्दकी बाढ़ आ गयी। तुका कहता है, यह अच्छा रास्ता मिला।'

* * *

'मुझमें इतनी बुद्धि नहीं जो मैं तुम्हारे उस ध्यानका वर्णन करूँ जिसका वर्णन करते-करते वेद भी मौन हो गये। अपनी मतिके अनुसार गढ़कर तुम्हारे सुन्दर चरणकमल चित्तमें धारण कर लिये हैं। तुम्हारा यह श्रीमुख ऐसा दीखता है जैसे सुखका

ही ढला हुआ हो, इसे देख मेरी भूख-प्यास हर जाती है। तुम्हारे गीत गाते-गाते रसना मीठी हो गयी, चित्तको समाधान मिला। तुका कहता है, मेरी दृष्टि इन चरणोंपर, कुङ्कुमके इन सुकुमार पदोंपर गड़ी है।'

* * *

'इसके समान सुख त्रिभुवनमें नहीं है, इससे मन यहीं स्थिर हो गया। तुम्हारे कोमल चरण चित्तमें धारण कर लिये, कण्ठमें एकावलि नाम-माला डाल ली। काया शीतल हुई, चित्त पीछे फिरकर विश्रान्ति-स्थानमें पहुँच गया, अब वह आगे (संसार-की ओर) नहीं आता है। तुका कहता है, मेरे सब हौसिले पूरे हुए। सब कामनाएँ श्रीपाण्डुरङ्गने पूरी कीं।'

* * *

'नाम लेनेसे कण्ठ आर्द्र और शरीर शीतल होता है, इन्द्रियाँ अपना व्यापार भूल जाती हैं। यह मधुर सुन्दर नाम अमृतको भी मात करता है, इसने मेरे चित्तपर अधिकार कर लिया है। प्रेम-रससे शरीरकी कान्तिको प्रसन्नता और पुष्टि मिली। यह नाम ऐसा है कि इससे क्षणमात्रमें त्रिविध ताप नष्ट होते हैं।'

यह नाम-स्मरण ऐसा है कि इससे श्रीहरिके चरण चित्तमें, रूप नेत्रोंमें और नाम मुखमें आ जाता है और यह जीवको हरि-प्रेमका आनन्दामृत पान कराकर उसका जीवत्व हर लेता है, तब 'विट्ठल ही रह जाते हैं' अद्वयानन्दका भोग ही रह जाता है। तुकाराम स्वानुभवसे बतलाते हैं कि नाम-स्मरणसे वह चीज ज्ञात होती है जो अज्ञात है, वह दिखायी देने लगता है जो पहले

नहीं देख पड़ता, वह वाणी निकलती है जो पहले मौन रहती है, वह मिलन होता है जो पहले चिरविरहमें छिपा रहता है और यह सब आप ही आप होने लगता है।

तुका म्हणे जों जों भजनासी वळे।
अंग तों तों कळे संनिधता॥

'तुका कहता है, भजनकी ओर चित्त ज्यों-ज्यों झुकता है त्यों-त्यों भगवत्सान्निध्यका पता लगता है।' पर यह अनुभव उसीको मिल सकता है जो इसे करके देखे। नामको छोड़ उद्धार-का और कोई उपाय नहीं है, यह तुकारामजीने श्रीविट्ठलनाथकी शपथ करके कहा है। कहनेकी हद हो गयी। अस्तु, तुकारामजीके तीन अभङ्ग इस प्रसंगमें और देकर यह प्रकरण समाप्त करते हैं।

'विषयका निःशेष विस्मरण हो गया, चित्तमें ब्रह्मरस भर गया। मेरी वाणी मेरे वशमें न रही, ऐसा चसका उसे नामका लग गया। लाभकी अभिलाषा लिये वह मनके भी आगे चली, जैसे कृपण धनके लोभसे चलता है। तुका कहता है गङ्गासागर-संगममें मेरी सब उमङ्गें एकामयी हो गयीं।'

* * *

'प्रेमामृतसे मेरी रसना सरस हो गयी, और मनकी वृत्ति चरणोंमें लिपट गयी। सभी मङ्गल वहाँ आकर न्योछावर हो गये, आनन्द-जलकी वहाँ वृष्टि होने लगी। सब इन्द्रियाँ ब्रह्मरूप हो गयीं, उसीमें स्वरूप ढला। तुका कहता है, जहाँ भक्त रहते हैं वहाँ भगवान् भी विराजते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं।'

* * *

'अनन्त प्रकारके आनन्द हमारे अन्दर समा गये। प्रेमका प्रवाह चला, नामनिर्झर झरने लगे। राम-कृष्ण नारायणरूप अखण्ड जीवनमें कोई खण्ड नहीं। तुका कहता है, इह-परलोक उसी जीवनके दो तीर हैं।'

नामकी महिमा अनेकोंने अनेक स्थानोंमें गायी है। पर तुकारामजीने सबको मात कर दिया। तुकारामजीकी-सी अमृत-रसतरंगिणी अन्यत्र कहीं नहीं मिलेगी। तुकारामजीके गोमुखसे सुमधुर गम्भीर नादके साथ बहनेवाली नाम-मन्दाकिनीमें सारा विश्व समा गया है। नामामृत-सेवनसे तुकारामजीकी रसना रसमयी हो गयी, वाणी मनके आगे बढ़ चली, सब इन्द्रियाँ ब्रह्मरूप हो गयीं, तुकाराम और नाम एक हो गये। इन नाम-भक्तोंको छोड़कर भगवान् अन्यत्र कहाँ रह सकते हैं? भक्त, भगवान् और नामका त्रिवेणी संगम हुआ। तुकारामजीका असीम नाम-प्रेम देखकर भगवान् मुग्ध हो गये और उन्हें तुकारामजीके सामने, तुकारामजीने जिस रूपमें चाहा उसी रूपमें आकर प्रकट होना पड़ा। 'अच्युताचा योग नामछंदें' (नामके छन्दसे अच्युतसे मिलन होता है।) यह उन्हींका वचन है और इसी वचनके अनुसार अच्युत भगवान्‌को नाम-रूप धारण करके तुकारामजीसे मिलने आना पड़ा। तुकारामजीको श्रीपाण्डुरङ्गका साक्षात् दर्शन हुआ, सगुण-साक्षात्कार-का महायोग प्राप्त हुआ। वह दिव्य चरित्र पाठक आगेके तीन प्रकरणोंमें देखेंगे। साधनोंकी इति होनेपर साध्य आप ही साधक-के पास चला आता है। कैसे, सो पाठक चित्तको स्थिर करके देखें, भोग करें और स्वानन्दको प्राप्त हों।

नवाँ अध्याय

सगुण भक्ति और दर्शनोत्कण्ठा

१ तीन अध्यायोंका उपोद्घात

पिछले अध्यायमें यह देखा गया कि तुकारामजीने चित्त-शुद्धिके लिये कौन-कौन-से उपाय किये, किन साधनोंसे जीवात्मा-परमात्मा-के बीचका परदा हटाया, और कैसे अखण्ड नाम-स्मरणके द्वारा साधनोंकी परमावधि की। पहले कहे अनुसार सत्सङ्ग, सत्-शास्त्र और सद्गुरु-कृपा ये तीन मंजिलें पार करके, अब साक्षात्कारकी चौथी मंजिलपर पहुँचना है। 'वही-खाता डुबाकर, धरना देकर, तुकाराम बैठ गये, तब उस ध्यानावस्थामें 'नारायणने आकर समाधान किया' यह जो कुछ तुकारामजी कह गये हैं वही प्रसंग अब हमलोग देखें। इस प्रसंगमें भक्ति-मार्गकी श्रेष्ठता, सगुण-निर्गुण-विवेक, तुकारामजीकी सगुणोपासना, श्रीविट्ठलके दर्शनोंकी लालसा, इस लालसाके साथ भगवान्से प्रेम-कलह, भगवान्से मिलनेकी छटपटाहट इत्यादि बातें बतलानी हैं। भगवान्के सगुण-दर्शन होनेके पूर्व भक्तके अन्तःकरणकी क्या हालत होती है यह हम इस अध्यायमें देख सकेंगे। इसके बादके प्रकरणमें तुकारामजीके प्राणप्यारे पण्ढरिनाथ श्रीविट्ठलभगवान्के स्वरूपका पता लगानेका

प्रयत्न करना होगा ! श्रीविट्ठलस्वरूपका बोध होनेपर उसके बादके प्रकरणमें वह दिव्य कथा-भाग हमलोग देखेंगे जिसमें रामेश्वर भट्टके कहनेसे तुकारामजीने बही-खाता डुबा दिया, तेरह दिन और तेरह रात श्रीविट्ठलके चिन्तनमें निमग्न होकर एक शिलापर पड़े रहे और फिर उन्हें श्रीविट्ठलके जगदुर्लभ दर्शन हुए। यथार्थमें, ये तीनों प्रकरण एक 'सगुणसाक्षात्कार' प्रसंगके अन्दर ही आ सकते थे, पर साक्षात्कार-का वास्तविक स्वरूप पाठकोंके ध्यानमें अच्छी तरह आ जाय इसके लिये एक प्रकरणके तीन प्रकरण करके इस विषयका साङ्गोपाङ्ग विचार करनेका संकल्प किया है। पहले दर्शनकी उत्कण्ठा, फिर जिनके दर्शनकी उत्कण्ठा है उन श्रीविट्ठलनाथके स्वरूपकी ढूँढ़-खोज, और इसके पश्चात् अत्युत्कट भक्तिकी अवस्थामें उसी स्वरूपमें भगवान्‌के दर्शन, इस क्रमसे होनेवाली ये तीन बातें तीन प्रकरणोंमें क्रमसे ही ले आनी हैं। पाठक सावधान होकर ध्यान दें यह विनय करके अब हमलोग सगुण-साक्षात्कारके प्रसंगका पूर्व रंग देखना आरम्भ करें।

२ भक्ति-मार्गकी श्रेष्ठता

नर-जन्मकी सार्थकता भगवान्‌के मिलनमें ही है। सन्तोंके मुखसे तथा शास्त्र-वचनोंसे यह जानकर मुमुक्षु भगवत्प्राप्तिका मार्ग ढूँढ़ता है। मार्ग तो अनेक हैं। मुमुक्षु यह सोचता है कि अपनी मनःप्रवृत्तिके लिये कौन-सा मार्ग सहज, सुलभ और अनुकूल है, और जो मार्ग ऐसा दिखायी देता है उसीपर वह आरूढ़ होता है। भगवत्प्राप्तिके चार मार्ग मुख्य हैं—योग-मार्ग, कर्म-मार्ग, ज्ञान-मार्ग और भक्ति-मार्ग। श्रुति काण्डत्रयरूपिणी है अर्थात् कर्म, उपासना

और ज्ञान ये तीन मार्ग बतानेवाली है और चौथा योग-मार्ग पतञ्जलि ऋषिने स्पष्ट करके बताया है। आजतक सहस्रों मुमुक्षु इन्हीं चार मार्गोंमेंसे अपनी सुलभता और प्रियताके अनुसार कोई-न-कोई मार्ग चुनकर उसपर चले हैं और कृतार्थ हुए हैं। साध्य एक ही है और वह परमात्मपद है। साधनोंमें सबने अपनी पसन्दका उपयोग किया है। चारों मार्ग अच्छे हैं, तथापि इस कलियुगके लिये शास्त्रकारोंने भक्ति-मार्गको ही श्रेष्ठ बताया है और सहस्रों सन्त-महात्मा भी यही कह गये हैं। भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें और भागवतमें भी भक्ति-मार्गका उपदेश मुख्यतः किया है। गीता और भागवत भक्ति-भवनके आधार-स्तम्भ हैं। भगवान्‌ने गीतामें कर्म, ज्ञान और योग—इन तीनों मार्गोंको भक्ति-मार्गमें ही लाकर मिला दिया है। भगवान्‌ने अर्जुनको अपना जो विश्वरूप दिखाया वह 'न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानैर्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः' (अ० ११ । ४८) चारों वेदोंके अध्ययनसे, यथाविधि यज्ञोंके अध्ययनसे, दानसे, श्रौतादि कर्मोंसे या घोर तपादि साधनोंसे कोई भी नहीं देख सका था, वह केवल अर्जुनकी भक्तिसे ही भगवान्‌ने प्रसन्न होकर दिखाया। भगवान्‌की भक्तिसे ही भगवान्‌का रूप दिखायी देता है। गीताके उपसंहारमें भी भगवान्‌ने जो 'गुह्याद्गुह्यतरं ज्ञानम्' बताया वह भी यही था कि—

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।

सबके हृदयमें जो विराजते हैं उन ईश्वरकी शरणमें जानेका ही यह उपदेश है और सब कुछ कह चुकनेके पश्चात् 'सर्वगुह्यतमं भूयः' कहकर जो अन्तिम मधुर कौर अर्जुनके मुँहमें और अर्जुनके

निमित्तसे सबके मुँहमें डाला है वह मधुरतम भक्ति-रसका ही है—

'मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।'

'सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।'

'अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्।'

अर्थात् यह लोक अनित्य है, दुःखका देनेवाला है, यहाँ आकर मेरा भजन करो। यही गीताका उपदेश है। यही गीताका रहस्य है। सब सन्तोंने भगवद्वचनको सामने रखकर स्वानुभवसे भूतहितके लिये इसी भक्ति-मार्गका निर्देश किया है। तुकारामजी-का हृदय भक्तिके अनुकूल था और भागवत-सम्प्रदायके सत्सङ्गसे उनकी भक्ति-प्रवण चित्त-वृत्ति और भी भक्तिमय हो गयी। उनका यह विश्वास अत्यन्त दृढ़ हो गया कि भगवान् भक्तिसे ही मिलेंगे और उससे हम कृतकृत्य होंगे। 'भगवान्में निष्काम निश्चल विश्वास हो, औरोंकी कोई आस न हो।' उन्हें यह निश्चय कैसे हुआ यह हम उन्हींकी वाणीसे सुनें—

योगाभ्यास करना अच्छा है पर योग-साधनकी क्रिया मैं नहीं जानता, और उतनी सामर्थ्य भी मुझमें नहीं है। और फिर मुख्य बात यह है कि भगवान्के सिवा मेरे चित्तमें और कुछ भी नहीं है।

'योगाभ्यास करनेकी सामर्थ्य नहीं, साधनकी क्रिया मालूम नहीं। अन्तरङ्गमें केवल तुमसे मिलनेका प्रेम है ········।'

दूसरी बात यह कि 'भक्तिका भेद' जो जानता है 'उसके द्वारपर अष्ट महासिद्धियाँ लोटा करती हैं, जाओ कहनेसे भी नहीं जातीं।' योगकी सिद्धियाँ भक्त न भी चाहे तो भी उसके अन्दर आकर बैठ जाती हैं। जब यह बात है तब योगाभ्यास अलग

करनेकी आवश्यकता ही क्या रही? 'योग-भाग्य अपनी सब शक्तियोंसमेत आप ही, घर बैठे, चला आता है।' अस्तु, योगकी केवल क्रिया करनेसे चित्त-शुद्धि नहीं होती। ऐसे किसी योगीके पास जाइये तो 'वह मारे क्रोधके गुर्राते' ही दिखायी देते हैं! सच्चा योग तो जीव-परमात्म-योग है—भक्त-भगवान्‌का ऐक्य है जो भक्तियोगसे सिद्ध होता है।

अन्य मार्ग उन युगोंके लिये ठीक थे पर कलियुगमें तो भक्ति-मार्ग ही सबसे अधिक कल्याणकारक है। कर्म-मार्गके विधि-विधान ठीक समझमें नहीं आते और उनका आचरण तो और भी कठिन है।

'सब रास्ते सँकरे हो गये, कलिमें कोई साधन नहीं बनता। उचित विधि-विधान समझमें नहीं आता और हाथसे तो होता ही नहीं।'

भक्ति-पन्थ सबसे सुलभ है। इस पन्थमें सब कर्म श्रीहरिके समर्पित होते हैं, इससे पाप-पुण्यका दाग नहीं लगता और जन्म-मृत्युका बन्धन कट जाता है।

'भक्ति-पन्थ बड़ा सुलभ है। यह पाप-पुण्योंका बल हर लेता है, इससे आने-जानेका चक्कर छूट जाता है।'

और फिर यह भी बात है कि योग या ज्ञान या कर्मके मार्ग-पर चलनेवालेको अपने ही बलपर चलना पड़ता है। भक्ति-मार्गमें यह बात नहीं। इस मार्गपर चलनेवालेके सहाय स्वयं भगवान् होते हैं।

उभारोनि बाहे। विठो पालवीत आहे।
दासां मीच साहे। मुखें बोले आपुल्या॥ २॥

'दोनों हाथ उठाकर भगवान् पुकारकर कहते हैं कि मेरे जो भक्त हैं उनका मैं ही सहाय हूँ ।' 'न मे भक्तः प्रणश्यति' (गीता ९ । ३१) 'तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्' (गीता १२ । ६) यह भगवान्ने स्वयं ही कहा है । तात्पर्य, भक्ति-मार्ग सबसे श्रेष्ठ मार्ग है । 'अन्य उपाय हैं पर उनके अनुपान कठिन हैं । और भक्ति-मार्ग ही ऐसा मार्ग है कि जीव अनन्य-भावसे भगवान्की शरणमें जब जाता है तब भगवान् उसे (गोदमें) उठा लेते हैं । मन्त्र, तन्त्र, जप, तप, व्रत ये सब विकट मार्ग हैं, इनमें सफलता अनिश्चित है ।

तपें इंद्रियां आघात । क्षणें एक वाताहात ॥३॥
मंत्र चळे थोडा । तरी धडचि होय वेडा ॥४॥
व्रतें करितां सांग । तरी एक चुकतां भंग ॥५॥

* * *

तैसी नव्हे भोळी सेवा । एक भावचि कारण देवा॥२॥

'तपसे इन्द्रियोंपर आघात होता है, एक क्षणमें न जाने क्या हो जाय ! मन्त्रमें यदि जरा भी इधर-उधर हो गया कि भला-चङ्गा आदमी भी पागल हो जाय । साङ्ग व्रत करो पर यदि एक भी भूल हुई तो सब गुड़ गोबर हो जाय ।' * * * 'पर यह भोली-भाली सेवा ऐसी नहीं है, इसमें तो भगवान्को बस, हृदयका भाव चाहिये ।'

इससे कोई यह न समझे कि तुकारामजी व्रत, जप, तपादि-को बुरा बतलाते हैं । इनमें कुछ भी बुरा नहीं है । ये साधन भी भगवान्में चित्त लगाकर किये जायँ तो ये भक्तिरूप ही हैं । ओवी-सदृश अभङ्गोंमें उन्होंने कहा है—

करा जप तप अनुष्ठान याग। संतीं जे मारग स्थापियेले॥
सत्य मानूनियां संतां च्या वचना। जा रे नारायणा शरण तुम्ही॥

'जप करो, तप करो, अनुष्ठान करो, यज्ञ-याग करो; सन्तोंने जो-जो मार्ग चलाये हैं उन सबको चलाओ। सन्तोंके वचनोंको सत्य मानकर तुमलोग नारायणकी शरणमें जाओ।'

ज्ञान-मार्ग देखिये तो 'दुर्लभ ज्ञानकी बातें करना चाहे सुलभ हो पर इससे अनुभव तो कुछ भी नहीं होता।' शुद्ध ज्ञान तो अत्यन्त दुर्लभ है। किसी भी वासनाका छूत न लगा हो, ऐसा शुद्ध ज्ञान जब मैं ढूँढ़ने चला तब यह देखा कि ज्ञानकी पीठपर प्रायः अहङ्कारका भूत सवार रहता है। इसलिये आठों पहर चिन्तनमें ही मङ्गल जानकर मैंने भजनका मार्ग ही स्वीकार किया।

मनोवागतीत जो तुम्हारा स्वरूप है वह, जीवके ध्यानमें कैसे उतरे, इसका विचार करते हुए तुकाराम कहते हैं 'इस देहके द्वारा योग, याग, तप करनेसे या ज्ञानके पीछे पड़नेसे तुम नहीं मिलते' इसलिये भोली-भाली भक्तिके द्वारा तुम्हारी सेवा करनेमें ही कल्याण है, यही मैंने निश्चय किया। 'भक्तिके मानसे मैं भगवान्‌को नापता हूँ, और किसी नापसे भगवान् नहीं नापे जा सकते।' भगवान् अनन्त हैं, उनका अन्त, उनका पार वेदों समेत कोई भी नहीं पा सका; योग, ज्ञान, कर्म उसे नहीं जान सके, इसलिये मैंने भक्तिको ही पकड़ा है।

'ज्ञातापनसे मैं बहुत डरता हूँ'—ज्ञानसे ज्ञानका अभिमान कहीं सिरपर न चढ़ बैठे, इस भयसे मैंने ज्ञानका मार्ग ही छोड़ दिया। मुझे प्रेम-निर्झर चाहिये, तुम्हारी भक्तिका रस चाहिये।

इस प्रेमामृतकी—इस भक्ति-रसकी बराबरी और कौन कर सकता है?

यासी तुळे ऐसे कांहीं। दुजें त्रिभुवनीं नाहीं।
काला भात दही। ब्रह्मादि कां दुर्लभ॥२॥

'त्रिभुवनमें कोई दूसरी चीज ऐसी नहीं जिसकी इसके साथ तुलना की जा सके। हरि-कीर्तनके इस दही और भातके काँदोका जो आनन्द है वह ब्रह्मादिके लिये भी दुर्लभ है।' फिर तुकारामजी कहते हैं, आजतक अद्वैत-ज्ञानकी बातें मैंने बहुत कह डालीं पर हे प्यारे पण्ढरिनाथ! तुम भगवान् हो और मैं भक्त हूँ, यह जो नाता है यह कभी न टूटे और भक्तिका रंग कभी फीका न पड़े यही तुम्हारे चरणोंमें मेरी विनती है।

तुका म्हणे हेंचि देई। मीतूंपणा खंड नाहीं॥
बोलिलों त्या नाहीं। अभेदाची आवडी॥४॥

'तुका कहता है, मुझे बस यही दो कि तुम तुम बने रहो और मैं मैं बना रहूँ, इसमें खण्ड न पड़े। जिस अभेदको मैंने बखाना उसमें मेरी रुचि नहीं है।'

३ कर्म-ज्ञान-योग भक्तिमें समाये

'अभेदकी रुचि नहीं' यह बात तुकारामजीने अभेदको अनुभव किये बिना कदापि न कही होगी। भक्तिका आसन नीचा और ज्ञानका आसन ऊँचा, ज्ञानमार्गी लोग भले ही कहा करें, पर ज्ञानेश्वर, एकनाथ, तुकाराम-जैसे ज्ञानी भक्त 'मुक्तिके परेकी भक्ति' अर्थात् परा-भक्तिका ही आनन्द केवल ज्ञानानन्दसे अधिक मानते हैं। मोक्षकी हमें इच्छा नहीं, उसे हमने गठरीमें गठिया रखा है, भक्त मोक्ष नहीं चाहते, मोक्ष हमारे द्वारका

खिलौना है, मोक्ष भक्तोंके द्वारपर भिक्षुक बनकर भिक्षा पानेके लिये खड़ा है इत्यादि उद्गार तुकारामजीके मुखसे अनेक बार निकले हैं, पर इसका यह मतलब नहीं है कि मोक्षसे उनका कुछ वैर था। मोक्ष तो सहज स्थिति है, इसका निश्चय होनेपर ही उन्होंने भक्तिके आनन्दकी इतनी महिमा बखानी है। ज्ञानसम्मिश्र-भक्ति या ज्ञानोत्तर-भक्ति—या कहिये परा-भक्ति—ज्ञानके द्वारा स्वरूपबोध होनेके पश्चात्की ही स्थिति है। इस स्थितिको प्राप्त होनेपर ही तुकारामजीने भक्तिके परमानन्दका सुख-विलास भोग करनेकी इच्छा की। तुकारामजी-जैसे महाभागवत परम भक्तोंने योग, ज्ञान और कर्मके मार्गोंको तिरस्कृत नहीं किया है। ये सब मार्ग उत्तम हैं, पर भक्ति-मार्गपर चलनेसे इन सब मार्गोंपर चलनेका फल मिल जाता है और प्रेमका अलौकिक आनन्द भी प्राप्त होता है। योग कहते हैं चित्त-वृत्ति-निरोधको और इसका उपाय पातञ्जलयोगमें ही 'ईश्वरप्रणिधानाद्वा' * भी कहा है। ईश्वरप्रणिधानके द्वारा तुकारामजीकी चित्त-वृत्तियोंका कितना निरोध हुआ था यह देखा जाय तो तुकारामजी योगी नहीं थे, यह कौन कह सकता है? इसी प्रकारसे सङ्ग और फलाशा छोड़कर कर्म करना ही यदि निष्काम कर्मयोगका सार है तो केवल भगवान्‌को प्रसन्न करनेके लिये कर्म करनेवाले तुकाराम कर्मयोगी

---

* इस सूत्रका अर्थ तुकारामजी यों बतलाते है—

योगाचें तें भाग्य क्षमा। आधीं दमा इन्द्रियें॥ १॥
अवघीं भाग्यें येती घरा। देव सोयरा जालिया॥ २॥

'योगका भाग्य है क्षमा। इसके लिये पहले इन्द्रियोंका दमन करो। भगवान्‌को अपना लो तो सब भाग्य, घर बैठे, चले आवेंगे।'

नहीं थे, यह भी कोई कह सकता है ? जीव-परमात्म-योग ही यदि ज्ञान-योगका अन्तिम साध्य है तो 'तुका विट्ठल दुजा नाहीं' (तुका और विट्ठल दो नहीं हैं) यह अनुभव बतलानेवाले, ज्ञानके इस शिखरपर पहुँचे हुए तुकाराम ज्ञानी नहीं थे, यह भी कौन कह सकता है ? तात्पर्य, कर्म, ज्ञान और योगका भक्तिसे कोई विरोध नहीं। ये शब्द अलग-अलग हैं और भगवान्‌से इनका अलगाव हो तो ये मार्ग भी अलग-अलग हो जाते हैं, पर यथार्थमें ये सब मार्ग एक ही अनुभवके निदर्शक हैं। तुकाराम योगी थे, कर्मी थे और ज्ञानी थे और सबसे बड़ी बात यह कि यह सब होते हुए वह परम भक्त थे। इसी कारण उनके चित्त और वाणीमें इतना गाढ़ा प्रेमरंग भरा हुआ है। इस भक्तिका स्वरूप-वर्णन शब्दोंद्वारा नहीं हो सकता। प्रेमका स्वरूप अनिर्वचनीय है।

प्रेम नये बोलतां सांगता दावितां। अनुभव चित्ता चित्त जाणे॥

'प्रेम बोला नहीं जा सकता, बताया नहीं जा सकता, उठाकर हाथपर रखा नहीं जा सकता। यह चित्तका अनुभव है, चित्त ही जान सकता है।' कर्म-ज्ञान-योगको जिस भक्तिसे पूर्णता प्राप्त होती है, जिससे कर्म, ज्ञान, योग सार्थक होते हैं, वह भक्ति—वह प्रेम तुकारामजीके हृदयमें परिपूर्ण था। 'हेंचि माझें तप' अभङ्ग-में उन्होंने यह बताया है कि भगवान्‌का चिन्तन करना, उनका नाम लेना, उनके रूपमें तन्मय हो जाना ही मेरा तप है, यही मेरा योग, यही मेरा यज्ञ, यही मेरा ज्ञान, यही मेरा जप-ध्यान, यही मेरा कुलाचार और यही मेरा सर्वस्व है। कर्मके 'आदि, मध्य, अन्तमें' भगवान्‌का अखण्ड चिन्तन ही उन्होंने अपना

स्वधर्म बताया है। कर्म-ज्ञान-योगमें जो-जो कमी हो उसकी पूर्ति हरि-प्रेमसे हो जाती है इसलिये भक्ति-योग ही सबसे श्रेष्ठ योग है। तुकारामजीने यावज्जीवन भक्ति-सुख-भोग किया और भक्ति-का डङ्का बजाकर भक्तिकी महिमा गायी, भक्तिका ही प्रचार किया। नारायण भक्तिके वश होते हैं।

प्रेम सूत्र दोरी। नेतो तिकडे जातो हरी॥

'प्रेम-सूत्रकी डोरसे जिधर ले जाते हैं उधर ही भगवान् जाते हैं।' भक्ति-मार्गको श्रेष्ठ माननेके जो कारण तुकारामजीने बताये हैं, हो सकता है कि किसी-किसीको ये न जँचे। ऐसे जो लोग हों उन्हें तुकारामजी यह उत्तर देते हैं कि 'यह मार्ग मुझे रुचा इसलिये मैंने इसे स्वीकार किया।' 'मत तो जहाँ-तहाँ बिखरे पड़े हैं, मेरे लिये जो उपयुक्त थे उन्हींको मैंने उठा लिया।' भिन्न-भिन्न रुचिके लोग हैं, उनके संग हम कहाँ-कहाँ नाचते फिरें? अच्छा तो यही है कि 'अपना जो विश्वास हो उसीका यत्न करें'—अपनी ईश्वर-निष्ठा बनाये रहे, दूसरोंके रास्ते न जाय। भक्ति-सुख कभी बासी होनेवाला नहीं, उसका सेवन नित्य-नया स्वाद और सुख देनेवाला है।

'भक्ति-प्रेम-सुख औरोंसे नहीं जाना जाता, चाहे वे पण्डित, बहुपाठी या ज्ञानी हों। आत्मनिष्ठ जीवन्मुक्त भी हों तो भी उनके लिये भी भक्ति-सुख दुर्लभ है। तुका कहता है कि नारायण यदि कृपा करें तो ही यह रहस्य जाना जा सकता है।'

४ सगुण-निर्गुण-विवेक

सन्तोंका सिद्धान्त यही है कि सगुण-निर्गुण एक है। तथापि उन्होंने भक्तिकी महिमा बहुत बखानी है। अद्वैतमें द्वैत और द्वैतमें अद्वैत है, जो निर्गुण है वही सगुण है और जो सगुण है वही निर्गुण है, यही निश्चय और स्वानुभव होनेसे उभयविध आनन्द उनकी वाणीमें भरा हुआ है। सन्त द्वैतवादी नहीं और अद्वैतवादी भी नहीं, वे द्वैताद्वैत-शून्य शुद्ध ब्रह्मके साथ समरस बने रहते हैं। ज्ञानेश्वर महाराजने कहा है, 'तुम्हें सगुण कहें या निर्गुण? सगुण-निर्गुण दोनों एक गोविन्द ही तो हैं।' तुकारामजीने भी वही कहा है—

सगुण निर्गुण जयाचीं हीं अंगें।
तोचि आम्हांसंगें क्रीडा करी॥

'सगुण और निर्गुण दोनों जिसके अंग हैं वही हमारे संग खेला करता है।' जो निर्गुण है वही भक्तजनोंके लिये अपना निर्गुण-भाव छोड़े बिना सगुण बना है। परब्रह्म तो मन-वाणीके अतीत है, ऐसा नहीं है 'जो अक्षरोंमें दिखायी दे या कानोंसे सुन पड़े' ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं, 'वहाँ पहुँचनेसे पहले शब्द लौट आते हैं, संकल्पकी आयु समाप्त हो जाती है, विचारकी हवा भी वहाँ नहीं चलती। वह उन्मनावस्थाका लावण्य है, तुर्या-का तारुण्य है, वह अनादि अगण्य परमतत्त्व है। विश्वका वह मूल है और योगद्रुमका फल है, वह केवलानन्दका चैतन्य है। वहाँ आकारका प्रान्त और मोक्षका एकान्त, आदि और अन्त सबका लय हो जाता है। वह महाभूतोंका बीज और महातेजका

तेज है। वही हे अर्जुन! मेरा निजस्वरूप है।' (ज्ञानेश्वरी अ० ६। ३१९—३२३) ऐसा जो अचिन्त्य, अरूप, अनाम, अगुण, सर्व-रूप, सर्वगत परमात्मतत्त्व है वही निराकार, निर्विकार, निर्गुण पर-ब्रह्मस्वरूप 'चतुर्भुज होकर प्रकट हुआ जब नास्तिकोंने भक्तोंको सताना आरम्भ किया; उसीकी शोभा इस रूपको प्राप्त हुई है।' (ज्ञानेश्वरी अ० ६–३२४) 'हुआ है' या 'हुई है' कहना भी कुछ खटकता ही है। 'हुआ है' नहीं, बल्कि वह वही 'है'।

'योगी एकाग्र दृष्टि करके जिसकी झलक पाते हैं वह हमें अपनी दृष्टिके सामने दिखायी देता है। सुन्दर श्याम अङ्ग-कान्ति-की प्रभा छिटकाते हुए वही कटिपर कर धरे सामने खड़े हैं। तुका कहता है, वह अचेत ही भक्तिसे प्रसन्न होकर निज कौतुक-से चेत रहा है।'

भगवान् स्वयं कहते हैं, 'ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाऽहम्' (गीता १४–२७) अर्थात् 'मेरे अतिरिक्त ब्रह्म और कुछ नहीं है' (ज्ञानेश्वरी)। 'सगुण ही निर्गुण है, और गुण ही अगुण है' ऐसा विलक्षण श्रीहरिका स्वरूप है, इसलिये 'ध्यानमें' मनमें 'राम-कृष्ण' की ही भक्तजन भक्ति किया करते हैं। स्वयं भगवान्ने ही गीताके बारहवें अध्यायमें बताया है कि अव्यक्तकी उपासना मोक्षकी देने-वाली है पर उसमें कष्ट बहुत है (क्लेशोऽधिकतरस्तेषाम्) और व्यक्तकी उपासना सुलभ और श्रेष्ठ है। 'व्यक्त और अव्यक्त। हो तुम्हीं एक निभ्रान्त' अर्थात् एकके ही ये दो रूप हैं, दोनों मिल-कर एक ही हैं, पर भक्त भक्ति-सुखके लिये व्यक्तकी ही उपासना करते हैं। अव्यक्त अर्थात् निर्गुण-निराकार, निरुपाधिक, विश्वरूप

ब्रह्म । व्यक्त अर्थात् सगुण-साकार सोपाधिक राम-कृष्णादि रूप ।
भगवान् शङ्कराचार्यने व्यक्ताव्यक्तका विवरण इस प्रकार किया है
कि अव्यक्त वह जो किसी भी प्रमाणसे व्यक्त न किया जा सके
(न केनापि प्रमाणेन व्यज्यते) और व्यक्त वह जो इन्द्रिय-गोचर
हो । व्यक्तकी उपासना सुलभ, सुखकर और सुसाध्य होनेके साथ
मोक्षरूप फल देनेके साथ-साथ भक्ति-प्रेमानुभवका आनन्द भी देने-
वाली है । आचार्य उपासनाका लक्षण बतलाते हैं, 'यथाशास्त्रं उपा-
स्यस्य सामीप्यमुपगम्य तैलधारावत्समानप्रत्ययप्रवाहेण दीर्घकालं
यदासनं तदुपासनम्' अर्थात् 'सतत समानरूपसे गिरनेवाली
तैल-धाराके समान एकाग्र दृष्टिका उपास्यकी ओर दीर्घकालतक
लगे रहना ही उपासना है ।' देहवान् जीवोंके लिये व्यक्तकी
उपासना ही सुखकर होती है । विश्वरूप देखकर भी अर्जुन
चतुर्भुज सौम्य श्रीकृष्ण-रूप देखनेके लिये लालायित हो उठे—
'किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तमिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव ।' 'उपनिषदों-
की जिससे भेंट नहीं हुई' उस विश्वरूपको देखकर अर्जुन कहते हैं—

'विश्वरूपके ये जलसे देखकर नेत्र तृप्त हो गये, अब ये
कृष्णमूर्ति देखनेके लिये अधीर हो उठे हैं । उस साकार कृष्ण-
रूपको छोड़ इन्हें और कुछ देखनेकी रुचि नहीं, उस रूपको देखे
बिना इन्हें कुछ अच्छा नहीं लगता । भुक्ति-मुक्ति सब कुछ हो
पर श्रीमूर्तिके बिना उसमें कोई आनन्द नहीं । इसलिये इस सब-
को समेटकर अब तुम वैसे ही साकार बनो ।' (ज्ञानेश्वरी ११—
६०४—६०६)

सब भक्तोंकी चित्त-वृत्ति ऐसी ही होती है । यदि कोई कहे

कि अव्यक्त सर्वव्यापक है और व्यक्त तो एकदेशीय है तो ज्ञानेश्वर महाराज बतलाते हैं कि सोनेका छड़ हो या एक रत्ती ही सोना हो दोनोंमें सोनापन तो समान ही है अथवा अमृतका कुम्भ हो या एक घूँट अमृत हो, दोनोंमें अमृतका गुण तो एक ही है; वैसे ही विश्वरूप और चतुर्भुज दोनों ही जीवको अमर करनेके लिये एक-से ही हैं। गीताके बारहवें अध्यायमें स्वयं निजजनानन्द जगदादिकन्द भगवान् श्रीमुकुन्दने ही कहा है कि व्यक्तकी उपासना ही श्रेयस्कर है। एकनाथ महाराजने भागवतमें (स्कन्ध ११ अध्याय ११ श्लोक ४६ की टीकामें) कहा है कि सगुण-निर्गुण दोनों समान हैं तो भी निर्गुणका बोध होना कठिन है, मन-बुद्धि और वाणीके लिये वह अगम्य है, वेद-शास्त्रोंको उसकी पहचान नहीं है; पर सगुणकी यह बात नहीं। सगुणका स्वरूप देखते ही भूख-प्यास भूल जाती है और मन प्रेममय हो जाता है। सोना और सोनेके अलंकार एक ही चीज हैं, पर सोनेकी एक ईंट नववधूके गलेमें लटका दी जाय तो क्या वह भली मालूम होगी? या उसी सोनेके विविध अलंकार उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गपर शोभा दे सकेंगे? इनमेंसे शोभा किसमें है? दूसरी बात यह कि घी पतला हो या जमा हुआ हो, है वह घी ही; पर पतले घीकी अपेक्षा जमा हुआ दानेदार घी ही जीभपर रखनेसे स्वादिष्ट मालूम होता है। इसी प्रकार 'निर्गुणके समान ही सगुणको समझो और उसका स्वानन्द लाभ करो।' भगवान्‌के सगुण ध्यान-भजन-पूजनमें जो परम आनन्द है वह अन्य किसी साधनसे मिलनेवाला नहीं। सगुण-भजनके द्वारा अद्वैत आप ही सिद्ध होता है। समर्थ

रामदास स्वामीने कहा है, 'रघुनाथजीके भजनसे मुझे ज्ञान हुआ।' 'भक्त्या मामभिजानाति' यही भगवान्‌ने भी कहा है। इस सम्बन्धमें एकनाथ महाराजने बड़ा अच्छा सिद्धान्त बताया है जो सदा ध्यानमें रखना चाहिये—

दीपकळिका हातीं चढे। तैं घराभीतरी प्रकाश सांपडे॥
माझी मूर्ति जैं ध्यानीं जडे। तैं चैतन्य आंतुडे अवघेंचि॥

'दीपक हाथमें ले लेनेसे घरमें सब जगह उजाला हो जाता है। वैसे ही मेरी मूर्ति जब ध्यानमें बैठ जाती है तब समग्र चैतन्य दृष्टिमें समा जाता है।'

भगवान्‌की मूर्तिका दर्शन, स्पर्शन, भजन-पूजन, कथा-कीर्तन, ध्यान-चिन्तन करते रहनेसे जिन उपास्य देवकी वह मूर्ति है वह उपास्य देव ध्यानमें बैठकर चित्तपर खेलने लगते हैं, स्वप्न देकर आदेश सुनाते हैं, ऐसी प्रतीति होती है कि वह पीठपर हैं और उनका प्रेम बढ़ता जाता है, तब उनसे मिलनेके लिये जी छटपटाने लगता है, तब प्रत्यक्ष दर्शन भी होते हैं और यह अनुभूति होती है कि वह निरन्तर हमारे समीप हैं, और अन्तमें यह अवस्था आती है कि अन्दर-बाहर वही हैं, और वही सब भूतोंके हृदयमें हैं, उन्हें छोड़ ब्रह्माण्डमें और कोई नहीं, मेरे अन्दर वही हैं और मैं भी वही हूँ; तब सगुण-निर्गुणका कोई भेद नहीं रहता, सगुण-भक्तिमें ही निर्गुणानुभव होता है और सब भेद-भाव मिट जाते हैं। ऐसे समरस हुए भक्त भक्तिका आनन्द लूटनेके लिये भगवान् और भक्तका द्वैत केवल मनकी मौजसे बनाये रहते हैं। ऐसे भक्तको देखिये तो उसका कर्म भक्तका-सा होता है पर स्वयं परमात्मा ही होता है यह देखने-

वाले देख लेते हैं। इसी अभिप्रायसे तुकारामजीने यह कहा है कि—

अभेदूनि भेद राखियेला अंगीं। वाढावया जगीं प्रेमसुख॥

'अभेद करके भेदको बना रक्खा, इसलिये कि संसारमें प्रेम-सुखकी वृद्धि हो।' महाराष्ट्रके सभी सन्त ऐसे ही हुए जिन्होंने सगुणमें निर्गुण और निर्गुणमें सगुण, द्वैतमें अद्वैत और अद्वैतमें द्वैत देखा और देखकर तदाकार हुए। आप उन्हें द्वैती कहें तो कोई हर्ज नहीं, अद्वैती कहें तो भी कोई उज्र नहीं। सगुणोपासक भी कह सकते हैं और निर्गुणानुभवी भी कह सकते हैं; क्योंकि वे हैं ऐसे ही जो अद्वैतानुभवमें द्वैत-सुखका भी आनन्द लिया करते हैं। अद्वैत और भक्तिका समन्वय करनेवाला ही तो यह भागवत-धर्म है। ज्ञानेश्वर, समर्थ और तुकाराम तीनोंका अनुभव एक-सा ही है।

(१) ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं—

हवाको हिलाकर देखनेसे वह आकाशसे अलग जान पड़ती है, पर आकाश तो ज्यों-का-त्यों ही रहता है। वैसे ही भक्त शरीर-से कर्म करता हुआ भक्त-सा जान पड़ता है पर अन्तःप्रतीतिसे वह भगवत्स्वरूप ही रहता है। (ज्ञानेश्वरी अ० ७–११५, ११६)

(२) समर्थ रामदास स्वामी कहते हैं—

देहको उपासना लगी रहती है पर विवेकतः उसका आपा नहीं रहता। सन्तोंके अन्तःकरणकी ऐसी स्थिति होती है। (दास-बोध दशक ६ समास ७)

(३) तुकाराम महाराज कहते हैं—

आधीं होता संतसंग। तुका झाला पांडुरंग॥
त्याचें भजन राहीना। मूळ स्वभाव जाइना॥

'पहले सत्सङ्ग था। पीछे तुका स्वयं ही पाण्डुरङ्ग हो गया। पर इस अवस्थामें भी उसका भजन नहीं छूटता; जिसका जो मूल स्वभाव है वह कहाँ जायगा ?'

इन तीनों उद्गारोंसे यही स्पष्ट होता है कि शुद्ध ब्रह्मज्ञान और निष्ठायुक्त भजन दोनोंका पूर्ण ऐक्य भक्तमें होता है। भक्तिका अद्वैतसे कोई झगड़ा नहीं, यही नहीं, बल्कि उनकी एकरूपता है। *द्वैताद्वैत, सगुण-निर्गुण, भगवान् और भक्त, जीव और ब्रह्म* ये सब भेद केवल समझके हैं, तत्त्वतः वे नहीं हैं। इसलिये साधु-सन्तोंने जिस भावसे सगुणोपासनाकी महिमा बखानी है उसी भावसे हमलोग भी सगुण-प्रेमकी कथा श्रवण करनेके लिये प्रस्तुत हों। तुकारामजीने भगवान्‌से विनोद किया है, कहीं स्तुतिके साथ-साथ बाह्यतः निन्दा भी की है, विलक्षण कल्पनाएँ की हैं, प्रेमसे गालियाँ भी सुनायी हैं, अवश्य ही मूलतः भगवान्‌के साथ अपना जो ऐक्य है उसे भूलकर ये गालियाँ न दी होंगी। महाराष्ट्रके सभी सन्तोंके समान तुकारामजीको अद्वैत सिद्धान्त सर्वथा स्वीकार था, यह बात जिनके ध्यानमें नहीं आती उन्हें इस बातका बड़ा आश्चर्य होता है कि तुकारामजीने भगवान्‌से इतनी घनिष्ठता कैसे बरती। सिद्धान्त अद्वैतका और मजा भक्तिका, यही तो भागवत-धर्मका रहस्य है। इसे ध्यानमें रखते हुए अब हमलोग सगुण-भक्तिका आनन्द लेनेके लिये तुकारामजीका संग पकड़ें।

५ विठ्ठल-शब्दकी व्युत्पत्ति

विठ्ठल-शब्दकी व्युत्पत्ति 'विदा ज्ञानेन ठान् शून्यान् लाति गृह्णाति विठ्ठलः' अर्थात् ज्ञानशून्य याने भोले-भाले अज्ञजनोंको जो अपनाते हैं वही विठ्ठल हैं, यह व्याख्या विठ्ठल-शब्दकी 'धर्मसिन्धु' कार काशीनाथ बाबा पाध्येने की है। तुकारामजीके अभङ्गका एक चरण है—'वीचा केला ठोबा। म्हणोनि नांव विठोबा॥' ('वी' का ठोबा (वाहन) किया, इसलिये नाम विठोबा हुआ।) 'वी' याने पक्षी—गरुड़, गरुड़को जिसने अपना वाहन बनाया उसका नाम विठ्ठल हुआ। कुछ लोग ऐसा भी अर्थ करते हैं कि वी (विद्) याने ज्ञान उसका 'ठोबा' याने आकार अर्थात् ज्ञानका आकार, ज्ञान-मूर्ति, परब्रह्मकी सगुण साकार मूर्ति। व्युत्पत्ति-शास्त्रसे 'विष्णु' से 'विठु—विठोबा' होता है। प्राकृत भाषाके व्याकरणमें 'विष्णु' का 'विठु' रूप होता है। जैसे मुष्टिसे मूठ (मुट्ठी) पृष्ठसे पाठ (पीठ), वैसे ही 'विष्णु' से 'विठु' हुआ। 'ल' प्रत्यय प्रेमसूचक है और 'बा' आदरसूचक। कोई विठ्ठलको 'विटस्थल' याने वीट (ईंट) जिसका स्थल है याने जो ईंटपर खड़ा है ऐसा भी अर्थ लगाते हैं। सफेद मिट्टी होनेसे उस स्थानको पण्ढरपुर कहते हैं, वहाँ ईंटके भट्ठे रहे होंगे। पुण्डलीकने भगवान्के बैठनेके लिये उनके सामने जो ईंट रख दी, इसका कारण भी यही हो सकता है कि चारों ओर ईंटके भट्ठे होनेसे जहाँ-तहाँ ईंटें पड़ी रहती होंगी और लोग बैठनेके लिये भी उनका उपयोग करते होंगे। विठोबा शब्दका धात्वर्थ कुछ भी हो, पर विठोबा कहनेसे पण्ढरीमें ईंटपर खड़े भगवान् श्रीकृष्णकी मूर्तिका ही ध्यान होता है। श्रुतिने

परमात्माका 'ॐ' नाम रखा, उसी प्रकार भक्तोंने उन्हीं परमात्माके व्यक्त रूपको—श्रीकृष्णको—'विट्ठल' नाम प्रदान किया है। ज्ञानेश्वर महाराजने 'ॐ तत्सदिति निर्देशः' का व्याख्यान करते हुए प्रणव-के सम्बन्धमें जो कुछ कहा है वही भगवान्‌के विट्ठल-नामपर भी घट सकता है।

'उस ब्रह्मका कोई नाम नहीं, कोई जाति नहीं; पर अविद्या-वर्गकी रातमें उसे पहचाननेके लिये वेदोंने एक संकेत बनाया है। जब बालक पैदा होता है, तब उसका कोई नाम नहीं होता, पीछे उसका जो नाम रखा जाता है उसी नामपर वह 'हाँ' कहकर उठता है। संसार-दुःखसे दुखी जीव जो अपना दुखड़ा सुनानेके लिये आते हैं वे जिस नामसे पुकारते हैं वह यह नाम—यह संकेत है। ब्रह्मका मौन भङ्ग हो, अद्वैत-भावसे वह मिले, ऐसा मन्त्र वेदोंने करुणा करके निकाला है। उस एक संकेतसे आनन्दके साथ जिसने ब्रह्मको पुकारा, सदा उसके पीछे रहनेवाला वह ब्रह्म उसके सामने आ जाता है।' (ज्ञानेश्वरी अ० १७। ३२९–३३३)

अनाम-अजात ब्रह्मकी पहचान संसार-दुःखसे दुखी जीवोंको हो, इसके लिये श्रुतिने जो नाम-संकेत किया वह प्रणव-शब्दसे जाना जाता है, वैसे ही सन्तोंने जीवोंको श्रीकृष्णकी पहचान करानेके लिये उसीका 'विट्ठल' नामसे निर्देश किया है और इस नामसे जो कोई पुकारता है, श्रीकृष्ण भी उसके सामने प्रकट होते हैं। श्रीहरिवंश या श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्णको इस नामसे न भी पुकारा हो और भक्तोंने चाहे उनका यह एक नया ही नाम रखा हो तो भी नामकी नवीनतासे अच्युत श्रीकृष्णका कृष्णपन तो च्युत नहीं

होता। कई पुराणोंमें पण्ढरपुरके श्रीविट्ठलके उल्लेख हैं। पद्म-पुराणमें (उत्तर खण्ड—गीतामाहात्म्यमें)—

द्विभुजं विट्ठलं विष्णुं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्।

यह उल्लेख है। गरुडपुराणमें 'विट्ठलं पाण्डुरङ्गं च व्यङ्कटाद्रौ रमासखम्' अर्थात् पण्ढरपुरमें विष्णुको विट्ठल कहते हैं, ऐसा कहा है। स्कन्दपुराणमें भीमामाहात्म्यके अन्दर 'पाण्डुरङ्ग इति ख्यातो विष्णुर्विपुलभूतिदः' यह उल्लेख है और फिर उसी पुराणके चन्दला-माहात्म्यमें श्रीविट्ठलका 'कमलावल्लभो देवः करुणारसशेवधिः' कहकर वर्णन किया है। इस प्रकार ब्रह्माण्डपुराण, भार्गवपुराण इत्यादि पुराणोंमें और श्रीमत् शङ्कराचार्यकृत पाण्डुरङ्गस्तोत्रादिमें भी श्रीपण्ढरपुरनिवासी पाण्डुरङ्ग भगवान्का वर्णन आया है। पण्ढरी-क्षेत्र और श्रीविट्ठल देवता अत्यन्त प्राचीन हैं। पुराणोंके जो अवतरण ऊपर दिये उनसे यह स्पष्ट है कि विष्णु ही विट्ठल हैं।

६ ज्ञानेश्वरीमें विट्ठल-नाम क्यों नहीं ?

श्रीविट्ठल-स्वरूपका विचार अगले अध्यायमें किया जायगा, यहाँ विट्ठल अर्थात् विष्णु और सो भी श्रीविष्णुके पूर्णावतार श्रीकृष्ण हैं इस बातको ध्यानमें रखते हुए एक आक्षेपका विचार कर लें और आगे बढ़ें। कुछ आधुनिक विद्वानोंका यह तर्क है कि ज्ञानेश्वरी-में कहीं भी विट्ठल-नाम नहीं आया है, इससे यह जान पड़ता है कि ज्ञानेश्वर महाराज विट्ठलके उपासक नहीं प्रत्युत निर्गुण ब्रह्मके ही उपासक थे। ज्ञानेश्वर और एकनाथ दोनों ही अत्यन्त गुरु-भक्त थे और ग्रन्थ-प्रणयनके समय उनके गुरु भी उनके सम्मुख उपस्थित थे। इसी कारण उनके ग्रन्थोंके मङ्गलाचरण गुरु-स्तुतिसे

ही भरे हुए हैं। तथापि उनके ग्रन्थोंमें श्रीकृष्ण-प्रेमके जो अनुपम निर्झर हैं उनकी ओर ध्यान देनेसे एक अन्धा भी यह जान सकेगा कि उनका सगुण-प्रेम कितना अलौकिक था। श्रीकृष्णार्जुन-प्रेमका वर्णन करते हुए ज्ञानेश्वर महाराजने अपनी श्रीकृष्ण-भक्ति व्यक्त करनेकी लालसा पूरी कर ली है (ज्ञानेश्वर-चरित्र पाठक देखें)। और फिर जहाँ-जहाँ श्रीकृष्णकी स्तुति करनेका अवसर मिला है वहाँ-वहाँ ज्ञानेश्वर महाराजकी वाणी कितनी प्रेममयी हो गयी है यह ज्ञानेश्वरीके पाठक समझ सकते हैं। विस्तार बढ़नेके भयसे अवतरण यहाँ नहीं देते। जो लोग देखना चाहें वे ज्ञानेश्वरीमें चौथे अध्यायकी १४ ओवियाँ और नवें अध्यायकी ४२५ से ४७५ तककी ओवियाँ अवश्य देखें। नवें अध्यायकी ५२१ वीं ओवीमें महाराज श्रीकृष्णका 'श्यामसुन्दर परब्रह्म भक्तकामकल्पद्रुम श्रीआत्माराम' कहकर वर्णन करते हैं। ग्यारहवें अध्यायके उत्तरार्धमें और बारहवें अध्यायमें 'उस चतुर्भुज-रूप' का मधुर वर्णन भी पढ़नेयोग्य है। बारहवेंके उपसंहारमें भगवान्‌का यश इस प्रकार गाते हैं—

'ऐसे वह निजजनानन्द, जगदादिकन्द श्रीमुकुन्द बोले। सञ्जय धृतराष्ट्रसे कहते हैं, राजन्! वह मुकुन्द कैसे हैं?—निर्मल हैं, निष्कलङ्क हैं, लोककृपाल हैं, शरणागतके स्नेहाश्रय हैं, शरण्य हैं। सुरवृन्दसहायशील और लोकलालनलील हैं। प्रणतप्रतिपालन उनका खेल है। वह भक्तजनवत्सल, प्रेमिजनप्राञ्जल हैं। सत्यसेतु और सकल कलानिधि हैं। वैकुण्ठके वह श्रीकृष्ण निज भक्तोंके चक्रवर्ती हैं।' (२३९—२४१, २४३, २४४)

ऐसी सुधा-रससानी प्रेम-मधुरवानी सगुण-प्रेमीके सिवा और किसकी हो सकती है ? निर्गुण-बोध और सगुण-प्रेम दोनों एक साथ उसी पुरुषमें मिलते हैं जो पूर्ण भक्त हो। चन्दनकी द्रुति या चन्द्रकी चाँदनी-जैसी अद्वैत-भक्ति है, पर 'यह अनुभव करनेकी चीज है, कहनेकी नहीं' (ज्ञानेश्वरी १८-११५०)। वसुदेवसुत देवकीनन्दन (ज्ञाने० ४-८) ही सर्वरूपाकार, सर्व-दृष्टिनेत्र और सर्वदेशनिवास (ज्ञाने० १८-१४१७) परमात्मा हैं और 'भक्तोंकी प्रीतिके वश, अमूर्त होकर भी व्यक्त हुए हैं।' भक्त-प्रीतिसे भगवान् व्यक्त हुए, इसीसे जगत्का कार्य बना; नहीं तो भला इन्हें कोई पकड़ सकता है ? ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि यदि भगवान् प्रीत होकर व्यक्त न हों तो 'योगी उन्हें पा नहीं सकते, वेदार्थ उन्हें जान नहीं सकते, ध्यानके नेत्र भी उन्हें देख नहीं सकते' (ज्ञानेश्वरी ४-१३)। परमात्मा सगुण-साकार प्रकट हुए यह बहुत ही अच्छा हुआ। वही परमात्मा पुण्डलीक-की भक्तिसे प्रसन्न होकर पण्ढरीमें ईंटपर कटिपर कर धरे खड़े हैं। भक्तोंने अपनी रुचिके अनुसार उनका नाम विट्ठल रखा है। जैसा जिसका भाव हो, भगवान् वैसे ही हैं। भक्तोंका यह भाव रहता है कि वह सच्चिद्घन परमात्मा हैं। उसी रूपमें उन्हें परमात्माकी प्रतीति होती है। वह सर्वव्यापक हैं; आकाशसे भी अधिक व्यापक और परमाणुसे भी अधिक सूक्ष्म हैं। अखिल विश्वमें व्यापकर भक्तों-के हृदयमें विराज रहे हैं। समर्थ रामदास स्वामी कहते हैं—

जगीं पाहतां सर्वही कोंदलेंसे।
अभाग्या नरा दृढ पाषाण भासे॥

'संसारमें देखिये तो वह सर्वत्र समाये हुए हैं। पर अभागे मनुष्यको यह सब कड़ा पत्थर-सा लगता है।' नामदेवराय, जनाबाई आदि सब सन्त श्रीविट्ठलके उपासक थे। नाथ महाराज श्रीकृष्ण अर्थात् श्रीविट्ठलके ही भक्त थे। ज्ञानेश्वरीमें जैसे श्रीविट्ठल-का नामोल्लेख नहीं है वैसे ही एकनाथी भागवतमें भी एक ओवी-को छोड़ और कहीं भी विट्ठल-नामका उल्लेख नहीं है। जिस ओवीमें यह नामोल्लेख है वह ओवी इस प्रकार है—

पावन पांडुरंगक्षिती। जे कां दक्षिणद्वारावती।
जेथ विराजे विट्ठलमूर्ति। नामें गर्जती पंढरी॥

(२६—२४५)

'वह पाण्डुरङ्ग-पुरी पावन है, वह दक्षिणकी द्वारका है। वहाँ श्रीविट्ठल-मूर्ति विराज रही है। पण्ढरीमें उनका नाम गूँजता रहता है।' एकनाथी भागवतमें बस यही एक बार श्रीविट्ठलका नाम आया है। तथापि क्या ज्ञानेश्वरी और क्या एकनाथी भागवत दोनों ही ग्रन्थ श्रीकृष्ण-प्रेमसे ओतप्रोत हैं और जो श्रीकृष्ण हैं वही श्रीविट्ठल हैं, इस कारण ही वारकरी-मण्डलमें ये दोनों ग्रन्थ वेद-तुल्य माने जाते हैं। एकनाथ महाराजके परदादा भानुदास महाराज विख्यात विट्ठल-भक्त हुए, पैठणमें उनका बनवाया विट्ठल-मन्दिर है। इसी मन्दिरमें एकनाथ महाराज कथा बाँचते थे, यहीं श्रीविट्ठल-मूर्तिके सामने उनके कीर्तन होते थे, श्रीविट्ठलकी स्तुतिमें एकनाथ महाराजके सैकड़ों अभङ्ग हैं। नाथ महाराज परम भागवत, श्रीकृष्ण—श्रीविट्ठलके परम भक्त थे, फिर भी नाथ-भागवतमें श्रीविट्ठल-का नाम एक ही ओवीमें आया है, और ज्ञानेश्वरीमें तो विट्ठलका नाम

ही नहीं है; इस बातको बड़ा तूल देकर अनेक आधुनिक पण्डित यह कहा करते हैं कि ज्ञानेश्वरी तो तत्त्व-ज्ञान और निर्गुणोपासनका ग्रन्थ है, वारकरी-सम्प्रदायसे उसका कुछ भी सम्बन्ध नहीं। यह बड़े आश्चर्यकी बात है। ज्ञानेश्वरीको कोई केवल तत्त्व-ज्ञानका ग्रन्थ भले ही समझ ले, पर वारकरियोंके लिये तो ज्ञानेश्वरी और एकनाथी भागवत ये दोनों ग्रन्थ उपासना-ग्रन्थ हैं। वारकरी श्रीकृष्णके उपासक हैं और ये ग्रन्थ श्रीकृष्णके परम भक्तोंके ग्रन्थ होनेसे उनके लिये प्रमाणस्वरूप हैं। ज्ञानेश्वर और एकनाथ श्रीकृष्ण—श्रीविट्ठलके पूर्ण भक्त और उनके ग्रन्थ श्रीकृष्ण—श्रीविट्ठलकी भक्तिसे ओतप्रोत हैं, इसीसे वारकरियोंको अत्यन्त प्रिय और मान्य हैं। ज्ञानेश्वर-एकनाथसे नामदेव-तुकारामको अलग करनेकी इनकी चेष्टा व्यर्थ है, यह पहले सप्रमाण सिद्ध किया जा चुका है। रुक्मिणी—रखुमाई श्रीकृष्णकी पटरानी थीं, उनकी चित्-शक्ति—उनकी आदिमाया थीं यह सर्वश्रुत ही है। श्रीकृष्ण-रुक्मिणी ही श्रीविट्ठल-रखुमाई हैं, 'विट्ठल-रखुमाई' ही वारकरियोंका नाम-मन्त्र है। ज्ञानेश्वरी और नाथ-भागवत श्रीकृष्ण (श्रीविट्ठल)-भक्तिप्रधान ग्रन्थ हैं यह बात आधुनिक विद्वान् ध्यानमें रखें तो ज्ञानेश्वर-एकनाथसे पण्ढरीके भक्ति-पन्थको अलग करना असम्भव है यह बात उन्हें भी स्वीकार करनी पड़ेगी। ज्ञानेश्वर, नामदेव, जनाबाई, एकनाथ, तुकाराम ये सभी विट्ठल-भक्त हैं। श्रीविट्ठलकी उपासना तुकाराम महाराज यावज्जीवन करते रहे।

७ मूर्ति-पूजा-रहस्य

श्रीविट्ठल-मूर्ति भक्तोंके प्राणोंका प्राण है। पण्डित भगवान-

लालके मतसे पण्ढरपुरकी यह मूर्ति छठी शताब्दीसे पहलेकी है। निर्गुण ब्रह्म और सगुण भगवान् दोनों इस श्रीविट्ठल-मूर्तिमें हैं। यह मूर्ति भक्तोंको चैतन्यघन प्रतीत होती है। इस मूर्तिके भजन-पूजनसे तथा ध्यान-धारणासे भावुक भक्तोंको भगवान्‌के सगुण-रूपके दर्शन होते और अद्वयानन्दका अनुभव भी प्राप्त होता है। पहले हुआ है और अब भी होता है। श्रीविट्ठल-भक्ति योग-ज्ञानकी विश्राम-भूमिका है। यह भी कोई पूछ सकते हैं कि अद्वैतानन्दके लिये मूर्तिकी क्या आवश्यकता ? पर मैं उनसे पूछता हूँ कि मूर्ति-पूजासे भक्तिरसास्वाद मिला और अद्वयानन्दमें भी कुछ कमी न हुई तो इस मूर्ति-पूजासे क्या हानि हुई ? भगवान्, भक्त और भजनकी त्रिपुटी अद्वयानन्दके स्वानुभवपर खड़ी की गयी तो इसमें क्या बिगड़ा ?

देव देऊळ परिवारू। कीजे कोरूनी डोंगरू।
तैसा भक्तीचा वेव्हारू। कां न व्हावा॥

(अमृतानुभव प्र० ९—४१)

'देव, देवल और देव-भक्त पहाड़ खोदकर एक ही शिलापर खुदवाये जा सकते हैं। वैसा व्यवहार भक्तिका क्यों नहीं हो सकता ?'

एक ही चित्र-शिलापर श्रीशङ्कर, मार्कण्डेय और शिव-मन्दिर या श्रीविष्णु, गरुड़ और विष्णु-मन्दिर यदि चित्रित हों तो क्या एकके अन्दरकी इस त्रिविधतासे हरि-हर-भक्ति-रसास्वादनमें कुछ बाधा पड़ती है ? सुवर्णके ही श्रीराम, सुवर्णके ही हनुमान् और उनपर सुवर्णके ही फूल बरसानेवाला सुवर्ण-शरीर भक्त हो तो

इस त्रिपुटीसे अद्वैत-सुखकी क्या हानि होती है ? यह सब तो उपासकके अधिकारपर निर्भर करता है ! मूलका मूल बना रहे और ऊपरसे व्याज भी मिले तो इसे कौन छोड़ दे ? वजन और कसमें कोई कसर न हो और अलंकारकी शोभा भी प्राप्त हो तो इस आनन्दको छोड़कर केवल सोनेका पासा छातीसे चिपकाये रहनेमें कौन-सी बुद्धिमानी है ? भक्तके अद्वैतबोधमें कुछ कमी न हो और वह भगवान्‌की प्रतिमाके सामने बैठकर भजन-पूजनादिके द्वारा भक्ति-सुखामृत भी पान करे तो इससे वह क्या कभी अद्वयानन्दसे वञ्चित होगा ? भक्ति-सुखके लिये भक्त ही भगवान् और भक्त बनकर पूजनादि उपासना-कर्म करता है। परन्तु यह कौशल सत्सङ्गमें बिना हिलमिल गये नहीं समझ पड़ता और यह बोध न होनेसे सगुणोपासन और प्रतिमा-पूजनका रहस्य भी कभी ध्यानमें नहीं आता। मूर्ति-पूजाका यह रहस्य न जाननेके कारण ही बहुत-से लोग 'मूर्ति-पूजा'का नाम लेते ही चौंक उठते हैं और यह पूछ बैठते हैं कि क्या तुकाराम-से ज्ञानी-महात्मा भी मूर्तिपूजक थे ? उनके इस प्रश्नका यही उत्तर है कि 'हाँ, वह मूर्तिपूजक थे और यावज्जीवन मूर्तिपूजक ही थे।' हमारा-आपका यह समाज मूर्तिपूजक ही है, यही क्यों, सारा मनुष्य-समाज ही यथार्थमें मूर्तिपूजक है। वेदोंमें वरुण, सूर्य, उषा आदि देवताओं-की मूर्तियोंके स्तोत्र हैं। निराकारवादी जब ईश्वर-प्रार्थना करते हैं तब उनके चित्त-चित्रपटपर कोई-न-कोई रूप ही चित्रित होता होगा और यदि नहीं होता तो उनका प्रार्थना करना ही व्यर्थ है। भगवान् अमूर्त हैं और मूर्त भी, भक्त ही अपने अनुभवसे इस

बातको जानते हैं। ईश्वर यदि सर्वत्र है तो मूर्तिमें क्यों नहीं ? तुकारामजी पूछते हैं—

अवघें ब्रह्मरूप रिता नाहीं ठाव। प्रतिमा तो देव कैसा नव्हे॥

'सब कुछ ब्रह्मरूप है, कोई स्थान उससे रिक्त नहीं, तब प्रतिमा ईश्वर नहीं यह कैसे हो सकता है ?'

ईश्वर सर्वव्यापी है पर प्रतिमामें नहीं, यह कहना तो प्रतिमाको ईश्वरसे भी बड़ा मानना है ! चाहे जिस पत्थरको तो भगवान् कहकर हम नहीं पूजते। ब्राह्मणोंद्वारा वेदमन्त्रोंसे जिसमें प्राण-प्रतिष्ठा की गयी हो उसी मूर्तिको भगवान् कहकर हम पूजते और भजते हैं। भाव ही तो भगवान् हैं और भक्तका भाव जानकर भगवान् भी पत्थरमें प्रकट होते हैं। उसका पत्थरपन नष्ट होता है और सच्चिदानन्दघन परमात्मा वहाँ प्रकट होते हैं। तुकाराम-बाबा कहते हैं—

पाषाण देव पाषाण पायरी। पूजा एकावरी पाय ठेवी॥१॥
सार तो भाव सार तो भाव। अनुभवी देव तेचि झाले॥२॥

'पत्थरकी ही भगवन्मूर्ति है और पत्थरकी ही पैड़ी है। पर एकको पूजते हैं और दूसरेपर पैर रखते हैं। सार वस्तु है भाव, वही अनुभवमें भगवान् होकर प्रकट होता है।'

गङ्गाजल और अन्य सामान्य जलोंके बीच कौन-सा बड़ा भारी अन्तर है ? पर भावनासे ही तो गङ्गाका श्रेष्ठत्व है। तुकारामजी कहते हैं, भावुकोंकी तो यही बात है, धर्माधर्मके पचड़ेमें और लोग पड़ा करें। जिसके निमित्त जो पूजनादि किया जाता है वह

किसी भी मार्गसे, किसी भी रीतिसे किया जाय वह प्राप्त उसीको होता है। पत्रं पुष्पं फलं तोयं कुछ भी, कोई भी, कहीं भी, कैसे भी--पर विमल अन्तःकरणसे--अर्पण करे तो वह मुझे ही प्राप्त होता है--'तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः' (गीता ९। २६) यह स्वयं भगवान्‌का ही वचन है। 'शिव-पूजा शिवासि पावे। माती मातीशीं सामावे ॥' (शिवकी पूजा शिवको प्राप्त होती है और मिट्टी मिट्टीमें समा जाती है।) अथवा 'विष्णु-पूजा विष्णूसि अर्पे। पाषाण राहे पाषाणरूपें ॥' (विष्णुकी पूजा विष्णुके अर्पित होती है और पत्थर पत्थरके रूपमें रह जाता है।) यह तुकारामजी कह गये हैं। भगवान्‌की सुलभ सुडौल सुन्दर सुमधुर मूर्ति देख सहस्रों भक्त आनन्दित हुए और मूर्ति चैतन्यघन होकर उन्हें प्राप्त हुई।

धन्य भावशील। ज्याचें हृदय निर्मळ ॥ १ ॥
पूजी प्रतिमेचा देव। सन्त म्हणती तेथें भाव ॥ध्रु०॥
तुका म्हणे तैसे देवा। होणें लागे त्यांच्या भावा ॥ ३ ॥

'धन्य हैं भावशील जिनका हृदय निर्मल है। प्रतिमाके देवता जो पूजता है, सन्त कहते हैं कि उसीमें भाव है। तुका कहता है, भक्तोंका जो भाव है, भगवान्‌को वैसा ही होना पड़ता है।'

श्रीविट्ठल-मूर्तिमें तुकारामजीकी निष्ठा ऐसी अविचल थी कि वह कहते हैं—

म्हणे विट्ठल पाषाण। त्याच्या तोंडावरी वहाण ॥
'जो विट्ठलको पत्थर कहता है, उसके मुँहपर जूता।'
म्हणे विट्ठल ब्रह्म नव्हे। त्याचे बोल नाइकावे ॥

'जो कहता है, विट्ठल ब्रह्म नहीं; उसकी बात कोई न सुने।'

ये सब उत्कट प्रेमके उद्गार हैं। एकनाथी भागवत (अ० ११ श्लोक ४६) में कहते हैं—

'निर्गुणका बोध कठिन है। मन-बुद्धि-वाणीके लिये अगम्य है। शास्त्रोंके संकेत समझ नहीं पड़ते। वेद तो मौन साधे हैं। सगुण-मूर्तिकी यह बात नहीं। वह सुलभ है, सुलक्षण है, उसके दर्शनसे भूख-प्यास भूल जाती है, मन प्रेमसे भरकर शान्त हो जाता है। जो नित्यसिद्ध सच्चिदानन्द हैं, प्रकृति-परेके परमानन्द हैं, वही स्वानन्द-कन्द स्व-लीलासे सगुण-गोविन्द बने हैं। मेरी मूर्तिके दर्शनोंसे नेत्र कृतार्थ होते हैं, जन्म-मरणका धरना उठ जाता है, विषयोंके पाश कट जाते हैं।'

प्रेममय अन्तःकरणसे मूर्ति-पूजा करनेवाले भक्तोंके लिये भगवान् मूर्तिमें ही प्रकट होते हैं, इस बातके अनेक उदाहरण हैं। एकनाथ महाराज कहते हैं—

'अब भी इस बातका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि दासके वचनसे पाषाण-प्रतिमामें आनन्दघन भगवान् स्वयं प्रकट हुए।'

(नाथ-भागवत अ० ७–४८२)

एकनाथ महाराजने अपने अभङ्गोंमें भी कहा है—

मी तेचि माझी प्रतिमा। तेथें नाहीं आन धर्मा ॥१॥
तेथें असे माझा वास। नको भेद आणि सायास ॥२॥
कलियुगीं प्रतिमेपरतें। आन साधन नाहीं निरुतें ॥३॥
एका जनार्दनीं शरण। दोनी रूपें देव आपण ॥४॥

'मैं जो हूँ वही मेरी प्रतिमा है, प्रतिमामें कोई अन्य धर्म नहीं। वहीं मेरा वास है। इसमें कोई भेद मत मानो और व्यर्थ कष्ट मत उठाओ। कलियुगमें प्रतिमासे बढ़कर और कोई साधन नहीं। एका (एकनाथ) जनार्दनकी शरणमें है, ये दोनों रूप आप भगवान् ही हैं।'

देव सर्वांठायीं वसे। परि न दिसे अभाविकां ॥१॥
जळीं स्थळीं पाषाणीं भरला। रिता ठाव कोठें उरला ॥२॥

'भगवान् सब ठौर हैं, पर अभक्तोंको वह नहीं देख पड़ते। जलमें, थलमें, पत्थरमें सर्वत्र वह भरे हुए हैं, उनसे रिक्त कोई स्थान नहीं बचा है।'

* * *

अस्तु, तुकारामजीके तथा उनके सदृश अन्य सन्तोंके सगुणोपासन और मूर्तिपूजनके सम्बन्धमें जो विचार हैं उन्हें संक्षेपमें यहाँतक सूचित किया। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि उनके आचार भी इन्हीं विचारोंके अनुसार थे। पण्ढरीकी श्रीविठ्ठलमूर्तिके उपासक विश्वम्भरबाबाके समयसे कुल-देव श्रीविठ्ठलकी नित्य पूजा-अर्चा करनेवाले, विठ्ठल-मन्दिरका जीर्णोद्धार करनेवाले और अन्ततक विठ्ठल-मन्दिरमें हरि-कीर्तन करनेवाले तुकारामजी मूर्ति-पूजक नहीं थे, ऐसा कौन कह सकता है? तुकारामजीके पुत्र नारायण बोवाकी देहूकी सनदमें भी ये स्पष्ट शब्द हैं—'तुकोबा गोसाईं श्रीदेवकी मूर्तिकी पूजा अपने हाथों करते थे।'

८ तुकारामजीकी दर्शनोत्कण्ठा

श्रीविट्ठल-मूर्तिकी पूजा-अर्चा, ध्यान-धारणा और अखण्ड नाम-स्मरण करते-करते तुकारामजीको भगवान्‌के साक्षात् दर्शनकी बड़ी तीव्र लालसा हुई। जिसकी मूर्तिकी नित्य पूजा करते हैं उसके दर्शन कब होंगे? दर्शनोंके लिये उनका चित्त व्याकुल हो उठा। प्रह्लाद और ध्रुव-जैसे बाल-भक्तोंको बचपनमें ही सगुण भगवान्‌के दर्शन हुए, नामदेवसे भगवान् प्रत्यक्षमें बातचीत करते थे, जनाबाईके साथ चक्की चलाते थे, ऐसे भक्त-वत्सल मेरे प्यारे पण्ढरिनाथ मुझे कब मिलेंगे? प्रत्यक्ष दर्शनके बिना ब्रह्म-ज्ञान उन्हें शुष्क-सा लगने लगा। ब्रह्म-ज्ञानकी बातें कहने और सुननेमें अब उन्हें आनन्द नहीं आता था। उनकी बाँहें भगवान्‌से मिलनेके लिये आगे बढ़ना चाहती थीं, नेत्र उन्हींकी ओर टकटकी बाँधे रहना चाहते थे। नेत्रोंसे यदि भगवान् न दिखायी देते हों तो इनकी आवश्यकता ही क्या है? नेत्र यदि भगवान्‌के चरणोंको न देख सकते हों तो ये फूट जायँ। ऐसे-ऐसे भाव ही उनके चित्तमें उठा करते थे। दिन-दिन मिलनकी यह लगन, यह विकलता बढ़ती ही गयी। उस समयकी उनकी मनोवस्था बतानेवाले कुछ अभङ्ग हैं—

'हे पण्ढरिनाथ! तुमसे मिलनेके लिये जी व्याकुल हो उठा है। इस दीनकी इस दौड़पर कब कृपा करोगे मालूम नहीं। मेरा मन तो थक गया, राह देखती-देखती आँखें भी थक गयीं। तुका कहता है, मुझे तुम्हारा मुख देखनेकी ही भूख लगी है।'

*　　*　　*

'मार्गकी प्रतीक्षा करते-करते नेत्र थक गये ! इन नेत्रोंको अपने चरण कब दिखाओगे ? तुम माता मेरी मैया हो, दयामयी छाया हो। हे विट्ठल ! किसीको तुमने उबार लिया और किसीको किसीके सुपुर्द कर दिया; ऐसा कठोर हृदय तुम्हारा क्यों हुआ ? तुका कहता है, मेरी आँखें हे पाण्डुरङ्ग ! तुमसे मिलनेको फड़क रही हैं।'

* * *

'तुम्हारे ब्रह्म-ज्ञानकी मुझे इच्छा नहीं, तुम्हारा यह सुन्दर सगुण रूप मेरे लिये बहुत है। पतितपावन ! तुमने बड़ी बेर लगायी, क्या अपना वचन भूल गये ? संसार (घर-गिरस्ती) जलाकर तुम्हारे आँगनमें आ बैठा हूँ, इसकी तुम्हें कुछ सुध ही नहीं है। तुका कहता है, मेरे विट्ठल ! रिस मत करो, अब उठो और मुझे दर्शन दो।'

* * *

'जीकी बड़ी साध यही है कि तुम्हारे चरणोंसे भेंट हो। इस निरन्तर वियोगसे चित्त अत्यन्त विकल है।'

* * *

'आत्मस्थितिका विचार क्या करूँ ? क्या उद्धार करूँ ? चतुर्भुजको देखे बिना धीरज ही नहीं बँध रहा है। तुम्हारे बिना कोई बात हो यह तो मेरा जी नहीं चाहता। तुका कहता है, अब चरणोंके दर्शन कराओ।'

* * *

'तुका कहता है, एक बार मिलो और अपनी छातीसे लगा लो ।'

*　　　*　　　*

'ये आँखें फूट जायँ तो क्या हानि है जब ये पुरुषोत्तम-को नहीं देख पातीं ? तुका कहता है, अब पाण्डुरङ्गके बिना एक क्षण भी जीनेकी इच्छा नहीं ।'

*　　　*　　　*

'तुका कहता है, अब अपना श्रीमुख दिखाओ, इससे इन आँखोंकी भूख बुझेगी ।'

*　　　*　　　*

'तुका कहता है कि अब आकर मिलो । पीठपर हाथ फेरकर अपनी छातीसे लगा लो ।'

*　　　*　　　*

'विरहसे जलकर सूख गया हूँ; अस्थिपञ्जर रह गया है । अब तो हे पण्ढरिनाथ ! अपने दर्शन दो ।'

*　　　*　　　*

'मुझसे आकर मिलोगे, दो एक बातें करोगे तो इस-में तुम्हारा क्या खर्च हो जायगा ? तुका कहता है, तुम्हारी बड़ाई मुझे न चाहिये; पर दर्शनोंकी तो उत्कण्ठा है ।'

*　　　*　　　*

'जो लोग अरूपकी इच्छा करते हों उनके लिये आप अरूप बनिये । पर मैं तो सरूपका प्रेमी हूँ ।'

भगवन् ! आपके निराकार रूपसे जिन्हें प्रेम हो उनके लिये आप निराकार ही बने रहिये, पर मैं तो आपके सगुण साकार रूप-रसका प्यासा हूँ। 'आपके चरणोंमें मेरा चित्त लगा है।' मैं तो अज्ञानी ही हूँ। 'भला बच्चा भी कहीं आपसे दूर रहनेयोग्य बननेके लिये सयानोंकी बराबरी कर सकता है ?' ज्ञानी पुरुषोंकी बराबरी मैं अजान होकर कैसे कर सकता हूँ ? बच्चा जब सयाना हो जाता है तब माता उसे दूर रखती है, अयान शिशु तो माताकी गोद कभी नहीं छोड़ता। जो ब्रह्मज्ञानी हों उन्हें मोक्ष (छुटकारा) दे दो, पर मुझे मत छोड़ो, मुझे मोक्ष न चाहिये। 'तुम्हारे नामका जो नेह लगा है वह अब छूटनेवाला नहीं।' रसना तुम्हारे ही नामकी रसिक हो गयी है, आँखें तुम्हारे ही चरणोंके दर्शनकी प्यासी हैं। यह भाव अब मेरा बदलनेवाला नहीं। इसलिये तुम अब मेरे इस प्रेम-रसको सूखने मत दो ! अपनेसे मुझे अब दूर मत करो। मैं तुम्हारा मोक्ष नहीं चाहता, तुम्हींको चाहता हूँ !

मौन कां धरिलें विश्वाच्या जीवना। उत्तर वचना देईं माझ्या ॥१॥

'हे विश्वजीवन ! ऐसे मौन साधे क्यों बैठे हो ? मेरी बातका जवाब दो।'

मेरा पूर्वसञ्चित सारा पुण्य तुम हो—

तूं माझें सत्कर्म तूं माझा स्वधर्म। तूंचि नित्यनेम नारायणा ॥४॥

'तुम्हीं मेरे सत्कर्म हो, तुम्हीं मेरे स्वधर्म हो, तुम्हीं नित्य-नियम हो, हे नारायण !' मैं तुम्हारे कृपा-वचनोंकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

तुका म्हणे प्रेमळाच्या प्रियोत्तमा। बोल सर्वोत्तमा मजसवें ॥५॥

'तुका कहता है, प्रेमियोंके हे प्रियोत्तम ! हे सर्वोत्तम ! मुझसे बोलो ।'

'शरणागतको, महाराज ! पीठ न दिखाओ, यही मेरी विनय है। जो तुम्हें पुकार रहे हैं, उन्हें चट उत्तर दो, जो दुखी हैं उनकी टेर सुनो—उनके पास दौड़े आओ, जो थके हैं उन्हें दिलासा दो और हमें न भूलो, यही तो हे नारायण ! मेरी तुमसे प्रार्थना है ।'

कम-से-कम एक बार यही न हो कह दो कि 'क्यों तंग कर रहे हो, यहाँसे चले जाओ ।' 'हे नारायण! तुम ऐसे निठुर क्यों हो गये ?' 'साधु-सन्तोंसे तुम पहले मिले हो, उनसे बोले हो; वे भाग्यवान् थे, क्या मेरा इतना भाग्य नहीं ?' आजतक किसी-को तुमने निराश नहीं किया; और मेरे जीकी लगन तो यही है कि तुमसे मिलूँ, इसके बिना मेरे मनको कल न पड़ेगी !

भगवन् ! 'हम यह क्या जानें कि तुम्हारा कहाँ क्या भेद है ?' वेद बतलाते हैं कि तुम अनन्त हो, तुम्हारा कोई ओर-छोर नहीं, तब किस ठौर हम तुम्हें ढूँढ़ें ? सप्त पातालके नीचे और स्वर्गसे भी ऊपर तुम रहते हो, यह मच्छर तुम्हें इन आँखोंसे कैसे देखें ? हे पण्ढरिनाथ ! हे विट्ठलनाथ ! तुम इतने बड़े हो, पर अपने प्यारे भक्तोंके लिये चाहे जितना छोटा रूप धारण कर लेते हो !

होई मज तैसा मज तैसा। साना सुकुमार हृषीकेशा ॥
पुरवी माझी आशा । भुजा चारी दाखवी ॥ २ ॥

'हे हृषीकेश ! मेरे लिये भी वैसे ही बनो, वैसे ही छोटे सुकुमार, और मेरी आशा पूरी करो। चार भुजाओंवाली छवि दिखाओ।'

'अब तुम्हारी ही शरण ली है' क्योंकि तुम्हारा कोई भी दास विफलमनोरथ नहीं हुआ। मैं भी तुम्हारा दास हूँ, मेरी इच्छा भी पूरी होगी ही। पर 'हे दयानिधे ! मुझपर तुम्हारी दृष्टि पड़े।' और 'ईंटपर खड़े हे पण्ढरिनाथ ! अब जल्दी दौड़े आओ।'

'अकालपीड़ित भूखे' के सामने मिष्टान्न परोसा हुआ थाल आ जाय अथवा घातमें बैठी हुई 'बिल्ली मक्खनका गोला देख ले' तो उसकी जो हालत होती है वही मेरी हालत हुई है—'तुम्हारे चरणोंमें मन ललचाया है, मिलनके लिये प्राण सूख रहे हैं।'

'हम थके-माँदोंकी कौन खबर लेता है ?'—हे पाण्डुरङ्ग ! तुम्हारे बिना मुझपर ममत्व रखनेवाला इस विश्वमें और कौन है ? 'किससे हम अपना सुख-दुःख कहें, कौन हमारी भूख-प्यास बुझावेगा ?'

हमारे तापको हरनेवाला और कौन है ? हम अपना सवाल किससे लगावें ? कौन हमारी पीठपर प्यारसे हाथ फेरेगा ? इसलिये अब इतनी ही विनती है कि—

धांव घाली आई। आतां पाहतेसी काई॥ १॥
धीर नाहीं माझे पोटीं। झालों वियोगें हिंपुटीं॥ध्रु०॥
करावें शीतळ। बहु झाली हळहळ॥ २॥
तुका म्हणे डोई। कधीं ठेवीन हे पाईं॥ ३॥

'दौड़ी आओ, मेरी मैया ! अब क्या देखती हो ? अब धीरज नहीं रहा, वियोगसे व्याकुल हो रहा हूँ । अब जीको ठण्डा करो, अबतक रोते ही बीता है । कब यह मस्तक तुम्हारे चरणोंमें रखूँगा, यही एक ध्यान है।'

९ भगवान्‌से प्रेम-कलह

भगवान्‌के दर्शनोंके लिये जी छटपटा रहा है, ऐसी अवस्थामें तुकारामजी भगवान्‌पर कभी गुस्सा होते, कभी प्रेम-भिक्षा माँगते, कभी बड़ा ही विचित्र युक्तिवाद करते, कभी उन्हें निठुर कहते, कभी कहते, मेरे स्वामी बड़े भोले, बड़े कोमल हृदयवाले हैं, कहकर उसी प्रेम-ध्यानमें मग्न हो जाते, कभी कहते 'देखो, पाण्डुरङ्ग कैसे खीज उठे हैं । पर नामकी चुटिया हम पकड़े हुए हैं' और यह कहते हुए अपनी विजय मनाते और कभी अपनेको पतित समझकर लज्जासे सिर नीचा कर लेते, कभी भगवान्‌को सन्तोंकी पञ्चायतमें खींच लाते और उन्हें छली-कपटी, दरिद्री, दिवालिया ठहराते और कभी 'क्यों मैंने घर-गिरस्तीपर लात मार दी ?' 'क्यों संसार-सुखकी होली जला दी ?' इत्यादि कहकर दीन होकर बैठ जाते, कभी गालियोंकी झड़ी लगाते और कभी कहते 'तुम मातासे भी अधिक ममता रखनेवाले हो, चन्द्रसे भी अधिक शीतल हो, प्रेमके कल्लोल हो' और इस प्रकार उनकी दयालुताका ध्यान करते-करते उसीमें लीन हो जाते, कभी अपनेको पतित कहते, कभी भगवान्‌से बराबरी करते, कभी भगवान्‌को निर्गुण कहते, कभी सगुण कहते, कभी द्वैतकी भावना करते, कभी अद्वैत-रंगमें रँग जाते । इस प्रकार तुकारामजी भगवान्‌का प्रेम-सुख अनन्त

प्रकारसे भोग करते, उनके भगवत्प्रेमके अनेक रंग थे, अनेक ढंग थे ! उनके हृदयके वे प्रेम-कल्लोल कुछ उन्हींके शब्दोंमें देखें—

'जिनसे हे भगवन् ! तुम्हें नाम और रूप प्राप्त हुआ' वे हम पतित ही तुम्हारे सच्चे भगवान् हैं ! हमलोग हैं इसीसे तो तुम्हारी महिमा है ! अँधेरेसे दीपकी शोभा है, रोगोंके होनेसे धन्वन्तरिकी ख्याति है, विषके होनेसे अमृतका महत्त्व है और पीतलके होनेसे ही सोनेका मूल्य है !

'हम तुम्हारे कहाते हैं'—'पर तुम हमारा यह उपकार नहीं मानते कि हमारी ही बदौलत तुम्हें नाम-रूपका ठिकाना है ।' क्या कभी इस उपकारकी याद करते हो ?

एक जगह तुकारामजी कहते हैं—'भगवन् ! हम भक्तोंने तुम्हारी इतनी ख्याति बढ़ायी, नहीं तो तुम्हें कौन पूछता ?'

'सोलह हजार तुम बन सकते हो'—सोलह हजार नारियोंके लिये तुम सोलह हजार रूप धारण कर सकते हो, पर इस तुकाके लिये एक रूप धारण करना भी तुम्हारे लिये इतना कठिन हो रहा है !

भगवन् ! मेरी जागृति और स्वप्नका मेल नहीं है ! हाँ, तुम्हारी उदारता मैं समझ गया ! मैं तो तुम्हारे चरणोंपर मस्तक रखूँ और तुम अपने गलेका हार भी मेरी अञ्जलिमें न डालो ! हाँ, समझा ! जो छाछ भी नहीं दे सकता वह भोजन क्या करावेगा ?

भगवन् ! पहले जो भक्त तर गये वे अपने पुरुषार्थसे तर गये, उन्होंने अपना सर्वस्व तुम्हें दिया तब तुमने अपना हृदय

उन्हें दिया ! 'पर ऋण चुकानेमें कौन-सा बड़ा भारी धर्म है ?' मेरे-जैसे पुरुषार्थ-हीन पतितको तुम तारोगे तभी उदार कहाने-योग्य होगे !

भगवन् ! आज तुमने मेरा प्रेम-भङ्ग किया, अब मेरी जीभ यदि क्षुब्ध हुई तो मैं सन्तोंमें तुम्हारी फजीहत कराऊँगा ! तुम ऐसे निठुरपनेका वर्त्ताव करोगे तो 'तुम्हारा विश्वास कोई कैसे करेगा ?'

जिसके स्वामी दुर्बल हों उस सेवकका जीना लज्जाजनक है। देश-विदेशमें जिसकी बातकी धाक है उसका कुत्ता भी अच्छा है। जिसका नाम लेते संसार थरथर काँपने लगता है उसके द्वारपर कुत्ता होकर रहनेमें भी इज्जत है ! यह विचार हे भगवन् ! मेरे चित्तमें क्यों उठा, यह तुम्हीं जानो—जिसकी बात वही जाने !

सचमुच ही इस बड़प्पनको धिक्कार है ! इस महिमाका मुँह काला ! द्वारपर खड़ा मैं कबसे पुकार रहा हूँ, पर 'हाँ' तक कहनेकी जरूरत आप नहीं समझते ! शिष्टाचारकी इतनी-सी बात भी आपको नहीं मालूम ? 'कोई अतिथि आ जाय तो शब्दोंसे उसको सन्तोष दिलानेमें क्या खर्च हुआ जाता है ?' हे श्रीहरि ! यह सब तुम्हींको शोभा देता है ! हम मनुष्य तो इतने बेहया नहीं हैं !

जबतक तुम्हारे मुँहसे दो बातें मैं न सुन लूँगा तबतक ऐसे ही बकता-झकता रहूँगा। पर तुम्हें पुण्डलीककी शपथ है, जरा भी जबान हिलायी तो।

भगवन् ! तुम भरमाने-भटकानेमें बड़े कुशल हो और मैं भी बड़ा लतखोर हूँ। हमारा भाग्य ऐसा जो तुम्हें मौन साधे बैठ रहना ही अच्छा लगता है ! हमारे साथ तुमने दुराव किया इसलिये हमने यह विनोद किया !

'सचमुच ही भगवन् ! तुमसे ही तो मैं निकला हूँ। तब तुमसे अलग कैसे रह सकता हूँ ?' मुझमें कौन-सी कमी है वही बता देते। चलो, सन्तोंके सामने वहीं तुमसे निपटूँगा।

'तुम अमर हो यह सही है, पर तुका कब अमर नहीं है ? तुम्हारा यदि कोई नाम नहीं तो मेरा भी नामपर कोई दावा नहीं। तुम्हारा यदि कोई रूप नहीं तो मेरा भी रूपपर कोई हक नहीं। और जब तुम लीला करते हो तब मैं क्या अलग रहता हूँ ? तो क्या, तुम झूठे हो ? तुका कहता है, तो मैं भी वैसा ही हूँ।'

भगवन् ! तुम्हारे प्रेमकी खातिर, तुम्हारी एक बातके लिये, तुम्हारे दर्शन पानेके लिये मैंने 'इन्द्रियोंका होलिका-दहन किया, संसार-सुखका बलिदान किया;' यह जानकर तो दर्शन दो !

भगवन् ! तुम बड़े या मैं बड़ा, जरा यह भी देख लूँ ! मैं पतित हूँ, यह बात तो बनी-बनायी है और तुम जो पतित-पावन हो सो तुमने साबित करके अभीतक नहीं दिखाया; मैं भेद-भावको अपने प्राणोंसे लिपटाये बैठा हूँ, पर तुमसे भी उसका छेदन नहीं बन पड़ता है; मेरे दोष इतने बलवान् हैं कि उनके सामने तुम्हारी कुछ नहीं चलती; मेरा मन दशों दिशाओंमें भटकता रहता है पर तुम उसके भयसे बहुत दूर (मनसस्तु परा बुद्धिर्यो

बुद्धेः परतस्तु सः) जा छिपे हो ! तब बताओ, तुम बड़े हो या मैं बड़ा ?

भगवन् ! मेरे सब स्वजन-प्रियजन मर गये और तुम कैसे नहीं मरे ? 'तुम्हें देखते ही मेरे पिता गये, दादा गये, परदादा गये । तुम्हीं हे विठो ! कैसे बचे हो ? यह अब मुझे बताओ । मेरे पीछे बचपन, यौवन, वृद्धपन लगा है । पर विठो ! इन सबसे तुम कैसे बचे हो, यह मुझे बताओ ।'

भगवन् ! तुम वैसे अच्छे हो पर इस मायाकी मुरव्वतमें आकर स्त्री-बुद्धिवाले बन गये हो, इसकी सोहबतमें तुमने ये सब रंग-ढंग सीखे हैं !

'तुम तो बड़े अच्छे थे, पर इस राँडने तुम्हें बिगाड़ा । जिसकी जो चीज है उसे वह, यह देने नहीं देती; तुका कहता है, खाने दौड़ती है ।'

भगवन् ! मैंने आजतक तुम्हारी कितनी स्तुति की, कितनी निन्दा की, पर तुम पूरे हो ! 'बात ही नहीं करते, नामतक नहीं लेते ।' तो लो, अब मैं तुमसे कहे देता हूँ—

माझे लेखीं देव मेला । असो त्याला असेल ॥१॥

'मेरे लिये तो भगवान् मर गये, जिनके लिये अब हों, उनके लिये हुआ करें ।'

'क्या किसी पर्वकाल, तिथि, नक्षत्रका विचार कर रहे हो ?'—साइत देख रहे हो ? मेरा चित्त तुमसे मिलनेके लिये छटपटा रहा है । मैं अन्यायी हूँ, दोषोंकी खानि हूँ, इसलिये मुझपर क्रोध मत करो । इस अनजान बालकको रुलाओ मत ।

भगवन् ! तुम घरके लेनेवाले हो। 'जहाँ-तहाँ लेनेकी ही बात है,' कोई बिना कुछ लिये देता नहीं, तब तुम्हीं अकेले उदार क्यों बनो?

आधीं वरी हात या नावें उदार। उसण्याचे उपकार फिटाफिट॥

'पहले ही जिसका हाथ ऊपर रहता है उसको उदार कहते हैं। उधार लियेका उपकार क्या? वह तो पटेपाट है।' सच्ची उदारता दिखाओ, मुझसे जो सेवा बन पड़ती है वह तो मैं करता ही हूँ।

भगवन्! मैं क्या सचमुच ही पापी हूँ?

पापी म्हणों तरी आठवितों पाय। दोष वळी काय तयाहूनी?॥

'पापी कहूँ तो आपके चरणोंका स्मरण करता हूँ। मेरा पाप क्या आपके चरणोंसे भी अधिक बलवान् है?'

'उपजना-मरना' तो हमारी बपौती है, इससे छुड़ाओ तब तुम्हारी बड़ाई जानें!

भगवन्! आप सदाके बली और हम सदाके दुर्बल, यह क्या? हमने क्या दुर्बल बने रहनेका पट्टा लिख दिया है? हम याचक और आप दाता, ऐसा ही नाता सदा क्यों रहे? 'हमारे भी कुछ उपकार रहने दो, अकेले बने रहनेमें क्या बड़ाई है?'

भगवन्! हम विष्णु-दास हैं, हमारा सब बल-भरोसा तुम हो; पर इस कालको देखते हैं, हमारे ही ऊपर हुकूमत चला रहा है!

'क्या भगवन्! तुम भी कैसे नपुंसक बने हो! जैसे कोई शक्तिहीन हो, ऐसे मालूम होते हो!'

भगवन्! हम पतित, आप पतित-पावन। जैसी धर्म-नीति हमें जान पड़ी वैसे हम चले। अब आपको यह उचित है कि

हमारा उद्धार करें। अपने औचित्यको आप सँभालें। काया, वाचा, मनसा मैं तो आपका ही ध्यान करता हूँ। अब आपका जो धर्म हो उसे आप निबाहें।

भगवन्! पहलेके सन्त जिस मार्गपर चले उसी मार्गपर मैं चल रहा हूँ। मैं कोई खोटाई नहीं कर रहा हूँ, मैं तो आपका बच्चा हूँ न? 'बच्चेसे क्या जोर आजमाना?'

भगवन्! आप समर्थ हैं, मैं दीन हूँ। 'तुका कहता है, तुमसे वाद करना, संसारमें निन्दित होना है।' बड़ोंसे हुज्जत करनेमें केवल नामधराई होती है। इसलिये मैं हुज्जत नहीं करता। बस, यही है कि आप अपना काम पूरा कीजिये।

'क्या इस कालमें आपकी सामर्थ्य कुछ काम नहीं करती? भगवन्! मेरा सञ्चित आपसे बलवान् है, इसलिये क्या आप चुप हो गये? या क्या आपने अपनी गदा और चक्र कहीं खो दिये और अब उसके भयसे लज्जित हो रहे हो?' देखो, दीनानाथ! अपने विरदकी लाज रखो।

भगवन्! अब मेरा तिरस्कार करते हो? ऐसा ही करना था तो पहले अपने चरणोंका स्नेह क्यों लगाया? अबतक तो मैं अदबसे बात करता था पर अब मैं पूछता हूँ कि हमारे प्राण ही लेने थे तो आकारमें ही क्यों आये?

भगवन्! मैंने अपना सम्पूर्ण शरीर आपके चरणोंमें समर्पित किया है और आप क्या मेरा छूत मानते हैं या मेरे सामने आते हुए लजाते हैं? मैं अनन्य हूँ। भला, एक भी ऐसा गवाह मेरे

विरुद्ध खड़ा कीजिये जो यह कहे कि 'तुम्हारे सिवा और भी कहीं तुकारामका मन रमता है !'

भला, मेरे-जैसे किसीको भी आपने तारा है? 'हाथके कङ्कनको आरसी क्या ? मैं तो जैसे-का-तैसा ही बना हुआ हूँ ।'

हातींच्या कांकणा कासया आरसा । उरलों मी जैसा-तैसा आहे॥

हम भक्तोंके कारणसे तुम्हें देवत्व प्राप्त हुआ, यह बात क्या तुम भूल गये? पर उपकार भूल जाना तो बड़ोंकी एक पहचान ही है ।

समर्थासी नाहीं उपकारस्मरण । दिल्या आठवण वांचोनिया ॥

'समर्थोंको, स्मरण कराये बिना उपकार स्मरण नहीं होता ।'

मैं अब ऐसे माननेवाला भी नहीं ! प्रेम-दान कर मुझे मना लो !

भगवन् ! मैं पतित हूँ और आप पतित-पावन । पहले मेरा नाम है, पीछे आपका !

जरी मी नव्हतों पतित । तरी तूं कैचा पावन येथ ॥४॥
म्हणोनि माझें नाम आधीं । मग तूं पावन कृपानिधि ॥२॥

'यदि मैं पतित न होता तो आप कहाँसे पावन होते? इसलिये मेरा नाम पहले है, और पीछे आप हैं हे पावन कृपानिधे!'

भगवन् ! इस क्रमको अब मत बदलिये—

नवें करूं नये जुनें । सांभाळावें ज्याचें त्यानें ॥१॥

'नया कुछ न करे, सनातनसे जिसके जिम्मे जो काम है उसे वह सम्हाले ।'

भगवन् ! मैंने आपकी बड़ी निन्दा की, पर 'वह जीकी

छटपटाहट है, झगड़नेकी मुझे बान पड़ गयी है, कोई शब्द छूट गये हों तो क्षमा करें।' मेरा सच्चा धर्म क्या है सो मैं जानता हूँ—

'आपके चरणोंमें मैं क्या जोर आजमाऊँ? मेरा तो यही अधिकार है कि दास होकर करुणाकी भिक्षा माँगूँ।'

तुम्हारे श्रीमुखके दो शब्द सुन पाऊँ, तुम्हारा श्रीमुख देख लूँ, बस यही एक आस लगी है! भगवन्! आप जल्दी क्यों नहीं आते?

विठावाई! विश्वम्भरे! भवच्छेदके!
कोठें गुंतलीस अगे विश्वव्यापके॥१॥
न करी न करीं न करीं आतां आळस आहेरु।
व्हावया प्रगट कैचें दुरी अंतरु॥२॥

'विठामाई! विश्वम्भरे! भवच्छेदके! हे विश्वव्यापके! तुम कहाँ उलझ पड़ी हो? अब आलस्य न करो, न करो, न करो, तिरस्कार न करो। प्रकट होनेके लिये दूर-पास क्या?'

'भगवन्! मुझसे आप कुछ बोलते नहीं, क्यों इतना दुखी कर रहे हैं?' प्राण कण्ठमें आ गये हैं, मैं आपके वचनकी बाट जोह रहा हूँ। मैं भगवान्का कहाता हूँ और भगवान्से ही भेंट नहीं, इसकी मुझे बड़ी लज्जा आती है।

भगवन्! मेरे प्रेमका तार मत तोड़ो। आपकी कृपा होनेपर मैं ऐसा दीन-हीन न रहूँगा। पेट भरनेपर क्या संसारसे यह कहना पड़ता है कि मेरा पेट भरा? तृप्ति चेहरेसे ही मालूम हो जाती है। 'चेहरेकी प्रसन्नता ही उसकी पहचान है।'

अस्तु, इस प्रकार तुकारामजी प्रेमावेशमें भगवान्‌से उत्तर-प्रत्युत्तर और विनोद-परिहास किया करते थे। कभी कोई-कोई शब्द बाह्यतः बड़े कठोर होते थे पर उनके अन्दर आन्तरिक प्रेमका जो गाढ़ा रंग भरा रहता था वह उन विट्ठल जननीसे थोड़े ही छिपा रहता था? भगवान् तो अन्दरकी जानते हैं! तुकाराम उनसे जैसे झगड़ते थे वैसे झगड़ना प्रेमके बिना थोड़े ही बनता है? उत्कट प्रेमके बिना झगड़नेकी भी हिम्मत कहाँसे हो सकती है? तुकारामजीने भगवान्‌से हुज्जत की, हँसी-मजाक किया, अपनी दीनता भी दिखायी और बराबरीका दावा भी किया। उनके हृदयके ये विविध उद्गार उनका उत्कट भगवत्प्रेम ही व्यक्त करते हैं। उनके जीकी बस यही एक लगन थी कि भगवान् अपने सगुण रूपका दर्शन दें। जबतक भगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होते, 'केवल सुनते हैं कि वेद ऐसा कहते हैं, प्रत्यक्ष अनुभव कुछ भी नहीं, तबतक केवल इस कहने-सुननेमें' क्या रखा है? सतीको वस्त्रालङ्कार पहनाकर चाहे जितना सिंगारिये पर जबतक पतिका सङ्ग उसे नहीं मिलता तबतक वह मन-ही-मन कुढ़ा करती है। वैसे ही भगवान्‌के दर्शन बिना तुकारामजीको कुछ भी अच्छा नहीं लगता था।

> पत्रीं कुशलता भेटीं अनादर।
> काय तें उत्तर येईल मानूं ॥१॥
> आलों आलों ऐसी दाऊनियाँ आस।
> बुडों बुडतयास काय द्यावें ॥२॥

'चिट्ठी-पत्रीमें तो कुशल-क्षेमका समाचार लिखते हैं पर

स्वयं आकर मिलनेकी इच्छा नहीं करते । ऐसे कुशल-समाचारको मैं क्या समझूँ ? अब आता हूँ और तब आता हूँ, ऐसी आशा दिलाना और जो डूब रहा है उसे डूबने देना क्या उचित है ?' यह उन्होंने भगवान्‌से पूछा है ।

केवल नानाविध पक्वान्नोंका नाम ले लेनेसे ही भोजन नहीं होता; इसलिये भगवन् ! अपने दर्शन दो ! प्रभु ! दर्शन दो ! यही एक पुकार वह मचाये हुए थे ।

भगवन् ! तुमसे यदि मेरी प्रत्यक्ष भेंट नहीं हुई और कोरी बातें ही करते रहे तो ये सन्त मुझे क्या कहेंगे ! इसको भी तनिक विचारो ।

मज ते हांसतील संत । जिहीं देखिलेति मूर्तिमंत ।
म्हणोनि उद्वेगिलें चित्त । आहाच भक्त ऐसा दिसे ॥

'वे सन्त मुझे हँसेंगे जिन्होंने तुम्हें मूर्तिमन्त देखा है, कहेंगे—यह भक्त ऐसा ही है (केवल भक्तिकी बातें करता है, भगवान्‌से इसकी भेंट कहाँ ?), इससे चित्त और भी उद्विग्न होता है ।'

मेरे यश और कीर्तिका डङ्का बजनेसे ही मुझे सन्तोष नहीं हो सकता । 'जबतक मैं तुम्हारे चरण नहीं देखूँगा तबतक मेरे चित्तको कल न पड़ेगी, और लोगोंका भी चित्त सुखी न होगा ।'

सकळिकांचें समाधान । नव्हे देखिल्यावांचून ॥ १ ॥
रूप दाखवीरे आतां । सहस्र भुजांच्या मंडिता ॥ २ ॥

'आपके दर्शन बिना सबको समाधान न होगा । इसलिये हे सहस्रभुज ! अब अपना रूप दिखाओ ।'

तुम्हारा रूप जब मैं एक बार देख लूँगा तब मैं उसीको अपने चित्तपर सदाके लिये खींच लूँगा, और तब सन्त भी मुझे मानेंगे। जिसने भगवान्‌के साक्षात् दर्शन नहीं किये, सन्तोंमें उसकी मान्यता नहीं। सन्त और भक्त वही है जिसे भगवान्‌का सगुण-साक्षात्कार हुआ हो। 'तुका कहता है, भोजनके बिना तृप्ति कहाँ?'

१० मिलन-मनोरथ

भगवन्मिलनकी लालसा इस प्रकार बढ़ती ही गयी, तब जागनेमें भी तुकारामजी उसी मिलनके प्रसङ्गका सुख-स्वप्न देखने लगे। 'अब मैं थका (भागलों मी आतां)' वाले अभंगमें वह कहते हैं—

'भगवान् आलिङ्गन देकर प्रीतिसे इन अङ्गोंको शान्त करेंगे और अमृतकी दृष्टि डालकर मेरे जीको ठण्डा करेंगे। गोदमें उठा लेंगे और भूख-प्यासकी पूछेंगे और पीताम्बरसे मेरा मुँह पोछेंगे। प्रेमसे मेरी ओर देखते हुए मेरी ठुड्डी पकड़कर मुझे सान्त्वना देंगे। तुका कहता है, मेरे माँ-बाप हे विश्वम्भर! अब ऐसी ही कुछ कृपा करो।' ऐसे-ऐसे मीठे विचारोंमें उनका मन मग्न होने लगा। प्रत्यक्ष मिलनकी अपेक्षा उस मिलनके प्रसङ्गकी पूर्व आशाओंमें कुछ और ही सुख होता है! मिलनमें एक बार ही आकण्ठ प्रेमोत्कण्ठा स्थिर हो जाती है। पर मिलनके पूर्वके मनोरथ बड़े-बड़े मनोहर दृश्य दिखाकर विलक्षण सुख-वेदनाओंका अनुभव कराते हैं। बच्चोंके लिये खिलौने खरीदने चलिये उस क्षणसे खिलौने बच्चोंके हाथोंमें आनेके क्षणतक बच्चोंके मुख

कैसे-कैसे सुखोंकी कल्पनाओंसे आनन्दोत्फुल्ल हो उठते हैं। खिलौने हाथमें आ जानेके पीछे वह आनन्द नहीं रहता। उस आनन्दमें बच्चे कैसी-कैसी उछल-कूद मचाते हैं, पीछे वह बात नहीं रहती—फिर तो शान्ति आ जाती है। कहते हैं, वस्तु-लाभके सुखकी अपेक्षा उसकी प्रतीक्षाका सुख अधिक है—विलक्षण है। अब यह आनन्द देखिये—

'पहलेके सन्त वर्णन कर गये हैं कि भगवान् भक्तिके वश छोटे बन गये, सो कैसे बने वह हे केशव! मेरे माँ बाप! मुझे प्रत्यक्ष बनकर दिखाइये। आँखोंसे देख लूँगा, तब तुमसे बात-चीत भी करूँगा, चरणोंमें लिपट जाऊँगा। फिर चरणोंमें दृष्टि लगाकर हाथ जोड़कर सामने खड़ा रहूँगा। तुका कहता है, यही मेरी उत्कण्ठ-वासना है, नारायण! मेरी यह कामना पूरी करो।'

पहले यह बता गये कि भगवान् मिलेंगे तब वह क्या करेंगे और इस अभंगमें यह बतलाया कि मैं क्या करूँगा! मैं भगवान्‌को आँखें भरकर देखूँगा, प्रेमसे हृदय भरकर उनके पैर पकड़ूँगा, चरणोंपर दृष्टि रखकर हाथ जोड़ सामने खड़ा रहूँगा और भगवान्‌से हृदय खोलकर, जी भरकर बातें करूँगा! तुकारामजीके अनेक अभंग हैं जिनमें उनकी भगवन्मिलनकी यह उत्कण्ठ-लालसा व्यक्त हुई है। एक स्थानमें वह कहते हैं कि भगवान्‌की जो सेवा मैं आजतक करता रहा वह सही थी या उसमें कुछ गलती थी, यह मैं उन्हींसे पूछूँगा। और उनसे कहूँगा कि अब 'आप अपने मुखसे मुझे सेवा बतावें, यह मैं चाहता हूँ।' और अभिलाषा मेरी यह है कि—

बोलें परस्परें वाढवावें सुख। पहावें श्रीमुख डोळेभरी ॥ ३ ॥
तुका म्हणे सत्य बोलतों वचन । करूनी चरण साक्ष तूझे ॥ ४ ॥

'आपकी-मेरी बातचीत हो और उससे सुख बढ़े। आँखें भरकर आपका श्रीमुख देखूँ। तुका कहता है, यह मैं आपके चरणोंको साक्षी रखकर सच-सच कहता हूँ।' याने और कुछ मैं नहीं चाहता।

भगवन्! आप कहेंगे कि 'तुमने शास्त्रोंको पढ़ा है, पुराणोंको देखा है, सन्तोंका सङ्ग किया है, कीर्तन-प्रवचन सुनकर तथा ब्रह्मविद्याके ग्रन्थोंका अध्ययनकर तुमने यह जाना है कि ब्रह्मका स्वरूप क्या है, उस व्यापक रूपको छोड़ अब मेरी छोटी-सी मूर्ति किसलिये देखना चाहते हो?' सुनिये—

कासयासी आम्हीं व्हावें जीवन्मुक्त। सांडुनियां थीत प्रेमसुख ॥१॥
सुख आम्हांसाठीं केलें हें निर्माण। निर्दैव तो कोण हाणे लाथा ॥२॥

'यह प्रेम-सुख छोड़कर हम जीवन्मुक्त किसलिये हों? आपने हमारे लिये यह सुख निर्माण किया है। कौन ऐसा अभागा होगा जो इसे लात मार दे?'

मेरी उत्कण्ठ-कामना क्या है सो एक बार स्पष्ट शब्दोंमें तुमसे कहे देता हूँ—

नको ब्रह्मज्ञान आत्मस्थितिभाव। मी भक्त तूं देव ऐसें करीं ॥१॥
दावीं रूप मज गोपिकारमणा। ठेवूं दे चरणावरी माथा ॥ध्रु०॥
पाहेन श्रीमुख देईन आलिंगन। जीवें लिंबलोण उतरीन ॥२॥

पुसतां सांगेन हितगुजमात। बैसोनि एकांत सुखगोष्ठी ॥३॥
तुका म्हणे यासी न लावी उशीर। माझें अभ्यंतर जाणोनियां ॥४॥

'ब्रह्मज्ञान—आत्मस्थितिभाव मुझे न चाहिये। ऐसा करो कि मैं भक्त बना रहूँ और आप भगवान् बने रहें। हे गोपिकारमण! अब मुझे अपना रूप दिखाओ जिसमें मैं अपना मस्तक आपके चरणोंपर रखूँ। तुम्हारा श्रीमुख देखूँगा, तुम्हें आलिंगन करूँगा, तुम्हारे ऊपरसे राई-नोन उतारूँगा। तुम पूछोगे तब अपनी सब बात कहूँगा, एकान्तमें बैठकर तुमसे सुखकी बातें करूँगा। तुका कहता है, मेरे हृदयका हाल जानकर अब देर मत करो।'

'मुझ अनाथके लिये' हे नाथ! अब तुम एक बार चले ही आओ। क्या कहूँ?

'तुम्हारे लिये जी तड़प रहा है, हृदय अकुला रहा है। चित्त तुम्हारे चरणोंमें लगा है। तुम्हारे बिना अब रहा नहीं जाता है।'

भगवान्से मिलनेकी ऐसी लालसा लगी कि अब उसके बिना एक क्षण भी चैन नहीं। 'पुकारते-पुकारते कण्ठ सूख गया!' आयु तो बीत चली, इस सोचसे भगवान्के सिवा अब चित्तमें और कोई सङ्कल्प ही न रहा! सब सङ्कल्प जब नष्ट हो गये, अकेले भगवान् रह गये, तब वह शेष, वह माता लक्ष्मी और वह गरुड ध्यानमें स्थिर हो गये। तब तुकारामजी उनसे प्रार्थना करते हैं।

'गरुडके पैरोंपर बार-बार मस्तक रखता हूँ; हे गरुडजी! उन हरिको शीघ्र ले आइये, मुझ दीनको तारिये। भगवान्के चरण

जिन लक्ष्मीजीके हाथोंमें हैं उनसे गिड़गिड़ाता हूँ कि हे श्रीलक्ष्मीजी ! उन हरिको शीघ्र ले आइये और मुझ दीनको तारिये। तुका कहता है, हे शेषनाग ! आप हृषीकेशको जगाइये।'

* * *

'हे नारायण ! तुम्हें उन गोपालोंने अपने पुण्यवान् नेत्रोंसे कैसा देखा होगा ! उनके उस सुखके लोभसे मेरा मन ललचाया है ! मुझे वह आनन्द कब मिलेगा ? तुम्हारे श्रीमुखकी ओर टकटकी लगाये रहनेका आनन्द कैसा होगा ? अनुभवके बिना मैं उसे क्या जानूँ ? तुम्हारा रूप इन आँखोंसे कब देखूँगा, तुम्हारे आलिङ्गनका आनन्द कब लाभ करूँगा, चित्त प्रतिक्षण यही सोचता है।'

इस मधुर अभङ्गका भाव कितना मधुर है ! उन गोपालोंने तुम्हें कैसा देखा होगा, इस उक्तिमें 'कैसा' पद चित्तको एक क्षणके लिये ठहरा लेता है। 'कैसा' पदसे गोपालोंके उस सुखसे और 'पुण्यवन्ती (पुण्यवान्)' पदसे उनके नेत्रोंसे तुकारामजीको बड़ी ईर्ष्या हुई, यह तो स्पष्ट ही है पर 'कैसा' जो क्रियाविशेषण है उसे इस स्थानमें ऐसा विलक्षण अर्थ-गाम्भीर्य प्राप्त हुआ है कि चित्तको ठहरकर और ठहरना पड़ता है ! वह श्यामघननील, उनका वह पीताम्बर, वह मुकुट, वे कुण्डल, वह चन्दनकी खौर, वह निर्मल कौस्तुभमणि और वह वैजयन्तीमाला, वह सुखनिर्मित श्रीमुख, ऐसे वह राजस सुकुमार मदन-मूर्ति श्रीकृष्ण सामने खड़े हैं और उनके सखा गोपाल 'पपौ निमेषालसपक्ष्मपङ्क्तिभिरुपोषिताभ्यामिव

लोचनाभ्याम्' (रघुवंश सर्ग २—१९) इस कालिदासोक्तिके अनुसार अनिमेष-लोचनोंसे उनके सुन्दर मुख-कमलकी ओर आनन्दानुभवसे स्थिर होकर देख रहे हैं—यह सम्पूर्ण दृश्य तुकारामजीके नेत्रोंके सामने नाच रहा था जब उन्होंने 'कैसा' पद लिखा, इस पदसे सूचित होता है। इसी पदसे यह भाव भी प्रकट होता है कि मेरा भाग्य कब खुलेगा जब मुझे भी उस आनन्दका अनुभव होगा! गोपालोंके उस सुखसे मेरा मन भी ललचाया है, मेरी वह आस कब पूरी होगी, मैं अपने नेत्रोंसे श्रीकृष्णको जीभर कब देखूँगा, श्रीकृष्ण अपनी बाँहोंसे मुझे कब अपनी छातीसे लगावेंगे, तुकारामजी कहते हैं कि प्रतिक्षण मेरे चित्तमें यही लालसा लगी रहती है।

तुकारामजीके जीकी यह लालसा जानकर भक्त-वत्सल भगवान् श्रीकृष्णने उनपर शीघ्र ही कृपा की।
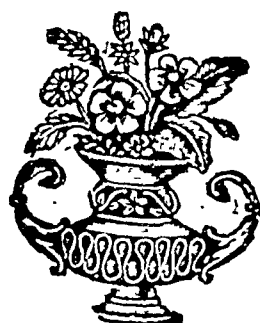
दसवाँ अध्याय

श्रीविट्ठल-स्वरूप

धरियेलें रूप कृष्ण नामवुंथीं । परब्रह्म क्षितीं उतरलें ॥ १ ॥
उत्तम हें नाम रामकृष्ण जगीं । तरावयालागीं भवनदी ॥ २ ॥

'श्रीकृष्ण-नामके भीतर भगवान्‌ने निज रूप धारण किया । परब्रह्म भूमण्डलपर उतर आया । भव-नदी पार करनेके लिये जगत्‌में यह राम-कृष्ण-नाम उत्तम है ।'

*　　　　*　　　　*

देवकीनन्दनें । केलें आपुल्या चिंतनें ॥ १ ॥
मज आपुलिया ऐसें । मना लावूनियां पिसें ॥ २ ॥

'देवकीनन्दनने अपने चिन्तनसे, मनको पागल बनाकर मुझे अपना-जैसा बना लिया ।'

१ विट्ठल अर्थात् श्रीकृष्णका बाल-रूप

पिछले अध्यायमें हमलोगोंने यह देखा कि तुकारामजी भगवान्‌के सगुण रूपके दर्शन करना चाहते थे । अब यह देखें कि वह भगवान्‌के किस रूपका दर्शन चाहते थे, किस रूपके प्रेमी थे । जिसके चित्तमें जिस रूपका ध्यान होता है उसी रूपमें भगवान् उसे दर्शन देते हैं, यह सिद्धान्त है । इसलिये वह किस रूपका ध्यान करते थे, कौन-सा रूप उन्हें अत्यन्त प्रिय था, किस रूप, चरित्र और गुणोंके गीत उन्होंने गाये हैं, खाते-पीते,

उठते-बैठते, जागते-सोते, घर-बाहर तथा समाधि-व्युत्थानमें भगवान्‌के किस रूपकी ओर उनकी लौ लगी थी, यह देखें। लोग कहेंगे कि तुकारामजी श्रीपाण्डुरङ्ग (श्रीविट्ठल) के भक्त थे, यह तो प्रसिद्ध ही है, इसमें ढूँढ़-खोज करनेकी कौन-सी बात है ? इसपर मेरा उत्तर यह है कि यह बात सचमुच ही ढूँढ़-खोज करनेकी है। कम-से-कम मुझे जिस दिन इसका पता लगा उस दिन एक बड़ी उलझन सुलझ गयी। वह क्या बात है सो आगे लिखते हैं। तुकारामजीके कुलदेव विट्ठल थे, बचपनसे ही वह विट्ठलकी उपासनामें थे, उनके अभङ्गोंमें भी सर्वत्र पाण्डुरङ्ग (विट्ठल) का ही नाम-कीर्तन है जिससे यह स्पष्ट है कि वह विट्ठलका ही ध्यान करते थे। 'विट्ठल' पदसे (विष्णु–विठु–विट्ठल–विठोबा) श्रीविष्णुका ही बोध होता है। 'विष्णु' पदका अर्थ है 'व्यापक'—'व्याप्नोतीति विष्णुः'—सर्वव्यापी 'अत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्' भगवान् महाविष्णु। महाविष्णुकी उपासना वेदोंमें भी है। वेदोंका विष्णुसूक्त प्रसिद्ध है। महाराष्ट्रमें भगवद्भक्तोंको विष्णुदास, वैष्णव कहते हैं। 'हम विष्णुदासोंको अपने चित्तमें भगवान्‌का चिन्तन करना चाहिये,' 'विष्णुमय जग देखना वैष्णवोंका धर्म है,' 'वैष्णव वही है जो भगवान्‌पर ही ममत्व रखता है' इत्यादि वचन तुकारामजीके प्रसिद्ध ही हैं। तुकारामजीने 'विठोबा' नामकी व्युत्पत्ति 'गरुडवाहन,' 'गरुड़ध्वज' लगायी है, यह हम पहले देख ही चुके हैं। अब—

'तुम क्षीर-सागरमें थे। पृथ्वीमें असुर भर गये, इसलिये ग्वालोंके घर तुम्हारा अवतार हुआ। पुण्डलीक तुम्हें पण्ढरीमें ले आये। भक्तिसे तुम हाथ लगते हो।'

भगवान् विष्णुने युग-युगमें असंख्य अवतार धारण किये हैं। यह पाण्डुरङ्ग 'बुद्धिके जननेवाले और लक्ष्मीके पति' हैं। इन्होंने अनेक अवतार लिये पर 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' (श्रीमद्भागवत स्कन्ध १-३-२८) इस वचनके अनुसार श्रीविष्णुके पूर्णावतार श्रीकृष्ण ही हैं। श्रीविष्णु शुद्ध-सत्त्वके क्षीर-सागरमें शयन कर रहे थे और एक बार पृथ्वीपर कंसादि असुरोंने बड़ा उत्पात मचाया, तब गोकुलमें ग्वालोंके घर अवतार जिन्होंने लिया उन श्रीकृष्ण परमात्माको ही पुण्डलीकने अपनी भक्तिके बलसे पण्डरीमें ईंटपर खड़ा किया है। वेदोंने जिन भगवान्‌की स्तुति की है वही नन्दके यहाँ अवतरे—

निगमाचें वन। नका शोधूं करूं शीण ॥ १ ॥
यारे गौळियांचें घरीं। बांधलेसे दावेवरी ॥ २ ॥

'निगमके वनमें भटकते-भटकते क्यों थके जा रहे हो? ग्वालोंके घर चले आओ, यहाँ वह रस्सीसे बँधे हैं।'

भगवान् विष्णुके पूर्णावतार श्रीकृष्ण ही श्रीविट्ठल हैं।

गीता जेणें उपदेशिली। ते हे विटेवरी माउली ॥

'गीताका जिन्होंने उपदेश किया वही मेरी मैया इस ईंटपर खड़ी हैं।'

श्रीतुकारामजीके हृदयकी प्रियमूर्ति यह थी—यही श्रीविट्ठल श्रीकृष्णकी मूर्ति। उसीके दर्शनोंकी लालसा उन्हें लगी थी।

'उद्धव और अक्रूरको, अम्बरीषको, रुक्माङ्गद और प्रह्लादको जो रूप तुमने दिखाया वही मुझे दिखाओ। तुम्हारा श्रीमुख और

श्रीचरण मैं देखूँगा, जरूर देखूँगा, उसीमें मन लगा अधीर हो उठा है। पाण्डवोंको जब-जब कष्ट हुआ तब-तब स्मरण करते ही तुम आ गये। द्रौपदीके लिये तुमने उसकी चोलीमें गाँठ बाँध दी। गोपियों-के साथ कौतुक करते हो, गौओं और ग्वालोंको सुख देते हो। अपना वही रूप मुझे दिखा दो। तुम तो अनाथके नाथ और शरणागतोंके आश्रय हो। मेरी यह कामना पूरी करो।'

उद्धव और अक्रूरको नित्य दर्शन देनेवाले, पाण्डवोंको दुःखमें दर्शन देनेवाले, द्रौपदीकी लाज रखनेवाले, गोपियोंकी मनोवाञ्छा पूरी करनेवाले, गौ-ग्वालोंको सङ्ग-सुख देनेवाले श्रीकृष्णके ही दर्शनोंके लिये तुकाराम तरस रहे थे। स्पष्ट ही कहते हैं, 'श्याम-रूप चतुर्भुज-मूर्ति श्रीकृष्ण नाम ही चित्तका सङ्कल्प है।' वह श्रीमुख और श्रीचरण मुझे दिखाओ, उन्हें देखनेके लिये मेरा मन उतावला हो गया है।

विट्ठल आमुचें जीवन। आगमनिगमाचें स्थान॥

'विट्ठल ही हमारे जीवन हैं। विट्ठल ही आगम-निगमके स्थान हैं।'

कृष्ण माझी माता कृष्ण माझा पिता।

'कृष्ण ही मेरी माता हैं, कृष्ण ही मेरे पिता हैं।'

विट्ठल और श्रीकृष्ण दोनों नाम जहाँ-तहाँ एक ही लक्ष्यके बोधक हैं। जीके जीवन एक श्रीकृष्ण ही हैं। तुकारामजी श्रीकृष्णका ध्यान करते थे और अब हम यह देखेंगे कि वह ध्यान बालरूप बालकृष्णका था। बाल्यकालके तीन मुख्य भाग होते हैं; सात वर्षतक केवल बाल, चौदह वर्षतक कौमार और इक्कीस

वर्षतक पौगण्ड। श्रीकृष्णकी जिन प्रेममय लीलाओंके पीछे भक्त-जन पागल हो जाते हैं वे लीलाएँ प्रायः पहले सात वर्षकी ही हैं।

एक अभङ्गमें तुकारामजीने 'गूलरके कीड़ों' का दृष्टान्त देकर पुरुषोत्तम श्रीअनन्तकी विराटता दिखायी है। गूलर-फलमें असंख्य कीड़े होते हैं। उन कीड़ोंको उतना-सा गूलर-फल ही ब्रह्माण्ड प्रतीत होता है। ऐसे असंख्य फल गूलरके वृक्षमें होते हैं। ऐसे असंख्य वृक्ष इस नव खण्ड पृथ्वीपर हैं। हम जिसे ब्रह्माण्ड समझते हैं ऐसे असंख्य ब्रह्माण्ड उस विराट् पुरुषके एक रोमपर हैं और ऐसे असंख्य रोम उस विराट् पुरुषके शरीरपर हैं और ऐसे अनन्तकोटि विराट् पुरुष जिसके पेटमें समाये हुए हैं उन परम-पुरुषको हम कहाँ ढूँढ़ें, कहाँ देखें?

तो हा नंदाचा बालमुकुंद। तान्हा म्हणवी परमानंद॥

'वही यह नन्दके बालमुकुन्द हैं। वही परमानन्द यहाँ दुधमुँहे नन्हे बालक बने हैं।'

'अनन्त ब्रह्माण्ड जिसके एक रोमपर हैं, ऐसा वह महाकाय (परमपुरुष) यह देखिये ग्वालोंके यहाँ ग्वालोंके घर देहली लाँघते हुए हाथोंको देहलीपर टेककर चलते हैं और वही बड़े-बड़े दैत्योंको धरतीपर मार गिराते हैं, पुराण उन्हींके गीत गाते हैं। तुका कहता है, उनमें सब कलाएँ हैं।'

तत्त्वज्ञानके भूखे विद्वानोंके लिये श्रीकृष्णने गीता गायी है। कथाओंके प्रेमियोंके लिये महाभारत मौजूद है। पर आजतक जो-जो भगवद्भक्त और साधु-सन्त श्रीकृष्णपर मुग्ध हुए वे उनके दिव्य प्रेममय बाल-चरित्रोंपर ही मुग्ध हुए हैं। 'नन्द-नन्दन'

कहानेवाले वह नन्हे कान्हा, वंसीके वजानेवाले, गोप-गोपियोंको प्रेमके दीवाने बनानेवाले, गोपालोंकी छाकें खानेवाले, वह दही-दूध-माखन-चोर—

'विश्वोंके जनिता। कहें यशोदासे माता ॥'
(विश्वाचा जनिता। म्हणे यशोदेशी माता ॥)

* * *

'अनन्त ब्रह्माण्ड जिसके उदरमें है वह हरि नन्दके घर बालक हैं। कैसी अचरजकी बात है, कन्हैयाकी पहेली कुछ समझमें नहीं आती। पृथ्वीको जिसने सन्तुष्ट किया, यशोदा उसे खिलाती हैं। विश्वव्यापक जो कमलापति हैं उन्हें ग्वालिनें गोदमें उठा लेती हैं। तुका कहता है, वह ऐसे नटवर हैं कि भोग भोगकर भी ब्रह्मचारी हैं।'

* * *

'सुन्दर नवल-नागर बालरूप है और फिर वही कालीय सर्पको नाथनेवाला कालरूप है। वही गौओं और ग्वालोंके साथ पुण्डलीकके पास आ गये। वही यह दिगम्बर ध्यान है, कटिपर कर धरे शोभा पा रहे हैं। मूढ़जनोंको तारनेकी उन्होंने पुण्डलीकसे शपथ की है। तुका कहता है, वैकुण्ठवासी भगवान् भक्तोंके पास आकर रहे हैं।'

बालरूप भक्तोंको बड़ा ही प्यारा लगता है। गौ-ग्वालोंके सङ्गका बालरूप ही तुकारामजीके जीका जीवन था। कालीयदहमें कालीयके काल बननेवाले यह 'बाल' कृष्ण ही भक्तोंके प्राण-धन

बन बैठे हैं। वह 'भोले-भाले बाल-पाण्डुरङ्ग' जिन्होंने 'काग-बक आदि दैत्योंको बचपनमें ही मार डाला उन्हें मुझे दिखाओ। वह नन्द-नन्दन मेरे जीवनके आनन्द हैं।'

इन्हीं 'भोले बाल-पाण्डुरङ्ग' की ओर तुकारामजीकी लौ लगी थी।

पांडुरंग ध्यानीं पांडुरंग मनीं। जागृतीं स्वप्नीं पांडुरंग॥

*　　　*　　　*

आंत हरि बाहेर हरि। हरिनें घरीं कोंडिलें॥

'अन्दर हरि बाहर हरि, हरिने ही अपने अन्दर बन्द कर रखा है।'

बाल-कृष्णने ही उन्हें अपना चसका लगा रखा था। तुकारामजीके निदिध्यास और कीर्तनके विषय भी श्रीबालकृष्ण ही थे।

दीन आणि दुर्बलासी। सुखराशि हरिकथा॥१॥
चरित्रतें उच्चारावें। केलें देवें गोकुळीं॥२॥

सांवळें रूपडें चोरटें चित्ताचें। उभें पंढरीचें विटेवरी॥१॥
डोळियांची धणी पाहतां न पुरे। तयालागीं झुरे मन माझें॥ध्रु०॥
प्राण निघों पाहे कुडी ये सांडोनी। श्रीमुख नयनीं न देखतां॥२॥
चित्त मोहियेलें नंदाच्या नंदनें। तुका म्हणे येणें गरुडध्वजें॥३॥

'दीन और दुर्बलके लिये हरि-कथा ही सुखका सम्बल है। वही चरित्र-कीर्तन करना चाहिये जो भगवान्ने गोकुलमें किया।'

'वह श्यामरूप चित्त-चोर पण्ढरीकी ईंटपर खड़ा है। उसको देखते हुए नेत्र कभी तृप्त नहीं होते, उसीके लिये मेरा जी छटपटा

रहा है। उस श्रीमुखको इन आँखोंसे न देखते हुए, प्राण इस कलेवरको छोड़कर निकलना चाहते हैं। इस गरुडध्वज नन्द-नन्दनने चित्त मोह लिया है।'

इन सब उक्तियोंसे यह स्पष्ट हो जाता है कि इन 'नन्द-नन्दन श्याम'ने ही तुकारामजीका मन मोह लिया था और तुकाराम उन्हींके दर्शनोंके लिये व्याकुल हो रहे थे।

२ ज्ञानेश्वर-नामदेवादिकी सम्मति

विट्ठल नाम श्रीकृष्णके बालरूपका ही है, इस बातको ध्यानमें रखनेसे यह समझमें आ जाता है कि हमारे साधु-सन्तोंने श्रीकृष्णकी केवल बाल-लीलाओंको ही ऐसे विलक्षण प्रेमसे क्यों गाया है। सूरदास, मीराबाई, नरसी मेहता आदि उत्तरापथके श्रीकृष्ण-भक्त और ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम, निलोबाराय प्रभृति महाराष्ट्रके श्रीकृष्ण-भक्त श्रीकृष्णकी बाल-लीलाओंका ही बड़े प्रेमसे वर्णन करते हैं। महाराष्ट्रके कृष्ण-भक्तोंके श्रीकृष्णकी बाललीलाके वर्णन भिन्न-भिन्न 'गाथाओं' में छपे हुए हैं। ज्ञानेश्वर और एकनाथने अध्यात्मदिक् दिखाते हुए बाललीलाका वर्णन किया है। इन्होंने तथा नामदेव, तुकारामजी और निलाजीने श्रीकृष्णका बाल-चरित्र कंस-वधतक वर्णन करके तथा यह सूचित करके कि श्रीकृष्ण द्वारकाधीश हुए, बाललीला-वर्णन समाप्त किया है। श्रीहरि-हरकी एकात्मता और श्रीविष्णुके सब अवतारोंकी—विशेषकर राम और कृष्णकी—भक्तिका यद्यपि इन सबने ही वर्णन किया है, तथापि एकनिष्ठ-सगुणोपासनकी दृष्टिसे देखा जाय तो ये पाँचों सन्त श्रीकृष्णके उपासक थे और श्रीकृष्णके भी बालरूप—बालचरित

(श्रीविट्ठल) के ही उपासक थे, यह बात निर्विवाद है। क्या ज्ञानेश्वरीमें और क्या एकनाथी भागवतमें श्रीकृष्ण-चरित-सम्बन्धी जो-जो उल्लेख हैं वे उनकी बाललीलासे ही सम्बंन्ध रखते हैं। इसके कुछ उदाहरण यहाँ देते हैं—

(वि) ज्ञानेश्वर महाराजके अभङ्गोंमें श्रीविट्ठलभगवान्‌की स्तुतिके प्रसङ्गमें 'वसुदेव-कुँवर देवकी-नन्दन' 'वृन्दावन-विहारी ब्रह्मनन्द-नन्दन' ऐसे ही विशेषण आये हैं और वर्णन भी इसी प्रकारका है कि, 'उपनिषदोंके अन्तर्यामी हैं पर सशरीर चरणोंपर खड़े हैं,' 'कैसा सुन्दर गोपवेश है,' 'पेड़के पत्तोंके गुच्छे सिरपर खड़े किये, अधरोंपर बंसी रखे, नन्दलाल ग्वालकी शोभा क्या बखानूँ,' 'इन्दु-वदन-मेला लगा है, वहाँ वृन्दावनमें आप रासक्रीडा कर रहे हैं' यह मनोहर वर्णन श्रीकृष्णके बालरूपके ध्यानसे निकला है। ज्ञानेश्वरीमें भी 'वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि' (गीता अ० १०-३७) पर भाष्य करते हुए ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं—

'जो वसुदेव-देवकीके कारण पैदा हुआ, जो यशोदाकी कन्याके बदलेमें गोकुल गया वह मैं हूँ। पूतनाको प्राणों समेत जो पी गया वह मैं हूँ। बचपनकी कली अभी खिली भी नहीं कि पृथ्वीके दानवोंका जिसने संहार किया; जिसने अपने हाथपर गोवर्धन-गिरिको उठाकर महेन्द्रका गर्व हरण किया; जिसने कालीयका दमनकर कालिन्दीके हृदयका दुःख दूर किया; जिसने भभक उठी हुई आगसे गोकुलकी रक्षा की; जिसने ब्रह्माको, बछड़े हर ले जानेके कारण, दूसरे बछड़े निर्माणकर, नादान बना दिया; बचपनके

भोरमें ही जिसने कंस-जैसे बड़े-बड़े दैत्योंको देखते-ही-देखते सहज ही मार डाला, वह मैं ही हूँ।' (ज्ञानेश्वरी अ० १०–२८८–२९१)

ज्ञानेश्वरीमें 'विट्ठल' नाम 'नहीं' कहनेवालोंको चाहिये कि इस अवतरणको अच्छी तरह पढ़कर मनन करें। 'यादवोंमें जो वासुदेव हैं वह मैं ही हूँ,' इसका व्याख्यान करते हुए ज्ञानेश्वर-महाराज कंसवधतककी ही श्रीकृष्ण-लीलाका वर्णन करते हैं और आगेका हाल तो तुम जानते ही हो यह कहकर आगे कुछ कहना टाल देते हैं, इससे भी क्या यह स्पष्ट नहीं होता कि ज्ञानेश्वर महाराज मुख्यतः बाल-कृष्णकी ही भक्ति करते थे? जो वर्णन उन्होंने किया है वह श्रीविट्ठलका है और श्रीविट्ठल ही उनके उपास्य थे, इस बातके प्रमाणस्वरूप यह अवतरण पर्याप्त है।

(ङ) नामदेवरायके अभङ्गोंमें भी विट्ठल-स्वरूपका ऐसा ही स्पष्ट बोध होने योग्य अनेक प्रसङ्ग हैं। 'अनिर्वचनीय ब्रह्म' कहकर निगम जिसका वर्णन करते हैं, जो उपनिषदोंको मथकर निकाला हुआ अर्थ है, वेद जिसे सारका सार, श्रवणोंका श्रवण, नयनोंका नयन, ज्ञानका दर्पण और सब भूतोंका व्यापक, 'चित्तको चेतानेवाला, बुद्धिका पालन' करनेवाला, मन और इन्द्रियोंको चलानेवाला, निर्विकल्प, निराकार, निःशून्य, निराधार, निर्गुण, अपरम्पार कहते हैं वह परमात्मा, नामदेव कहते हैं कि,

'गोकुल-ग्वाल बनकर यशोदाका लाल कहाता है—वही जो चिन्मय चिद्रूप अक्षय अपार परात्पर कहा जाता है।'

* * *

'उन्हींको देखो, भीमाके तटपर समचरण विट्ठलरूप होकर ईंटपर खड़े हैं। ज्ञानियोंका ज्ञेय और योगियोंका ध्येय वहाँ कैसे पहुँचा ? वेणु-नादसे प्रसन्न होकर भगवान् पण्ढरीमें इस रेतके मैदानमें आये। उस चतुर्भुज-मूर्तिको पुण्डलीकने जब देखा तब एक ईंट उनके सामने रख दी। उसी ईंटपर विट्ठल खड़े हुए। वह छबि त्रिभुवनपर छा गयी।'

* * *

'निर्गुणका वैभव भक्तिके भेसमें आ गया, वही यह विट्ठल-वेश बन गया। पुण्डलीकने अपनी साधनाके द्वारा जो भक्ति-सुख दिया उससे भावमय भगवान् मोहित हो गये।'

* * *

वह भगवान् कौन हैं ?—

'वह भगवान् हरि हैं; गोकुलके, वसुदेव-कुलके, यशोदाकी गोदके बाल-कृष्ण हैं।'

नामदेवरायके स्तुति-स्तोत्रमें भी—

श्रीधरा अनंता गोविंदा केशवा। मुकुंदा माधवा नारायणा॥
देवकीतनया गोपिकारमणा। भक्तउद्धरणा केशिराजा॥

* * *

गोवर्धनधरा गोपीमनोहरा। भक्तकरुणाकरा पांडुरंगा॥

भगवान् 'पाण्डुरङ्ग' को इन्हीं बाल-कृष्ण-नामोंसे पुकारा है

श्रुतिके लिये जो परब्रह्म दुर्बोध है वह सगुण कैसे हुआ ? इसका उत्तर यह है कि 'जलमें जैसे जलके ओले होते हैं, वैसे

निराकारमें साकार होता है ।' सगुण-निर्गुण-भेद केवल समझानेके लिये है, यथार्थमें पाण्डुरङ्ग 'पूर्णताके साथ सहज-में-सहज हैं। वही भक्तोंके लिये ईंटपर खड़े हैं । उनके नाम-संकीर्तनसे, नामदेव कहते हैं कि, मेरा मनस्ताप नष्ट हुआ, चित्तको शान्ति मिली। परब्रह्म अविनाशी और आनन्दघन है, पर हमें तो प्रेमसे पनहानेवाली विठामाई ही प्यारी लगती हैं ।'

(ल) एकनाथ महाराजने बाल-कृष्ण-भक्तिकी हद कर दी है। पहले ही अध्यायमें वह कहते हैं—

'भगवान् अनेक अवतार अवतरे । पर इस अवतारकी नवलता कुछ और ही है । इसका अभिप्राय देवता भी नहीं जानते । उस अगम्य हरिलीलाको देखते ही बनता है । पैदा होते ही मैयासे अलग हुए, अपनी लीलासे आप ही लालित-पालित होकर बढ़े । बचपनमें ही मुक्तिका आनन्द दिलाने लगे । पूतनादि सबको स्वशरीरसे मुक्ति अर्पण की । बालक होकर बलवानोंको ही मारा, संसारके देखते सिंह-जैसे महान् पराक्रमी थे पर बालपनके बाहर तिलभर भी नहीं रहे । ब्रह्म थे और करते थे चोरी; भगवान् होकर थे व्यभिचारी; स्त्री-पुत्र सबके रहते, थे ब्रह्मचारी; यह लीला भी उन्होंने दिखायी । भक्ति, भुक्ति और मुक्ति तीनोंको एक पंक्तिमें बिठाया । इनकी कीर्ति मैं क्या बखानूँ ! मिट्टी खाकर इन्होंने विश्वरूप दिखाया ।

जो चरित्र मनुष्यको अत्यन्त प्रिय होता है उसका जी खोलकर वर्णन किये बिना उससे नहीं रहा जाता । श्रीकृष्णके लावण्य और यशका अनुपम वर्णन एकनाथी भागवतके इसी अध्यायमें

(२३८ से २७३ तक और २८९ से ३०९ तक) अवश्य पढ़नेयोग्य है। सकल लोकलालन बाल-कृष्ण 'जिनकी अंग-संग-प्रभासे संसारको शोभा प्राप्त हुई' सुव्यक्त परब्रह्म ही हैं।

'घी जमा हुआ हो या पिघला हुआ, वह है घी ही, उसका घीपन तो कहीं नहीं गया; वैसे ही ब्रह्म जो अव्यक्त है वही साकार बन गया; इससे उसका ब्रह्मत्व तो कहीं नहीं गया। उसी-की बनी मूर्ति है, परब्रह्म तो उसमें भरा हुआ है। परब्रह्मके सगुणरूप यह श्रीकृष्ण सकल सौन्दर्यके अधिवास, मनोहर नटवेश धारण किये लावण्य-कलान्यास और स्वयं जगदीश हैं। इनके इस नित-नवल सौन्दर्य और तेजको देखकर इनके सर्वाङ्गमें लोगोंकी आँखें गड़ जाती हैं और मन कृष्ण-स्वरूपको आलिङ्गन करता है। नेत्र आतुर हो उठते हैं, उस लोभसे ललचाते हैं, नेत्रोंके जिह्वाएँ निकल पड़ती हैं। ऐसी उन स्वानन्दगर्भ साकार श्रीकृष्णकी शोभा है। जिस दृष्टिने उन श्रीकृष्णको देखा वह दृष्टि फिर पीछे फिरकर नहीं देखती, श्रीकृष्णरूपको ही अधिकाधिक आलिङ्गन करती है, सारी सृष्टि श्रीकृष्णमय ही देखती है।'

* * *

'कटिमें सुवर्णाम्बर सुशोभित हो रहा है और गलेमें पैरोंतक वनमाला लटक रही है। उन सुन्दर मधुर घनश्यामको देखते हुए नेत्रोंसे मानो प्राण निकले पड़ते हैं।'

श्रीकृष्ण लीलाविग्रह हैं। उनका शरीर लोकाभिराम और ध्यान-धारण मङ्गल है। वेदोंका जन्मस्थान, षट्शास्त्रोंका समाधान, षड्दर्शनोंकी पहेली—ऐसा यह श्रीकृष्णका पूर्णावतार है।

(नाथ-भागवत ३१–३६८) और 'उसमें भी बालचरित्र ही सबसे अधिक मधुर, सुन्दर और पवित्र है' (३८२) और वही सब भक्तोंको प्रिय है। वही श्रीकृष्णकी बालमूर्ति पण्ढरीमें विट्ठल-नाम-रूपसे ईंटपर खड़ी है। यही हमारे महाराष्ट्रके सन्तोंके उपास्य देव हैं।

श्रीकृष्ण ही श्रीविट्ठल हैं, यह बात सन्तोंके वचनोंसे प्रमाणित हो चुकी। पर इसी सम्बन्धमें एक ऐतिहासिक प्रमाण भी मिला है। श्रीकृष्णावतारको हुए पिछली याने संवत् १९९० की जन्माष्टमीको पूरे ५०१८ वर्ष बीते! श्रीकृष्णका जन्म विक्रम संवत्के ३०२८ वर्ष पूर्व भाद्रकृष्ण ८ को रोहिणी नक्षत्रपर मध्यरात्रिमें हुआ। रावबहादुर चिन्तामणि विनायक वैद्यने अपने 'श्रीकृष्ण-चरित्र' के परिशिष्ट-भागमें ज्योतिष-गणनाके आधारपर यह लिखा है कि उस दिन बुधवार था। इसको पढ़ते ही यह बात ध्यानमें आ गयी कि वारकरी बुधवारको इतना पवित्र और पूज्य क्यों मानते हैं कि उस दिन पण्ढरीसे प्रस्थान नहीं करते और विट्ठलका वार कहकर वह दिन श्रीविट्ठलके भजन-पूजनमें ही बिताते हैं। वह दिन श्रीकृष्णका जन्म-दिन है, यह बात ज्ञात होनेपर बड़ा आनन्द हुआ। पण्ढरीके वारकरी सम्प्रदायके आदिप्रवर्तकको यह बात निश्चय ही ज्ञात रही होगी कि बुधवारके दिन श्रीकृष्ण-का जन्म हुआ है, अन्यथा बुधवार ही खास तौरपर भगवान्का दिन न निश्चित किया जाता।

३ श्रीकृष्णकी बाललीलाएँ

ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम और निळाजीद्वारा वर्णित श्रीकृष्णलीलाओंमें श्रीकृष्णके बालचरित्र अर्थात् बाल्य और

कौमार अवस्थाके चरित ही गाये गये हैं। कंसादि असुरोंके अत्याचार-भारसे दबी हुई पृथ्वी क्षीरसागरमें शयन करनेवाले श्रीविष्णुकी शरणमें गयी, विष्णुने उसे अभय-दान किया, वसुदेव-देवकीके विवाह-समयमें आकाशवाणी हुई और कंसको यह मालूम हुआ कि देवकीका आठवाँ पुत्र मेरा काल होगा, उसने उसके सात बच्चे मार डाले, कारागारमें ही श्रीकृष्ण प्रकट हुए, वसुदेवने उन्हें गोकुल नन्दके घर पहुँचा दिया, मार्गमें लोहे-की शृंखलाएँ तड़ातड़ टूट गयीं और यमुना मैयाने रास्ता दिया, कृष्णके मनोहर बालरूपने सब गोप-गोपियोंका चित्त मोह लिया, कृष्णको मारनेके लिये कंसके भेजे पूतना, शकटासुर, तृणावर्त, वत्सासुर, प्रलम्ब, अघासुर, बक, केशी, धेनुकासुर आदि असुरोंको श्रीकृष्णने बचपनमें ही सहज ही मार डाला, उँगलीपर गोवर्धन गिरि उठाया, यशोदाको अपने मुँहमें ब्रह्माण्ड दिखाया, ब्रह्माका गर्व उतारा, वृन्दावनमें गोपोंके सङ्ग अनेक प्रकारके खेल खेले, दूध-दही-मक्खन चुराकर गोपियोंका चित्त चुराया, श्रीकृष्ण-प्रेमसे वे पति-पुत्र घर-द्वार भूल गयीं, गोकुल और वृन्दावनकी लीलाओंसे आबाल-वृद्ध-वनिता सभी कृष्ण-प्रेममें पागल हो गये, पीछे कृष्णने मथुरामें जाकर चाणूर-मुष्टिकादि मल्लोंको मारकर अन्तमें कंसका भी अन्त किया, कुछ काल बाद श्रीकृष्ण द्वारकाधीश हुए। इन सब घटनाओंको श्रीकृष्ण-भक्त सन्त कवियोंने बाल-लीलामें अत्यन्त प्रेमसे बखाना है। काँदोके अभङ्ग, ग्वालिन, डण्डोंका खेल, आती-पाती, कबड्डी इत्यादि खेलोंपर जो अभङ्ग हैं उनका भी बाल-लीला-वर्णनमें ही समावेश होनेसे इसमें कुछ भी सन्देह नहीं रह जाता

कि गोकुल-वासी वृन्दावन-विहारी श्रीकृष्ण ही हमारे भक्त सन्तोंके भगवान् श्रीविठ्ठल हैं। श्रीकृष्णका उत्तर चरित सबको विदित ही है। तुकारामजीके ही वचनके अनुसार 'जिन्होंने गीताका उपदेश किया वही यह मेरी माता हैं जो ईंटपर खड़ी हैं,' अर्जुनको भगवद्गीता और उद्धवगीता बतलानेवाले, पाण्डवके सहाय, द्वारकाधीश श्रीकृष्ण कौरव-पाण्डव-युद्धके कारण महाभारतके द्वारा परम राजनीतिज्ञके रूपमें संसारपर प्रकट हुए तथापि हमारे भक्तों और सन्तोंको जो श्रीकृष्ण परम प्यारे हैं वह गोकुलके ही श्रीकृष्ण हैं। गोकुलके ही श्रीकृष्ण कुरुक्षेत्रके गीता-वक्ता हैं। श्रीकृष्ण एक ही हैं। तथापि श्रीकृष्णने जगदुद्धारके लिये गोकुल-वृन्दावनमें जो भक्ति-रस-परिप्लावित परमानन्ददायिनी लीलाएँ कीं वे ही भक्तोंके प्रेमकी वस्तु हैं। इस कारण गोकुलके श्रीकृष्ण ही उनके उपास्य हैं। स्वामी विवेकानन्दने* कहा है—'श्रीकृष्ण सब मनुष्योंका उद्धार करनेके लिये अवतार लिये हुए परमात्मा हैं और गोपी-लीला मानवधर्मान्तर्गत भगवत्प्रेमका सारसर्वस्व है। इस प्रेममें जीव-भावका लय होकर परमात्मा-से तादात्म्य हो जाता है। श्रीकृष्णने गीतामें 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज' जो उपदेश दिया है उसकी प्रतीति इसी लीलामें होती है। भक्तिका रहस्य जानना हो तो जाओ और वृन्दा-वन-लीलाका आश्रय करो। श्रीकृष्ण दीन-दुखियोंके, भिखारी-कंगालोंके, पापी-पामरोंके, बाल-बच्चोंके, स्त्री-पुरुषोंके, सबके परम उपास्य हैं। व्युत्पन्न पण्डित और शाब्दिक तत्त्वज्ञोंसे वह दूर हैं, भोले-भाले अजानोंके समीप हैं। उन्हें ज्ञानका शौक नहीं,

* 'प्रबुद्ध भारत' सन् १९१५ जनवरी मासका अङ्क।

वह शुद्ध प्रेमके भूखे और भोक्ता हैं। गोपियोंके लिये श्रीकृष्ण और प्रेम एकरस हो गये थे। द्वारकामें श्रीकृष्णने कर्मयोग सिखाया और वृन्दावनमें भक्ति-प्रेमकी शिक्षा दी। श्रीकृष्ण प्रेम, दया और क्षमाके सागर हैं।'

४ श्रीतुकारामद्वारा लीला-वर्णन

तुकारामजीने अपने उपास्य भगवान् श्रीविट्ठलकी जो बाल-लीलाएँ गायी हैं उनमें भी ग्वाल-ग्वालिनोंकी अलौकिक भक्ति और श्रीकृष्णकी भक्तवत्सलता अत्यन्त प्रेमसे बखानी है।

'अविनाशी ब्रह्म आकार धारणकर दैत्योंका संहार करने आ गया। भक्तजनोंका पालन करनेके लिये गोकुलमें राम और कृष्ण आ गये। गोकुलमें आनन्द-सुख प्रकट हुआ। घर-घर लोग उसीका आसरा मानने लगे।'

गोपियोंकी प्रगाढ़ कृष्ण-भक्ति देखिये—

'उनके पूर्व पुण्यका हिसाब कौन लगा सकता है जिन्होंने मुरारीको खेलाया—अन्तःसुखसे खेलाया और बाह्य सुखसे भी, और उन्हें पाकर मुखका चुम्बन दिया? भगवान्‌ने उन्हें अन्तः-सुख दिया जिन्होंने एकनिष्ठ भावसे उन्हें जाना। श्रीकृष्णमें जिनका तन-मन लग गया, जो घर-द्वार और पति-पुत्रतकको भूल गयीं, उनके लिये धन, मान और जन विष-से हो गये, वे एकान्तमें वन बसाने लगीं। अपनी भोगेच्छा तृप्त करनेके लिये वे हरिको लेकर एकान्तमें जातीं और जिनकी आयु अधिक हो चुकी थी उनके लिये उनके-से ही बनकर उन्हें आन्तरिक इच्छा-भोग

भगवान् देते। भोग-त्याग दोनों जिसके पास नहीं, तुका कहता है, वह तो स्फटिकशिला-जैसा है।'

इस मधुर अभङ्गमें रासलीला* बता दी और उसका रहस्य भी।

'चारों वेद जिसकी कीर्ति बखानते हैं वह ग्वालिनोंके हाथों बँध जाता है। मक्खन चुराने उनके घरोंमें घुसता है।.........अन्दर-बाहर एक-सा है, इससे चोरी पकड़ी नहीं जाती। यह भेद वे जानती हैं कि यह अकेला ही, और सब रास्तोंको बन्द करके हमें बैठा लेगा। इसलिये वे निश्चिन्त एकान्तमें निःसङ्ग होकर कृष्णके ही ध्यानमें अचल लगी रहीं। योगियोंके ध्यानमें जो एक क्षणके लिये भी नहीं आता, भावुक ग्वालिनें उसे पकड़ रखती हैं। उन भक्तिनोंके पास वह गिड़गिड़ाता हुआ आता है, और सयाने कहते हैं कि वह तो मिलता ही नहीं।'

* * *

'देहकी सारी भावना बिसार दी तब वही नारायणकी सम्पूर्ण पूजा-अर्चा है। ऐसे भक्तोंकी पूजा भगवान् भक्तोंके जाने बिना ले लेते हैं और उनके माँगे बिना उन्हें अपना ठाँव दे देते हैं।'

* * *

'मनसे सारी इच्छाएँ हरिरूपमें लग गयीं। ग्वालिनोंकी ये बधुएँ उन्हींके लिये व्यग्र देख पड़ती हैं। इसलिये इनके पतियोंके

---

* भक्तोंको परम सुख देनेवाली इस दिव्य रासलीलापर भक्तिविमुख विद्वानोंके आक्षेप हुआ करते हैं। इसका बहुत ही अच्छा खण्डन चिपळूणकर-मण्डलीद्वारा प्रकाशित 'हरिवंशावली' में हमारे मित्र श्रीमाधवराय मोडकने किया है।

रूप धारणकर यह उनके घर जाते और उन्हें भोगते हैं। सबके चित्तमें एक भाव नहीं है। इसलिये जैसा प्रेम वैसा रूप। बच्चेको छोटे-बड़ेका खयाल नहीं होता, नारायण भी वैसे ही कौतुकके साथ खेलते रहते हैं।'

* * *

अब ग्वालोंका भक्ति-भाग्य देखिये—

'राम और कृष्णने गोकुलमें एक कौतुक किया। ग्वालोंके संग गौएँ चराते थे। सबके आगे चलते हुए गौएँ चराते थे और पीठपर छाकें बाँधे रहते थे। उनकी वह लाठी और कामरी धन्य हुई। ग्वालिनोंका भी कैसा महान् पुण्य था, वे गाय-भैंस और अन्य पशु भी कैसे भाग्यवान् थे।'

* * *

'इन ग्वालिनोंके व्रत-याग आदि अनेक सञ्चित पुण्य-कर्म थे जो ऐसे फले। ग्वालिनोंको जो सुख मिला वह दूसरोंके लिये, ब्रह्मादिके लिये भी दुर्लभ है।'

* * *

नन्द और यशोदाका कृष्ण-भक्ति-भाग्य देखिये 'परिश्रम करके धन उपार्जन किया, वह भी उन्होंने कृष्णार्पण किया। सब गौएँ, घोड़े, भैंसें, दासियाँ प्रेमसे कृष्णको समर्पित कर दीं। क्षण-भर भी यदि कृष्णका वियोग होता तो उनके प्राण तड़पने लगते। उनके ध्यानमें, मनमें सब विधि हरि ही थे। शरीरसे काम करते थे, पर चित्त भगवान्‌में ही लगा रहता था। उन्हींका चिन्तन करते थे। बस, यही एक पुकार होती थी कि कृष्ण कहाँ गया,

अभी उसने खाया नहीं, कहाँ चला गया ? वे 'कृष्ण' नाम ही रटा करते थे। माता यशोदा कूटते-पीसते-पछोरते कृष्णके 'लोरियाँ' गाती थीं, भोजनमें नन्द-यशोदा कृष्णको पुकारते थे, ध्यानमें, आसनमें, शयनमें, स्वप्नमें कृष्णरूप ही देखते थे। कृष्ण उन्हें दिखायी देते थे, दुश्चित्तोंको नहीं दिखायी देते। तुका कहता है, नन्द-यशोदा-जैसे माता-पिता धन्य हैं।'

* * *

पास-पड़ोसकी ग्वालिनोंकी कृष्ण-भक्ति देखिये और अन्तः-करणमें उस सुखको अनुभवकर प्रेमाश्रु बहाइये—

एक सखी दूसरी सखीसे कहती है, 'कृष्ण हमारा परिचारी है, कृष्ण व्यवहारी है, अरी नारी! कृष्णको उठा ले। कृष्णके बिना तुम्हें कैसे चैन मिलता है, कैसे समय कटता है ? तुमलोग फालतू बातें किया करती हो, समय व्यर्थ खोती हो, इस जग-उजागर-को जरा क्यों नहीं उठा लेतीं ? उठा लो और इस सुखको भी तो जरा देख लो। इस सुखको जब तुम अनुभव करोगी तब द्वार-द्वार न भटका करोगी। एक कृष्णके बिना यह सारा खेल तुम्हें झूठा प्रतीत होगा। सबकी संग-सोहबत तब तुम छोड़ दोगी और अनन्तको संग लेकर वनमें जाओगी। इसे फिर अपने प्राणोंसे अलग न करोगी। दूसरोंसे भी इस बच्चेको लेनेके लिये कहोगी। इस बालकको जो अपने घर ले जाती है उसकी-सो वही है।'

* * *

'तुका कहता है, जो कृष्णको ले जाती हैं वे फिर लौटकर नहीं आतीं। कृष्णके साथ खेलते ही सारा दिन बीतता है।

कृष्णके मुँहकी ओर निहारते हुए, चाहे दिन हो या रात, उन्हें और कुछ नहीं सूझता । सारा शरीर तटस्थ हो जाता है, इन्द्रियाँ अपना व्यापार भूल जाती हैं । भूख-प्यास, घर-द्वार वे सब ही भूल जाती हैं । यह भी सुध नहीं रहती कि हम कहाँ हैं । हम किस जातिकी हैं, यह भी भूल गयीं । चारों वर्णोंकी गोपियाँ एक हो गयीं । कृष्णके साथ खेल खेलती हैं, चित्तमें उनके कोई शङ्का नहीं उठती । बस, एक ठाँवमें, तुका कहता है कि श्रीगोविन्द-चरणोंमें भावना स्थिर हो गयी ।'

* * *

इन्होंने अपने आपको जाना । जाना कि यह संसारी खेल जो खेल रहे हैं वह झूठा है । असलमें हमारे सगे-सम्बन्धी, भाई-दामाद, जो कुछ कहिये, सबमें एक वही हैं । उन्हींमें हम सब एक हैं । इसलिये निःशङ्क होकर खेल सकती हैं । हम किसके संग क्या खाती हैं और मुँहमें उसका क्या स्वाद मिलता है, यह सब कुछ नहीं जानतीं । दूसरोंकी आवाज भी कान नहीं सुनते । क्योंकि ध्यानमें, मनमें हरि बैठे हैं ।

* * *

काँदोके अभङ्गमें भी यही अनुपम रस भरा हुआ है । श्रीगोपालकृष्ण अपने सखाओंके साथ गौएँ चरानेके लिये मधुवनमें जाया करते थे । वहाँ अपनी-अपनी छाकें खोलकर सबने जो भोजन किये तथा जो-जो खेल खेले उनका बड़ा ही चित्तरञ्जक वर्णन तुकारामजीने किया है । भगवान् पहले कहते हैं, 'अपनी-

अपनी छाकें खोलो देखें, कौन क्या ले आया है ।' कारण, 'बिना सबकी तलाशी लिये मैं अपना कुछ भी देनेवाला नहीं ।' मट्ठा-दही, चिउरा-चावल, जिसके पास जो रहा वह उसने निकाला । 'किसीकी गौएँ स्थिर हो गयीं, किसीकी इधर-उधर भटकने लगीं ।' सबने भगवान्‌से विनती की, 'अब सब बाँट दो, हमारे पास क्या है और क्या नहीं सो सब तुम जानते हो । भगवान्‌के लेखे सभी बराबर हैं, वह 'किसीके भी जीको कष्ट नहीं होने देते ।'

'सबको वर्तुलाकार बैठाकर आप मध्यमें बैठते और सबका समान समाधान करते ।'

निष्कपट खेलाड़ी कान्हाने सबकी भावनाके अनुसार बँटवारा कर दिया ।

'ग्वाल-बाल अपनी-अपनी भावनासे पीड़ित हुए । जिसकी जैसी वासना ! कर्मके साक्षी इस लीलाको कौतुकसे देखने लगे । खेल खेलते जो अपना भार उन्हींपर रखते उनके लिये कभी बाधें नहीं होते थे । कोई बाधें आ जाते थे, कोई उलझकर सुलझ लेते थे ।'

* * *

सबके भोजनमें हरि अपनी माधुरी डाल देते थे । परस्पर बातें करते हुए ब्रह्मानन्द-लाभ करते थे । भगवान् सबके हाथोंपर और मुखमें कौर डालते । भगवान्‌के ही जो सखा थे !

भोजन करते हुए ग्वाल-बाल कहते, 'मुँह मीठा हुआ पर पेट अभी नहीं भरा । एक दूसरेका जूठा खा लेते, इसमें उन्हें कुछ घिन नहीं लगती थी ।'

काँदौकी वह वहार देखकर—'गौएँ चरना भूल गयीं; पशु-पक्षी जड़त्व भूल गये, यमुना-जल स्थिर होकर बहने लगा। सब देवता देखते हैं, उनके लार टपकती है; कहते हैं, गोपाल धन्य हैं, हम कुछ भी न हुए!'

काँदौका दही भरपेट खाकर गोपाल कहते हैं कि 'तुम्हारा साथ बड़ा अच्छा! हमें यह नित्य मिला करे।'

फिर सब अपनी लकुटी और कम्बल उठा गौएँ चराने गये। उनमें कई टेढ़े अङ्गवाले, तोतले, नाटे, लँगड़े, लूले आदि भी थे, पर श्रीकृष्ण उन सबके प्रिय थे और भगवान् भी उनके भावसे प्रसन्न थे। गौएँ चराते हुए ग्वाल-बाल श्रीकृष्णको मध्यमें किये डंडोंके खेल आदि खेलते जा रहे हैं।

बालक्रीड़ाके अभङ्गोंमें तुकारामजीने आध्यात्मिक भाव ध्वनित किये हैं। गोपियाँ रास-रङ्गमें समरस हुईं; उसी प्रकार हमारी चित्त-वृत्तियाँ श्रीकृष्ण-प्रेममें सराबोर हो जायँ और तन्मयताका आनन्द-लाभ करें, यही इन अभङ्गोंका आध्यात्मिक भाव है। भक्तोंके पूर्व-सञ्चितको देखकर भगवान् उसमें अपना प्रसाद डालकर उनके जीवनको मधुर बनाते हैं और 'नीचेका द्वार बन्द करते हैं' याने अधोगतिका रास्ता बन्द करते हैं। अस्तु, श्रीकृष्ण-प्रेममें तुकारामजी रमे हुए थे यह कहनेकी आवश्यकता नहीं।

५ श्रीपण्ढरीके विट्ठलनाथ

पण्ढरपुरमें श्रीविट्ठलनाथकी जो मूर्ति है उसे अच्छी तरह देखनेसे भी यह मालूम हो जाता है कि यह भगवान्‌की बाल-मूर्ति

ही है । कुछ आधुनिक पण्डितोंने जो यह तर्क लड़ाया है कि यह मूर्ति बौद्धों या जैनोंकी है उसमें कुछ भी दम नहीं है । यह मूर्ति श्रीमहाविष्णुके अवतार श्रीगोपालकृष्णकी ही है । भगवान् ईंटपर खड़े हैं । ईंटपर भगवान्के बड़े ही कोमल पद-कमल हैं । इन पाद-पद्मोंमें कोटि-कोटि भक्तोंने अपने मस्तक नवाये हैं, प्रेमाश्रुओंसे सहस्रशः इन्हें नहलाया है, अपने चित्तको निवेदन किया है । इन चरणोंने लाखों जीवोंके हृत्ताप हरण किये हैं, उनके नेत्रोंको कृतार्थ किया है, उनका जीवन धन्य बनाया है । सहस्रों पापात्माओं और मुक्तोंने, बद्धों और मुमुक्षुओंने, सिद्धों और साधकोंने, रङ्कों और रावोंने, पतितों और पतित-पावनोंने इन चरणोंके ध्यान और भजनसे अपना जीवन सफल किया है । लाखों जीवोंके लिये यह दुस्तर भवसागर इन चरणोंके चिन्तन-चमत्कारसे गोष्पद-जितना छोटा-सा हो गया है । ऐसे ये इस ईंटपर श्रीविट्ठलनाथके चरण स्थिर हैं । भगवान्के बायें पैरपर एक व्रण है । भगवान्की मुक्तकेशी-नामकी कोई दासी थी । भगवान्पर उसका अत्यधिक प्रेम था । वह दासी बड़ी सुकुमार थी और उसे अपनी सुकुमारताका बड़ा गर्व था । उसने अपने दाहिने हाथकी उँगली भगवान्के बायें पैरपर रखी सो भगवान्के अति सुकुमार पैरमें गड़ी । भगवान्के चरणोंकी यह सुकुमारता देखकर अपनी सुकुमारता उसे तुच्छ प्रतीत हुई और वह बहुत लज्जित हुई । उसका गर्व उतर गया । भगवान्के दोनों पैरोंके बीचमें पीताम्बरका झब्बा-सा लटक रहा है, वह बाल-रूपोचित ही है । बड़ी अवस्था दरसानी होती तो पाँवोंसे पीताम्बर-का किनारा कायदेसे मिला होता । जननेन्द्रियके स्थानमें करधनी-

का एक लच्छा-सा लटक रहा है। सोनेकी करधनीपर इन्द्रिय-चिह्न-सा सोनेका ही टिकड़ा है जो पहलेका नहीं है अर्थात् मूर्ति नग्न नहीं है, यह शङ्का करनेका कोई कारण नहीं है कि मूर्ति जैन है। पीताम्बरके ऊपर करधनी है। दाहिने हाथमें शङ्ख और बायेंमें पद्म है। छातीपर दाहिनी ओर भृगुलाञ्छन है—भृगुके अंगूठेका चिह्न है। कण्ठमें कौस्तुभमणि लटकता हुआ छातीपर आ गया है। भुजाओंमें भुजबन्ध हैं और दोनों कानोंमें कानोंसे कन्धोंतक मकराकृति कुण्डल हैं। भगवान्‌के मुख, नासिका और नेत्र प्रसन्न हैं। मस्तकपर शिवलिङ्गाकार मुकुट है। भालप्रदेश-में मुकुटके बीचमें एक बारीक फीता-सा बँधा है, वह पीछे पीठपर लटकी हुई छाककी डोरीका है। पण्ढरीका गोपालपुर, वहाँकी सब चीजें और काँदोंके समारम्भ सब गोकुलके हैं। ऐसे श्रीविट्ठलरूपी श्रीबालकृष्णभगवान्‌को मेरे अनन्त प्रणाम हैं।*

* 'गोपी-प्रेम' का विषय विशेषरूपसे जानना हो तो गीताप्रेससे प्रकाशित 'तुलसीदल' नामक पुस्तक पढ़िये। —प्रकाशक

ग्यारहवाँ अध्याय

सगुण-साक्षात्कार

भक्तसमागमें सर्वभावें हरी ।
सर्व काम करी न सांगतां ॥ १ ॥
सांठविला राहे हृदयसंपुटीं ।
बाहेर धाकुटी मूर्ति उभा ॥ २ ॥

'भक्तसमागमसे सब भाव हरिके हो जाते हैं, सब काम बिना बताये हरि ही करते हैं। हृदय-सम्पुटमें समाये रहते हैं और बाहर छोटी-सी मूर्ति बनकर सामने आते हैं।'

१ सत्यसङ्कल्पके दाता नारायण

भगवान्‌के सगुण दर्शनोंकी कैसी तीव्र लालसा तुकारामजीको लगी थी यह हमलोग नवें अध्यायमें देख चुके हैं। अब उस लालसाका उन्हें क्या फल मिला सो इस अध्यायमें देखेंगे। जीव-मात्रको उसीकी इच्छाके अनुरूप ही फल मिला करता है। 'जैसी वासना वैसा फल।' मनुष्यकी इच्छा-शक्ति इतनी प्रबल है, उसके सङ्कल्पके कर्म-प्रवाहकी गति इतनी अमोघ है कि वह जो चाहे कर सकता है। 'नर जो करनी करे तो नरका नारायण होय' यह कबीरसाहबका वचन प्रसिद्ध ही है। जो कुछ करनेकी इच्छा मनुष्य करे उसे वह कर सकता है, जो होनेकी इच्छा करे वह हो

सकता है, जो पानेकी इच्छा करे वह पा सकता है। पर होना यह चाहिये कि उस इच्छा-शक्तिको शुद्ध आचरण, दृढ़ निश्चय, सद्भावना और निदिध्यासका पूरा सहारा हो। सङ्कल्पका पूरा होना सङ्कल्पकी शुद्धता और तीव्रतापर निर्भर करता है। मनकी शक्ति असीम है पर निष्ठाके साथ उसका पूर्ण उपयोग कर लेनेवालेके लिये। बूँद-बूँद पानी बाँध-बाँधकर इकट्ठा किया जाय तो सरोवर बन सकता है। एक-एक पैसा जमा करके व्यापारी लक्षपति बनते हैं। सूर्य-किरणोंको एक जगह केन्द्रीभूत करें तो अग्नि तैयार हो जाती है और ऐसे ही भाफके इकट्ठा करनेसे रेलगाड़ियाँ चलती हैं। इसी प्रकार मनकी शक्ति भी सामान्य नहीं है, बड़ी प्रचण्ड है। हजारों रास्तोंसे यदि उसे दौड़ने दिया जाय तो वह दुर्बल हो जाता है, पर एक जगह यदि स्थिर किया जाय तो वही ब्रह्मपद-लाभ करा देनेतककी सामर्थ्य रखता है। मन ही मनुष्यके बन्धन और मोचनका कारण है। विषयोंमें चरनेके लिये उसे छोड़ दिया जाय तो वह थककर दुर्बल हो जाता है, परमात्मामें लगाया जाय तो वही परमात्मरूप बन जाता है। मन याने इच्छा-शक्तिको इतस्ततः बिखरने न देकर एकाग्र करनेसे, एक ब्रह्मपदपर स्थिर करनेसे उसकी शक्ति बेहद बढ़ती है। परमात्मा सब भूतोंमें रम रहे हैं, जल, थल, काठ, पत्थर सबमें विराज रहे हैं, भू, जल, तेज, समीर, गगन—इन पञ्च महाभूतोंको और स्थावर-जङ्गम सब पदार्थोंको व्यापे हुए हैं। उनके सिवा ब्रह्माण्डमें दूसरी कोई वस्तु ही नहीं, यही शास्त्र-सिद्धान्त है और यही सन्तोंका अनुभव है। 'या उपाधिमाजि गुप्त चैतन्य

असे सर्वगत' अर्थात् इस उपाधिमें गुप्तरूपसे चैतन्य सर्वत्र भरा हुआ है। (ज्ञानेश्वरी अ० २-१२६) प्राचीन ऋषि-मुनियों और सन्त-महात्माओंको इसकी प्रतीति हुई है और इस जमानेमें भी कलकत्ते-के विद्वत्प्रवर अध्यापक श्रीजगदीशचन्द्र वसु महाशयने नवीन यन्त्रोंकी सहायतासे वही सिद्धान्त संसारके सामने प्रत्यक्ष करके दिखा दिया है। पेड़ोंमें और पत्थरोंमें भी चैतन्य भरा हुआ है। सन्त उसी चैतन्यका निदिध्यासन करते हैं और निदिध्याससे ही उन्हें उसका साक्षात्कार होता है। विश्वमें इससे पुनीत, प्रिय और श्रेय विश्वास और नहीं है। उसी चैतन्यमें सम्पूर्ण इच्छा-शक्ति घनीभूत होनेसे पुण्यात्मा पुरुष ब्रह्मपद-लाभ करते हैं। वेदोंने उसीका वर्णन किया है। ज्ञानी, योगी और सन्त उसीमें रममाण होते हैं। अन्य नश्वर पदार्थोंपर मनको जाने न देकर अर्थात् वैराग्यसम्पन्न होकर वे उसीके मननमें लग जाते हैं। मन, वाणी और इन्द्रियोंसे उसका पता नहीं चलता पर मनको उसीकी लौ लग जानेसे मन उसे चाहे जिस रंगमें रँग लिया करता है। शास्त्र उसे चैतन्य कहते हैं, वेद आत्मा कहते हैं और भक्त उसीको नारायण कहते हैं।

वेदपुरुष नारायण। योगियांचें ब्रह्म शून्य।
मुक्तां आत्मा परिपूर्ण। तुका म्हणे सगुण भोळयां आम्हां॥

'वेदोंके लिये जो नारायण पुरुष हैं, योगियोंके लिये शून्य ब्रह्म हैं, मुक्तात्माओंके लिये जो परिपूर्ण आत्मा हैं, तुका कहता है कि हम भोले-भाले लोगोंके लिये वह सगुण-साकार नारायण हैं।'

तुकोबारायने उस अनाम-अरूप-अचिन्त्य परमात्माको नाम और रूप प्रदानकर चिन्त्य बना डाला। गोकुलमें गोप-गोपियों-

को रमानेवाली वह सुरम्य श्यामल बाल-मूर्ति तुकारामजीके चित्त-चिन्तनमें आ गयी, तुकारामजीका चित्त उसीको समर्पित हुआ, इन्द्रियोंको उसीके ध्यान-सुखका चसका लग गया, शरीर भी उसीकी सेवामें लगा। इस प्रकार मन, वचन और कर्मसे वह कृष्णमय हो गये। ऐसी अवस्थामें वह यदि कृष्णरूप इन्हीं आँखोंसे देखनेकी लालसा रखें तो वह कैसे न पूरी हो?

निश्चयाचें बळ। तुका म्हणे तेंचि फळ॥

'तुका कहता है, निश्चयका बल ही तो फल है।' निश्चयके बलका मतलब ही फलकी प्राप्ति है। अहंकारकी हवा कहीं न लग जाय, इसलिये भक्त लोग कहा करते हैं—

सत्यसंकल्पाचा दाता नारायण। सर्व करी पूर्ण मनोरथ॥

'सत्यसंकल्पके देनेवाले नारायण हैं, वही सब मनोरथ पूर्ण करते हैं।' भक्तोंका यह कहना सच भी है। जीवोंका शुद्ध संकल्प या निश्चयका बल और नारायणकी कृपा इन दोनोंके बीच बहुत ही थोड़ा अन्तर है! तुकारामजीने श्रीकृष्णको प्रसन्न करके प्रकटानेके लिये शुद्ध और तीव्र संकल्प धारण किया और नारायणको प्रकट होना ही पड़ा। यह भक्तकी महिमा है या भगवान्की, भक्तवत्सलताकी या इन दोनोंके एक-दूसरेके प्यार और दुलारकी। ऐसे भक्त और भगवान्के अन्योन्य प्रेमसे संसारको एक कौतुक देखनेको मिला। ऐसे निश्चयसे हर कोई अपनी रुचिके अनुसार अपना जीवन सफल कर सकता है। तुकारामजीकी जैसी लालसा थी तदनुसार भगवान्ने उन्हें कब और कैसे दर्शन दिये यह अब देखना चाहिये।

२ रामेश्वर-तुकाराम-विरोध

भगवान्‌को तुकारामजीकी दर्शन-लालसा पूरी करनी ही थी, पर इसे उन्होंने एक प्रसङ्गका निमित्त करके किया। रामेश्वर भट्टने तुकारामजीसे सब बहीखाता डुबा देनेको कहा और तुकारामजीने ब्राह्मणकी आज्ञा सिर-आँखों उठाकर बहीखाता डुबा दिया और फिर भगवान्‌ने उन सब कागजोंको जलसे बचा लिया, यह बात लोकप्रसिद्ध है। इसी प्रसङ्गसे तुकारामजीको भगवान्‌के साक्षाद्दर्शन हुए, इसलिये हमलोग अब इसी प्रसङ्गको देखें। रामेश्वर भट्ट कोई साधारण आदमी नहीं थे। यह बड़े सत्पात्र और महाविद्वान् ब्राह्मण पूनेसे ईशान्यमें नौ मीलपर वाघोली नामक स्थानमें रहते थे। बड़े शीलवान्, कर्मनिष्ठ और रामोपासक तथा धर्माधिकारी भी थे। तुकारामजीका नाम चारों ओर हो रहा था, उसे उन्होंने भी सुन रखा था। जब उन्होंने सुना कि तुकाराम शूद्र है और ब्राह्मण भी उसके पैर छूते हैं तथा उसके भजनोंमें वेदार्थ प्रकट होते हैं तब तुकारामजीके विषयमें और सामान्यतः वारकरी सम्प्रदायके विषयमें भी उनकी धारणा प्रतिकूल हो गयी थी। पर यह बात नहीं थी कि तुकारामजीकी कीर्ति उनसे न सही गयी या उन्हें उनसे डाह हुआ और किसी तरहसे उन्हें कष्ट पहुँचानेके लिये क्षुद्र बुद्धिसे उन्होंने कोई काम किया हो। हम-आप तुकारामजीपर सादर और सप्रेम गर्व करते हैं, पर जो कोई तुकारामजीके समयमें कुछ कालतक तुकारामके प्रतिपक्षी होकर सामने आये उनके विषयमें हम-आप कोई गलत धारणा न कर बैठें। जब वाद-विवाद चलता है तब प्रतिपक्षीके सम्बन्धमें

अपना मन कलुषित कर लेना सामान्य जनोंका स्वभाव-सा हो गया है। पर यह पक्षपात है। इसे चित्तसे हटाकर प्रतिपक्षीके भी अच्छे गुणोंको मान लेना विचारशील पुरुषोंका स्वभाव होता है। प्रतिपक्षीके कथनमें क्या विचार है और क्या अविचार है यह देखकर अविचारवाले अंशभरका ही खण्डन करना होता है और सो भी आवश्यक हो तो। रामेश्वर भट्ट, कोई मम्बाजी बाबा नहीं थे! उनके विचार करनेकी दृष्टि भी विचारने योग्य है। तुकारामजी जिस भागवतधर्मके झण्डेके नीचे खड़े होकर भगवद्भक्तिका प्रचार कर रहे थे उस भागवतधर्मकी कुछ बातोंसे उनका प्रामाणिक विरोध था। यह विरोध बहुत पहलेसे ही कुछ-न-कुछ चला आया है और आज भी वह सर्वथा निर्मूल नहीं हुआ है। आलन्दी और पैठणके ब्राह्मणोंने जिन कारणोंसे ज्ञानेश्वर महाराजका और एकनाथ-सुत पण्डित हरिशास्त्रीने अपने पिता एकनाथ महाराजका विरोध किया उन्हीं कारणोंसे रामेश्वर भट्ट तुकाराम महाराजके विरुद्ध खड़े हुए। स्पष्ट बात यह है कि ज्ञानेश्वर महाराजके समयसे वैदिक कर्म-मार्गी ब्राह्मणोंकी यह धारणा-सी हो गयी है कि यह भागवतधर्म वर्णाश्रमधर्मको मिटानेपर तुला हुआ एक बागी सम्प्रदाय है। भागवतधर्म वस्तुतः वैदिक कर्मका विरोधी नहीं है यही नहीं प्रत्युत वैदिक धर्मका अत्यन्त उज्ज्वल, व्यापक और लोकोद्धार-साधक स्वरूप भागवतधर्ममें ही देखनेको मिलता है। वैदिककर्म और भागवतधर्मके बीच जो वाद-सा छिड़ गया उसका उत्तर सन्तोंने अपने चरित्रोंसे ही दिया है। वारकरी सम्प्रदायके भगवद्भक्त जाति-पाँति पूछे बिना एक दूसरेके पैर छूते हैं, संस्कृत

भाषामें सञ्चित ज्ञान-रहस्य प्राकृत भाषामें प्रकट करते हैं और उससे देववाणी लाञ्छित होती है, कर्मको गौण बताकर भक्ति और भगवन्नामकी ही महिमा सबसे अधिक गायी जाती है। ये बातें हैं जो पुराने ढंगके अनेक शास्त्री पण्डितोंको तथा वैदिक कर्मनिष्ठोंको ठीक नहीं जँचतीं। सभी शास्त्री पण्डित इसी विचारके पहले थे या अब हैं ऐसी बात नहीं। तथापि ऐसे विचारके लोगोंद्वारा भागवतधर्म-प्रचारक ज्ञानेश्वर और एकनाथको जैसे पहले कष्ट पहुँचाया गया वैसे ही तुकारामजीके समयमें तुकारामजीको रामेश्वर भट्ट कष्ट पहुँचानेके लिये मिले। ये दो अलग-अलग पन्थ हैं। संस्कृत भाषामें ही सम्पूर्ण ज्ञान और धर्म बना रहे और वह ब्राह्मणोंके मुखसे अन्य सब वर्णोंके लोग सुनें, यह संस्कृताभिमानी वैदिक कर्म-मार्गियोंका दावा है, और—

आतां संस्कृता अथवा प्राकृता। भाषा ज्ञाली जे हरि-कथा॥
ते पावनचि तत्वता। सत्य सर्वथा मानली॥

अर्थात् भाषा संस्कृत हो या प्राकृत, जिसमें भी हरि-कथा हुई वही भाषा तत्त्वतः पवित्र, सर्वथा सत्य मानी है; यह भागवतधर्म-वालोंका जवाब है। (नाथ-भागवत १-१२९) एकनाथ महाराज संस्कृत भाषाभिमानियोंसे पूछते हैं कि केवल संस्कृतभाषा ही भगवान्‌ने निर्माण की तो क्या प्राकृत भाषाको दस्युओंने निर्माण किया? संस्कृतको वन्द्य और प्राकृतको निन्द्य कहना तो अभिमान-वाद है, यह कहकर एकनाथ महाराज सिद्धान्त बतलाते हैं—

देवासि नाहीं वाचाभिमान। संस्कृत प्राकृत त्या समान॥
ज्या वाणी जाहलें ब्रह्मकथन। त्या भाषा श्रीकृष्ण संतोपे॥

(एकनाथी भागवत अ०२९-१०२९)

अर्थात् भगवान्‌को भाषाका अभिमान नहीं है, संस्कृत-प्राकृत दोनों उनके लिये समान हैं। जिस वाणीसे ब्रह्म-कथन होता है उसी वाणीसे श्रीकृष्णको सन्तोष होता है। दूसरी बात जात-पाँतकी। वैदिक कर्म-मार्गी जाति-बन्धनके विषयमें बड़े कट्टर होते हैं। अन्त्यजसे लेकर ब्राह्मणतकके सब ऊँच-नीच भेदोंकी ही उनके समीप विशेष प्रतिष्ठा है। भागवत-धर्मने जात-पाँतको न तो बढ़ाया है न उसपर खड्ग ही उठाया है। भागवत-धर्मका यह सिद्धान्त है कि मनुष्य किसी भी वर्ण या जातिमें पैदा हुआ हो, वह यदि सदाचारी और भगवद्भक्त है तो वही सबके लिये वन्दनीय और श्रेष्ठ है। एकनाथ महाराज कहते हैं—

हो कां वर्णांमाजी अग्रणी। जो विमुख हरिचरणीं॥
त्याहूनि श्वपच श्रेष्ठ मानी। जो भगवद्भजनी प्रेमळु॥
(नाथ-भागवत ५-६०)

अर्थात् कोई वर्णसे यदि अग्रणी याने श्रेष्ठ हो (ब्राह्मण हो) पर वह यदि हरि-चरणोंसे विमुख है तो उससे उस चाण्डालको श्रेष्ठ मानो जो भगवद्भजनका प्रेमी है। इस कारण श्रेष्ठता केवल जातिमें ही नहीं रह गयी, बल्कि यह सिद्धान्त हुआ कि जो भगवद्भक्त है वही श्रेष्ठ है। कसौटी जाति नहीं रही, कसौटी हुई सत्यता—साधुता—भगवद्भक्ति। इस कारण प्राचीन मताभिमानियोंकी यह धारणा हो गयी कि यह भागवतधर्म-सम्प्रदाय ब्राह्मणोंकी मान-प्रतिष्ठा नष्ट करनेके लिये उत्पन्न हुआ है। ज्ञानेश्वर महाराजको तंग करनेके लिये ये दो ही कारण थे। तुकारामजीको तंग करनेके लिये तीसरा और एक कारण उपस्थित हुआ। सन्त ही जब

श्रेष्ठ हुए तब यह श्रेष्ठत्व केवल ब्राह्मणोंमें न रहा, सन्त जो कोई भी हुआ वही श्रेष्ठ माना जाने लगा। तुकारामजीका सन्तपना जैसे-जैसे सिद्ध होकर प्रकट होने लगा, उनके शुद्ध आचरण, उपदेश और भक्ति-प्रेमका जैसे-जैसे लोगोंपर प्रभाव पड़ने लगा वैसे-वैसे ही लोग उन्हें मानने और पूजने लगे। तुकारामजीके इन भक्तोंमें अनेक ब्राह्मण भी थे जैसे देहूके कुलकर्णी महादाजी पन्त, चिखलीके कुलकर्णी मल्हारपन्त, पूनेके कोंडोपन्त लोहोकरे, तलेगाँवके गङ्गाराम मवाळ इत्यादि। तुकारामजीकी अमृत-वाणी सुनकर ये उनके चरणोंमें भ्रमर-से लीन हो गये। जिसे जिससे अपनी ईप्सित वस्तु मिलती है उसका उसके पीछे हो लेना स्वाभाविक ही है। लोग चाहते थे, विशुद्ध धर्मज्ञान और सच्चा प्रेमानन्द; ऐसा गुरु चाहते थे जो भगवान्‌की कथा आन्तरिक प्रेमसे बतावे। उन्हें ऐसे गुरु तुकाराम मिले और इसलिये तुकारामजीको वे पूजने लगे। लोगोंको सच्चे-झूठेकी पहचान होती है। तुकारामजीके ही पड़ोसमें मम्बाजी अपनी महन्ती-की दूकान लगाये बैठे थे। पर लोग जो कुछ चाहते थे वह उनके पास नहीं था, इसलिये लोग भी उनकी वैसी ही कदर करते थे। मम्बाजी और तुकाराम—एक नकली सिक्का और दूसरा असली। लोगोंने दोनोंको ठीक परखा। तुकारामजीका स्वभाव और प्रेम उन्हें प्रिय हुआ। तुकारामजी जातिके शूद्र थे, पर यदि वे ब्राह्मण होते तो भी इतने ही प्रिय होते, और यदि अति शूद्र होते तो भी इतने ही प्रिय होते! मम्बाजी ब्राह्मण थे पर स्वयं ब्राह्मणोंने भी उनको नहीं माना। तब तुकारामजीको तंग करनेके लिये तीसरा कारण जो उत्पन्न हुआ वह यह था कि तुकाराम शूद्र हैं, ब्राह्मण

इनके पैर छूते हैं और ये गुरु बनते हैं ब्राह्मणोंके, यह बात तो सनातन-धर्मके विपरीत है। रामेश्वर भट्टने तुकारामजीको जो कष्ट दिया वह इसी कारणसे कि एक तो यह शूद्र होकर प्राकृत भाषामें धर्मका रहस्य प्रकट करते हैं और दूसरे, ब्राह्मण इनके पैर छूते हैं। प्राचीन मताभिमानसे प्रेरित होकर रामेश्वर भट्ट यदि तुकारामजीके विरुद्ध खड़े न होते तो और कोई वैदिक शास्त्री पण्डित इस कामको करता। ज्ञानेश्वर महाराजने सब कष्ट सहकर यह बात सिद्ध कर दी कि धर्म-रहस्य प्राकृत भाषामें प्रकट करनेमें कोई दोष नहीं है और तबसे यह रास्ता खुल गया। अब यह होना बाकी था कि शूद्र भी धर्म-रहस्य* कथन कर सकता है। कारण, धर्म-रहस्य चाहे जिस जातिके शुद्धचित्त मनुष्यपर प्रकट हो जाता है। इसके लिये तुकारामजीका तपाया जाना और उस तापसे उनका उज्ज्वल होकर निकलना आवश्यक था। सुवर्णको इस प्रकार तपाकर देखनेका मान रामेश्वर भट्टको प्राप्त हुआ। ज्ञानेश्वर और एकनाथकी अलौकिक शक्तिसे आलन्दी, पैठण और काशीके ब्राह्मणोंपर उनका पूरा प्रभाव पड़ा और महाराष्ट्रमें सर्वत्र भागवत-धर्मका जयजयकार और प्रचार हुआ। इस जयजयकारका स्वर और भी ऊँचा करके प्रचारका कार्य और आगे बढ़ाकर भागवत-धर्मके रथको एक कदम और आगे बढ़ानेका यश भगवान् तुकारामजीको दिलाना चाहते थे। इसी प्रसङ्गको अब देखें।

---

* मनुस्मृति अ० २ श्लोक २३८–२४१ देखिये। मनुका यह वचन है कि विद्या, रत्न, धर्म, शिल्पज्ञान 'समादेयानि सर्वतः' जहाँसे भी मिले, अवश्य ले।

३ देहूसे निर्वासन !

रामेश्वर भट्टको तुकारामजीके भागवत-धर्मके सिद्धान्त अस्वीकृत हुए। पर इन सिद्धान्तोंके विरोधका जो सीधा रास्ता हो सकता था उस रास्तेको छोड़कर यह टेढ़े रास्ते चलने लगे। उन्होंने सोचा यह कि देहूमें यह व्यक्ति कीर्तन करता है और अपना रङ्ग जमाता है और यहीं इसके विट्ठलदेवका भी मन्दिर है, यही जड़ है। इसलिये यही अच्छा होगा कि यहींसे इसको जिस तरहसे हो भगा दो, ऐसा कर दो कि यहाँ यह रहने ही न पावे। महीपतिबाबा भक्तलीलामृत अ० ३५ में कहते हैं—

'मनमें ऐसा विचारकर गाँवके हाकिमसे जाकर कहा कि तुका शूद्र जातिका है और शूद्र होकर श्रुतिका रहस्य बताया करता है। हरि-कीर्तन करके इसने भोले-भाले श्रद्धालु लोगोंपर जादू डाला है। ब्राह्मणतक उसको नमस्कार करने लगे हैं! यह बात तो हमलोगोंके लिये लज्जाजनक है। सब धर्मोंको इसने उड़ा दिया है और केवल नामकी महिमा बताया करता है। लोगोंमें इसने ऐसा भक्ति-पन्थ चलाया है कि भक्ति-वक्ति काहेको, केवल पाखण्ड जान पड़ता है।'

देहूके ग्रामाधिकारीको रामेश्वर भट्टने चिट्ठी लिखी कि तुकारामको देहूसे निकाल दो। ग्रामाधिकारीने यह चिट्ठी तुकारामजीको पढ़ सुनायी, तब वह बड़ी मुसीबतमें पड़े। उस समयके उनके उद्गार हैं—

'क्या खाऊँ अन्न, कहाँ जाऊँ? गाँवमें रहूँ किसके बल-भरोसे? पाटील नाराज, गाँवके लोग भी नाराज! अब भीख मुझे

कौन देगा ? कहते हैं, अव यह उच्छृङ्खल हो गया है, मनमानी करता है; हाकिमने भी यही फैसला कर डाला, भले आदमी*ने जाकर शिकायत की, आखिर मुझ दुर्बलको ही मार डाला। तुका कहता है, ऐसोंका सङ्ग अच्छा नहीं, चलो अव विट्ठलको ढूँढ़ते चल चलें।'

४ अभङ्गोंकी वहियाँ दहमें !

तुकारामजी यहाँसे चले सो सीधे वाघोली पहुँचे। यहीं रामेश्वर भट्ट रहा करते थे। इस समय रामेश्वर भट्ट स्नान करके सन्ध्या-पूजामें बैठे थे। तुकारामजी उनके समीप गये और उन्हें दण्डवत् किया और बड़े प्रेमसे भगवान्का नामोच्चार करके हरि-कीर्तन करने लगे। कीर्तन करते हुए उनके मुखसे धारा-प्रवाह अभङ्ग-वाणी निकलती जाती थी। उसके प्रसादकी बात क्या कही जाय ! वह प्रासादिक निर्मल और अभङ्ग-वाणी सुनकर रामेश्वर भट्ट बोले, 'तुम बड़ा अनर्थ कर रहे हो ! तुम्हारे अभङ्गोंसे श्रुतिका अर्थ प्रकट होता है और तुम हो शूद्र ! इसलिये ऐसी वाणी बोलनेका तुम्हें कोई अधिकार नहीं है। यह तुम्हारा काम शास्त्रके विरुद्ध है, श्रोता-वक्ता दोनोंको नरक देनेवाला है। आजसे ऐसी वाणी बोलना तुम छोड़ दो।'

इसपर तुकारामजीने कहा—'पाण्डुरङ्गकी आज्ञासे मैं ऐसी बानियाँ बोलता रहा हूँ। यह वाणी व्यर्थ ही खर्च हुई। आप ब्राह्मण ईश्वर-मूर्ति हैं। आपकी आज्ञासे अब मैं कविता करना छोड़ दूँगा पर अबतक जो अभङ्ग रचे गये उनका क्या करूँ ?'

---

* 'भला आदमी' यहाँ तुकारामजीने रामेश्वर भट्टको कहा है। यह उनका स्वभाव-सौजन्य है। इसमें एक सौम्य-व्यङ्ग भी है सो स्पष्ट है।

रामेश्वर भट्टने कहा—'तुम अपने अभङ्गोंकी सब बहियाँ जलमें ले जाकर डुबा दो।'

तुकारामजीने कहा—'आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।'

यह कहकर तुकारामजी देहू लौट आये और अभङ्गोंकी सब बहियोंको पत्थरोंमें बाँधकर और ऊपरसे रुमाल लपेटकर इन्द्रायणीके किनारे गये और बहियोंको दहमें डाल दिया! अभङ्गोंकी बहियोंके इस तरह डुबाये जानेकी वार्ता कानों-कानों चारों ओर तुरन्त फैल गयी। भक्तजनोंको इससे बड़ा दुःख हुआ और कुटिल-खल-निन्दक इससे बड़े सुखी हुए, मानो उन्हें कोई बड़ी सम्पत्ति मिल गयी हो। दूसरोंका कुछ भी हीनत्व देखकर जिनकी जीभ निन्दा करनेके जोशमें आ जाती है, ऐसे लोग तुकारामजीके पास आकर उनका तरह-तरहसे उपहास करने लगे। कहने लगे—'पहले भाईसे लड़कर सब बही-खाता डुबाया और अब रामेश्वर भट्टसे भिड़कर अभङ्ग डुबा दिये। दोनों तरफ अपनी फजीहत ही करायी! और कोई होता तो ऐसी हालतमें किसीको फिर अपना मुँह न दिखाता, चुल्लूभर पानीमें डूब मरता।' ऐसी-ऐसी बातें सुनकर 'तुकारामका हृदय दो टूक हो गया।' मन-ही-मन उन्होंने सोचा, 'लोग तो ठीक ही कहते हैं। प्रपञ्चको मैंने ही तो आग लगायी और उसमेंसे बाहर निकल आया, इसलिये प्रपञ्चमें जो कुछ मेरी नाम-हँसाई हुई हो उससे मुझे क्या? प्रपञ्च है ही फटहा! पर इतना सब करके भी यदि भगवान् नहीं मिले, इन आघातोंका निवारण यदि उन्होंने नहीं किया, दुर्जनोंके मुँह बन्द नहीं किये और अपने भक्तवत्सल होनेके विरदकी लाज नहीं रखी तो जी

इन्द्रायणीका दह और भामनाथ   पृष्ठ ४८६
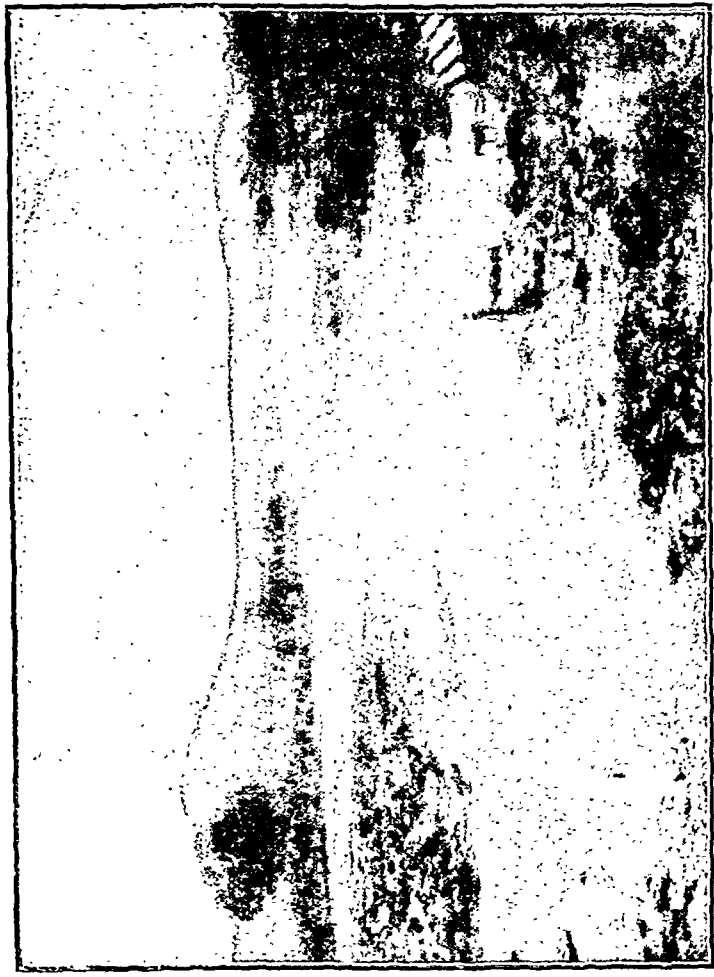
करके भी क्या होगा ? इसलिये भगवान्‌के ही चरणोंमें, अन्न-जल छोड़कर, चरण-चिन्तन करता पड़ा रहूँ, यही उचित है; आगे उन्हें जो करना हो, करेंगे।' इस प्रकार विचार करके तुकारामजी श्रीविट्ठल-मन्दिरके सामने तुलसीके पेड़के समीप एक शिलापर तेरह दिन अन्न-जल त्यागे भगवत्-चिन्तनमें पड़े रहे!

५ उस अवसरके उन्नीस अभङ्ग

शिलापर गिरते हुए उनके मुखसे उन्नीस अभङ्ग निकले। उस समयकी उनकी मनःस्थिति इन अभङ्गोंमें अच्छी तरहसे प्रतिबिम्बित हुई है—

'हमें भूख लगे यह तो भगवन् ! बड़े आश्चर्यकी बात है। भक्तिकी यह परिसीमा हुई जो दोषोंकी बस्ती कायम हो गयी ! जागरण किया सो उसका फल यह मिला कि छटपटाहट ही पल्ले पड़ी। तुका कहता है, भगवन् ! अब समझमें आया कि मेरी सेवा कितनी निःसार थी।'

हे भगवन् ! भूतमात्रमें भगवद्भाव रखते हुए, किसी भी प्राणीसे ईर्ष्या-द्वेष न करके, भूतपति भगवन् ! आपका ही सदा चिन्तन करते रहनेपर भी (हमारे ऊपर भूत आवें) हमें पीड़ा पहुँचावें, यह बड़े आश्चर्यकी बात है। हमने आजतक आपकी जो भक्ति की उसकी मानो यही परिसीमा हुई कि हमारे अन्दर ऐसे दोष आकर बस गये कि लोग उनके कारण निन्दा और द्वेष करने लगे। एकादशी और हरि-कीर्तनके आजतक जो जागरण किये उनका यह फल हाथ लगा कि चित्त छटपटाने लगा। पर आपको मैं क्या दोष दूँ, मुझसे सेवा ही कुछ न बन पड़ी !

'सम्पूर्ण जीव-भाव जबतक तुम्हारी सेवामें समर्पित नहीं करता हूँ तबतक तुम्हारा क्या दोष ?'

'अब,या तो तुम्हें जोड़ूँगा या इस जीवनको छोड़ूँगा।'

अब फैसलेका दिन आया है, मैं कविता करूँ या न करूँ, लोगोंको कुछ बताऊँ या न बताऊँ, यह सब तुम्हें स्वीकार है या अस्वीकार, इसका फैसला अब तुम्हीं करनेवाले हो। बरबस तो कविता मैं नहीं करूँगा। तुम कहो तो तुम्हारी ही आज्ञासे तुम्हारे लिये ही कविता करूँगा। 'तुका कहता है, अब मुझसे नहीं रहा जाता !' तुम सुनो, इसीलिये तो मैं कविता करता रहा! तुम नहीं सुनते तो शब्दोंका यह भूसा मैं किसलिये व्यर्थ पछोरूँ ? अब तो यही करूँगा कि एक ही जगह बैठा रहूँगा, तुम स्वयं आकर उठाओगे तब उठूँगा। तुम्हारे दर्शनोंके लिये बहुत उपाय किये! अब और कबतक प्रतीक्षा करूँ ? आशाका तो अन्त हो चला ! अब इस पार या उस पार, जो करना हो कर डालो। भगवन् ! मेरे ये शब्द आपको अच्छे नहीं लगते ! तो अब किसलिये जीभ चलाता फिरूँ ? 'शब्दोंमें जब तुम्हारी रुचि नहीं तब तुकाके लिये इनका उपयोग ही क्या रहा ?' तुम मिलो, यही तो मेरा सत्य-सङ्कल्प है, इसे पूरा न करके प्रसन्नताकी जरा-सी झलक दिखाकर छिप जाते हो ! यही आजतक करते रहे हो। अब ऐसा करो कि—

'तुम प्रसन्न होओ। इसीलिये ये कष्ट उठाये। अभङ्ग रचकर तुम्हारी प्रार्थना की। पर उन सब शब्दोंको तुमने व्यर्थ कर दिया। अब मुझे यह अभय-दान दो कि मेरा शब्द नीचे धरतीपर न गिरे—वह व्यर्थ न हो। अब दर्शन दो और प्रेम-संलाप होने दो।'

तुम्हारे प्रेमका शब्द सुननेके लिये मैं कान लगाये बैठा हूँ। 'और सब छन्द छोड़कर मैंने अब तुम्हारा ही फन्द पकड़ा है। तुम उदार हो, भक्तवत्सल हो, तुम्हारे इन सब गुणोंका डङ्का बजानेकी ही दूकान मैंने खोल रखी है, पर तुम्हीं जब मुझसे घृणा करते हो तब तो मुझे अपनी दूकान उठा ही देनी पड़ेगी। अकेले एक जीवका उद्धार तो तुम्हारे नामसे हो ही जायगा, पर इन सब लोगोंका उद्धार हो इसीलिये तो मैंने यह फैलाव फैला रखा है। मैं अपने कष्टोंसे थका नहीं हूँ, पर भक्तपर आये हुए सङ्कटका तुम नहीं निवारण करोगे तो तुम्हारे नामकी साख नहीं रह जायगी, तुम्हारी निन्दा होगी और उसे मैं नहीं सुन सकूँगा।'

तुम्हारी और तुम्हारे नामकी दुनियाँमें हँसाई न हो और तुम्हारे प्रति लोगोंकी अश्रद्धा न बढ़े, यही तो—इतना ही तो—मैं चाहता हूँ। 'कुछ माँगना तो हमारे लिये अनुचित है। माँगना तो हमारी कुल-रीति ही नहीं है।' पहले जो अनेक ज्ञानी-भक्त हो गये हैं उन्होंने निष्काम भजनका सुन्दर आदर्श सामने रख दिया है। उसे मैं देख रहा हूँ। उसीको देखकर चल रहा हूँ, इसलिये मैं कुछ माँगता नहीं हूँ। 'देहादि सब उपाधियोंको तुच्छ करके बुद्धिको आपकी सेवामें लगा दिया है।' तुका कहता है, 'इस देहको बाँटकर (छत्तीस तत्त्वोंकी देहको उन-उन तत्त्वोंमें बाँटकर) मैं अलग हो गया हूँ, और केवल उपकारके लिये रह गया हूँ।'

'आपके नाम और ख्यातिमें कोई बट्टा न लगे और आपके प्रति लोगोंकी श्रद्धा बढ़े इसीलिये आपसे यह प्रार्थना है कि आप प्रकट

होकर दर्शन दें और मेरी कवितापर जो आघात हुआ है उससे उसकी रक्षा करें। आपको मैं इतना कष्ट दूँ, क्या यह अधिकार मेरा नहीं है? मैं क्या आपका दास नहीं हूँ?

'हे पण्ढरीश! यह विचारकर बताइये कि मैं आपका दास कैसे नहीं हूँ? बताइये, प्रपञ्चकी होली मैंने किसके लिये जलायी? इन पैरोंको छोड़कर और भी कोई चीज मेरे लिये थी? सत्यता है, पर धैर्य नहीं है तो वहाँ आपको धीरज बँधाना चाहिये। उलटे बीजको ऐसे नहीं जलाना चाहिये कि वह जमे ही नहीं। तुका कहता है, मेरे लिये इह-परलोक और कुल-गोत्र तुम्हारे चरणोंके सिवा और कुछ भी नहीं है।'

तुम्हारे चरणोंमें ऐसी अनन्य प्रीति रखते हुए भी 'मुझे देश-निकाला मिले, क्या यह उचित है?' बच्चोंका भार तो माताके ही सिरपर होता है। क्या माता अपने बच्चेको कभी अपने पाससे दूर करती है? इसलिये मेरे माँ-बाप श्रीपाण्डुरङ्ग! 'अब दर्शन देकर मेरे जीको ठण्डा करो। मैं तुम्हारा कहाता हूँ, पर इस कहानेकी कोई पहचान मेरे पास नहीं है।' इसीसे मेरी नाम-हँसाई होती है। इसीसे मेरी समझमें यह नहीं आता कि 'तुम्हारी स्तुति भी किससे और कैसे करूँ, तुम्हारी कीर्ति भी कैसे सुनाऊँ।' कारण, इसकी पहचान ही कुछ नहीं कि मैं जो कुछ कहता हूँ, वह सत्य है। आजतक जो कुछ बकवाद की वह सब व्यर्थ हो गयी! 'शब्द मुँहसे निकला और आकाशमें मिल गया' यह देख मैं चकित हो गया हूँ। मेरा चित्त तो तुम्हारे चरणोंमें है, इसलिये भगवन्! आओ और ऐसे दर्शन दो कि भव-बन्धकी ग्रन्थि खुल जाय।

तुलसीवन और शिला पृष्ठ ४९१

'तुम्हारे रूपने चित्तको वशमें कर लिया है। चित्त अब निश्चिन्त होकर तुम्हारे ही चरणोंमें है। भगवन्! तुम अशेष सुन्दर हो। तुम्हारा मुख देखनेसे दुःखसे भेंट नहीं होती, इन्द्रियोंको विश्रान्ति मिलती है। तुमसे अलग होकर भटकनेवालोंको पीड़ा होती है। इसलिये भगवन्! मुझे दर्शन दो जिसमें भव-बन्धकी ग्रन्थि खुल जाय।'

इस प्रकार श्रीपाण्डुरङ्ग भगवान्‌के साक्षात् दर्शनोंकी लालसा लगाये तुकारामजी देहूमें श्रीपाण्डुरङ्ग-मन्दिरके सामने उस शिला-पर चिन्तन करते हुए, आँखें बन्द किये, तेरह दिन पड़े रहे। इन तेरह दिनोंमें उन्हें अन्न-जलकी सुध भी नहीं रही। हृदयमें श्रीपाण्डुरङ्गका अखण्ड ध्यान बालक ध्रुवके समान लगा हुआ था।

६ भट्टजीपर दैवी कोप

उधर वाघोलीमें भट्ट रामेश्वरजीपर दैवी कोप हुआ। भगवान्‌का कुछ ऐसा हृदय है कि उनसे कोई द्वेष करे तो उसे वह सह ले सकते हैं पर अपने भक्तका द्रोह उनसे नहीं सहा जाता। कंस-रावणादि हरि-द्रोही अन्तमें मुक्ति पा गये, पर भक्तका द्रोह करनेवाला यदि समय रहते सावधान होकर पश्चात्तापको न प्राप्त हो और उसी भक्तकी शरण न ले तो वह निश्चय ही नरकगामी होता है। सब प्राणियोंके हितमें रत रहनेवाले, मन-वच-कर्मसे सबका हित साधनेवाले महात्माओंका अन्तःकरण सबके अन्तर व्यापे रहता है। इस कारण उन्हें लगा हुआ धक्का भूतपति भगवान्‌को ही जाकर लगता है और उससे क्षोभ होता है। इसलिये साधु-द्वेषके समान कोई पाप नहीं। रामेश्वर भट्ट

वाघोलीसे पूनेमें नागनाथके दर्शन करने चले। नागनाथ बड़े जागृत देवता हैं और रामेश्वर भट्टकी उनमें बड़ी श्रद्धा थी। रास्तेमें ही एक स्थानमें अनगड़सिद्ध नामके कोई औलिया रहते थे। उन्होंने अपने बगीचेमें एक बावली बनवायी थी। यह बावली और अनगड़शाहका तकिया अब भी वहाँ मौजूद हैं। ज्यों ही इस बावलीमें रामेश्वर भट्ट नहाये त्यों ही उनके सारे शरीरमें जलन होने लगी। किसीने कहा कि यह उस पीरका कोप है और किसीने कहा कि तुकारामजीसे द्वेष करनेका यह परिणाम है। रामेश्वर भट्टका सारा शरीर जैसे दग्ध होने लगा। ताप-शमनके अनेक उपचार शिष्योंने किये, पर सब व्यर्थ! उनका शरीर उस असह्य तापसे जलने लगा। दुर्वासाने अम्बरीष-को छला तब सुदर्शन चक्र उस मुनिके पीछे लगा और उनके होश उड़ गये। (भागवत स्कन्ध ९ अ० ४।५) वही गति तुकाराम-जीको छलनेवाले रामेश्वर भट्टकी हुई। 'साधुषु प्रहितं तेजो प्रहर्तुः कुरुतेऽशिवम्' साधु पुरुषको हतप्रभ करके उसपर अपना रङ्ग जमाने, रोब गाँठनेवालेका अकल्याण ही होता है। यही न्याय अम्बरीषके आख्यानमें भगवान्‌ने अपने श्रीमुखसे कथन किया है। भगवान्‌ने फिर यह भी कहा है कि—

> तपो विद्या च विप्राणां निःश्रेयसकरे उभे।
> ते एव दुर्विनीतस्य कल्पेते कर्तुरन्यथा ॥ ७० ॥

तप और विद्या दोनों साधन ब्राह्मणोंके लिये श्रेयस्कर हैं, पर ब्राह्मण यदि दुर्विनीत हो तो ये उलटा ही फल देते हैं। अर्थात् अधोगतिको प्राप्त कराते हैं। दुर्विनीत ब्राह्मण तपस्वी होकर भी

कैसे सङ्कटमें पड़ जाता है यह दुर्वासाके दृष्टान्तसे मालूम हो जाता है और दुर्विनीत ब्राह्मण विद्वान् होकर कैसी आफतमें पड़ता है यह रामेश्वर भट्टके उदाहरणसे स्पष्ट हो जाता है। सब उपचार करके भी जब दाह शान्त नहीं हुआ तब रामेश्वर भट्ट आलन्दीमें जाकर ज्ञानेश्वर महाराजका जप करने लगे।

७ सगुण-साक्षात्कार, बहियोंका उद्धार

रामेश्वर भट्टकी दुष्टताके कारण तुकारामजीपर देशनिकालेकी नौबत आ गयी, अपने श्रीविट्ठल-मन्दिर और श्रीविट्ठल-मूर्तिसे विछुड़नेका समय आ गया! प्रपञ्च और परमार्थ दोनोंसे ही रहे! इस कारण लोगोंकी बातें सुनने और आजतक किये हुए कीर्तनों और रचे हुए अभङ्गोंपर पानी फिरनेका अवसर आ गया! तब उनके वैराग्य और भगवत्प्रेमका पारा पूर्ण अंशपर चढ़ा। वह तेरह दिन लगातार अन्न-जल त्यागे और प्राणोंकी कोई परवा न कर भगवन्मिलनकी परम उत्कण्ठासे प्रतीक्षा करते हुए उस शिलापर आँखें बन्द किये पड़े रहे। अब भगवान्‌के लिये प्रकट होनेके सिवा और कोई उपाय नहीं था। भक्तिकी सचाईकी परीक्षा होनेको थी; तुकारामजीकी भक्ति कसौटीपर कसी जानेको थी; भगवान्‌की यह प्रतिज्ञा कि 'तब मैं अपनोंका पक्ष लेकर साकार होकर उतर आता हूँ' (ज्ञानेश्वरी ४—५१) संसारको सत्य करके दिखायी जानेको थी; और तो क्या, स्वयं भगवान्‌के ही भगवान्‌पनेकी परीक्षा होनेको थी! वेद, शास्त्र, पुराण, सन्त-वचन और भक्त-चरित्रकी लाज रखना भगवान्‌के लिये अनिवार्य होनेसे भगवान् सगुण-साकार होकर इस समय तुकारामजीके सामने प्रकट हुए,

तुकारामजीको उन्होंने दर्शन दिये और दहमें फेंकी हुई बहियोंको उबारा ! फिर एक बार, बार-बार सिद्ध हुई वह बात प्रत्यक्ष हुई कि भक्त-कार्यके लिये भगवान् अपने अजत्वको हटाकर गुण और आकारमें आकर भक्तोंसे मिलते हैं ! संसार बड़ा संशयी है। तुकारामजीके इस आपत्कालमें भी यदि भगवान् प्रकट होकर तुकारामजीको न सम्हाल लेते तो भी तुकारामजीकी निष्ठा विचलित न होती, पर लोगोंकी समझको तो कोई प्रकाश न मिलता। देहूमें तुकोबाराय तेरह दिन शिलापर पड़े रहे, उन्हें दर्शन देकर भगवान्‌ने उनका सङ्कट हरण किया। तुकारामजी अपनी भक्तिके प्रतापसे त्रिलोकीनाथको खींच लाये और उस निराकारसे उन्होंने आकार धारण कराया। 'भगवान्‌से रूप और आकार धारण कराऊँगा, निराकार न होने दूँगा' यह जो उनकी असीम भक्तिकी सामर्थ्यका उद्गार है, इसकी प्रतीति संसारको करानेका जब समय उपस्थित हुआ तब श्रीहरिने बालवेश धारणकर उन्हें दर्शन दिये और आलिङ्गन देकर उनका पूर्ण समाधान किया। तुकारामजीको भगवान्‌के साक्षात् दर्शन प्राप्त हुए, सगुण-साक्षात्कार हुआ। उस समय भगवान्‌ने उनसे कहा, 'प्रह्लादकी जैसे मैंने बार-बार रक्षा की वैसे नित्य ही तुम्हारी पीठके पीछे खड़ा हूँ और जलमें भी तुम्हारे अभङ्गोंकी बहियोंको मैंने बचाया है।' भगवान्‌के श्रीमुखसे निकली यह वाणी सुनकर तुकारामजी सन्तुष्ट हुए और भगवान् भी भक्तके हृदयमें अन्तर्द्धान हो गये। इस समय बाहरसे देखते हुए तुकारामजीका शरीर मृतप्राय हो गया था, श्वासोच्छ्वासकी गति मन्द हो गयी थी, हिलना-डोलना बन्द हो गया था। कुटिल-खल-

कामियोंने समझा कि सब खतम हो गया; पर भक्तोंको उनके चेहरे-पर अपूर्व तेज दिखायी दे रहा था और मध्यमा वाणीसे नाम-स्मरण होते रहनेकी मन्द ध्वनि भी सुनायी दे रही थी। इस प्रकार तेरह दिन बीतनेपर गङ्गाराम मवाळ प्रभृति भक्तोंको चौदहवें दिन प्रातःकाल भगवान्‌ने स्वप्न दिया कि, 'अभङ्गोंकी बहियाँ जलपर लहरा रही हैं उन्हें तुम जाकर ले आओ।' सब भक्तोंको बड़ा कुतूहल हुआ, वे दहकी ओर दौड़े गये और उन्होंने बहियोंको लौकीकी तरह जलपर तैरते हुए देखा! उनके आश्चर्य और आनन्दका ठिकाना न रहा! वे जोर-जोरसे 'राम कृष्ण हरि' नाम-सङ्कीर्तन करते हुए दसों दिशाएँ गुँजाने लगे। दो-चार जने पानीमें कूदकर उन बहियोंको निकाल ले आये, इधर तुकारामजीने नेत्र खोले तो देखा कि भक्तजन दल बाँधे आनन्दमें बेसुध हुए श्रीहरि-विट्ठल-नाम-सङ्कीर्तन करते हुए चले आ रहे हैं। सर्वत्र आनन्द-ही-आनन्द छा गया। भक्तोंके आनन्दका वारापार नहीं रहा, कुटिल-खल-कामियोंके चेहरे काले पड़ गये। हवाके झोंकेके साथ कभी इधर, कभी उधर झोंका खानेवाले अधकचरोंकी चित्त-वृत्तियाँ स्थिर और प्रसन्न हुईं! पाण्डुरङ्गका कौतुकीपन यादकर तुकारामजीके हृदयमें वह प्रेमावेग न समा सका और उनके नेत्रोंसे प्रेमाश्रुधारा बहने लगी।

८ उस समयके सात अभङ्ग

इस अवसरपर तुकारामजीके श्रीमुखसे अत्यन्त मधुर सात अभङ्ग निकले हैं। उनमें भगवान्‌के सगुण-दर्शनकी बात स्पष्ट ही बता दी है और इस बातपर बड़ा दुःख प्रकट किया है कि भगवान्-

को मैंने कष्ट दिया। ये सात अभङ्ग अमृतसे भरे सात सरोवर हैं, उन अभङ्गोंका हिन्दी-गद्य-रूपान्तर इस प्रकार है—

(१)

तुम मेरी दयामयी मैया, हम दीनोंकी छत्र-छाया, कैसी जल्दी-जल्दी ऐसे बाल वेशमें मेरे पास आ गयीं। और अपना सगुण सुन्दर रूप दिखाकर मुझे समाधान कराया, हृदयको शीतल किया। (ध्रु०) इन भक्तोंसे भी कृपा करायी जो यहाँ सन्तोंके चरण लगे। मैंने तुम्हें बड़ा कष्ट दिया, इसका मुझे कितना दुःख है सो चित्त ही जानता है। तुका कहता है, मैं अन्यायी हूँ! मेरी माँ! मुझे क्षमा करो! अब तुम्हें ऐसा कष्ट कभी न दूँगा।

(२)

मैंने बड़ा अन्याय किया जो लोगोंकी बातोंसे चित्तको क्षुब्ध कर तुम्हारा अन्त देखा—तुम्हारा सत् देखा। मैं अधम, मेरी जाति हीन, तनुको क्षीणकर आँख बन्द किये तेरह दिन पड़ा रहा। सारा भार तुम्हारे ऊपर छोड़ दिया, भूख-प्यास भी तुम्हें दी, योगक्षेम तुम्हींको सौंप दिया। तुमने जलमें कागज बचा लिये, जन-वादसे मुझे बचा लिया, अपना विरह सच्चा कर दिखाया।

(३)

अब कोई चाहे तो मेरी गर्दन उतार दे, दुर्जन चाहें जैसी पीड़ा पहुँचावें, ऐसा काम कभी न करूँगा जिससे तुम्हें कष्ट हो। एक बार मुझ चाण्डालसे ऐसी भूल हो गयी कि तुम्हें जलमें खड़े होकर वहियोंको उबारना पड़ा। यह नहीं विचारा कि मेरा अधिकार ही क्या है। समर्थपर भार रखना कैसा होता है, मैं क्या जानूँ!

यह जो कुछ हुआ अनुचित ही हुआ, पर तुका कहता है, अब आगेकी सुध लो।

(४)

मैं पापी तुम्हारा पार क्या जानूँ? धीरज रखूँ तो तुम क्या न करोगे मैं मतिमन्द हीनबुद्धि अधीर हो उठा, पर हे कृपानिधे! तुमने फटकार बताकर मुझे अलग नहीं कर दिया। तुम देवाधिदेव हो, सारे ब्रह्माण्डके जीवन हो, हम दासोंको दयाकी-भिक्षा क्यों माँगनी पड़े? तुका कहता है, हे विश्वम्भर! मैं सचमुच पतित ही हूँ जो यह दूसरा अन्याय किया कि तुम्हारे द्वारपर धरना देकर बैठ गया।

(५)

मुझे कुछ ग्राहने नहीं पकड़ रखा था, न व्याघ्र ही पीठपर चढ़ बैठा था जो मैंने तुम्हारी पुकार मचाकर आकाश-पाताल एक कर डाला! दोनों जगह तुम्हें बँट जाना पड़ा, मेरे पास और देहमें भी; कहींसे अपने ऊपर चोट मैंने नहीं आने दी। माँ-बाप भी इतना नहीं सहते, जरा-से अन्यायपर ही मारे क्रोधके प्राणोंके ग्राहक बन जाते हैं। सहना सहज नहीं है। सहना तो तुम्हीं जानते हो। तुका कहता है, हे दयालो! तुम्हारे-जैसा दाता कोई नहीं। मैं क्या बखानूँ, मेरी वाणी आगे चलती नहीं!

(६)

तुम मातासे भी अधिक ममता रखनेवाले हो, चन्द्रमासे भी अधिक शीतल हो, जलसे भी अधिक तरल हो, प्रेमके आनन्दमय कल्लोल हो। हे पुरुषोत्तम! तुम्हारी उपमा तुम्हारे सिवा किस

चीजसे दूँ ? मैं अपने आपेको तुम्हारे नामपर न्योछावर करता हूँ। तुमने अमृतको मीठा किया पर तुम उसके भी परे हो, पाँचों तत्त्वोंके उत्पन्न करनेवाले सबकी सत्ताके नायक हो। अब और कुछ न कह-कर तुम्हारे चरणोंमें अपना मस्तक रखता हूँ। तुका कहता है, पण्ढरिनाथ! मेरे अपराध क्षमा करो।

(७)

मैं अपना दोष और अन्याय कहाँतक कहूँ ? विट्ठल माते! मुझे अपने चरणोंमें ले ले। यह संसार अब बस हुआ, कर्म बड़ा ही दुस्तर है—एक स्थानमें स्थिर नहीं रहने देता। बुद्धिकी अनेकों तरङ्गें हैं, वे क्षण-क्षण अपना रंग बदलती हैं, उनका सङ्ग करते हैं तो वे बाधक बनती हैं। तुका कहता है, अब मेरा चिन्ता-जाल काट डालो और हे पण्ढरिनाथ! मेरे हृदयमें आकर अपना आसन जमाओ।

प्रथम अभङ्गमें यह स्पष्ट ही कहा है कि श्रीकृष्णने बालरूपमें आकर प्रत्यक्ष दर्शन देकर आलिङ्गन किया।

९ कथाका महत्त्व

इन सात अभङ्गामृत-कुम्भोंमें भरा हुआ 'प्रेमरस' महीपति-बाबा कहते हैं कि, 'अत्यन्त अद्भुत है और सन्त उसे यथेष्ट पान करते हैं।' महीपतिबाबा आगे फिर यह भी बतलाते हैं कि भगवान्-ने तुकारामजीके अभङ्गोंकी बहियोंको जलमें बचा लिया, यह बात देश-विदेशमें फैल गयी और इससे 'भूमण्डलमें तुकारामजी प्रख्यात हुए'। महीपतिबाबाका यह कथन मार्मिक और विचारने योग्य है। यह बात सचमुच ही इतनी बड़ी है कि उससे तुकारामजी भगवद्भक्तके नाते दिग्दिगन्तमें विख्यात हुए। प्रत्येक महात्माके

चरित्रमें एक-न-एक ऐसा महान् प्रसङ्ग होता है जिससे उस महात्माके सब सद्गुण तपाये जाकर समुज्ज्वल होकर प्रकट होते हैं और वह जगत्‌का सम्मान-भाजन और भगवान्‌के निज-प्रेमका अधिकारी होता है । श्रीमच्छङ्कराचार्यने काशीमें रहकर सैकड़ों विद्वान् शिष्योंको अपने अद्वैत-सिद्धान्तका ज्ञान प्रदान किया, परन्तु उनका जगद्‌गुरुत्व लोकमें तभी प्रसिद्ध हुआ और उनकी सत्कीर्ति-पताका त्रिलोकमें तभी फहरायी जब मण्डन मिश्र-जैसे दिग्गजको बुद्धि-कौशल-से शास्त्रार्थमें परास्तकर वह अपने चरणोंमें ले आये । ज्ञानेश्वर महाराजने भैंसेसे वेद-मन्त्र कहलवाकर पैठणके विद्वानोंको चकित किया और जड़ भीतको चलाकर चाङ्गदेव-जैसे दीर्घायु तपःसिद्ध पुरुषको अपने चरणोंमें लेटाया तभी सन्तमण्डलमें वह धर्मसंस्थापकके नाते पूज्य हुए । शिवाजी महाराजने अनेक दुर्ग और रण जीते पर बाजी बदकर आये हुए महाप्रतापी अफज़लखाँसे उन्होंने प्रतापगढ़पर नाकों चने चबवाये तभी स्वजनों और परजनोंपर भी उनकी धाक जमी और लोग उन्हें महापराक्रमी स्वराज्य-संस्थापक मानने लगे । इसी प्रकार तुकाराम महाराजकी भी बात है । रामेश्वर भट्टसे उनकी जो भिड़न्त हो गयी उससे रामेश्वर भट्ट-जैसा वेद-वेदान्त-वेत्ता, षट्‌शास्त्री और कर्मठ ब्राह्मण तुकाराम महाराजकी अलौकिक भक्ति-सामर्थ्यको देखकर अन्तको उनकी शरणमें आ ही गया; और जिस सगुण-भक्तिका डङ्का बजाते हुए उन्होंने सैकड़ों कीर्तन सुनाकर और सहस्रों अभङ्ग रचकर लोगोंको भक्ति-मार्गपर चलानेका कङ्गन हाथमें बाँधा था । उस सगुण-भक्तिके उत्कर्षके लिये भगवान्‌ने स्वयं सगुणरूप धारणकर उनकी बहियाँ जलसे

बचायीं और उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन देकर उनकी बाँह पकड़ ली। तभी उनकी और भागवतधर्मकी विजय हुई और भक्तोत्तम-मालिकामें तुकाराम महाराजका नाम सदाके लिये अमर हो गया।

१० रामेश्वर भट्ट शरणागत

ज्ञानेश्वर महाराजकी चरण-सेवामें लगे हुए रामेश्वर भट्टको एक दिन रातको स्वप्न आया कि, 'महावैष्णव तुकारामसे तुमने द्वेष किया, इस कारण तुम्हारा सब पुण्य नष्ट हो गया है। सन्त-छलनके पापसे ही तुम्हारी देह जल रही है। इसलिये अन्तः-करणको निर्मल करके सद्भावसे तुकारामकी ही शरणमें जाओ, इससे इस रोगसे ही नहीं, भवरोगसे भी मुक्त हो जाओगे।' इसे ज्ञानेश्वर महाराजका ही आदेश जानकर रामेश्वर भट्ट अपने किये-पर बहुत पछताये। इसी बीच उन्हें यह वार्ता सुन पड़ी कि दहमें फेंकी हुई अभङ्गकी बहियाँ जलसे भगवान्‌ने उबार लीं। तब तो उनके पश्चात्तापका कुछ ठिकाना ही न रहा! वह फूट-फूटकर रोने लगे! उनकी आँखें खुल गयीं और उनका सौभाग्य उदय हुआ। उनके चित्तमें यह बात जम गयी कि भक्तिके सामने वेदाभ्यास और पाण्डित्य कोई चीज नहीं हैं—नर-देहकी सार्थकता सत्सङ्ग करते हुए भगवान्‌का प्रसाद पानेमें ही है। उन्होंने यह जाना कि तुकाराम भगवान्‌के अत्यन्त प्रिय, महान् विभूति हैं और यह जानकर उनका अहङ्कार चूर-चूर हो गया। भक्तका कार्य बनानेके लिये स्वयं भगवान् साकार होते हैं और हमारे पाण्डित्यमें इतनी भी सामर्थ्य नहीं कि भक्तके शापसे होनेवाले दाहका शमन कर सकें। यह जानकर उनका अभिमान पानी-पानी हो गया।

चित्तसे दुरभिमान जब चला गया तब रामेश्वर भट्ट जो पहले शुद्ध ही थे, और भी शुद्ध हो गये। तुकोबारायके प्रति उनके चित्तमें बड़ा आदरभाव जमा। तुकाराम महाराजकी शरणमें वह गये। एक पत्र लिखकर अपना सारा कच्चा चिट्ठा उन्होंने तुकाराम महाराजको निवेदन किया और गद्गद अन्तःकरणसे उनकी बड़ी स्तुति की। तुकारामजीने उसके उत्तरमें यह अभङ्ग लिख भेजा—

चित्त शुद्ध तरी शत्रु मित्र होती। व्याघ्र हे न खाती सर्प तया॥१॥
विष तें अमृत आघात तें हित। अकर्तव्य नीत होय त्यासी॥ध्रु०॥
दुःख तें देईल सर्वसुखफळ। होतील शीतळ अग्निज्वाळा॥२॥
आवडेल जीवां जीवाचिये परी। सकळां अन्तरीं एक भाव॥३॥
तुका म्हणे कृपा केली नारायण। जाणिजेतें येणें अनुभवें॥४॥

'अपना चित्त शुद्ध हो तो शत्रु भी मित्र हो जाते हैं, सिंह और साँप भी अपना हिंसा-भाव भूल जाते हैं। विष अमृत होता है, आघात हित होता है, दूसरोंके दुर्व्यवहार अपने लिये नीतिका बोध करानेवाले होते हैं। दुःख सर्वसुखस्वरूप फल देनेवाला बनता है, आगकी लपट ठण्डी-ठण्डी हवा हो जाती है। जिसका चित्त शुद्ध है उसको सब जीव अपने जीवनके समान प्यार करते हैं, कारण सबके अन्तरमें एक ही भाव है। तुका कहता है, मेरे अनुभवसे आप यह जानें कि नारायणने ऐसी ही आपदाओंमें मुझपर कृपा की।'

इस अभङ्गको रामेश्वर भट्टने पढ़ा और फिर पढ़ा, और खूब मनन किया। बात उन्हें जँच गयी। अनुतापसे दग्ध हुए उनके चित्तमें बोधका यह बीज जमा। उनके शरीर और मनका ताप

भी उससे शमन हुआ। रामेश्वर भट्ट अब वह रामेश्वर भट्ट न रहे। वह तुकाराम महाराजके चरणोंमें लीन हो गये। अब रामेश्वर भट्ट तुकारामजीके साथ ही निरन्तर रहना चाहते हैं और उस अजातशत्रु महात्माको यह मंजूर है। इस प्रकार तुकाराम-जीका विरोध करने चले हुए रामेश्वर भट्ट उनके शिष्य बन गये। तुकारामजी पारस थे। लोहा पारसपर आघात ही करे तो इससे पारसको क्या ? आघात करनेवाला लोहा भी पारसके स्पर्शमात्रसे सोना हो जाता है। तुकारामजीके स्पर्शसे रामेश्वर भट्टकी काया-पलट हो गयी।

११ रामेश्वर भट्टके चार अभङ्ग

रामेश्वर भट्टके चार अभङ्ग प्रसिद्ध हैं जो उन्होंने तुकाराम महाराजके सम्बन्धमें कहे हैं। कहते हैं, 'मुझे तो इसका खूब अनुभव हुआ कि मैंने जो उनका द्वेष किया उससे शरीरमें व्याधि उत्पन्न हुई, बड़ा कष्ट पाया और जगमें हँसी भी हुई।' यह कह-कर आगे बतलाते हैं कि किस प्रकार ज्ञानेश्वर महाराजने स्वप्न दिया और उसके अनुसार मैं उनकी शरणमें आ गया हूँ। और तबसे मैं नित्य उनका कीर्तन सुनता हूँ। 'उनकी कृपासे मेरा शरीर नीरोग हो गया।' अपने दूसरे अभङ्गमें रामेश्वर भट्ट यह बतलाते हैं कि भक्तकी जाति-पाँति कोई न पूछे, भक्त किसी भी वर्णका हो, उसके पैर छूनेमें कोई दोष नहीं। गुरु परब्रह्म हैं, उन्हें मनुष्य मानना ही न चाहिये—कारण जो श्रीरङ्गके नाम-रंगमें रँग गये वे श्रीरंग ही हैं।

उंचनीच वर्ण न म्हणावा कोणी। जे कां नारायणीं प्रिय झाले ॥१॥
चहूं वर्णांसी हा असे अधिकार। करितां नमस्कार दोष नाहीं ॥२॥

'जो कोई नारायणके प्रिय हो गये उनका उत्तम या कनिष्ठ वर्ण क्या ? चारों वर्णोंका यह अधिकार है, उन्हें नमस्कार करनेमें कोई दोष नहीं ।'

यह स्वीकृति दी है वेदवेदान्तपारग श्रीरामेश्वर भट्टने, जिन्होंने अपने अनुभवसे श्रीतुकाराम महाराजकी अन्तरंग झाँकी देखी । तीसरे अभङ्गमें उन्होंने तुकाराम महाराजकी महत्ता बखानी है । यह तुकाराम कौन हैं ? 'ब्रह्मानन्द-छन्दसे ब्रह्म-तुल्य बने हुए तुकाराम हैं, विश्व-सखा हैं; वह विश्व-सखा ही विश्वमें यह लीला कर रहे हैं ।' 'विश्व-सखा' कहकर रामेश्वर भट्टने उनकी लोकप्रियता भी सूचित की है । फिर यह कहा है कि धर्मको क्षयरोग लगा था, उसे इस धन्वन्तरिने दूर किया । तुकारामजीका आचरण देखकर रामेश्वर भट्ट कहते हैं, 'हे भक्तराज ! शास्त्र और शिष्टाचारका इसमें कहीं भी विरोध नहीं है ।'

तुकाराम महाराजने रामेश्वर भट्टके कथनानुसार, 'ब्रह्मैक्य भावसे भक्तिका विस्तार किया' अर्थात् अद्वैत-सिद्धान्तको पकड़े रहकर भक्तिका स्रोत बहाया । 'देव-द्विजोंकी सर्वभावसे पूजा की'—देवताओं और ब्राह्मणोंकी भक्ति-भावसे सेवा की, 'शान्ति सतीसे उन्होंने विवाह रचा, क्षमाकी मूर्ति अपनी देहमें ही खड़ी की, दयाकी प्राणप्रतिष्ठा की ।' 'संसारका अज्ञानतिमिर नष्ट करनेके लिये सन्तरूप ग्रह-मण्डलमें तुकाराम सूर्य ही उदीयमान हुए ।' इत्यादि प्रकारसे रामेश्वर भट्टने इस अभङ्गमें तुकाराम महाराज-

की स्तुति की है और यह पश्चात्ताप किया है कि 'देहबुद्धिके कारण तथा वर्णाभिमानसे' मैने आपको नहीं जाना और बड़ा कष्ट पहुँचाया, पर आप दयाघन हैं, मुझे शरण दीजिये, 'अब मेरी उपेक्षा मत कीजिये । 'पश्चात्तापपूर्वक ऐसी विनय करते हुए अभङ्गके अन्तिम चरणमें अपने आराध्यदेव श्रीरामचन्द्रसे यह प्रार्थना की है कि, 'इन चरणोंमें मेरी ओरसे बुद्धिका कोई व्यभिचार न हो' अर्थात् महाराजके चरणोंके प्रति मेरे अन्तःकरणमें जो यह निर्मल भाव उत्पन्न हुआ है वह कभी मलिन न हो ।

रामेश्वर भट्ट इस प्रकार रूपान्तरित हो गये । रामेश्वर भट्ट विद्वान् कर्मनिष्ठ ब्राह्मण थे । पर तुकाराम महाराजके सामने उनके ज्ञान, कर्म हाथ जोड़कर खड़े हो गये और चित्त श्रीतुकारामजीके चरणोंमें लीन हो गया । रामेश्वर भट्ट हाथमें करताल लिये तुकारामजीके पीछे खड़े होकर नाम-संकीर्तनमें उनका साथ देनेमें ही अपना अहोभाग्य समझने लगे । रामेश्वर भट्ट स्वभावसे तो शुद्ध ही थे बीचमें अहङ्कारसे उनकी बुद्धि मलिन हो गयी थी । गुरुके दर्शनोंसे उनकी मैल कट गयी और उनके नेत्र खुले ।

रामेश्वर भट्टका चौथा अभङ्ग तुकाराम महाराजके सदेह वैकुण्ठगमनके बादका है । रामेश्वर भट्टने श्रीतुकाराम महाराजके चरण जो एक बार पकड़ लिये, फिर उन्होंने उन्हें कभी न छोड़ा । दस-पन्द्रह वर्ष तुकारामजीके संग रहे । इतने दीर्घकालतक ऐसा अपूर्व सत्सङ्ग-लाभ करनेके पश्चात् ही उनका चौथा अभङ्ग बना है । तुकारामजीकी वाणीको उन्होंने मुँह भरकर 'अमृत' कहा है । और इस अमृतकी नित्य 'वर्षा' का अनुभवानन्द व्यक्त किया है ।

अन्तमें कहा है, 'भक्ति, ज्ञान और वैराग्यका' ऐसा परम शुभ संयोग 'इन आँखोंने अन्यत्र नहीं देखा।' रामेश्वर भट्टकी यह सम्मति जगन्मान्य हुई। श्रीकृष्ण-दर्शनानन्दमें नित्य रमण करनेवाले अन्तराराम श्रीतुकाराम और उनके चरण-चञ्चरीक बनकर उनके स्वरूपमें समरस हुए पण्डित श्रीरामेश्वर भट्ट, दोनोंको अनन्यभावसे वन्दनकर इस प्रसङ्गको यहीं समाप्त करते हैं।

१२ समाधान

इस प्रसङ्गके पश्चात् तुकारामजी स्वानुभवके आनन्दके साथ यह कहनेमें समर्थ हुए कि, 'मैंने भगवान्‌को देखा है।' एक बार श्रीकृष्णने उन्हें अपने बालरूपकी झाँकी दिखायी, तबसे उन्हें भगवान्‌के चाहे जब, चाहे जहाँ दर्शन होने लगे, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं। भगवान् भक्तके कैसे दास बन जाते हैं कि, 'निर्गुणमें सदा छिपे रहनेवाले आवाज देते ही सामने आकर खड़े हो गये।' तुकारामजी बतलाते हैं कि 'भगवान्‌की जब कृपा हुई तब देह-संग रह ही नहीं गया। निज ध्यासका ही रंग चढ़ता गया।' भगवान्‌के पहले दर्शन हुए, पीछे भगवान् मुझसे मिले, मेरे प्राणधन मुझे मिले; तुमलोग भी भगवान्‌के चरणोंको पकड़ रखो तो तुम्हें भी भगवान् मिलेंगे। तुकाराम महाराजके कीर्तनोंमें अब ऐसी स्वानुभव रसभरी बातें सुनकर श्रोताओंको अभूतपूर्व आनन्दोत्साह अनुभूत होने लगा। जनाबाई, नामदेवराय, एकनाथ आदि सन्तोंको जो भगवान् मिले वह मुझे भी मिले, अब मेरी थकावट दूर हो गयी, अब सन्तोंके सामने अपना मुँह दिखा सकता हूँ, तुकारामजीने अपने मनमें कभी ऐसा कहा भी होगा।

भगवान्‌के मिलनके बाद उस मिलनका आनन्द उनके कई अभङ्गोंमें व्यक्त हुआ है ।

आतां कोठें धांवे मन । तुझे चरण देखिलिया ॥ १ ॥
भाग गेला शीण गेला । अवघा झाला आनंद ॥ध्रु०॥

'तुम्हारे चरण देखे, अब मन कहाँ दौड़कर जायगा ? थका-माँदापन सब निकल गया । अब केवल आनन्द-ही-आनन्द है ।'

* * *

न व्हावें तें झालें देखियेले पाय । आतां फिरूँ काय मागें देवा ॥१॥
बहु दिस होतों करीत हे आस । तें आलें सायासें फळ आजि ॥२॥

जो कभी न होनेकी बात सो ही हुई—भगवान्‌के चरण (इन आँखोंसे) देख लिये । अब क्या भगवन् ! पीछे फिरकर जाना है ! बहुत दिनोंसे यह आस लगी हुई थी सो आज पूरी हुई—सब परिश्रम सफल हो गये ।

* * *

श्रीकृष्ण-दर्शनसे 'नेत्र खुलकर कृष्णाञ्जनसे समुज्ज्वल हो गये ।' भगवान्‌का जो बालरूप देखा वही नेत्रोंमें स्थिर हो गया । 'वह छबि आँखोंमें ऐसी समा गयी कि बार-बार उसीकी स्मृति होती है ।' उस दिव्य दर्शनके स्मरण और निदिध्यासका आनन्द बढ़ता ही गया, ऐसी तन्मयता हो गयी कि—

तुका म्हणे वेध झाला । अंगा आला श्रीरंग ॥

'तुका कहता है, लौ लग गयी और अङ्ग-अङ्गमें श्रीरङ्ग समा गये ।' चौसरके एक अभङ्गमें तुकारामजी कहते हैं कि, 'चित्तकी

उलटी चालमें मैं भी फँस गया था, मृगजलने मुझे भी धोखा दिया था; पर भगवान्‌ने बड़ी कृपा की जो मेरी आँखें खोल दीं ।' फिर 'तुमने मेरी गुहार सुनी, इससे मैं निर्भय हो गया हूँ ।'

सर्वसाधारण जीवोंको भक्तिकी शिक्षा देते हुए तुकारामजीने कहीं-कहीं स्वानुभवका भी हवाला दिया है—

धीर तो कारण । साह्य होतो नारायण ।
होऊं नेदी शीण । वाहूं चिंता दासासी ॥ १ ॥
सुखें करावें कीर्तन । हर्षें गावे हरिचे गुण ।
वारी सुदर्शन । आपणचि कळिकाळा ॥ध्रु०॥
जीव वेंची माता । बाळां जड भारी होतां ।
हा तो नव्हे दाता । प्राकृतां या सारिखा ॥ २ ॥
हें तो माझ्या अनुभवें । अनुभवा आलें जीवें ।
तुका म्हणे सत्य व्हावें । आहाच नये कारण ॥ ३ ॥

'नारायणके सहाय होनेमें धैर्य ही कारण है । (धैर्यके साथ भक्तिपूर्वक साधना करनेसे नारायण तो सहाय होते ही हैं ।) वह अपने भक्तको दुखी नहीं करते, अपने दासकी चिन्ता अपने ही ऊपर उठा लेते हैं । सुखपूर्वक हरिका कीर्तन करो, हर्षके साथ हरिके गुण गाओ । (कलिकालसे मत डरो) कलिकालका निवारण तो सुदर्शनचक्र आप ही कर लेगा । बच्चोंका बोझ जब भारी हो जाता है तब माता उन्हें भी छोड़ देती है पर भगवान् ऐसे प्राकृत जीव नहीं हैं । (वह अपने भक्तोंको कभी छोड़ते ही नहीं ।) यह बात तो मैं अपने अनुभवसे कहता हूँ । तुका कहता है जो सच है वह सच ही है, वह कभी व्यर्थ नहीं होता ।'

संसारियोंके लिये भक्ति-पन्थका रहस्य तुकारामजीने इस अभङ्गमें, बहुत थोड़ेमें और बड़े अच्छे ढंगसे बता दिया है—

अवघ्या दशा येणेंचि साधती । मुख्य उपासना सगुणभक्ति ।
प्रगटे हृदयीं चीं मूर्ति । भावशुद्धि जाणोनियां ॥१॥
बीज आणि फळ हरीचें नाम । सकळ पुण्य सकळ धर्म ।
सकळां कळां चें हे वर्म । निवारी श्रम सकळही ॥ध्रु०॥
जेथें हरिकीर्तन हें नाम घोष । करितीं निर्लज्ज हरिचे दास ।
सकळ वोथंबले रस । तुटती पाश भवबंधाचे ॥२॥
येती अंगा वसती लक्षणें । अंतरीं देवें धरिलें ठाणें ।
आपणचि येती तयाचे गुणें । जाणें येणें खुंटे वस्तीचें ॥३॥
नलगे सांडवा आश्रम । उपजले कुळीचें धर्म ।
आणीक न करावे श्रम । पुरे एक नाम विठोबाचें ॥४॥
वेदपुरुष नारायण । योगियांचें ब्रह्म शून्य ।
मुक्त आत्मा परिपूर्ण । तुका म्हणे सगुण भोळया आम्हां ॥५॥

'मुख्य उपासना सगुण-भक्ति है । इससे सभी अवस्थाएँ सध जाती हैं । इससे, शुद्ध भाव जानकर, हृदयकी मूर्ति प्रकट हो जाती है । हरिका नाम ही बीज है और हरिका नाम ही फल है । यही सारा पुण्य और सारा धर्म है । सब कलाओंका यही सार मर्म है । इससे सब श्रम दूर होते हैं । जहाँ हरिके दास लोक-लाज छोड़कर हरि-कीर्तन और हरि-नाम-संकीर्तन किया करते हैं वहीं सब रस आकर भर जाते हैं और संसारके बाँध लाँघकर बहने लगते हैं । जब भगवान् अन्दर आकर आसन जमाकर बैठ

जाते हैं तब उनके कारण उनके सभी लक्षण भी आप ही आकर बस जाते हैं। फिर इस मृत्युलोकका मरना-जीना, आना-जाना कुछ नहीं रह जाता। इसके लिये अपने आश्रमको या जिस कुलमें पैदा हुए उस कुलके धर्मको छोड़नेकी कोई आवश्यकता नहीं; और कुछ भी नहीं करना पड़ता, केवल एक विट्ठल (बाल-श्रीकृष्ण) का नाम काफी है। वेद जिसे पुरुष या नारायण कहते हैं, योगियोंका जो शून्य ब्रह्म है, मुक्त जीवोंका जो परिपूर्ण आत्मा है, तुका कहता है, वह हम भोलेभाले जीवोंके लिये सगुण (साकार श्रीविट्ठल—श्रीबालकृष्ण) हैं।

श्रीहरिके इस सगुण रूपकी भक्ति ही भगवत्-भक्तोंकी मुख्य उपासना है। नाम-स्मरण सम्पूर्ण पुण्य-धर्म, फल और बीज है। निर्लज्ज नाम-संकीर्तनमें सब रसोंका आनन्द एक साथ आता है। जिसके हृदयमें भगवान् आकर बैठ गये उसमें ज्ञानीके सभी लक्षण आप ही आकर टिकते हैं। अपना आश्रम या कुल-धर्म आदि छोड़नेका कुछ काम नहीं, केवल हरि-नाम ही उद्धारका साधन है। चित्तके शुद्ध होते ही, हृदयसे हम जिस मूर्तिका ध्यान करते हों वह मूर्ति सामने आकर खड़ी हो जाती है।

रामेश्वर भट्ट तुकाराम महाराजके अनुगामी बन गये पर उनके प्रति तुकारामजीकी विनयशीलतामें कोई फर्क न पड़ा। तुकारामजी उनके पैरोंपर गिरते थे। 'भक्तलीलामृत' कार अध्याय २७ में कहते हैं—

'रामेश्वर-सा ब्राह्मण तुकारामजीका सम्प्रदायी बना। पर इस विदेही महात्माको देखिये कि वह रामेश्वरके चरणोंपर गिर-गिर

पड़ते हैं, महन्तपना तो इन्हें छू नहीं गया। यह जानकर भी कि यह मेरा शिष्य है, वह रामेश्वरको देवताके समान ही मानते थे। इसीको कहना चाहिये अद्वैत-भजनसे परम शान्तिको प्राप्त जगद्गुरु पूर्ण ज्ञानी।'

१३ मध्यम खण्डका उपसंहार

श्रीतुकाराम महाराजके चरित्रका यह मध्यम खण्ड यहीं समाप्त होता है। इसलिये अब किञ्चित् सिंहावलोकन कर लें और फिर उत्तरखण्डको आरम्भ करें। पूर्वखण्डमें मंगलाचरणके अनन्तर काल-निर्णय, पूर्ववृत्त और संसारका अनुभव—ये तीन अध्याय हैं और इनमें महाराजके इक्कीसवें वर्षतकका चरित्र कथन किया गया है। तुकारामजी संसारके कटु अनुभवोंसे इस संसारसे उपराम होने लगे, यहाँतकका विवरण इस खण्डमें आ चुका है। उनके परमार्थ-साधनका इतिहास मध्यखण्डमें आ गया। महाराज जिस साधन-सोपानसे सगुण-साक्षात्कारतक चढ़ गये वह साधन-क्रम पाठकोंकी समझमें अच्छी तरहसे आ जाय और इससे उन्हें भी यह मार्ग दिखायी देने लगे, इसलिये इस खण्डमें उसका विस्तार किया है और यह विस्तार भी महाराजके वचनोंके सहारे किया है, जिसमें मुमुक्षु साधकोंके लिये यह खण्ड पर्याप्तरूपसे बोधप्रद हो। इस खण्डके चौथे अध्यायमें 'याती शूद्र वैश्य केला वेवसाय' (जातिका शूद्र हूँ और वैश्यकी वृत्ति की) इस अभङ्गको ही आधार बनाकर और इसीको बीजाध्याय मानकर उसपर (१) वारकरी सम्प्रदाय-का साधन-मार्ग, (२) ग्रन्थाध्ययन, (३) गुरु-कृपा और कवित्व-

स्फूर्ति, (४) चित्त-शुद्धिके उपाय, (५) सगुण-भक्ति और दर्शनोत्कण्ठा, (६) श्रीविट्ठल-स्वरूप तथा (७) सगुण-साक्षात्कार— इन सात अध्यायोंकी सप्तपदी खड़ी की है। पाँचवें अध्यायमें पाठकोंने वारकरी सम्प्रदायका स्वरूप देखा और एकादशी-व्रत, पण्ढरीकी वारी, हरि-कीर्तनका आनन्द, निष्कपट भक्ति-भावका मर्म तथा परोपकारका अभ्यास—इन विषयोंकी आलोचना की। छठे अध्यायमें अन्तःप्रमाणोंके साथ यह देखा कि तुकारामजीने किन-किन ग्रन्थोंका अध्ययन किया था और अध्ययनके महत्त्वकी ओर पूरा ध्यान देते हुए यह भी देखा कि तुकारामजीने कैसी अवस्थाके साथ मूलमें ही गीता, भागवत, कुछ पुराण, विष्णुसहस्रनामादि स्तोत्र तथा ज्ञानेश्वरी, एकनाथी भागवत आदि ग्रन्थोंका कितनी बारीकीके साथ अध्ययन किया था और नित्य पाठ भी वह कितनी लगनके साथ करते थे और फिर अन्तमें यह भी देखा कि तुकारामजीको ज्ञानेश्वर और एकनाथसे अलगानेका कुछ आधुनिक विद्वानोंका प्रयत्न कितना बेकार और निःसार है। ७ वें अध्यायमें गुरु-कृपा और कवित्व-स्फूर्तिका विवेचन हुआ है। पहिले सद्गुरु-कृपाका महत्त्व, तुकारामजीकी गुरु-दर्शन लालसा, बाबाजी चैतन्यद्वारा स्वप्नमें उपदेश, फिर तुकारामजीकी त्रयी परम्पराकी दो शाखाएँ, केशव और बाबाजीका एक ही व्यक्ति न होना, बंगालके श्रीकृष्णचैतन्यसे तुकारामजीकी भक्तिके आविर्भावकी कल्पनाका अप्रामाणिकत्व—इन बातोंकी चर्चा की है। ८ वें अध्यायमें 'चित्त-शुद्धिके उपाय' मुख्यतः साधकोंके लिये विस्तार-

पूर्वक लिखे गये हैं। तुकारामजीकी विरागता और सावधानता, उनकी साधन-स्थितिका मर्म और उनकी लोकप्रियताका रहस्य इत्यादि बातोंको देखते हुए यह देखा कि तुकारामजीने किस प्रकार अपने मनको जीता, जन-सङ्ग और दुष्टजनोंकी उपाधिसे उकताकर उन्होंने कैसे एकान्तवास किया और एकान्तका आनन्द लूटा, अपने दोषोंको भगवान्‌से निवेदन करके उन्हें कैसे-कैसे पुकारा और सत्सङ्ग तथा नाम-संकीर्तनके द्वारा कैसे साधनोंकी सब सीढ़ियाँ चढ़ गये। यह सम्पूर्ण अध्याय साधकोंके लिये अत्यन्त बोधप्रद होगा। नवें, दसवें और ग्यारहवें अध्यायमें भगवान्‌के सगुण-साकार-साक्षात्कारके अत्यन्त मधुर और मनोहर प्रसंगका वर्णन किया है। नवें अध्यायमें भक्ति-मार्ग ही सबसे श्रेष्ठ क्यों है तथा सगुण और निर्गुण किस प्रकार एक ही हैं—यह बतलाकर तुकारामजीकी सगुणनिष्ठा कैसी दृढ़ थी यह देखा है। तुकारामजीके उपास्यदेव श्रीविट्ठल हैं। इसलिये 'विट्ठल' शब्द कैसे बना, इसे देख लिया है और यह दिखलाया है कि ज्ञानेश्वरीमें 'विट्ठल' नामका उल्लेख न होनेसे कुछ आधुनिक विद्वान् जो यह कहने लगते हैं कि ज्ञानेश्वरीसे वारकरी सम्प्रदायका कोई लगाव नहीं है वह कितना अप्रामाणिक और निःसारवाद है, फिर तुकारामजी मूर्तिपूजक थे और मूर्ति-पूजामें कितना बड़ा रहस्य छिपा हुआ है, इन बातोंका विचार करके तुकारामजीकी भगवद्दर्शन-लालसा, भगवान्‌से उनकी प्रेमकलह और मिलनकी निश्चयाशा और निरन्तर प्रतीक्षाके मधुर प्रसंगोंका वर्णन किया

है। १० वें अध्यायमें श्रीविट्ठल भगवान्‌का स्वरूप देखा, पण्ढरपुर-की श्रीविट्ठल-मूर्तिको निहारा, सन्तोंके वचनोंको अवलोकन किया और यह जाना कि श्रीविट्ठल गोप-वेश-धारी श्रीबाल-कृष्ण ही हैं। ११ वें अध्यायमें रामेश्वर भट्टका प्रसंग छिड़ा जिसके निमित्तसे भगवान्‌ने बालरूपमें तुकारामजीको दर्शन दिये। रामेश्वर भट्टकी योग्यता तथा उनके विरोधमें प्रवृत्त होनेके भावोंका विश्लेषण करते हुए इस बातका विवेचन किया कि कर्मठोंके विरोधसे इसी प्रकार भागवतधर्मका सदा जय-जयकार होता चला आया है। फिर तुकाराम महाराजके वचनोंके ही आधारपर यह देखा गया कि तुकारामजीने अपने अभङ्गोंकी पोथियाँ इन्द्रायणीके दहमें डुबा दी थीं और स्वयं भगवान्‌ने उनकी रक्षा की। तुकारामजीकी अर्थात् भागवतधर्मकी विजय हुई और रामेश्वर भट्ट उनकी शरणमें आ गये। इन सात अध्यायोंमें सत्संग, सत्शास्त्र, गुरु-कृपा और सगुण-साक्षात्कार—इन चार मंजिलोंको पार करके तुकारामजी कृत-कृत्य हुए, यहाँतक हमलोग आ गये। अब पाठक इस मध्य खण्ड-में जो 'आत्म-चरित्र' अध्याय है उसे फिर एक बार देख लें, विशेषकर 'याति शूद्र वैश्य केला वेवसाय' (जातिसे शूद्र हूँ और वृत्ति वैश्यकी की) इस अभंगका विवरण तो अवश्य ही पढ़ लें, इससे पाठकोंके ध्यानमें यह बात आ जायगी कि यही अध्याय इस मध्य खण्डका बीजाध्याय है। रामेश्वर भट्टने जो उपाधि की उसी प्रसंगसे तुकारामजीको भगवान्‌के सगुण-साक्षात्कारका परमलाभ हुआ।

'आत्म-चरित्र' अध्यायमें तुकारामजीने जो यह कहा है कि 'निषेधका कुछ आघात लगा, उससे जी दुखी हुआ, बहियाँ डुबा दीं और धरना देकर बैठ गया, तब नारायणने समाधान किया।'(१६) इसका मर्म अब पाठकोंकी समझमें आ गया होगा। इसके बाद तुकारामजी कहते हैं—

'भक्तकी उपेक्षा नारायण कदापि नहीं करते। वह ऐसे दयालु हैं, यह बात अब मेरी समझमें आ गयी। (१७) अब जो कुछ है वह सामने ही है, आगेकी भगवान् जानें।' (१८)—

—उसे हमलोग आगेके खण्डमें देखें।

उत्तर खण्ड

ज्ञान-काण्ड

बारहवाँ अध्याय

शैले येषु शिलातलेषु च गिरेः शृङ्गेषु गर्तेषु च
श्रीखण्डेषु विभीतकेषु च तथा पूर्णेषु रिक्तेषु च।
स्निग्धेन ध्वनिनाखिलेऽपि जगतीचक्रे समं वर्षतो
वन्दे वारिदसार्वभौम ! भवतो विश्वोपकारिव्रतम् ॥१॥

१ लोकगुरुत्वका अधिकार

सगुण-साक्षात्कारका अलौकिक आलोक सारे शरीरपर जगमगा रहा है, इन्द्रियोंसे शान्तिकी दिव्य शीतल छटा छिटक रही है, प्रखरतर वैराग्यके सब लक्षण देहपर देदीप्यमान हो रहे हैं, प्राप्तव्यकी प्राप्तिका प्रेममय समाधान नेत्रोंमें चमक रहा है—ऐसी वह तुकारामजीकी श्याम-सुन्दर-छवि जिन नेत्रोंने निहारी होगी वे नेत्र सचमुच ही धन्य हैं ! श्रीतुकोबारायके मुखसे, इसके अनन्तर सतत पन्द्रह वर्षतक जो सुधा-धारा प्रवाहित होती रही उसमें डूबकर उस परम रसका आस्वादन करनेका सौभाग्य जिन प्रेमी-रसिक श्रोताओंको प्राप्त हुआ होगा उनके सौभाग्यकी क्या प्रशंसा की जाय ! भगवान्‌की सुनी हुई बातें सुनानेवाले बहुत मिलते हैं; पर जिसने भगवान्‌को देखा हो, भगवान्‌का वरद हस्त अपने मस्तकपर रखाया हो, भगवान्‌से जिसने एकान्त किया हो, ऐसे स्वानुभवसम्पन्न परम सिद्ध भगवद्भक्तको जिन्होंने देखा

हो, उसके श्रीमुखसे श्रीहरि-कीर्तन और हरि-लीला सुनी हो, सदाचार, ज्ञान और वैराग्यका उपदेश श्रवण किया हो वे सचमुच ही बड़े भाग्यवान् हैं। देहू और पूना और पूर्ण महाराष्ट्रका परम भाग्योदय हुआ जो तुकाराम महाराज अपने श्रीविट्ठल-मन्दिरसे भक्ति-भावके उत्तमोत्तम वस्त्राभरण निर्माण-कर पण्ढरपुरके हाटमें भेजने लगे। तुकारामजीकी वाणी अब विरहिणी न रही, स्वानुभव-प्राणसे सनाथ होकर प्रेम-मिलनके आनन्दमें नृत्य करनेवाली हुई। अब उनकी वाणीसे प्रिय-मिलनके प्रेमानन्द-सागरकी लहरें निकल-निकलकर श्रोताओंके हृदयोंपर गिरने लगीं और लोग यह मानने लगे कि जीवके उद्धारका उपदेश करनेका अधिकार इन्हींको है। इनकी सत्यता तपाये हुए सोनेकी भाँति अपनी समुज्ज्वलतासे लोगोंके चित्तको अपनी ओर खींच चुकी थी और इस कारण दाम्भिक दुर्जनोंपर इनका जो वाक्-प्रहार, उन्हींके उद्धारके निमित्त, हुआ करता था उससे लोग सावधान और शुद्ध होने लगे और झूठका बाजार उजड़ने लगा, सर्वत्र तुकारामजीका बोलबाला हुआ—उन्हींके बोल बोले जाने लगे।

आपण जेऊन जेववी लोकां। सन्तर्पण करी तुका॥

'स्वयं जीमकर लोगोंको जिमाता है, ऐसा सन्तर्पण तुका करता है।' इस विलक्षण उक्तिका प्रत्यक्ष लक्षण अब लोगोंने देख लिया।

देहूमें परमार्थका मानो एक नवीन विद्यापीठ स्थापित हुआ। तुकारामजी स्वयं उसके सञ्चालक और सूत्रधार बने। आसपासके गाँवोंसे तथा दूर-दूरसे भी भगवान्‌के प्रेमी आ-आकर इस विद्यापीठ-

में शिक्षा-लाभ करने लगे। देहू, लोहगाँव, तलेगाँव, पूना, पण्ढरपुर तथा पण्ढरपुरके रास्तेके सब स्थानोंमें तुकारामजीके कीर्तनोंकी झड़ी लग गयी। सहज ही लोग उन्हें गुरु कहकर पूजने लगे। ऐसे इन्द्रियविजयी, वैराग्य-तेजके पुञ्ज, पूर्णकाम, विश्वप्रेमी, लोकालोकस्वरूप लोकगुरु इस स्वार्थी संसारमें कहाँ मिलें? जिनका बड़ा भाग्य होता है उन्हींको ऐसे जग-दुर्लभ गुरु प्राप्त होते हैं। तृप्त पुरुषका यह सहज धर्म होता है कि वह अपनी तृप्तिका आनन्द सबको दिलाना चाहता है। तृप्ति नाम इसीका है। जो अपने पूर्ण आत्म-कल्याणको प्राप्त होता है वह लोक-कल्याणमें प्रवृत्त होता है। लोक-कल्याणकी कामना तृप्त-आप्तकाम पुरुषोंके स्वभावमें ही होती है। यही तुकारामजीने कहा है कि 'अब तो मैं उपकार जितना हो उतनेके लिये ही हूँ।'

२ मेघ-वृष्टिवत् उपदेश

गुरु होनेकी पूर्ण पात्रता होनेपर भी तुकारामजीने गुरुपनेको अपने पास फटकने नहीं दिया और किसीको अपना शिष्य भी नहीं कहा। इसी प्रकार उन्होंने जो उपदेश दिये हैं उन्हें उपदेश न कहकर उन्होंने 'मेघ-वृष्टि' कहा है। हम भी इसे मेघ-वृष्टि ही कहें।

तुका 'किसीके कानमें मन्त्र नहीं फूँकता, न एकान्तका कोई गुह्य ज्ञान रखता है।' अर्थात् तुकारामजी एकान्तमें उपदेश या मन्त्र नहीं दिया करते। हरि-चिन्तनका आनन्द लेते हैं और उसमें सबको सम्मिलित कर लेते हैं। गुरुपनेसे तो दूर ही रहते हैं। एक जगह उन्होंने कहा है कि 'लोगोंको भरमानेकी कोई कपटविद्या मैं नहीं जानता। भगवन्! तुम्हारा ही कीर्तन करता

हूँ, तुम्हारे ही उत्तम गुणोंको गाता फिरता हूँ।' यह कहकर उन्होंने सामान्य लौकिक गुरु-नाम-धारियोंका निषेध-सा किया है। आगे फिर उन्होंने यह भी कहा कि मेरे पास कोई जड़ी-बूटी नहीं, कोई ऐन्द्रजालिक चमत्कार नहीं, मैं जमीन-जायदाद जोड़नेवाला कोई महन्त-मण्डलेश्वर नहीं, ठाकुरजीकी पूजा जहाँ बिकती हो ऐसी मेरी कोई दूकान नहीं, मैं कथावाचक नहीं जो कहे कुछ और करे कुछ और, मैं पण्डित भी नहीं जो घट-पटकी खटपटका शास्त्रार्थ कर सकूँ, ऐसा भवानी-भक्त भी नहीं जो मस्तकपर जलती हुई आगका घट लेकर चलूँ, गोमुखीमें हाथ डालकर माला जपनेवाला जपी मैं नहीं, जारण-मारण-उच्चाटन करनेवाला कोई ओझा भी मैं नहीं हूँ। भगवन्! तुम्हारे कीर्तनके सिवा मैं और कुछ नहीं जानता। मेरे भगवान् मैदानमें हैं, मेरा 'राम-कृष्ण-हरि' मन्त्र प्रकट है, मेरा उपदेश भी सीधी-सादी बात है। मुझे जो कुछ कहना होता है, सब हरि-कीर्तनमें कहता हूँ—कोई छिपाव नहीं, कोई दुराव नहीं। तुकारामजीका सब काम ही ऐसा निश्छल, निर्मल और सरल है। तुकारामजी कहते हैं—

गुरुशिष्यपण। हें तों अधमलक्षण॥१॥
भूतीं नारायण खरा। आप तैसाचि दूसरा॥ध्रु०॥

'गुरु बनना और चेला बनाना, यह तो अधमपना है। भूतमात्रमें नारायण हैं, जब यह बात सच है तब जैसे हम हैं वैसे ही दूसरे भी हैं' नारायण हमारे अन्दर हैं वैसे ही दूसरोंके अन्दर भी हैं। तुकारामजी गुरु बनकर—गुरु-शिष्यका नाता जोड़कर—एकत्वके भावको भेदकर, तोड़कर—गुरुके नाते नहीं

बोलते । नारायण प्रेरणा करके जैसे बुलवाते हैं वैसे बोलते हैं—बोलते क्या हैं, मेघकी तरह बरसते हैं ।

मेघवृष्टिनें करावा उपदेश । परि गुरुनें न करावा शिष्य ।
वाटा लाभे त्यास । केला अर्ध कर्माचा ॥१॥

'उपदेश ऐसे करे जैसे मेघ बरसे । पर गुरु बनकर किसीको शिष्य न बनावे । जो कर्म करो उसका आधा भाग उसको मिलता है ।'

इसलिये अच्छा तो यही है कि—

एकमेकां साह्य करूं । अवघे धरूं सुपंथ ॥

'आपसमें हमलोग एक-दूसरेकी सहायता करें और सभी एक साथ सन्मार्गपर चलें ।'

हम-आप प्रेमसे एक प्राण होकर नारायणका अमृत गुण-गान करें और भवसागर पार करें । 'अधिकारके न होते भी बलात्कार-से उपदेश' करनेवाले और सुननेवाले गुरु और शिष्य अन्तमें पश्चात्तापके भागी होते हैं ।

उपदेशी तुका । मेघवृष्टीनें आइका ।
संकल्पासी धोका । सहज तें उत्तम ॥४॥

'सुनो, तुका मेघ-वृष्टिसे उपदेश करता है । सङ्कल्पमें धोखा है, सहज जो है वही उत्तम है ।'

मेघ-वृष्टि-से उपदेश करना प्रेम-रसके मेघोंका बरसना है—प्रेमसे जो निकल पड़े, उसमें सहजपना होता है—असली रंग होता है । और फिर जैसे मेघ-वृष्टि जहाँ कहीं भी हो—पथरीले

चट्टानोंपर हो या जोत-जातकर तैयार किये हुए खेतोंमें हो, उससे खेत लहलहा उठें या चट्टान धुलकर स्वच्छ हो जायँ, अथवा जल जम जाय या बह जाय, मेघोंको इसकी कुछ भी परवा नहीं होती। वे बरसते हैं, जिसको जो लाभ होना होता है हो जाता है। नहीं होना होता उसे नहीं होता? मेघ अपना कार्य करते हैं। परमार्थका साधन तो साधकको स्वयं ही करना पड़ता है। जो कमर कसकर लड़ेगा वह अवश्य विजयी होगा, जो कायर होगा वह रण छोड़कर भाग जायगा। यह सबके अपने करतबपर निर्भर करता है। मेघ-वृष्टि-सदृश उपदेशके द्वारा तुकारामजी सबको ही एक-सा अमृत-पान कराते हैं। पान करना, न करना सबकी अपनी इच्छापर निर्भर है। स्वहितका साधन तो स्वयं किये बिना नहीं होता।

'चोरके हृदयमें उसीका लाञ्छन खटका करता है। इसको हम क्या करें, हम तो वर्षा-से बरसते हैं।'

जिसके जो दोष होते हैं उन्हें वह जानता रहता है। हम गुणोंकी स्तुति करते हैं और दोषोंका त्याग करानेके लिये दोषोंकी निन्दा करते हैं। किसीके मर्मपर चोट करनेके लिये कोई बात नहीं कहते, किसी व्यक्तिको लक्ष्य करके कोई बात नहीं कहते। यह तो हरि-गुण-गानकी अमृतधारा है।

परम अमृताची धार। वाहे देवाही समोर ॥१॥
ऊर्ध्ववाहिनी हरिकथा। मुकुटमणी सकळां तीर्थां ॥२॥

'सब तीर्थोंकी मुकुटमणि यह हरिकथा है—यह ऊर्ध्ववाहिनी परमामृतकी धारा भगवान्‌के सामने वहती रहती है।'

भगवान्‌पर इस सुधाधाराका अभिषेक होता रहता है। और लोगोंको उपदेशके तौरपर जब तुकारामजी कुछ कहते हैं तब भी 'मेघ यह नहीं पूछते कि कौन-सा खेत कैसा है।'

जल बरसकर खेतोंमें खेतीके काम आता है या मोरियोंमेंसे बह जाता है, इसका विचार मेघ नहीं किया करते। उनकी सब-पर समान वृष्टि होती है। पतितपावनी गङ्गा पतित और पावन दोनोंको ही समान भावसे नहलाती हैं। अग्निके द्वारा देवताओंको हविपान्न मिलता है और खाण्डव वन भी भस्म होता है। पर किसीका स्पर्श-दोष अग्निको नहीं लगता। उसी प्रकार तुकारामजी-की मेघ-वृष्टि-सदृश उपदेश-दृष्टि सज्जन-दुर्जन दोनोंपर समानरूपसे ही पड़ती है, सज्जन सुखी होकर स्तुति कर लेंगे और दुर्जन सिरपर चोट लगनेसे तिलमिलाकर निन्दा करने लगेंगे; पर—'मेरे लिये यह भी कुछ नहीं, वह भी कुछ नहीं; मैं तो दोनोंसे अलग हूँ।'

'मेघ बरसते हैं अपने स्वभावसे; भूमि जो लहलहा उठती है वह अपने दैवसे।'

३ तुकारामजीकी उपदेशपद्धति

सबको समान उपदेश करनेका अभिप्राय सबको एक ही उपदेश करनेसे नहीं है। हरि-कीर्तनके द्वारा होनेवाला उपदेश तो सबके लिये एक ही है; अन्यथा 'अधिकार तैसा करूँ उपदेश' जैसा जिसका अधिकार वैसा ही उसको उपदेश किया जाता है—जिससे जितना बोझ उठाते बनेगा उतना ही उसपर लादा जायगा। चींटीकी पीठपर हाथीका हौदा नहीं रखा जाता। बहेलियेके पास कुल्हाड़ी, फन्दा और जाल सभी होता है, पर

इन सबका उपयोग मौके-मौकेपर किया जाता है। कुटिल, खल, कृपण, संसारी, विरक्त, विलासी, शूर, पापी, पुण्यात्मा सभीको और सभी जातियोंको उनके संस्कार और अधिकारके अनुसार उपदेश करना होता है। अच्छी जातिका अच्छा घोड़ा हो तो वह केवल इशारेसे चलता है और अड़ियल टट्टू हो तो बिना चाबुकके वह एक कदम भी नहीं चलता। धर्म-नीति-व्यवहारका कुछ उपदेश सबके लिये समान होता है। सभीके सभी समय ग्रहण करनेयोग्य होता है और कुछ उपदेश ऐसा भी होता है जो एकके लिये आवश्यक तो दूसरेके लिये अनावश्यक भी होता है। किसे किस उपदेशका प्रयोजन होता है यह तो सबके अपने ही निर्णय करनेकी बात है। तुकारामजीने किस प्रसङ्गसे किसके लिये कौन-सा अभङ्ग कहा यह जाननेका तो अब कोई उपाय नहीं रहा है। तथापि तुकारामजीके श्रोताओंमें सामान्यतः जिस प्रकारके लोग थे उसी प्रकारके लोग आज भी मौजूद हैं। जितने प्रकार उस समय रहे होंगे उतने आज भी हैं और सदा ही रहेंगे। इसलिये हर कोई तुकारामजीके अभङ्गोंसे अपना-अपना अधिकार जानकर बोध प्राप्त कर सकता है। सन्त सद्वैद्योंके समान होते हैं, उनके पास सभी रोगोंकी ओषधियाँ और भस्मादि होते हैं। अपने रोग और प्रकृतिके अनुसार हर कोई ओषधि लेकर अनुपान-के साथ सेवनकर नीरोग हो सकता है। सन्त भवरोगको दूर करते हैं। वैद्य तो खैर दाम और पुरस्कार भी चाहते हैं, पर सन्त परोपकाररत और निष्काम भक्त होते हैं, उन्हें और कोई मतलब गाँठना नहीं होता, वे चतुर्विध पुरुषार्थका दान करनेमें

ही सुख मानते हैं। तुकारामजीके उपदेशोंमें नितान्त सौम्य उपायसे लेकर 'पकड़ने, बाँधने और दागने' तकके उपाय शामिल हैं। उनके 'अभङ्ग'-दर्पणमें अपना मुँह देखकर अपनी बीमारीको पहचाने, औषध-सेवन करे, पथ्यसे रहे और आरोग्य-लाभ करे। वैदिक ब्राह्मणोंको तथा स्वराज्य-संस्थापनके महत्कार्यमें लगे हुए शिवाजी महाराजको, सिद्धोंको और पापात्माओंको, सच्चे भक्तोंको और दाम्भिकोंको, भलोंको और खलोंको, वीरोंको और कायरोंको सबको तुकारामजीके अभङ्गोंमें उपदेश मिलेगा। निवृत्तिमार्गियों और प्रवृत्तिमार्गियों, दोनोंको तुकारामजीने उपदेश दिया है, अर्थात् विवेकके मुख्य-मुख्य सिद्धान्त बता दिये हैं। सन्त और तत्त्वदर्शी मुख्य सिद्धान्त ही बतलाया करते हैं, उनका ब्योरा नहीं; ब्योरेकी बातें व्यवहारसे तथा दूसरोंका आचरण देखकर मालूम होती हैं। सिद्धान्तभर वे बतला देते हैं। सन्तोंका मुख्य कार्य जीवोंको माया-मोहकी निद्रासे जगा देना होता है। स्वयं जगे रहते हैं, दूसरोंको जगा देते हैं। और धर्मका रहस्य बतलाकर उद्धारका मार्ग दिखा देते हैं। भक्ति, ज्ञान, वैराग्यका बोध कराकर उनकी देहबुद्धि नष्ट कर देते हैं, उनकी जीवदशाका दरिद्र दूर करके उन्हें स्वात्मसुखके ध्रुवपदपर बिठा देते हैं, जीवोंको अभय-दान देते हैं और अपने पुण्यचरित्र तथा समुज्ज्वल प्रबोधशक्तिसे जीवोंका दैन्य नष्टकर उन्हें स्वानन्द-साम्राज्य-पदपर आरूढ़ करते हैं। सन्तोंके उपकार माता-पिताके उपकारोंसे भी अधिक हैं। सब छोटी-बड़ी नदियाँ जिस प्रकार अपने नाम-रूपोंके साथ जाकर ऐसी मिल जाती हैं जैसे उनका कोई अस्तित्व ही न हो,

उसी प्रकार त्रिभुवनके सब सुख-दुःख सन्तोंके बोधमहार्णवमें विलीन हो जाते हैं। तुकाराम महाराज ऐसे विश्वोद्धारक महामहिम महात्माओंकी प्रथम श्रेणीमें हैं। आइये, पाठक! हम-आप उनके अमोघ उपदेशकी मेघवृष्टिके नीचे विनम्र भावसे अपना मस्तक नवाकर इस अमृतवर्षाकी बौछारका आनन्द लें।

४ हरि-भक्तिका सामान्य उपदेश

हरि-भक्तिका उपदेश सबके लिये एक ही है—

'खोल, खोल, आँखें खोल। बोल, अभीतक क्या आँख नहीं खुली? अरे, अपनी माताकी कोखमें तू क्या पत्थर पैदा हुआ? तैंने यह जो नर-तनु पाया है यह बड़ी भारी निधि है, जिस विधिसे कर सके इसे सार्थक कर। सन्त तुझे जगाकर पार उतर जायँगे। (तू भी पार उतरना चाहे तो कुछ कर)।'

* * *

'अनेक योनियोंमें भटकनेके बाद (यह नर-नारायणकी) जोड़ी मिली है। नर-तनु-जैसा ठाँव मिला है, नारायणमें अपने चित्तका भाव लगा।'

* * *

'सुन रे सजन! अपने स्वहितके लक्षण सुन। मनसे पण्ढरिनाथका सुमिरन कर। नारायणका गुणगान कर, फिर बन्धन कैसा? भव-सिन्धुको तो यह जान ले कि इसी किनारेमें समा जायगा, फिर पार करना क्या? सब शास्त्रोंका सार और श्रुतियोंका मर्म और पुराणोंका आशय तो यही है। ब्राह्मण,

क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तथा चाण्डालको भी इसका अधिकार है; बच्चोंको, स्त्रियोंको, पुरुषोंको और वेश्यादिकोंको भी इसका अधिकार है। तुका कहता है कि—अनुभवसे हमने यह जाना है। इस आनन्दको लेनेवाले और भी भक्त हैं (जो यही कहेंगे जो मैं कह रहा हूँ)।'

जो मन करोगे वही पाओगे। अभ्याससे क्या नहीं होता?

'उद्योग करनेसे असाध्य भी साध्य हो जाता है। अभ्यास ही फल देनेवाला है।'

श्रीहरिकी शरणमें जाओ, उन्हींके होकर रहो, उनके गुण-गानमें मग्न हो जाओ, संसार जो हौआ बनकर सामने आया है उसे भगा दो, और 'इसी देहसे, इन्हीं आँखोंसे मुक्तिका आनन्द लूटो।' हरि-नाम-संकीर्तनसे भव-सिन्धु यहीं सिमट जाता है, यह तो तुकाराम महाराज अपने 'अनुभव' से कहते हैं। हरि-भजनमें क्या आनन्द है सो तुकारामजीमें ही देख लीजिये—

'दिन-रातका पता नहीं, यहाँ तो अखण्ड ज्योति जगमगा रही है। इसका आनन्द जैसे हिलोरें मारता है उसके सुखका वर्णन कहाँतक करूँ?'

श्रीहरिके प्रसादसे सब दुःख नष्ट हो जाते हैं—

'यही भव-रोगकी ओषधि है। जन्म, जरा और सब व्याधि इससे दूर हो जाती है। हानि तो कुछ भी नहीं होती, षड्रिपुओंका हनन अवश्य हो जाता है। छहों शास्त्र, चारों वेद और अठारहों पुराणोंके जो सार-सर्वस्व हैं उन श्यामसुन्दरकी छविको अपनी

आँखों देख लो, कुटिल-खल-कामियोंका स्पर्श अपनेको न होने दो, मुखसे निरन्तर विष्णुसहस्रनाम-माला फेरते रहो।'

'अपने (निज स्वरूपके) घरसे बाहर न निकलो, बाहरकी (देह-बुद्धिकी) हवा न लगने दो, बहुत बोलना छोड़ दो और दूसरे (अनात्म) सङ्गसे सावधान होकर बचते रहो।'

'अनुताप-तीर्थमें नहा लो और दिग्-वस्त्रको ओढ़ लो, जिसमें आशाका पसीना निकल जाय। तब तुम वैसे ही हो जाओगे जैसे पहले थे (अर्थात् मूल सच्चिदानन्द-स्वरूप)। इसलिये तुका कहता है, वैराग्य-भोग करो।'

अनुताप करते हुए भगवान्‌से यह कहो—'मैं तो अनाथ हूँ, अपराधी हूँ, कर्महीन हूँ, मन्दमति और जडबुद्धि हूँ। हे कृपानिधे! हे मेरे माता-पिता! अपनी वाणीसे मैंने कभी तुम्हें नहीं याद किया। तुम्हारा गुण-गान भी न सुना और न गाया। अपना हित छोड़ लोक-लाजके पीछे मरा किया। हरि-कीर्तनमें सन्तोंका संग मुझे कभी अच्छा नहीं लगा। पर-निन्दामें बड़ी रुचि थी, दूसरोंकी खूब निन्दा की। परोपकार न मैंने किया न दूसरोंसे कभी कराया, दूसरोंको पीड़ा पहुँचानेमें कभी दया न आयी। ऐसा व्यवसाय किया जो न करना चाहिये और उससे बनाया क्या तो अपने कुटुम्बका भार ढोता फिरा। तीर्थोंकी कभी यात्रा नहीं की, केवल इस पिण्डके पालन करनेमें हाथ-पैर हिलाता रहा। मुझसे न सन्त-सेवा बनी, न दान-पुण्य बना, न भगवान्‌की मूर्तिका दर्शन और पूजन-अर्चन ही बना। कुसङ्गमें पड़कर अनेक अन्याय और अधर्म किये। स्वहित क्या है, उसमें क्या

करना होता है, कुछ समझ नहीं पड़ता, क्या बोलूँ, क्या याद करूँ यह कुछ भी नहीं जान पड़ता। मैंने अपना आप ही सत्यानाश किया, मैं अपना आप ही बदला लेनेवाला वैरी बना। तुका कहता है, भगवन्! तुम दयाके निधान हो, मुझे इस भव-सागरके पार उतारो।'

भगवान्‌से इस प्रकार पश्चात्तापके साथ गद्गद-कण्ठसे अपने सब कृत कर्मों और अपराधोंको कह जाना चाहिये, उनसे करुणाकी भिक्षा और सहायता माँगनी चाहिये, उनकी शरण हो जाना चाहिये, जो दोष पहले हो चुके उन्हें फिरसे न करनेके सम्बन्धमें सावधान रहना चाहिये और सदा ही भगवान्‌का स्मरण, भगवान्‌का गुण-गान और भगवान्‌का ध्यान करते रहना चाहिये। इससे वह दीनवत्सल अवश्य दया करेंगे और ऊपर उठा लेंगे। शुद्ध-चित्तसे भगवान्‌के गुण गावे, सन्तोंके चरण पकड़े, दूसरोंके गुण-दोषोंकी व्यर्थ चर्चा करनेमें समय नष्ट न करे, शरीरको सफल करे और इस प्रकार भगवान्‌का प्रसाद लाभ करे।

....

'भवसागरको तैरकर पार करते हुए, चिन्ता किस बातकी करते हो? उस पार तो वह कटिपर कर धरे खड़े हैं। जो कुछ चाहते हो उसके वही तो दाता हैं। उनके चरणोंमें जाकर लिपट जाओ। वह जगत्स्वामी तुमसे कोई मोल नहीं लेंगे, केवल तुम्हारी भक्तिसे ही तुम्हें अपने कन्धेपर उठा ले जायँगे। तुका कहता है, पाण्डुरङ्ग जहाँ प्रसन्न हुए तहाँ भक्ति और मुक्तिकी चिन्ता क्या?—वहाँ दैन्य और दारिद्र्य कहाँ?'

५ संसारमें रहते हुए सावधान

'हम संसारी लोग भला संसारको कैसे छोड़ सकते हैं?' ठीक है, संसारमें ही बने रहो पर हरिको न भूलो। हरिनाम जपते हुए सब काम न्याय-नीतिसे किये चलो। इससे संसार भी सुखद होता है। नहीं तो 'सवाब न अजाब, कमर टूटी मुफ्तमें' वाली मसल ही चरितार्थ हुई तो क्या संसार बना? यह बना कुछ तो पशुओंका-सा संसार बना, मनुष्योंका-सा नहीं! इस संसारमें सुख है ही नहीं। कारण 'सुख जौ बराबर है तो दुःख पहाड़ बराबर।' संसारके विषयमें सबका यही अनुभव है। माँ-बाप, स्त्री-पुत्र, सङ्गी-साथी, धन-दौलत, राजा-महाराजा कोई भी क्या हमें मृत्युसे बचा सकते हैं? यह 'शरीर तो कालका कलेवा है।'

(१) कौड़ी-कौड़ी जोड़कर करोड़ रूपये इकट्ठे करो, पर साथ तो एक लंगोटी भी न जायगी।

(२) संगी-साथी एक-एक करके चले। अब तुम्हारी भी बारी आवेगी, क्या गाफिल होकर बैठे हो? अब अकेले क्या करोगे? काल सिरपर सवार है। अब भी सावधान हो जाओ, इससे निस्तार पानेका कुछ उपाय करो।

(३) तुम्हारी देह तो नहीं रहेगी, इसे काल खा जायगा। अब भी जागो, नहीं तो, तुका कहता है, धोखा खाओगे (नरोंके बीच मारे जाओगे)।

इस बातको ध्यानमें रखो और अन्दर सावधान रहते हुए प्रपञ्च करो।

'सचाईको बिना छोड़े सच्चे व्यवहारसे धन जोड़ो और उसमें मनको बिना अटकाये निःसंग होकर उसका उपयोग करो। पर-उपकार करो, पर-निन्दा मत करो और पर-स्त्रियोंको माँ-बहिन समझो। प्राणिमात्रमें दया-भाव रखो, गाय-बैल आदिका पालन करो। जंगलमें जहाँ कोई जलाशय न हो, वहाँ प्यासेको पानी पिलाओ।'

इस प्रकार अपना आचरण बना लोगे तो गृहस्थाश्रम ही परमार्थका साधन हो जायगा। और इस आचरणमें कुछ कठिनाई भी नहीं है।

'पर-स्त्रीको माता माननेमें हमारा क्या खर्च हुआ जाता है?'

पर-द्रव्यकी इच्छा या पर-निन्दा हम नहीं करेंगे ऐसा निश्चय यदि कोई कर ले तो 'इसमें उसके पल्लेका क्या जायगा? बैठे-बैठे राम-राम रटा करें, सन्त-वचनोंपर विश्वास रखें, सत्य-भाषणका व्रत ले लें तो इससे क्या हानि होगी?'

'तुका कहता है, इससे तो भगवान् मिल जायँगे, और कुछ करनेका काम ही नहीं।'

पर घर-गृहस्थीके प्रपञ्चमें लगे रहते हुए एक बात न भूलना। क्या?—

'यह क्षणकालीन द्रव्य, दारा और परिवार तुम्हारा नहीं है। अन्तकालमें जो तुम्हारा होगा वह तो एक विट्ठल ही है, तुका कहता है, उसीको जाकर पकड़ो।'

तुकाराम महाराजका यही मुख्य उपदेश है। 'मुख्य उपासना सगुण भक्ति' के विषयमें विस्तारपूर्वक विवेचन इससे पहले

किया जा चुका है। यथार्थमें तुकारामजीके सभी अभंग इसी प्रकारकी मेघ-वर्षा हैं। हमारे ऊपर इस अमृत-वर्षाकी झड़ी लगे और हमलोगोंमेंसे हर कोई कृतार्थ होनेका अपना रास्ता ढूँढ़ ले। 'भगवान्, भक्त और भगवन्नाम' के विषयमें तुकारामजीके उपदेश इससे पहले अनेक बार उल्लिखित हो चुके हैं, इसलिये यहाँ उनकी पुनरावृत्ति न करके अब यह देखें कि सर्व-सामान्य व्यवहार-नीतिके सम्बन्धमें विविध प्रकारके लोगोंको उन्होंने किस-किस प्रकारके उपदेश दिये हैं।

६ संसारियोंको उपदेश

निष्काम भक्तिका डंका बजानेके लिये ही तुकारामजीका अवतार हुआ था। जो लोग और जो मत भक्तिके विरोधी थे उनकी खबर लेना तुकारामजीके लिये इस प्रसंगसे आवश्यक हुआ, यही नहीं, प्रत्युत भक्तिमार्गके भी कई स्वाँग और ढोंग उन्हें जड़-मूलसे उखाड़कर फेंकने पड़े। भक्तिके नामपर समाजमें प्रतिष्ठा पाये हुए अनेक अभिमानी, विषयाचारी, अनाचारी, पेटके पुजारी और दाम्भिक लोग अपना-अपना उल्लू सीधा कर रहे थे। यह आवश्यक था कि उन्हें सच्चा भक्ति-मार्ग दिखाया जाता और इसके लिये यह भी आवश्यक हुआ कि उनके दोष उन्हें दिखाये जाते।

'भगवान्‌के कहलाकर भगवान्‌का ही अनादर करते हैं! यह देखकर बड़ा ही आश्चर्य होता है। अब उन साधारण लोगोंको कह ही क्या सकते हैं जिन बेचारोंपर गृहस्थीका बोझ लदा हुआ है?'

भगवान्‌का आदर-सत्कार कैसे किया जाता है, हाथ जोड़कर कैसी नम्रताके साथ उनके सामने रहना पड़ता है, भगवान्‌के

सामने कोई कोलाहल न मचे इसका प्रबन्ध करके कैसी शान्ति, शुद्धता और लीनताके साथ उनका पूजन करना चाहिये, उत्तमोत्तम पदार्थ भगवान्‌के लिये कैसे जुटाये जाते हैं, कम-से-कम भगवान्‌के सामने तो मनके सारे मलिन विचार दूर करके कैसी अन्तर्बाह्य शुचिताके साथ जाना चाहिये, ये सीधी-सादी बातें अपनेको भगवान्‌के भक्त बतानेवाले लोग न जानें, यह तो बड़े ही दुःख और आश्चर्यकी बात है ! कथा-कीर्तनमें कथा-कीर्तनको एक तमाशा-सा या एक बहुत मामूली रस्म-सी समझते हुए अपने-अपने धन-मानकी बड़ाईमें फूले रहकर गप-शपमें वह समय किसी प्रकार बिता देना, जोर-जोरसे बोलना, सन्तोंका सत्कार करनेसे मुकरना, पान चबाते हुए या अशुचि-अवस्थामें भगवान्‌के सामने जाना, भगवान्‌की पूजाके लिये सड़ी सुपारियाँ रखना, मोटे चावल और सस्ते-से-सस्ता घी हवनके लिये लाना, ऐसी असंख्य बातें हैं जो लोग जाने-बे-जाने किया करते हैं ! भगवान्‌को चाहते हो तो चित्तको मलिन क्यों रखते हो ? अभिमान, अकड़, आलस्य, लोक-लाज, चञ्चलता, असद्व्यवहार, मनोमालिन्य इत्यादि कूड़ा-करकट किसलिये जमा किये हुए हो ? कम-से-कम भगवान्‌के भक्त कहानेवालोंको तो ऐसा नहीं चाहिये । केवल बाहरी भेस बना लेनेसे थोड़े ही कोई भक्त होता है ?

'आग लगे उस बनावटी स्वाँगमें जिसके भीतर कालिमा भरी हुई है।

वस्त्रोंको लपेटकर पेट बड़ा कर लेनेसे, गर्भवती होनेकी बात उड़ानेसे, दोहदका स्वाँग भरनेसे 'बच्चा थोड़े ही पैदा होता है केवल हँसी होती है !'

'इन्द्रियोंका नियमन नहीं, मुखमें नाम नहीं; ऐसा जीवन तो भोजनके साथ मक्खी निगल जाना है, ऐसा भोजन क्या कभी सुख दे सकता है ?'

* * *

'विषय-विलासमें पड़े मिष्टान्नका भोजन करके इस पिण्ड पोसनेकी ही जिसे सूझती है उसका ज्ञान तो बड़ा ही अधम है। एक-एक कौर बड़े स्वादसे मुँहमें डालता है और यह नहीं जानता कि यह पिण्ड तो क्षणभर ही साथ रहनेवाला है, इसे पोसनेसे क्या हाथ आनेवाला है !'

इतना भी सोच-विचार जिसमें नहीं उसे क्या कहा जाय ? शुक, जनक-जैसे महायोगी अपने वैराग्य-बलसे ही परमपदके अधिकारी हुए। संसारकी सारी आशाओं और अभिलाषाओंका त्याग किये बिना भगवान् नहीं मिलते।

'आशाको जड़-मूलसे उखाड़कर फेंक दो तब गोसाईं कहलाओ। नहीं तो संसारी बने रहो, अपनी फजीहत क्यों कराते हो ?'

श्रीहरिसे मिलना चाहते हो तो आशा-तृष्णासे बिल्कुल खाली हो जाओ। जो नाम हरिका लेते हैं पर—'हाथ लोभमें फँसाये रहते और असत्, अन्याय और अनीतिको लिये चलते हैं वे अपने पुरखोंको नरकमें गिराते हैं और नरकके कीड़े बनाते हैं।'

* * *

'अभिमानका मुँह काला ! उसका काम अँधेरा ही फैलाना है। सब काज मटियामेट करनेके लिये पीछे लोक-लाज लगी हुई है।'

दम्भ, आशा, तृष्णा, अभिमान, भजन करते लोकलाज—इन सब दोषोंसे कम-से-कम वे लोग तो बचें जो अपनेको भगवान्‌के प्यारे बतलाते हैं ! जो जी-जानसे भगवान्‌को चाहते हैं वे अपने प्रेमको सावधानीसे बचाये रहें, प्रतिष्ठाको शूकरी-विष्ठा समझ लें, वृथा वादमें न उलझें, अहङ्कारी तार्किकोंके सङ्गसे दूर रहें और कोई ढोंग-पाखण्ड न रचें ।

'स्वाँग बनानेसे भगवान् नहीं मिलते । निर्मल-चित्तकी प्रेम-भरी चाह नहीं तो जो कुछ भी करो, अन्त केवल आह ! है ! तुका कहता है, जानते हैं पर जानकर भी अन्धे बनते हैं !'

* * *

'सबके अलग-अलग राग हैं, उनके पीछे अपने मनको मत बाँटते फिरो । अपने विश्वासको जतनसे रक्खो, दूसरोंके रंगमें न आओ ।'

* * *

'वाद-विवाद जहाँ होता हो वहाँ खड़े रहोगे तो उस फन्देमें फँसोगे । मिलो उन्हींमें जो सर्वतोभावसे सम-रसमें मिले हों । वे ही तुम्हारे कुल-परिवार हैं ।'

भक्तोंके मेलेका जो आनन्द है उसका कुछ भी आस्वाद अविश्वासीको नहीं मिलता और वह सिद्धान्तमें कंकड़ीकी तरह अलग ही रहता है ।

'भगवान्‌की पूजा करो तो उत्तम मनसे करो । उसमें बाहरी दिखावेका क्या काम ? जिसको जनाना चाहते हो वह अन्तरकी बात जानता है । कारण, सच्चोंमें वही सच है ।'

परन्तु—

'भक्तिकी जाति ऐसी है कि सर्वस्वसे हाथ धोना पड़ता है।'

* * *

'नेत्रोंमें अश्रुबिन्दु नहीं, हृदयमें छटपटाहट नहीं तो भक्ति काहे की? वह तो भक्तिकी विडम्बना है, व्यर्थका जन-मन-रञ्जन है। स्वामीकी सेवामें जो सादर प्रस्तुत नहीं हुआ उसे मिल ही क्या सकता है? तुका कहता है, जबतक दृष्टिसे दृष्टि नहीं मिली तबतक मिलन नहीं होता।'

'यह तो क्रियायुक्त अनुभवका काम है।'

अहंता नष्ट हो। भगवान्‌के स्तुति-पाठमें सच्ची भक्ति हो, हृदयकी सच्ची लगन हो। हरि-चरणोंमें पूर्ण निष्ठा हो। तब काम बने।

'सेवकके तनमें जबतक प्राण हैं तबतक स्वामीकी आज्ञा ही उसके लिये प्रमाण है।'

देव-धर्मगुरुओंकी आज्ञाका इस प्रकार निष्ठापूर्वक पालन करके भगवान्‌के होकर रहो। ज्ञान लव-दुर्विदग्ध तार्किकोंकी अपेक्षा अपढ़, अनजान भोले-भाले लोग ही अच्छे होते हैं। तुकारामजी कहते हैं कि, 'मूर्ख बल्कि अच्छे हैं, ये विद्वान् तार्किक तो किसी कामके नहीं।'

तुकारामजीका कीर्तन सुनने या दर्शन करने जो लोग आया करते थे उनमें संसारी लोग ही प्रायः हुआ करते थे। तुकारामजीने अपनी गृहस्थीकी होली जला दी, एकनाथ महाराजकी

गृहस्थी अनुकूल गृहिणीके होनेसे सुखसे निभ गयी और समर्थ रामदास गृहस्थीके वन्धनमें पड़े ही नहीं। ये तीनों ही महात्मा विरक्त थे, तीनों ही अन्दरसे पूर्ण त्यागी थे, बाहरी वेशकी बात तो किसी भी हालतमें गौण ही होती है। पर सर्वसाधारण मनुष्य ऐसे कैसे बन सकते हैं? सब तो बाल-बच्चे, घर-द्वार, काम-धन्धेमें ही उलझे रहते हैं, उलझा नहीं रहता एकाध ही कोई! इसलिये इन महात्माओंने संसारको संसारके अनुरूप ही उपदेश दिया है। घर-गिरस्तीका सब काम करो, पर भगवान्‌को मत भूलो, मुखसे 'हरि, हरि' उचारो और सदाचारसे रहो, श्रुति-स्मृति-पुराणोक्त धर्मका पालन करो, इससे अधिक सामान्य जनोंको और क्या उपदेश दिया जा सकता है? भगवान्‌के लिये सर्वस्वसे हाथ धोनेको तैयार हो जाना पूर्व-पुण्यके बिना नसीब नहीं होता। इसलिये अब सामान्य जनोंको तुकारामजीने तरह-तरहसे कैसे समझाया है, कभी मनाकर और कभी डाँट-डपटकर कैसे सावधान किया है, पटरीपरसे नीचे उतर आयी हुई समाजकी गाड़ीको धर्मनीति-न्यायकी पटरीपर फिरसे कैसे लाकर खड़ा किया, लोगोंके दोष दूर करनेके लिये उन दोषोंको कैसे निधड़क चौड़े ले आये और कैसी उन्होंने उनमें भगवान्, भक्त और धर्मके प्रति सच्चा प्रेम जगानेके प्रयत्नकी हद कर दी, इसको अब हमलोग देखें।

'इस संसारमें आये हो तो अब उठो, जल्दी करो और उन उदार पाण्डुरङ्गकी शरणमें जाओ। यह देह तो देवताओंकी है, धन सारा कुवेरका है, इसमें मनुष्यका क्या है? देने-दिलाने-वाला, ले जाने-लिवा ले जानेवाला तो कोई और ही है, इसका यहाँ

क्या धरा है ? निमित्तका धनी बनाया है इस प्राणीको और यह 'मेरा-मेरा' कहकर व्यर्थ ही दुःख उठाता है। तुका कहता है, रे मूर्ख ! क्यों नाशवान्‌के पीछे भगवान्‌की ओर पीठ फेरता है ?'

बुद्धिमानोंके लिये यह एक ही वचन बस है ! चञ्चल चित्तका पीछा न कर 'सब समय प्रेमसे गाते रहो।' नामके समान और कोई सुलभ साधन नहीं है। यह निश्चयका मेरु है। सबसे हाथ जोड़कर तुकारामजी यह विनती करते हैं कि, 'अपने चित्तको शुद्ध करो।'

'भगवान्‌का चिन्तन करनेमें ही हित है। भक्तिसे मनको शुद्ध कर लो। तब, तुका कहता है, दयानिधि, इस नामके कारण, पार उतारेंगे।'

कथा-कीर्तन सुनते नींद आ जाती है और पलङ्गपर पड़ा-पड़ा यह संसारकी उधेड़-बुनमें छटपटाता जागकर रात बिताता है ! 'कर्म-गति ऐसी गहन है, कोई कहाँतक रोये !' यही जागरण और यही छटपटाहट भगवान्‌के चिन्तनमें क्यों नहीं लगा देते ? भगवान्‌ने जो इन्द्रियाँ दी हैं उन्हें भगवान्‌के काममें क्यों नहीं लगा देते ?

'मुखसे उनका कीर्तन करो, कानोंसे उनकी कीर्ति सुनो, नेत्रोंसे उन्हींका रूप देखो। इसीके लिये तो ये इन्द्रियाँ हैं। तुका कहता है, अपना कुछ तो स्व-हित साध लेनेमें अब सावधान हो जाओ।'

* * *

'संसारका बोझ सिरपर लादे हुए दौड़नेमें बड़े खुश हैं। टट्टी जानेके लिये पत्थर इकट्ठे करते हैं, मनमें भी उसीके सङ्कल्प

रखते हैं। लोक-लाज केवल नारायणके काममें है, यहाँ कुछ बोलते हुए जीभ भी लड़खड़ाने लगती है। तुका कहता है, अरे निर्लज्ज! अपने संसारीपनपर—बैलकी तरह इस बोझके ढोनेपर इतना क्यों इतराता है?'

ऐसे अत्यन्त आसक्त संसारियोंके लिये तुकारामजीका उपदेश है—

'श्रीहरिके जागरणमें तेरा मन क्यों नहीं रमता? इसमें क्या घाटा है? क्यों अपना जीवन व्यर्थमें खो रहा है? जिनमें अपना मन अटकाये बैठा है वे तो तुझे अन्तमें छोड़ ही देंगे। तुका कहता है, सोच ले, तेरा लाभ किसमें है?'

*　　　*　　　*

'पर-द्रव्य और पर-नारीका अभिलाष जहाँ हुआ वहींसे भाग्यका ह्रास आरम्भ हुआ।'

'स्त्री और धन बड़े खोटे हैं। बड़े-बड़े इनके चक्करमें मटियामेट हो गये। इसलिये इन दोनोंको छोड़ दे, इसीसे अन्तमें सुख पायेगा।'

यह उपदेश तुकारामजीने बार-बार किया है। अपनी स्त्रीके इशारेपर नाचकर स्त्रैण न बने और पर-स्त्रीको छूत माने! इससे गृहस्थीका सारा प्रपञ्च उदासीन भावसे करते हुए सारा ध्यान परमार्थमें लगाते बनता है। अपनी स्त्रीसे भी केवल युक्त सम्बन्ध ही रखे, तभी कुछ पुरुषार्थ बन सकता है। इसी अभिप्रायसे एक स्थानमें तुकारामजीने कहा है कि 'स्त्रीको दासीकी तरह रखे।' श्रीमद्भागवतमें भी स्त्री और स्त्रैणका संग बड़ा ही हानिकर बताया है।

'विधिपूर्वक सेवन विषय-त्यागके ही समान है।' विषयीपन स्त्री और पुरुष दोनोंकी हानि करनेवाला है।

*　　　*　　　*

अहिंसा तो भागवतधर्मकी एक खास चीज है। वारकरियोंमें कोई भी मांसाहारी नहीं होता, यदि कोई हो तो उसे लुच्चा-लफंगा समझना चाहिये। सबमें भगवान्‌को देखो, यही तो सन्तोंकी मुख्य शिक्षा है। प्राणिमात्रमें हरिके सिवा और कोई दूजापन न देखे। इस स्थितिको जो प्राप्त होना चाहे उसके लिये हिंसा तो त्याज्य ही है। 'धिक्कार है उस दुर्जनको जिसमें भूत-दया नहीं।' सब जीवोंको जो अपने समान जीव नहीं समझता उस चाण्डालको क्या कहा जाय ?

'तुका कहता है, दूसरोंके गलेपर छुरी फेरते तो इसे मजा आता है, पर जब अपनी बारी आती है तब रोता है।'

कालीमाईके सामने अपनी मनौती पूरी करने या पेट भरनेके लिये—

'दूसरोंके सिर काटते हैं, इस निर्दयताकी कोई हद नहीं! बच्चाजी दूसरोंके सिर क्या काटते हैं, उधार लेकर खाते हैं और यमपुरीमें जाकर उसे चुकाते हैं। दूसरोंकी गर्दनपर, जो छुरी चलाता है, यह नहीं जानता कि इन जीवोंमें भी जान है, उसके-जैसा पापी वही है। आत्मा नारायण घट-घटमें है, पशुओंमें भी है, इतनी-सी बात क्या वह नहीं समझ सकता ? जीवको बिलखता-चिल्लाता देखकर भी इस निर्दयीका हाथ उसपर जाने कैसे चलता है ?'

ऐसे चाण्डालको यह भी नहीं सूझता कि इस कामसे हम दूसरे जन्मके लिये अपने वैरी निर्माण कर रहे हैं!

'बड़े शौकसे उसका मांस खाते हैं, यह नहीं जानते कि इस तरह वैरी जोड़ते हैं!'

*　　　*　　　*

कन्या, गौ और हरि-कथाका विक्रय करके नरकका रास्ता नापनेवालोंको तुकारामजीने बहुत-बहुत धिक्कारा है। 'गायत्री बेचकर जो पेट पापीको पालते हैं, कन्याका विक्रय करते हैं और नाम-गानकर जो द्रव्य माँगते हैं, वे घोर नरकमें जा गिरते हैं, उनका संग हमें पसन्द नहीं! ये मनुष्य-योनिमें 'कुत्ते और चाण्डाल हैं।' 'शास्त्रोंमें सालंकृत कन्यादान, पृथ्वीदान समान' कहा है। पर जो कन्याका विक्रय करते हैं, गो-रक्षण और गो-पालन अपना स्व-धर्म होते हुए भी जो गौओंको बेचनेका व्यवसाय करते हैं, जो हरि-कथा-माता और नामामृतको बेचते फिरते हैं वे अधमोंसे भी अधम हैं।

*　　　*　　　*

स्त्री-जातिको तुकारामजीका सामान्य उपदेश इतना ही हुआ करता था कि स्त्री पतिव्रता बनी रहे, शीलकी रक्षा करे, धर्म-कार्यमें पतिके अनुकूल आचरण करे, घर-आँगन झाड़-बुहार, लीप-पोतकर स्वच्छ रखे, तुलसी और गौकी पूजा करे, अतिथियोंका आतिथ्य और ब्राह्मणोंका सत्कार करे, कथा-कीर्तन श्रवण करे, घरमें सबको सुखी और शान्त रखनेका यत्न करे और बाल-बच्चोंमें भी हरि-भजनका प्रेम उत्पन्न किया करे। एक स्थानमें उन्होंने

कहा है कि कुलवती स्त्री अपनी शुद्धता और सतीत्वकी रक्षाके लिये अपने प्राणतक न्योछावर कर देती है, कभी अनाचारमें नहीं प्रवृत्त होती।

स्त्रीका चित्त शान्त और सन्तोषी होना चाहिये, यह बतलाते हुए क्रोधी स्त्रीका वर्णन करते हैं—

'उनकी भौंहें सदा चढ़ी ही रहती हैं, और हृदय सदा जला ही करता है। मुँह ऐसा लगता है जैसे दो टूक हुई उपरी हो। तुका कहता है, उसका चित्त तो कभी शान्त रहता ही नहीं।'

तुकारामजीने स्त्रीका मुख्य धर्म पातिव्रत्य ही कहा है। पति ही उसके लिये 'प्रमाण' है। तुकारामजीने अपनी स्त्रीको जो उपदेश किया उसका प्रसङ्ग आगे आवेगा; पर यहाँ—

'झाड़-बुहार, तुलसी, अतिथि और ब्राह्मणोंका पूजन, सर्वतो-भावसे भगवद्भक्तोंका दासत्व, मुखमें सदा श्रीविट्ठलका नाम'—इन छः नियमरत्नोंका यह रत्नहार तुकारामजीके प्रसादरूपसे सब स्त्रियोंको अपने गलेमें पहन लेना चाहिये और इस तरह वे—

'अपना गला इस जंजालसे छुड़ा लें, गर्भवासके महान् कष्टसे बचें, इस क्षुद्र सुखपर थूक दें और परमानन्दको प्राप्त करें।'

* * *

स्त्रैण-पति, कुलटा-स्त्री और गुरुकी अवज्ञा करनेवाले कुपुत्रों-को तुकारामजीने बड़ी फटकार बतायी है। जो स्त्री ऐसी जबरजंग

हो कि पतिसे 'अपनी ही सेवा कराती हो, अपनी ही भगवान्-सी पूजा कराती हो' और पतिको 'कुत्ता बनाकर रखे हुए हो' और वह भी 'गधा बनकर' कामान्ध हो उसीको घेरे रहता हो, उसके पीछे अपने ही स्वजनोंको दूर करता हो वह अपने जीवनको व्यर्थ ही नष्ट कर रहा है।

'स्त्रीके अधीन जिसका जीवन हो जाता है, उसके दर्शनसे बड़ा अपशकुन होता है। मदारीके बन्दर-से ये जीव जाने क्यों जीते हैं।'

स्त्रीके मिष्ट-भाषणपर लट्टू होकर किस प्रकार कामी पुरुष अपने हित-नातको छोड़ देता है, इसका बड़ा ही मजेदार वर्णन उन्होंने तीन-चार अभंगोंमें किया है!

एक लाडली स्त्री अपने पतिसे कहती है, 'क्या करूँ! मुझसे अब खाया भी नहीं जाता। दिनमें तीन बार मिलाकर एक मन गेहूँ ही बस होते हैं! परसों ही आप चीनी ले आये सो सात दिनमें दस सेर ही खपी! पेटमें पीड़ा रहती है, इसलिये और तो कुछ नहीं, केवल दूधके साथ चावल खाती हूँ और अनुपानके लिये घी और चीनी चाट जाती हूँ! किसी तरह दिन काटती हूँ! नींद आती नहीं इसलिये बिस्तरके नीचे फूल बिछा लेती हूँ, बच्चोंको पास सुलाऊँ तो सहन नहीं होता इतनी तो दुर्बल हो गयी हूँ, इसलिये आपहीसे कहती हूँ कि बच्चोंको सँभाल लिया करो। मस्तकमें सदा ही पीड़ा रहती है इसलिये चन्दनका लेप लगाना पड़ता है! मेरी तो यह हालत है! मरी जाती हूँ, पर आपको क्या! मेरे तो 'हाड़ गल गये और यह मांस फूल आता है! कहाँतक रोऊँ और किसके पास रोऊँ!'

'तुका कहता है, जीते जी ही गधा बना और मरकर सीधे नरक पहुँचा।'

पतिकी यह गति करनेवाली ऐसी सिर-चढ़ी जबरजंग स्त्री पतिके कान फूँका करती है और फलते-फूलते घरमें फूट डाल देती है। 'पतिसे घुल-घुलकर बातें करती है, कहती है, मेरी-जैसी दुखिया और कोई नहीं!' मुझे सतानेमें तुम्हारी माँ, मेरी देवरानी, जेठानी, देवर, जेठ, ननद सबने जैसे एका कर लिया हो। अब किसकी छायामें रहूँ, बताओ!'

'प्राणोंको मुट्ठीमें लिये बन-ठनके चलती हूँ जिसमें कोई कुछ जाने नहीं, पर आपको अभीतक कुछ खयाल नहीं, कुछ हया नहीं! अब अपना घर अलग करो तो मैं रह सकती हूँ, नहीं तो अब प्राण ही दे दूँगी।'

लाडली स्त्रीका ऐसा निश्चय जब सुना तब वह कामान्ध लम्पट पति अपनी स्त्रीसे कहता है, 'तुम ऐसा दुख मत करो, देखो, मैं कल ही माँ-बाप, भाई-बहन सबको अलग करता हूँ और तब—

'तुम्हें सिकड़ी, बाजूबन्द, खौर और बेंदी सब बनवा दूँगा। फिर मेरी-तुम्हारी जोड़ी खूब बनेगी।'

'तुका कहता है, स्त्रीने उसे गधा बनाया और यह भी उसके हौसलोंका बोझ लादे उसके पीछे-पीछे चला।'

ऐसे स्त्रैण पुरुषोंका जीवन बिल्कुल बेकार है। उसका 'न परलोक बनता है न इहलोक ही।' न वह प्रपञ्च अच्छी तरह

कर सकता है न परमार्थ ही साध सकता है। हिन्दू-समाज सदासे ही अविभक्त कुटुम्बपद्धतिका माननेवाला है। माँ-बाप, भाई-बहिन, देवर-जेठ, देवरानी-जेठानी, सास-ननद, अतिथि-अभ्यागत— इन सबसे भरा हुआ गोकुल-सा बना हुआ घर बड़े भाग्यका ही लक्षण समझा जाता है। पर ऐसे घरमें यदि एक भी पुरुष स्त्रैण बना तो फिर उस घरकी मान-प्रतिष्ठा धूलमें मिलते देर नहीं लगती, परम्परा टूट जाती है, और कुल-धर्म नष्ट हो जाता है। इसीलिये तुकारामजीने ऐसे स्त्रैण पुरुषोंको धिक्कारा है। 'मियाँ-बीबी' बनकर रहनेवाले टटपुँजियोंके संसार-धर्म-कर्मका लोप ही होता है। फिर यही होता है कि—

'स्त्री ही माँ बन जाती है और आप ही बाप बन जाता है। खर्च तो खूब होता है पर सब चेष्टाएँ अपसव्य बन जाती हैं।'

प्यारीको कष्ट होगा इस भयसे यह देवधर्म और पितृकर्म सबको काट देता है। श्राद्ध-पक्षमें स्त्री ही माताके स्थानमें और स्वयं पिताके स्थानमें बैठकर यथेष्ट भोजन करते हैं और हाथ-पैर फैलाकर सो जाते हैं! खर्च खूब बढ़कर करते हैं! यों तो अपसव्य करनेका काम श्राद्ध या पक्षमें ही पड़ता है पर इनकी सब चेष्टाएँ अपसव्य याने वाम, धर्महीन होती हैं। ईश्वर, धर्म, पितर, सन्त इन सबकी ओर पीठ ही फेरे रहते हैं। तुकारामजीने ऐसोंको बहुत धिक्कारा है!

* * *

पर्वकालमें कोई ब्राह्मण आ गया तो उसे खाली हाथ लौटाना, एकादशीके दिन यथेष्ट भोजन करना, ब्राह्मणके लिये खाँड भी न

जुटे और राजदरबारमें या राजद्वारपर बन-ठनकर जाना, कीर्तनसे भागकर चौसर खेलना या नटोंके नाच-तमाशे देखना, सन्तोंकी निन्दा करना और रास्तेमें कोई सन्त मिल जायँ तो उनसे जाँगड-चोरका-सा बर्ताव करना, गौकी सेवा न करके घोड़ेकी चाकरी करना, द्वारपर तुलसीका बिरवा न लगाना, देव-पूजन और अतिथि-सत्कार न करके भरपेट भोजन करना, द्वारपर भिखारी चिल्लाये तो चिल्लाता रहे उसे मुट्ठीभर अन्न भी न देना, कन्या-विक्रय करना, स्त्रीको कथा-कीर्तन सुनने जाने न देना इत्यादि अनेक अनाचारों-का बड़े कठोर शब्दोंमें तुकारामजीने निषेध किया है। पतित, दुराचारी, दाम्भिक कहीं भी मिल जाता तो तुकारामजी बिना उसकी खबर लिये नहीं छोड़ते थे। ब्राह्मणोंमें जो अनीति, अन्याय, ढोंग और दुराचार उन्होंने देखे उनपर भी खूब कोड़े लगाये हैं परन्तु इनसे किसी भी सद्ब्राह्मणको कोई चोट नहीं लगती और चोट लगे तो वह ब्राह्मण ही क्या! दोष किसीमें भी हों वे हैं तो निन्द्य ही। ब्याज खानेकी वृत्ति करनेवाले, अन्त्यजोंके घर जाकर उनसे खिचड़ी माँगकर खानेवाले और उनसे लेन-देन करते हुए उनका थूक अपने चेहरेपर गिरा लेनेवाले, गन्दी गालियाँ देनेवाले, आचारभ्रष्ट ब्राह्मणोंकी उन्होंने खूब खबर ली है। तुकारामजीके ये प्रहार किसी जातिपर नहीं, जिनके जो दोष हैं उनपर हैं, यह बात ध्यानमें रहे। ऐसे तो ब्राह्मणोंको तुका-रामजी पूजनीय मानते थे। ब्राह्मणोंके प्रति उनका पूज्यता-भाव उनके सैकड़ों उद्गारोंद्वारा प्रकट हुआ है। धर्म-कर्ममें ब्राह्मणोंको ही अग्रपूजाका मान वह दिया करते थे और सब वर्णोंको उनका

यही उपदेश होता था कि ब्राह्मणोंको धर्मगुरु मानो। सब वर्ण भगवान्‌ने निर्माण किये हैं और सब वर्ण नारायणके ही हैं, यही उन्होंने कहा है। ब्राह्मण-विरोधी और ब्रह्म-द्वेषियोंको यह कहकर उन्होंने बड़ी फटकार बतायी है कि ये लोग ऐसे हैं कि 'ब्राह्मणोंको नमस्कार करते इनके चित्तमें भक्ति नहीं होती और तुर्कके सामने जाते हुए उसकी बाँदीके बेटे बनकर जाते हैं।' तुकारामजी यह चाहते थे कि समाजमें ब्राह्मणोंका जो गुरुपद है उसकी प्रतिष्ठा बनी रहे और उनमें जो दोष आ गये हैं वे नष्ट हो जायँ।

७ भण्डाफोड़

संसारी जीवोंको 'हरिभजन और सदाचार' का उपदेश करते हुए दुराचार फैलानेवाले दाम्भिकोंका भण्डाफोड़ भी बड़ी निर्भयता-से किया है। सीधा रास्ता दिखाते चलते हुए रास्तेमें बिछे काँटोंको भी अलग करते जाना पड़ता है और ऐसे काँटे संसारी जीवोंकी अपेक्षा परमार्थका ढोंग बनानेवाले उपदेशक और गुरु बनकर पुजवानेवालोंमें ही अधिक होते हैं! देवऋषी, भगत, जोगी, मौनी, मानभाव, शाक्त, नाथपन्थी, बैरागी, गोसाईं, अति-त्यायी, साधक, भिक्षाव्यवसायी, वितण्डावादी आदि नाना वेशधर बहुरूपी बहुरंगियोंको उन्होंने लथेड़ा है। इन नानाविध पन्थोंमें जो अनीति और अनाचार, दम्भ और दुराचार, छलना और वञ्चना आदि प्रकार दिन-दिन बढ़ते ही जा रहे थे उन सबको तुकारामजीने उधेड़ डाला है। 'ढोंग बनानेसे भगवान् मिलते हों, ऐसा नहीं है।' यह कहकर तुकारामजी बतलाते हैं कि 'ऐसे जो माया-जाल हैं

उनमें नन्दलाल नहीं हैं।' इसलिये इन 'पेट-पुजारी सन्तों' के फेरमें कोई न पड़े, यही उन्होंने जनताको बार-बार जताया है। इनके सिवा फिर कीर्तन-कथा-वाचक व्यास, गुरु, कवि, विद्वान्, भक्त, सन्त आदि कहानेवालोंमें भी जो-जो खोटाई उनके नजर पड़ी उसको वह चौड़े ले आये हैं!

इन सब उपदेशकोंसे समाजका बहुत बड़ा काम निकलता है, समाजको इनकी आवश्यकता है, इससे लोग इन्हें मानते भी हैं इसलिये तो इन्हें अपने आपको अत्यन्त निर्दोष और निर्मल बना लेना चाहिये। पर ऐसी बुद्धि, ऐसा हृदय, ऐसी सत्यनिष्ठा बहुत ही कम लोगोंमें होती है। प्रायः बाजारू आदमी ही अधिक होते हैं। तुकारामजी उन्हें उपदेश देते हैं कि ऐसा ढोंगीपना छोड़ दो, हरि-प्रेममें लौ लगाओ और सदाचार-पालन करो। इस उपदेशके कुछ उदाहरण हमलोग भी देख लें। हरि-कीर्तनसे तुकारामजीकी अत्यन्त प्रीति होनेसे उनकी ऐसी लालसा थी कि कीर्तन करनेवालोंमें कोई भी दाम्भिक और ढोंगी कीर्तनकार न हो। पेटके लिये कोई कीर्तन न करे, कीर्तनको धन्धा न बना ले। कीर्तनके नामपर 'जो द्रव्य लेते-देते हैं, तुका कहता है, वे दोनों नरकमें गिरते हैं।' कीर्तनकार और व्यास समाजके गुरु हैं। उन्हें निर्लोभ, निस्पृह और दम्भरहित होकर हरि-भक्ति और सदाचारका समाजमें प्रचार करना चाहिये, जैसा कहें वैसा स्वयं रहना चाहिये। हरि-कीर्तन करनेवाले हरिदास, पौराणिक कथावाचक व्यास, शास्त्री, पण्डित, गुरु सजनेवाले, सन्त बने फिरनेवाले, वैदिक, कर्मठ, जपी, तपी, संन्यासी सबसे डङ्केकी

चोट, तुकारामजीका यही कहना है कि 'ढोंग रचकर लोगोंको मत फँसाओ, इन्द्रियोंको जीतकर पहले अपने वशमें कर लो, स्वयं न्याय-नीतिसे बरतो, कहनी-सी अपनी करनी बना लो, अर्थ-करी उदरम्भरी विद्या और परमार्थकी खिचड़ी मत पकाओ, स्वयं धोखा न खाओ और दूसरोंको धोखा न दो, निष्काम भजनसे भगवान्‌को प्रसन्न करो और निष्काम बुद्धिसे मनमें और जनमें उसीका गुण-गान करो, ज्ञानको बहुत मत बघारो, दम्भसे सर्वथा बचे रहो, भक्ति और उपासनामें रमो, भक्तिके बिना अद्वैतज्ञानकी लम्बी-चौड़ी बातें करके लोगोंको ठगा मत करो, स्वयं तरो और फिर दूसरोंको तारो।' यह उपदेश तुकारामजीने कहीं मीठे शब्दोंमें और कहीं कड़वे शब्दोंमें पर सर्वत्र सच्ची हार्दिक सद्-वासनाकी विकलतासे किया है।

'आधारके बिना क्या कहे जाते हो? पण्ढरिनाथका ही पता नहीं चला तबतक कोरी बातोंमें क्या रक्खा है? तुम्हारे इस शुष्क ब्रह्मज्ञानको मानता ही कौन है?'

* * *

'अद्वैतमें तो बोलनेका ही कुछ काम नहीं है, इसलिये क्यों अपना सिरमगजन कर रहे हो? गाना चाहते हो तो श्रीहरि (विट्ठल) नाम गाओ, नहीं तो चुपचाप खड़े रहो।'

अद्वैत कहनेकी बात नहीं है, स्वयं होनेकी है। ग्रन्थोंके आधारपर पाण्डित्य बघारकर यदि अद्वैतका प्रतिपादन किया तो उससे श्रोताओंका कुछ भी लाभ होनेका नहीं। हरिका नाम-स्मरण

करो, भगवान्‌को भजो, इससे तुम रास्तेपर आ जाओगे, व्यर्थमें बड़ी ऊँची-ऊँची बातें कहनेमें वाणीको थका डालना ठीक नहीं।

'राम और कृष्ण-नाम सीधे-सीधे लो और उस श्यामरूपको मनसे स्मरण करो।'

शान्ति, क्षमा, दया इन आभूषणोंसे अपने शरीर और मनको भूषित करो, नारायणका भजन करो, कामादि षड्‌रिपुओंको जीतो तब स्वयं ही ब्रह्म हो जाओगे। ब्रह्मज्ञानकी बातें कहनेसे कोई ब्रह्म नहीं होता, चने चबाने पड़ते हैं लोहेके, तब ब्रह्मपदपर नृत्य करते बनता है। उत्कोची लोभी साक्षी जैसे बिना जाने ही साक्ष्य दे डालता है वैसी ही बिना जाने ही ब्रह्मका निरूपण करनेवालोंकी स्थिति है। ऐसे ब्रह्मज्ञानको कौन सच्चा माने ?

'दूसरोंको जो ब्रह्मज्ञान बताता है पर स्वयं कुछ नहीं करता उसके मुँहपर थू है, वह वैखरीको व्यर्थ ही कष्ट देता है। द्रव्यादिके किञ्चित् मिलनेकी आशासे वह ग्रन्थोंको देखता है और ब्रह्मकी ओर बुद्धिको दौड़ाता है यह सब पेटके लिये ढोंग बनाता है। वहाँ श्रीपाण्डुरङ्ग श्रीरङ्ग कहाँ ?'

* * *

अपनी बुद्धिके अनुसार सन्त-वाणीके प्रसादको मींजने-मसलने-वाले और 'सोनेके साथ लाखका जतन' के न्यायसे प्रासादिक कविवचनोंके दुशालेमें अपनी अकलके चीथड़े जोड़नेवाले 'कवीश्वर' क्या करते हैं ?—

'जूठे पत्तल इकट्ठे करके अपने कवित्वका चमत्कार दिखाते हैं !'

ऐसे कवियों और काव्योंके पाठकोंको 'इस भूसकी दवाईसे क्या हाथ आनेवाला है !' बड़ी विकलताके साथ फिर आप कहते हैं——

'जबतक सेव्य क्या और सेवकता क्या इसका पता नहीं चला तबतक ये लोग भटकते ही रहते हैं !'

उपासनाका रंग जबतक इनपर नहीं चढ़ा, उसका रसास्वादन इन्हें नहीं हुआ तबतक ये शब्दजालमें ही फँसे रहते हैं। हरिका प्रसाद पाने और सिद्ध-स्वानुभव-सम्पन्न पुरुषोंके ग्रन्थोंमें रमते हुए हृदयग्रन्थि खुलवानेके सीधे-सरल मार्गको छोड़ ये लोग 'कवि' बनकर न जाने क्यों संसारके सामने आते हैं ?

'घर-घर ऐसे कवि हो गये हैं जिन्हें प्रसादका कुछ स्वाद ही कभी न मिला। दूसरोंकी बनी-बनायी कविता ले ली, उसीमें कुछ अपनी बात मिला दी, बस, बन गयी इनकी कविता !'

तुकारामजीके समयमें सालोमाल नामके एक कविता-चोर थे। वह तुकारामजीकी कविता उड़ा लेते और उसमें 'तुका' की जगह अपना उपनाम बैठा देते और उसे अपनी कविता कहकर लोगोंमें प्रसिद्ध करते। तुकारामजीने इस कविता-चोरको अपनी वाणीमें गिरफ्तार कर नौ अभंगोंके नौ बेंत लगाये हैं।

'सन्तोंके वचनोंको तोड़-मरोड़कर ऐसे कवि अपने आभूषण बना लेते हैं और संसारमें एक बुरी चाल चला देते हैं।'

* * *

विद्वानोंको देखिये तो क्या युवा और क्या प्रौढ़, प्रायः सभी अपनी ही शानमें मरे जाते हैं और साधु-सन्तोंका परिहास करनेमें ही अपनी विद्याको सफल समझते हैं !

'जरा-सी विद्यापर इतना इतराते हैं कि जिसकी कोई हद नहीं, गर्वके सिरपर सोहनेवाली मणि बन जाते हैं, यह समझते हैं कि मुझसे बड़ा ज्ञानी और कोई नहीं ! इतने अकड़ते हैं कि किसीकी मानते ही नहीं और साधु-सन्तोंको तंग करते हैं। तुका कहता है, ऐसे जो माया-जालमें हैं उनके पास नन्दलाल कहाँ ?'

परन्तु ये मायावी मानके भूखे होते हैं और हालत इनकी यह होती है कि 'चाहते हैं मान और होता है अपमान।' अल्प विद्याके गर्वके नशेमें चूर होकर सन्तोंकी निन्दा करके ये अपमानित ही होते हैं। गुरु बननेका धन्धा करनेवाले पेट-पुजारियोंका भ्रष्ट आचार तुकारामजीको बहुत ही अखरता था। इनके बारेमें उन्होंने कहा है—

'गुरुपनके मदसे ये सब समय अशुचि रहते हैं। कहते हैं, ब्रह्ममें कोई जाति-पाँति नहीं। कोई शौचाचारका पालनेवाला पवित्र पुरुष हुआ तो उसे ये काँटा समझकर उखाड़ फेंकना चाहते हैं। अनामिक आत्मिकको ये मानते हैं। न जाने कैसा होम-हवन करते हैं और सब लोग एक जगह बैठकर खाते हैं। कहते हैं, इसमें कोई पाप नहीं, यह तो मोक्षका द्वार है। तुका कहता है, ऐसे पूरे गुरु और पूरे शिष्य, श्रीविट्ठलकी शपथ करके मैं कहता हूँ कि नरकगामी होते हैं।'

गला फाड़कर चिल्लाते हैं, जोरोंके साथ उपदेश करते हैं, स्त्रियों और बच्चोंपर रंग जमाते हैं, ऐसा कुछ उपाय रचते हैं जिससे कुछ बँधी आमदनी होती रहे, ब्रह्मनिरूपण करते हैं पर जैसा कहते हैं वैसा करते कुछ भी नहीं, ऐसे बने हुए गुरुओं और

सन्त बने फिरनेवाले दाम्भिकोंके कान, तुकारामजीने, अच्छी तरह ऐंठे हैं ।

'ऐसे पेट-पुजारी सन्तोंके पास भगवन्त कहाँ?' पर-स्त्री, मद्य-पान, असत्य, दम्भ, मान इत्यादिके पीछे पड़कर परमार्थकी दूकान लगानेवालोंको तुकारामजीने कहा है कि 'ये पुरुष नहीं, चार पैरवाले हैं, मनुष्य होकर भी कुत्ते हैं।' वेदज्ञ, वेदान्तविद्, गुरु और सन्त कहानेवाले लोगोंमें बहुतेरे 'बकरे' होते हैं और अद्वैतका दुरुपयोग करके विषयवनमें चरा करते हैं ।

'विषयमें जो अद्वय हैं उनसे हमलोग दूर रहें—उन्हें स्पर्श भी न करें । भगवान् वहाँ अद्वय नहीं, उससे अलग हैं, सबसे अलग, निष्काम हैं । जहाँ वासना लिपटी हुई है वहाँ ब्रह्मस्थिति कैसी?'

*   *   *

'संसारमें नाम हो, इसके लिये तो तू गोसाईं बना । इसीके लिये तैंने ग्रन्थोंको पढ़ा । इसीसे असली मर्म तुझसे दूर ही रहा । चित्तमें तेरे अनुताप नहीं हुआ तो झूठ-मूठ ही यह भगवा-वस्त्र पहन लिया और झूठी ही बकवाद करके अपनी जिह्वाको कष्ट दिया !'

विद्वानोंमें मत, तर्क और पन्थ तो बहुत होते हैं पर अनुतापसे शुद्ध होकर भगवान्‌के चरण पकड़नेवाला कोई विरला ही होता है ।

'सीखे हुए बोल ये लोग बोल सकते हैं, पर अनुभव तो किसीको भी नहीं होता । पण्डित हैं, कथाओंका अर्थ बता देंगे, पर जिस अर्थसे इनका सुख बढ़े उससे ये कोरे ही रहते हैं !'

*   *   *

'तार्किकोंके बड़े चतुर होनेमें सन्देह ही क्या है ? पर इनकी चतुराईको श्रीविट्ठलजीका कोई पता नहीं है। अक्षरोंकी बड़ाईमें ये चढ़ा-ऊपरी कर सकते हैं पर श्रीविट्ठलकी बड़ाईको नहीं जान सकते।'

* * *

'मत-मतान्तरोंके ये कोष हैं, शब्दोंकी व्युत्पत्तिके भण्डार हैं, पाठान्तरोंके अभ्यासी हैं और इनकी वाचालताकी तो बात ही क्या है ? पर मेरे श्रीविट्ठलका भेद ये नहीं जानते, वह तो इतनी दूर है कि वहाँतक देहभाव पहुँच ही नहीं सकता। यज्ञ-याग, जप, तप, अनुष्ठान, ध्येय, ध्यान सब इसी ओर रह जाता है। तुका कहता है, चित्त जब उपराम हो तब प्रेमरस उत्पन्न हो।'

केवल शाब्दिक ज्ञान, अहंकारी ज्ञान, देहबुद्धिको बना रखनेवाला ज्ञान मुर्देको पहनाये हुए आभूषणोंके समान व्यर्थ है ! वेदवाणी सुनो, सार ग्रहण करो, वेदोंकी आज्ञाओंका पालन करो, शास्त्रोंके अर्थोंको देखो, उनका तात्पर्य समझो, चित्तको उपराम होने दो, अनात्म-भावनाकी जड़को उखाड़ फेंको और प्रेमसे मेरे पाण्डुरङ्गका भजन करो, यही पण्डितोंसे तुकारामजीने कहा है। 'पेटमें अन्न न हो तो शृंगारकी क्या शोभा ?' उसी प्रकार श्रीहरिके प्रेमके बिना कोई ज्ञान किसी कामका नहीं। जिसके लिये वेद, शास्त्र और पुराण बने, उस नारायणको जानोगे, भजोगे तो तुम्हारा ज्ञान सफल होगा, नहीं तो समाजमें अहंकारी विद्वान्‌की किसी कोढ़ी मनुष्यकी-सी गति होती है। पण्डित होकर पेटके लिये

नर-स्तुति करना या वाग्वादमें ही वाणी व्यय करना तो अच्छा नहीं है, यही तुकारामजीने बड़ी नम्रतासे उन्हें समझाया है।

'सुनो हे पण्डितगण ! आपलोगोंकी मैं चरणवन्दना करता हूँ। आपलोग मेरी इतनी विनती मान लीजिये कि कभी मनुष्योंकी स्तुति मत कीजिये। अन्न-वस्त्रका मिलना प्रारब्धके अधीन है, जब जो मिल जाय। इसलिये तुका कहता है, अपनी वाणी नारायणके गुणगानमें लगाइये।'

तुकाराम-जैसे श्रीहरि-प्रेमी प्रेममय सन्तके मुखसे दुर्जनों और दाम्भिकोंके प्रति तिरस्कारभरे ऐसे-ऐसे कठोर शब्द निकलते थे कि सुननेवालोंको कभी-कभी बड़ा आश्चर्य होता था कि हरि-प्रेमका यह कौन-सा लक्षण है ! तुकारामजीने इसका उत्तर यों दिया है कि 'प्राणिमात्रमें मेरे हरि ही विराज रहे हैं यह तो मैं जानता हूँ' पर रास्ता भूलकर टेढ़े रास्ते चलनेवालोंको सीधा रास्ता दिखानेके लिये ही मैं उनके दोष बताकर उनकी आँखें खोलता हूँ। 'दुनियाकी निन्दा करनी पड़ती है' यह तो सही है, पर करूँ तो क्या करूँ? 'दूसरोंके मतसे मेरे चित्तका मेल जो नहीं बैठता !' मिठाईसे जब नहीं मानते, 'मुँहमें कौर डालते हैं तो मुँह ही जब फेर लेते हैं' तब हाथ पकड़कर और कभी कान पकड़कर भी सीधा करना ही पड़ता है। रोगीके मनकी करनेसे तो काम नहीं चलेगा, कठोर हुए बिना—कड़वी दवा पिलाये बिना उसका रोग कैसे दूर होगा ? इन लोगोंकी दया आती है, इनकी दशा देखकर हृदय रोता है, जब नहीं रहा जाता तब 'जिसे मैं स्वयं अनुभव करता हूँ वही जगत्को देता हूँ।' भावुक लोग मेरे गलेमें माला पहनाते हैं,

पैरोंपर गिर पड़ते हैं, मिष्टान्न भोजन कराते हैं, पर उससे मुझे सन्तोष नहीं होता। इसलिये अधीर होकर कहता हूँ, 'अरे! भगवान्‌के चरणोंका चित्तमें चिन्तन करो।' जब नहीं मानते तब कड़वी दवा पिलानी पड़ती है! जो कुछ कहता हूँ इसीलिये कहता हूँ कि—

'इस भवसागरमें लोगोंको डूबते हुए इन आँखोंसे नहीं देखा जाता, हृदय तड़प उठता है।'

मान या दम्भसे मैं किसीकी छलना तो नहीं करता, यह श्रीविट्ठलकी शपथ करके कहता हूँ।

'संसारमें सर्वत्र ही भगवान् हैं, फिर भी जो मैं निन्दा करता हूँ यह मेरा स्वभाव है। ये लोग कालके गालमें गिरे जा रहे हैं यह देखकर दयासे रहा नहीं जाता!'

फिर भी यदि मेरा इस प्रकार दम्भका भण्डाफोड़ करना किसीको अप्रिय लगता हो, इससे किसीको कुछ कष्ट होता हो तो 'मैं ही दुष्ट और चाण्डाल हूँ' और इसलिये सबसे क्षमा माँगता हूँ।

८ धरना दिये ब्राह्मणको बोध

एक ब्राह्मण आलन्दीमें धरना दिये बैठा था। ज्ञानेश्वर महाराजने उसे तुकारामजीके पास भेजा। तुकारामजी बड़ाई चाहनेवाले नहीं थे, पर ज्ञानेश्वर महाराजकी आज्ञा जानकर उन्होंने इस ब्राह्मणको उपदेश दिया। पर वह उस उपदेश और महाफलको वहीं छोड़कर चला गया। उस प्रसङ्गपर तुकारामजीने ग्यारह अभङ्ग कहे हैं। कुछका आशय नीचे देते हैं—

'ग्रन्थोंके भरोसे मत पड़े रहो, अब इसी बातकी जल्दी करो कि मनको देह-भावसे खाली करके भगवान्‌के प्रेमसे भगवान्‌को मनाओ। और साधन कालके मुँहमें डाल देंगे, गर्भवासके कष्टोंसे कोई भी मुक्त न करेगा।'

'भगवान्‌के पास मोक्षका कोई थैला थोड़े ही रक्खा है जो उसमेंसे थोड़ा-सा निकालकर वह तुम्हें भी दे देंगे? इन्द्रिय-विजय-से मनको साधो, निर्विषय बन जाओ। बस, मोक्षका यही मूल है।····तुका कहता है, फल तो मूलके ही पास है, उस मूलको पकड़ो; शीघ्र श्रीहरिकी शरण लो।'

'उन करुणाकरसे करुणा माँगो, अपने मनको साक्षी रखकर उन्हें पुकारो। कहीं दूर जाना-आना नहीं पड़ता; वह तो अन्तरमें साक्षिस्वरूप विराजमान हैं, तुका कहता है, वह कृपाके सिन्धु हैं, भव-बन्धको तोड़ते उन्हें कितनी देर लगती है।'

'ग्रन्थोंको देखकर फिर कीर्तन करो, तब उसमें (ज्ञानमें) फल लगेगा। नहीं तो व्यर्थ ही गाल बजाया और वासना तो हृदयमें रह ही गयी। तप-तीर्थाटन आदि कर्मोंकी सिद्धि तभी होगी जब बुद्धि हरिनाममें स्थिर होगी। तुका कहता है, अन्य झगड़ोंमें मत पड़ो। बस, यही एक संसार-सार हरि-नाम धारण कर लो।'

'श्रीहरि-गोविन्द नामकी धुन जब लग जायगी तब यह काया भी गोविन्द बन जायगी, भगवान्‌से कोई दुराव—कोई भेद-भाव नहीं रह जायगा। मन आनन्दसे उछलने लगेगा, नेत्रोंसे प्रेम बहने लगेगा। कीट भृङ्ग बनकर जैसे कीटरूपमें फिर अलग नहीं रहता वैसे तुम भी भगवान्‌से अलग नहीं रहोगे।'

'जो जिसका ध्यान करता है उसका मन वही हो जाता है। इसलिये और सब बातोंको अलग करो,पाण्डुरङ्गकी ध्यान-धारणा करो।'

* * *

'सकुचकर ऐसे छोटे क्यों बन गये हो? ब्रह्माण्डका आचमन कर लो। पारण करके संसारसे हाथ धो लो। बहुत देर हुई, अब देर मत करो। बच्चोंके खेलका घर बनाकर उसमें छिपे बैठ रहनेसे अँधेरा छाया हुआ था, कुछ न सूझनेसे घबराहट थी! खेलके इस जञ्जालको सिरपरसे उतार दिया और बगलमें दबा लिया। बस, इतना ही तो काम है।'

'अविश्वासीका शरीर अशौचमें रहता है, इसी पापीके भेद-भाव होता और छूत लगता है। उसकी हृदय-वल्लीका लता-मण्डप नहीं बन सकता। जैसा विश्वास होता है, वही सामने आता है। अविश्वासी वैसा ही खोटा होता है जैसे सिद्धान्नमें कोई कंकड़ी।'

वह ब्राह्मण ज्ञानेश्वर महाराजको प्रसन्न करनेके लिये आलन्दी-में ४२ दिनतक अन्न-जल त्याग धरना दिये बैठा था। ज्ञानेश्वर महाराजने उसे स्वप्न दिया कि तुकारामजीके पास जाओ, उनसे तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध होगा। तुकारामजी लौकिक उपाधियोंसे उकता गये थे। कहा करते थे, 'लोगोंमें व्यर्थ ही मेरा इतना नाम हो गया, सच्चा दासत्व तो मैंने अभी जाना ही नहीं।' फिर भी ज्ञानेश्वर महाराजकी आज्ञाको कैसे टाल सकते थे? इसलिये उस ब्राह्मणको उपदेश देनेके लिये उन्होंने ग्यारह अभङ्ग कहे। ब्राह्मण विक्षिप्त-सा था, उस उपदेशको वहीं छोड़कर चला गया। परमार्थ कोई सोनेकी चिड़िया नहीं, घर बैठे छप्पर फाड़कर मिलनेवाला

द्रव्य नहीं, विना कुछ किये-कराये सब कुछ आप ही हो जाय ऐसा कोई चमत्कार नहीं। जो लोग इसे ऐसा समझते हैं वे उस ब्राह्मणकी तरह उपर्युक्त उपदेशको पढ़कर निराश हो लौट पड़ेंगे। पर जो परमार्थ-पथके पथिक हैं, उनके लिये इसमें बड़ा ही पथ्यकर पाथेय है। इसको विस्तारसे समझानेकी आवश्यकता नहीं, पाठक स्वयं ही अपनी बुद्धिसे इसे ग्रहण करेंगे।

९ तुकाजी और शिवाजी

छत्रपति श्रीशिवाजी महाराजका जन्म * संवत् १६८६ (शाके १५५१) के फाल्गुन-मासमें अर्थात् तुकारामजीकी आयुके २१ वें वर्ष जो भयङ्कर दुर्भिक्ष पड़ा था उसी दुर्भिक्षके साल हुआ। शिवाजी महाराजने अपनी आयुके १७ वें वर्ष तोरण-किलेपर अपना अधिकार जमाकर वहींसे स्वराज्य-संस्थापनके उद्योगका श्रीगणेश किया। इसके तीन वर्ष बाद संवत् १७०६ (शाके १५७१) में तुकारामजी वैकुण्ठ सिधारे। समर्थ रामदास स्वामीका जन्म-संवत् १६६५ (शाके १५३०) है। पुरश्चरण और तीर्थ-यात्रा करके संवत् १७०२ में समर्थ स्वामी कृष्णा-तटपर आये। तब संवत् १७०३ और १७०६ के बीच किसी समय समर्थ, शिवाजी और तुकारामजी तीनोंका समागम हुआ होगा। तुकारामजीके कीर्तन भी शिवाजीने इन्हीं तीन वर्षमें सुने होंगे।

* पहले यह धारणा थी कि संवत् १६८४ (शाके १५४९) में शिवाजी महाराज उत्पन्न हुए। अब पीछे जो नवीन इतिहास-संशोधन हुआ है उससे यह निर्विवादरूपसे प्रमाणित हो गया है कि महाराजका जन्म-संवत् १६८६ (शाके १५५१) ही है। —भाषान्तरकार

शिवाजीकी माता जिजाबाई और गुरु तथा कार्यवाह दादाजी कोंडदेवके तत्त्वावधानमें और उनके प्रोत्साहनसे स्वराज्य-संस्थापन-का उद्योग आरम्भ हुआ। तुकारामजी जैसे अवतारी पुरुष थे वैसे ही शिवाजी भी अवतारी पुरुष थे। दोनोंका ही मुख्य कर्मक्षेत्र पूना-प्रान्त था। तुकारामजीने धर्मको जगाकर लोगोंके उद्धारका पथ प्रशस्त किया। जिस समय तुकारामजीका कार्य खूब जोरोंके साथ हो रहा था उसी समय स्वराज्य-संस्थापनका कार्य आरम्भ हुआ। भारतवर्षके सभी अवतारी पुरुषोंका प्रधान ध्येय स्वधर्म-रक्षण ही रहा है। 'धर्मके संरक्षणके लिये ही हमें यह सारा प्रपञ्च करना पड़ता है।' तुकारामजीकी इस उक्तिके अनुसार तुकारामजी-का यह कार्य था; और 'हिन्दवी स्वराज्य श्रीने हमें दिया है,' 'हिन्दू-धर्म-संरक्षणके लिये हमने फकीरी बाना कसा है' कहनेवाले शिवाजीका कार्य भी यही धर्म-संरक्षण ही था। दोनोंका ध्येय और ध्यान एक ही था। राष्ट्रके अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों ही धर्म-संरक्षणसे ही बनते हैं। धर्म-संरक्षणका प्रधान अङ्ग वर्णाश्रम-धर्म-रक्षण है। कारण, वर्णाश्रम-धर्म ही सनातन-धर्मकी नींव है। तुकाराम, शिवाजी और रामदास तीनों ही वर्णाश्रम-धर्मकी बिगड़ी हुई हालतको सुधारनेके लिये ही अवतीर्ण हुए थे। 'कलि-प्रभाव'के अभङ्गोंमें तुकारामजीने उस समयका यथार्थ वर्णन करके बताया है कि किस प्रकार सब वर्ण भ्रष्ट हो चले थे। 'कोई वर्ण-धर्म नहीं मानता, छूतछात नहीं मानता, सब एकाकार होकर उच्छृङ्खलता कर रहे हैं' यह देखकर उन्हें बड़ा दुःख हुआ और ऐसे वर्ण-कर्म-वृत्ति संकरका उन्होंने निषेध किया। 'जप, तप, व्रत, अनुष्ठानादि

करना लोगोंको बड़ा बोझ मालूम होता है पर इस मांसपिण्डको पोसना बड़ा अच्छा लगता है।'

ईश्वर और धर्मको लोग भूल-से गये हैं—'देहको ही देव और भोजनको ही 'भक्ति' समझ बैठे हैं, कर्तव्य-बोध कुछ रह ही नहीं गया, 'चारों वर्ण अठारहों जातियाँ एक पंक्तिमें बैठकर भोजन करनेवाले' सहभोज-प्रेमी बने हैं !

'कलिका प्रभाव है कि पुण्य दरिद्र हो गया और पाप बलवान् बन बैठा। द्विजोंने अपने आचार छोड़ दिये, निन्दक और चोर बन गये। तिलक लगाना छोड़ पायजामेके शौकीन बने और चमड़ेका आदर करने लगे। हाकिम बने फिरते हैं और लोगोंको बिना अपराध ही सताते हैं। नीचकी चाकरी करते हैं और भूल-चूक होनेपर मार खाते हैं। राजा प्रजाको पीड़न करता है,............... । वैश्य, शूद्रादि तो जन्मसे ही कनिष्ठ हैं। बड़ोंका जब यह हाल है तब उनको क्या कहा जाय ! सारा नकली रंग ऊपरी स्वाँग है। तुका कहता है भगवन् ! आप ऐसे कैसे सो गये, अब वेगसे 'दौड़े आइये।'

धर्मभ्रष्ट होनेसे ही लोगोंका ऐसा बुरा ह्रास हुआ देखकर तुकारामजीका हृदय व्याकुल हो उठता था। कहते हैं—

'अब और क्या होना बाकी है ? राष्ट्रको पीड़ित देखकर अब धीरज नहीं रखते बनता।'

परन्तु धर्मके संरक्षण और पुनः स्थापनके लिये राष्ट्रमें क्षात्र-तेजके उदय होनेकी आवश्यकता होती है। स्वधर्मके जागरणके लिये स्वराज्यका भी बल होना चाहिये, यह बात तुकारामजी जानते थे।

'दया नाम सबके पालन और कण्टकोंके निर्दलनका है ।'

'दया' का यह लक्षण उन्होंने किया है—'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्'—की ही तो प्रतिध्वनि है। गीतामें भगवान्‌ने कहा है, 'मामनुस्मर युध्य च ।' समर्थ रामदासने कहा है, 'पहले हरि-भजन और दूसरे राजकारण'। सबका तात्पर्य एक ही है। ब्रह्मतेज और क्षात्र-तेजके प्रकट और एकीभूत हुए बिना राष्ट्रका अभ्युदय-निःश्रेयसरूप धर्म उदय नहीं होता। 'शापादपि शरादपि' ऐसी उभयविध सामर्थ्य जब राष्ट्रमें उत्पन्न होती है तभी राष्ट्र-धर्म विजयी होता है। इन दो कार्योंमेंसे एक कार्य तुकारामजीने अपने ऊपर उठा लिया और उसे उत्तम रीतिसे पूरा किया। अब इसे स्वधर्मीय राजसत्ताके सहारेकी आवश्यकता थी। लोग अपने आचार-धर्मसे विमुख हो गये थे, उन्हें रास्तेपर ले आनेके लिये दण्डशक्ति आवश्यक थी।

'क्या करूँ भगवन् ! मुझमें वह बल नहीं कि इन्हें दण्ड देकर आगेके लोगोंको रास्तेपर ले आऊँ ।'

यह उनके हृदयका उद्गार है ! इसके लिये वह भगवान्‌से प्रार्थना करते थे। उनकी यह इच्छा उनके जीवित कालमें ही पूरी हुई। कम-से-कम अन्तिम तीन-चार वर्ष तो शिवाजी उनके सामने ही थे। शिवाजी महाराज धर्म और धर्मप्रचारक साधु-सन्तोंसे हार्दिक स्नेह रखते थे। माता जिजाबाई और गुरु दादाजी कोंड-देव दोनोंकी ही उन्हें यही शिक्षा थी कि साधु-सन्तोंके कृपाशीर्वाद-का बल-भरोसा पाये बिना तेरा राजकाज सफल नहीं होगा। रामायण और महाभारतकी वीर-गाथाओंके सुननेका उन्हें बड़ा

प्रेम था। साधु-सन्तोंसे मिलना, उनका सत्कार और सत्सङ्ग करना, यह तो उनका स्वभाव ही बन गया था। अन्तको उन्होंने समर्थ रामदासस्वामीका बड़ा समागम किया और उनसे उपदेश भी लिया, यह बात तो प्रसिद्ध ही है। पर इससे भी पहले चिंचवडके चिन्तामणि देव और पूनेके अनगडशाहके दर्शनोंके लिये महाराज गये थे। मौनी बाबा और बाबा याकूबकी शिवाजीपर बड़ी कृपा थी, यह ब्रह्मेन्द्रस्वामीने कहा है। (महाराष्ट्र-इतिहास-साधन खण्ड ३) कृष्णदयार्णव 'हरिवरदा' ग्रन्थमें कहते हैं कि एकनाथ महाराजके शिष्य चिदानन्दस्वामी और उनके शिष्य स्वानन्दको 'शिव-भूपति अपनी कल्याणकामनासे प्रार्थना करके राय-दुर्गमें ले आये और वहाँ सब प्रकारसे उनकी सेवाका प्रबन्ध रखा। इससे दोनोंको बड़ा सन्तोष हुआ।' श्रीशिव छत्रपति ऐसे सन्त-समागम-प्रेमी थे। तुकाराम महाराजसे वह न मिलते, ऐसा कब हो सकता था ?

१० शिवाजीके नाम पत्र

पहले पहल, तुकारामजी जब लोहगाँवमें थे तब शिवाजीने अपने आदमियोंके साथ उनके पास मशालें, घोड़े और बहुत-से जवाहिरात भेजकर उनसे पूनेमें पधारनेकी विनती की। पर तुकारामजी ठहरे महाविरक्त, उन्होंने जवाहिरातको देखातक नहीं और वैसे ही शिवाजीके पास लौटा दिया, साथ ९ अभङ्गोंका एक पत्र भी भेजा।

*　　　*　　　*

'मशाल, छत्र और घोड़ोंको लेकर मैं क्या करूँ ? यह सब तो मेरे लिये अच्छा नहीं है। इसमें हे पण्ढरिनाथ ! अब मुझे क्यों डालते हो ? मान और दम्भका कोई काम मेरे लिये शूकरी विष्ठा ही है। तुका कहता है, दौड़े आओ और मुझे इससे छुड़ा लो।'

'मेरा चित्त जो नहीं चाहता वही तुम दिया करते हो, इतना तंग क्यों कर रहे हो ?'

'संसारसे तो मैं अलग रहा चाहता हूँ, इसका संग चाहता ही नहीं। चाहता हूँ एकान्तमें रहूँ, किसीसे कुछ न बोलूँ। जन-धन-तनको वमन-जैसा माननेको जी चाहता है। तुका कहता है, चाहनेको तो मैं चाहता हूँ, पर करने-धरनेवाले तो तुम्हीं हो।'

'मैं क्या चाहता हूँ, यह तुम जानते हो। पर अन्तर जानकर भी टाल देते हो। यह तो तुम्हें आदत ही पड़ गयी है कि जो भी तुम्हें चाहता है उसके सामने ऐसी-ऐसी चीजें लाकर रख देते हो कि वह उन्हींमें फँसकर तुम्हें भूल जाय। पर तुकाने जो तुम्हारे पैर पकड़ रखे हैं, देखूँ तो सही इन्हें कैसे छुड़ा देते हो।'

अपने निश्चयके आसनको स्थिर रखते हुए तुकारामजी शिवाजी महाराजको उस पत्रमें लिखते हैं—'चींटी और नरपति दोनों ही मेरे लिये एक-से ही जीव हैं। मोह और आस जो कलिकालका फाँस है, अब कुछ भी नहीं रहा है। सोना और मिट्टी दोनों ही मेरे लिये बराबर हैं। तुका कहता है, सम्पूर्ण वैकुण्ठ ही घर बैठे आ गया है। मुझे कमी किस बातकी है ?'

'तीनों भुवनोंके सम्पूर्ण वैभवका धनी बन बैठा हूँ। भगवान् मेरे माता-पिता मुझे मिल गये, अब मुझे और क्या चाहिये ?

त्रिभुवनका सम्पूर्ण बल तो मेरे अन्दर आ गया ! तुका कहता है, सारी सत्ता तो अब मेरी ही है ।'

'आप हमें दे ही क्या सकते हो ? हम तो विट्ठलको चाहते हैं। हाँ, आप उदार हो, चकमक पत्थर देकर पारसमणि चाहते हो; प्राण भी दो तो भी भगवान्की कहलायी एक बातकी भी बराबरी न हो सकेगी । धन क्या देते हो जो तुकाके लिये गोमांस-के समान है !'

हाँ, कुछ देना ही चाहते हो तो एक ही दान दो—

'उससे हम सुखी होंगे—मुखसे 'विट्ठल, विट्ठल' कहो । आपका और सारा धन मेरे लिये मिट्टीके समान है । कंठमें तुलसीकी कंठी पहन लो, एकादशीका व्रत करो, हरिके दास कहलाओ । बस, यही एक तुकाकी आस है ।'

इन सात अभङ्गोंके सिवा दो अभङ्ग और हैं । इनमें वह कहते हैं, 'बड़े-बड़े पर्वत सोनेके बनाये जा सकते हैं, वन-वनके वृक्षोंको कल्पतरु बनाया जा सकता है, नदियों और समुद्रोंको अमृतकी नदियाँ और समुद्र बनाया जा सकता है, मृत्युको रोक रखा जा सकता है, भूत, भविष्य, वर्तमान बताया जा सकता है, ऋद्धि-सिद्धियोंको प्रसन्न किया जा सकता है, योगमुद्राएँ सिद्ध की जा सकती हैं, प्राणको ब्रह्माण्डमें चढ़ाया जा सकता है, यह सब कुछ किया जा सकता है पर प्रभुके चरणोंमें प्रीतिलाभ करना परम दुर्लभ है ! इन सब सिद्धियोंसे उन चरणोंका लाभ नहीं होता । ऐसे श्रीविट्ठलके जग-दुर्लभ परम पावन परमानन्दकर चरण महद्भाग्य-

से मुझे मिले हैं, इनके सामने इन दीपदान, छत्र और घोड़ोंको अपने हृदयमें मैं कहाँ जगह दूँ ?'

मेघवृष्टि और गङ्गाप्रवाहका दृष्टान्त देते हुए दूसरे अभङ्गमें तुकाराम महाराज कहते हैं कि परती जमीन और खेत दोनोंपर मेघवृष्टि समान ही होती है और गङ्गाके प्रवाहमें पुण्यवान् और पापी समान ही स्नानकर पुनीत होते हैं, वैसे ही हमारा हरि-कीर्तन अधिकारी और अनधिकारी, राजा और रङ्क सभीके लिये समानरूपसे होता है।*

एक अभङ्ग और है जो शिवाजी महाराजके लिये लिखा गया होगा। उसका भाव यों है—

'आपने बड़े-बड़े बलवानोंको अपने मित्र बनाये हैं, पर अन्त-समयमें ये काम न आवेंगे। पहले रामनाम लो; इस उत्तम 'रस'को अपने भीतर भर लो। यह परिवार, यह लोक, यह सैन्य किसी काम न आवेगा। जबतक काल सिरपर नहीं सवार हुआ तभीतक आपका यह बल है। तुका कहता है, प्यारे! लखचौरासीके चक्करसे बचो।'

---

* तुकारामजीके इस नव-अभङ्गी पत्रसे प्रकट होनेवाले प्रखर वैराग्य और अलौकिक आत्मनिष्ठाका पूनेके राजमण्डलपर तथा भक्तोंपर बड़ा प्रभाव पड़ा होगा, इसमें सन्देह ही क्या है! तुकारामके अभङ्गोंके कुछ संग्रहोंमें इन ९ अभङ्गोंके सिवा ५ बड़े-बड़े अभङ्ग और हैं। उनमें छत्रपति श्रीशिवाजी महाराज, उनके अष्टप्रधान और समर्थ श्रीरामदास-स्वामीके भी नाम आये हैं। परन्तु वारकरियोंमें वे प्रक्षिप्त माने जाते हैं और मुझे भी प्रक्षिप्त ही जान पड़ते हैं। पर ये नौ अभङ्ग तुकाराम महाराजके ही हैं, इसमें सन्देह नहीं।

११ सिपाहीवालेके अभङ्ग

इसके पश्चात् श्रीशिवाजी महाराज स्वयं ही श्रीतुकाराम महाराजके दर्शनोंके लिये लोहगाँव गये। महाराजका कीर्तन सुनकर शिवाजी राजा बहुत ही प्रसन्न हुए। उनका कीर्तन सुननेका अब उन्हें चसका ही लग गया। कई दिनोंतक शिवाजी महाराजका यही नित्यक्रम रहा कि रातको व्यालू करनेके बाद घोड़ेपर सवार होते और तुकारामजी देहू या लोहगाँव जहाँ भी होते वहाँ पहुँचकर उनका कीर्तन सुनते और प्रातःकाल आरती होनेके बाद पूनेमें लौट आते। करते-करते एक दिन शिवाजीके चित्तमें पूर्ण वैराग्य भर गया और नित्यक्रमके अनुसार वह पूना नहीं लौटे, देहूमें तुकारामजीके पास ही रह गये। जिजाबाईको यह भय हुआ कि शिवाजी राजकाज छोड़कर कहीं वैराग्य-योग न ले लें। वह स्वयं देहू पहुँचीं। तुकारामजीने हरि-कीर्तन करते हुए वर्णाश्रम-धर्म बताया और क्षात्रधर्म—राजधर्मका रहस्य प्रकट करके शिवाजी-को स्वकर्तव्यपर आरूढ़ किया। एक दिनकी बात है कि तुकाराम महाराज कीर्तन कर रहे थे, श्रोताओंमें शिवाजी बैठे सुन रहे थे, ऐसे अवसरपर एक हजार पठान चढ़ आये और उन्होंने मन्दिरको घेर लिया। शिवाजीको पकड़नेका इससे अच्छा अवसर और कौन-सा हो सकता था? परन्तु तुकाराम महाराजके पुण्यप्रतापको देखिये या शिवाजी महाराजकी सावधानता सराहिये, शिवाजीको पकड़नेके लिये आये हुए उन एक हजार पठानोंके सामने होकर एक हजार पुरुष ऐसे निकल गये जो देखनेमें शिवाजी-जैसे ही प्रतीत होते थे और इन सहस्र-संख्यक शिवाओंको देखकर पठानोंके

होश ही गुम हो गये, वे यह तमीज ही न कर सके कि इनमें कौन शिवाजी है और कौन नहीं है ! शिवाजी ऐसे निकल भागे और मुगल-सेनाके सिपाही हक्के-वक्के-से रह गये ! ये बातें सबको विदित ही हैं। महीपति बाबाने इन बातोंका विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। यहाँ उतना विस्तार न करके एक प्रसङ्गकी बात और लिख देते हैं।

एक बार तुकारामजी कीर्तन कर रहे थे और 'श्रीविट्ठलके रणबाँकुरे वीर' श्रवण कर रहे थे। इन्हींमें श्रीशिवाजी और उनके धीर अमात्य तथा वीर सैनिक भी बैठे सुन रहे थे। श्रोताओंकी नजरों-से-नजर मिलते ही तुकारामजीके चित्तने यह चाहा कि इन द्विविध निष्ठावालोंको अर्थात् विट्ठल-भक्त वारकरियोंको और स्वराज्य-संस्थापनके उद्योगियोंको एक साथ ही बोध कराया जाय। उस अवसरपर उन्होंने उसी समय रचते हुए सिपाहीबानेके ११ अभङ्ग कहे। राज-काजमें हो या परमार्थके साधनमें हो, वीरता तो बड़ी दुर्लभ वस्तु है। घर-गिरस्तीके प्रपञ्चमें, देशके राज-काजमें और परमात्माके परमार्थ-साधनमें जहाँ भी देखिये, सामान्य लोगोंकी ही भरमार होती है। सामान्य जीव ही सर्वत्र दिखायी देते हैं और इसीलिये वे सामान्य कहलाते भी हैं। वीरत्व-गुण-सम्पन्न पुरुष दुर्लभ होते हैं। वीरत्व कहीं भी हो उसकी जाति एक ही है। भीरु और वीर, पामर और सन्त एक जातिके नहीं हैं। पशुओंमें वीर एक ही होता है—सिंह। मनुष्योंमें वीरत्व-गुणकी जाति होनेपर भी उसके प्रकार भिन्न-भिन्न हैं। एकान्तविध्वंसी अर्थात् कभी-न-कभी नष्ट होनेवाले इस शरीर और इस शरीर-सम्बन्धी सब विकारोंसे जो

अलग हो जाता है वह वीर है ! शरीर और शरीर-सम्बन्धी क्षुद्र वासनाओंमें बँधा हुआ जो रहता है वह भीरु, और जो इस दूषित वायुमण्डलसे मनसा ऊपर उठ आया हो वह वीर है । बुद्धिमत्ता, उद्योगदक्षता, उच्चध्येयता, पराक्रम, साहस, लोककल्याणकर्म-निष्ठता इत्यादि असली वीरके सहज गुण हैं । अंगरेज ग्रन्थकार कार्लाइल और अमेरिकन तत्त्ववेत्ता इमर्सनने वीर पुरुषोंकी अलग-अलग कक्षाएँ बाँधी हैं । उन्हीं कक्षाओंमें हम अपने यहाँके वीरोंको बैठाना चाहें तो यों कह सकते हैं कि श्रीशङ्कराचार्य और ज्ञानेश्वरादि तत्त्ववेत्ता और धर्मसंस्थापक एक ही कक्षा या जातिके वीर हैं; वाल्मीकि, व्यास, सूर और तुलसीदास दूसरी जातिके वीर हैं; विक्रमादित्य, शिवाजी आदि रामराज्य-संस्थापक तीसरी जातिके वीर हैं; केशव, बिहारी और हरिश्चन्द्र आदि पण्डित और ग्रन्थकार चौथी जातिके वीर हैं; नानक, कबीर आदि साधु-सन्त पाँचवीं जातिके वीर हैं । ये सब वीर ही हैं । तुकाराम, रामदास और शिवाजी वीर ही थे । ये सब योद्धा थे, सिरको दोनों हाथोंमें छिपाकर रोनेवाले, नहीं नहीं, असाध्यको साधकर दिखानेवाले थे । शिवाजीने स्वराज्य संस्थापित करके दिखा दिया, तुकारामजीने भगवान्‌को प्रत्यक्ष किया । तुकारामजीने शूरवीर बननेका उपदेश करते हुए सिपाहीबानेके अभङ्ग कहे । तुकारामजीने शिष्य और शिवाजीके सैनिक, धर्मवीर और रणवीर दोनोंको उपदेश किया है । उस उपदेशका महत्त्वपूर्ण अंश नीचे देते हैं । मर्मज्ञ इसका मर्म जानेंगे ।

'सिपाहीबानेके साथ सिद्धान्तपर आरूढ़ हो वीर बनो । वीरोंकी गाथा चित्तमें धारो । सिपाही बने बिना प्रजा-पीड़नका

अन्त नहीं होगा और प्रजाको सुख नहीं होगा । प्राण-दानमें उदार सिपाही बनो, सिपाहियोंकी कुशल-क्षेमका सब भार स्वामीपर है । सिपाहीपनके सुखसे जो कोरा ही रहा उसका जीवन व्यर्थ है, उसके जीवनको धिक्कार है ! तुका कहता है, एक क्षणमें सब बात हो जाती है, फिर सिपाहीके सुखका कोई अन्त नहीं ।'

*　　*　　*

'दनादन गोलियाँ लग रही हैं, बाणोंपर बाण आकर गिर रहे हैं, यह सब वह सह लेता है और ऐसी मूसलाधार वृष्टि करता है कि जिसका कोई परिमाण ही नहीं ! स्वामी और उनका कार्य ही सामने दिखायी दे रहा है । उस युद्धकी शोभा ही कुछ और है ! जो शूर और वीर सिपाही हैं वे ऐसे युद्धमें अन्दर और बाहर बड़ा सुख लूटते हैं ।'

*　　*　　*

'सिपाहियोंको चाहिये कि आत्मरक्षा करें, परकीयोंको लूटें, उनका सर्वस्व छीन लें । अपने ऊपर चोट न आने दें, शत्रुको अपना पता भी न लगने दें । ऐसा जो सिपाही होता है, दुनियाँ उसे अपना नाथ मानती है । तुका कहता है, ऐसे जिसके सिपाही हैं वही तीनों लोकोंका अमित पराक्रमी सेनानायक है ।'

*　　*　　*

'सिपाहियोंने ही परकीयोंका बल तोड़कर पथ चलने योग्य बना दिया । परकीयोंकी छावनियाँ अपने हाथमें कर लीं और वहाँ अपने आदमी तैनात किये । जो लोग रास्ता छोड़कर चलते हैं

उन्हें ये सिपाही मार देते हैं जिसमें दूसरोंको शिक्षा मिले। तुका कहता है, ये सिपाही विश्वास लिये विश्वको सुख दिये चलते हैं।'

* * *

'जो सिपाही तनको तृण और सुवर्णको पाषाणके बराबर समझता है उससे उसके स्वामी भिन्न नहीं हैं। विश्वासके बिना सिपाहीका कोई मूल्य नहीं।'

'प्राणोंपर खेलनेकी उदारता जिन सिपाहियोंमें है वे ही सिपाही सोहते हैं और उनके बीचमें उनके नायक मुकुटमणि-से शोभा पाते हैं। भीरुओंकी तो कुछ बात ही नहीं है, जहाँ-तहाँ भरे पड़े हैं। उनके आने-जानेका ताँता लगा ही हुआ है। कहींसे भी वह नहीं टूटता है।'

* * *

'एक ही स्वामी हैं, उन्हींके सब सिपाही हैं; जो जितना बड़ा योद्धा हो उतना ही अधिक उसका मूल्य है। तुका कहता है, मरनेवाले तो सभी हैं, पर मरनेसे डरना बेपानी होना है, मूल्य जो कुछ है वह निर्भयताके पानीका है।'

* * *

'असल सिपाही ही सिपाहीको पहचानता है। उसमें एक ही स्वामीके लिये आदर और निष्ठा होती है। पेटके लिये जो हथियार बाँधते हैं वे तो मैले कपड़ोंको ढोनेवाले गधे हैं। जातिका जो असल है वह मारना और बचाना जानता है। वह क्या परकीयोंको अपना अस्तित्व सौंप देगा? तुका कहता है, हम

उन्हें देवता मानकर वन्दन करेंगे जो वैसे हुए हों, उनके लक्षण हम जानते हैं ।'

* * *

ऐसी ओजभरी वाणीसे तुकारामजीने भगवद्भक्तोंको और स्वराज्य-भक्तोंको, कण्ठीधारी वारकरियोंको और तलवारधारी रणरङ्गियोंको एक साथ ही उपदेश किया है । सच्चा वीर कौन है— सच्चा भगवद्भक्त कौन है और सच्चा राष्ट्रभक्त कौन है ? इन्हींकी पहचान, इन्हींके लक्षण इन अभङ्गोंमें बड़ी खूबीके साथ बताये गये हैं ।

इस प्रसङ्गके अतिरिक्त अन्यत्र भी तुकारामजीके अभङ्गोंमें वीरश्रीके अनेक उद्गार हैं—

'जो शूर-वीर है वही हाथका कौशल—मारना और बचाना जानता है । दूसरोंको यह क्या बताया जाय ? तुका कहता है, शूरवीर बनो या मजूरी करके पेट भरो और आरामसे सो जाओ ।'

समर्थ रामदास स्वामीने भी कहा है कि, 'जिसे प्राणका भय हो वह क्षात्रकर्म न करे, किसी उपायसे अपना पेट भरा करे ।' यदि कभी लड़ना-झगड़ना हो तो सरदारका ही सामना करे, भगोड़ोंके पीछे न पड़े—

'यदि लड़ना ही हुआ तो पहले यह समझो कि, जीव कर ही क्या सकता है ? भयको तो सामने आने ही मत दो । प्राण-पणसे लड़ो, और कोई बात चित्तमें छिपाये न रहो । भीरु बनकर मत जीयो—ऐसे जीनेसे तो मरना अच्छा । तुका कहता है, शूर बनो, कालसे काल बनकर लड़ो ।'

कुछ अतिरिक्त बुद्धिवालोंने तुकाराम महाराजको 'अकर्मण्य और भीरु' कहकर अपने ही ऊपर अपना थूक गिरानेका-सा उपहासास्पद दुस्साहस किया है।

१२ सन्तोंको भीरु आदि कहनेवालोंकी मूर्खता

ऊपर तुकारामजीके सिपाहीबानेके जो अभङ्ग दिये हैं उनसे अधिक स्पष्ट और निर्भीक और उज्ज्वल तेज दूसरे किसके उपदेशमें प्रकट हुआ है? ऐसी मेघगर्जना-सी गम्भीर, आकाश-सी निर्मल, सूर्य-सी तेजस्विनी वाणीसे उन्होंने जो उपदेश किया है वह अत्यन्त स्पष्ट, निधड़क और प्रभावोत्पादक है। भगवान्‌की गुहार करनेमें, सन्तोंके गुण गानेमें, नामकी महिमा बतानेमें, दाम्भिकोंका भण्डाफोड़ करनेमें और विविध प्रकारके लोगोंको उपदेश करनेमें उनकी वाणीसे जो तेज निकलता है वही तेज इस राज-कारणविषयक उपदेशमें भी है। और यह उपदेश उन्होंने किसी एकान्त स्थानमें बैठकर चुपके-से नहीं किया है बल्कि हरि-कीर्तनकी भरी सभामें किया है और उन उन्नीस वर्षके युवक वीर शिवाजी और उनके साथियोंको किया है, जिन्होंने अभी-अभी स्वराज्य-संस्थापनके महान् उद्योगपर्वका आरम्भ मात्र किया था। जिन तुकाराम महाराज-का सारा जीवन 'रातदिन अन्तर्बाह्य जगत् और मनसे युद्ध करते' और उनपर अपना स्वामित्व स्थापित करते बीता, परस्त्री-मात्रको जिन्होंने माता माना और सत्त्वहरण करने आयी हुई अप्सराको 'माता रखुमाई' कहकर बिदा किया, जिन्होंने राजाकी ओरसे भेटमें आये हुए बहुमूल्य रत्नोंको 'गोमांससमान' द्रव्य कह-कर लौटा दिया, रामेश्वर भट्ट-जैसे दिग्गज विद्वान्‌को जिनके

आध्यात्मिक तेजके सामने बारह ही दिनमें नतमस्तक होकर अपना आपा सदाके लिये भुला देना पड़ा, शिवबा कासार-से धन-लोभीको जिन्होंने एक सप्ताहमें कीर्तनरंगमें ऐसा रँग डाला कि उसने सारा वैभव परित्याग कर वैराग्य ले लिया, शिवाजी महाराज-जैसे परम तेजस्वी, परम पराक्रमी महापुरुषको जिन्होंने अपनी अन्तर्बाह्य एकता और विशुद्ध सिद्ध प्रबोध-वाणीसे भक्ति-भावसमुल्लासका आनन्द दिलाकर उसपर उनसे नृत्य कराया। जिन्होंने स्वयं परमात्माको निर्गुणसे सगुण साकार बननेको विवश किया और तीन सौ वर्षसे लाखों जीवोंके हृदयोंपर जिनका प्रभाव अखण्डरूपसे प्रवाहित होता और उन हृदयोंको परम प्रसाद देता चला जा रहा है उन तुकारामजीकी वाणी वीर्यवती न होगी तो और किसकी होगी? वह वाणी वीर्यवती तेजस्विनी अभयवरदायिनी है। पर इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं। जैसे वीरशिरोमणि तुकाराम, वैसी ही वीर्यशालिनी उनकी अभङ्ग वाणी। आश्चर्य तो इस बातका है कि, ऐसे तेजोपुञ्ज परम पुरुषार्थी महापुरुषको तथा तत्तुल्य और तद्गुरुस्थानीय श्रीज्ञानेश्वर, एकनाथादि सिद्ध महापुरुषों और महात्माओं तथा सारे वारकरी सम्प्रदायको कुछ आधुनिक ढंगके 'देशभक्तों'ने 'अकर्मण्य, भीरु, राष्ट्रके किसी कामके लायक नहीं, राष्ट्रकी हानि करनेवाले' आदि दुष्ट विशेषणोंसे विद्रूप करके अपनी बुद्धिकी बड़ी सराहना की है, और दुःख इस बातका है कि इनके इस उच्छृंखल बुद्धिचाञ्चल्यसे अनेक नवयुवकोंका बुद्धिभेद हो जाता है! सन्तोंकी निन्दा भगवान्‌को प्रिय नहीं होती और समाजके लिये पथ्यकर नहीं होती। श्रीज्ञानेश्वर, एकनाथ, तुका-

रामादि भक्तोंने या वारकरी सम्प्रदायने इन नयी रोशनीवालोंका जाने क्या बिगाड़ा है। देशभक्तोंके सम्प्रदायको इस प्रकार सन्तोंकी निन्दा, सन्तोंका विरोध और धर्मका उच्छेद सूझे, यह बहुत ही बुरा है। भारतवासियोंके हृदयोंपर सन्तोंका इतना गहरा प्रभाव पड़ा हुआ है कि उसके सामने कोई निन्दा, विरोध और उच्छेदका दुस्साहस ठहर ही नहीं सकता। यदि भारतीय साहित्यमेंसे सन्तोंकी वाणी अलग कर दी जाय, यदि महाराष्ट्रके साहित्यसे ज्ञानेश्वर, एकनाथ, तुकाराम या हिन्दी-साहित्यसे सूर, तुलसी, कबीर आदिकी वाणी अलग कर दी जाय तो इन साहित्योंमें रह ही क्या जायगा? श्रीज्ञानेश्वर, एकनाथ, तुकाराम आदि सन्तोंने महाराष्ट्रमें धर्मको जगानेका प्रचण्ड कार्य किया, राष्ट्रकी मनोभूमि शुद्ध कर दी, लोगोंको धर्म, नीति और सदाचारके पाठ पढ़ाये, विधर्मी राजसत्तासे पददलित अचेत जनताको धर्मकी सञ्जीवनीसे चैतन्य किया, वैदिक धर्मकी रक्षा की, बड़ी ही कठिन परिस्थितिमें हिन्दू-धर्म और हिन्दू-समाजको सँभाला और पालन किया, मराठी भाषाका वैभव वृद्धिगत किया, अपने उज्ज्वल चरित्र और दिव्य प्रबोध-शक्तिसे महाराष्ट्रमें नवजीवनका सञ्चार किया और इसीसे श्रीशिवाजी महाराज स्वराज्यसंस्थापनमें समर्थ हुए। सूर्यप्रकाशके समान देदीप्यमान इस घटनापरम्पराको देखते हुए भी जो लोग पाश्चात्योंकी देशप्रेमसम्बन्धी कल्पनासे गुमराह होकर इन लोककल्याणकारी सन्तोंकी अवहेलना करते हैं, उन्हें क्या कहा जाय? मनोजयके मूर्तिमान् आकार, निश्चयके मेरु, ज्ञान और वैराग्यके सागर, लोककल्याणके अवतार, अखिल महाराष्ट्रके लिये माता-पितासे भी अधिक पूज्य, लोककल्याणकी

इच्छा करनेवाले जिनके चरणोंके पास बैठकर आशीर्वाद पाकर बलवान् बनें ऐसे महामहिम ईश्वरतुल्य सिद्ध महात्माओंको 'अकर्मण्य और भीरु' और 'राष्ट्रका मनोबल नष्ट करनेवाले' कहकर उनकी निन्दा करनेवाले आत्मघाती जीव कम-से-कम इतना तो करें कि पहले उनके सब ग्रन्थ पढ़ जायँ। इन लोगोंका यह ध्यान है कि राष्ट्रको इन सन्तोंने नष्ट ही कर डाला था, पर रामदासने आकर राष्ट्रको उबार लिया। समर्थ रामदास स्वामीकी स्तुति किसको प्रिय न होगी ? जितनी करो थोड़ी है। पर इसके लिये यह आवश्यक नहीं कि अन्य सन्तोंकी निन्दा की जाय। शिवाजीको समर्थ रामदास वरद और सहाय हुए, यह तो स्पष्ट ही है। पर समझनेकी बात यह है कि स्वराज्य-साधनके काममें शिवाजी महाराजको जो पराक्रमी, न्यायवान्, सदाचार-सम्पन्न, दृढ़ निश्चयी और शीलवान् साथी और सेवक मिले, जिन्होंने राष्ट्रकार्य साधनेके लिये अपना सर्वस्व शिवाजीके झण्डेपर न्योछावर कर दिया वे सच्चरित्र वीर एकनाथ, तुकारामादि सन्तोंकी सञ्जीवनी वाणीसे नवजीवन पाये हुए महाराष्ट्रमेंसे ही मिले या ये सब आसमानसे टपक पड़े ? सन्तोंने महाराष्ट्रको यदि भीरु बनाया था तो तुकारामजीकी मेघगर्जनासे निनादित महाराष्ट्रकी गिरिकन्दराओं-में ही शिवाजीको अपने प्यारे मावले सैनिक मिले थे या उन्हें उन्होंने कहींसे पारसलसे मँगवाया था ? इतिहास तो मुक्तकण्ठसे यह स्वीकार करता है कि इन पहाड़ोंमें रहनेवाले कट्टर, ईमानदार और शूरवीर मावलोंसे एकनिष्ठ सहायता और सेवा पाकर ही शिवाजी स्वराज्य स्थापित कर सके। मावले प्रायः किसान होते हैं

और सब देशोंके किसानोंके समान इन्हें भी लावनियाँ और 'पोवाडे' गानेका शौक होता है। आज भी जाकर कोई मावलोंके प्रदेशमें घूम आवे तो उसे यह मालूम होगा कि तुकाराम महाराजके अभङ्ग परम्परासे गाते हुए अबतक वे चले आये हैं। मावलोंका जो कुछ धर्म-सम्बन्धी ज्ञान है वह तुकारामके नाम और अभङ्गोंका स्मरण-मात्र है। उनका सम्पूर्ण साहित्य इतना ही है। शिवाजीके मावलोंके बारह जिले एक-दूसरेमें मिले हुए हैं और एक-से ही बने हुए हैं। तानाजी मालुसरेके इतिहासप्रसिद्ध शेलार मामा देहूसे डेढ़ कोसपर शेलारवाड़ीमें ही रहा करते थे। पीछे शिवाजीके सफेद-पोश सिपाहियोंपर समर्थ रामदासकी धाक जमी, इसमें कोई सन्देह नहीं। पर इसके पूर्व मावलोंको धर्म, नीति, व्यवहारकी अमोघ शिक्षा तुकारामजीके हरि-कीर्तनोंसे प्राप्त हुई थी, इसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। मनुष्य-समाज विराट् पुरुष है और विराट् बने हुए महात्माके सिवा उसे और कोई हिला-डुला नहीं सकता। यह ऐरे-गैरे नत्थू-खैरोंका काम नहीं है। कलिकालके प्रभावसे राष्ट्रपर धर्मग्लानिकी घटा बीच-बीचमें घिर आया करती है और ऐसे समय लोग शक्तिहीन, दुर्बल, कापुरुष-से बन जाते हैं। पर धर्म-रक्षाके निमित्त जब महापुरुष अवतीर्ण होते हैं तब यह घटा छिन्न-भिन्न होकर नष्ट हो जाती है। महापुरुषोंके प्रभावसे राष्ट्रमें सब प्रकारके पुरुषार्थी पुरुष उत्पन्न होते हैं और राष्ट्रकी सर्वांगीण उन्नति होती है। समाजके लिये, इह-परलोकमें सन्तोंके सिवा और कोई तारनेवाला नहीं। सन्तोंके नेतृत्व और कृपाशीर्वादके बिना राज-कीय उद्योग ताशके पत्तोंका-सा खेल हो जाता है! उसका कोई

मूल्य या महत्त्व नहीं। समर्थ रामदास स्वामीने भी तो यही कहा है कि, 'पहिलें तें हरिकथानिरूपण। दुसरें तें राजकारण' (पहले हरि-भजन और तब राजशक्तिसाधन) साधु-सन्तोंपर यह आक्षेप किया जाता है कि इन लोगोंने संसारको 'मिथ्या और नाशवान्' कहा, इससे लोग अकर्मण्य बन गये; पर ऐसा आक्षेप करने-वालोंसे यह पूछना चाहिये कि क्या समर्थ रामदास स्वामीने संसार-को 'सत्य और अविनाशी' कहा है? यदि नहीं तो तुकाराम या अन्य सन्तोंने कौन-सी मिथ्या और विनाशकी बात कही? भगवान् श्रीकृष्णने भी तो यही कहा है कि, 'अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्॥' वेद और शास्त्र क्या बतलाते हैं और अपना अनुभव भी आखिर क्या है यह भी तो देख लो। सच्चे देशभक्त श्रीशिवाजी महाराज सन्तोंके तेज और बलको समझते थे और उनके चरणोंमें लीन रहते थे! राजशक्तिसाधन यदि धर्म-विवेकको छोड़कर चलेगा तो दर-दर भटककर अन्तमें सिर पटककर रह जायगा। राजस आन्दोलनोंके थपेड़े खाकर हताश होनेके बाद जब पूर्ण निराशा राष्ट्रको घेर लेती है तब राष्ट्र ईश्वर, धर्म और साधु-सन्तोंकी ओर झुकता है, तब उसे ठीक रास्ता मिलता है, सच्चा सात्त्विक प्रेम, बन्धु-बान्धवोंका ऐक्य और आत्मरतिका तेज तथा धर्मका बल प्राप्त होता है और राष्ट्र अपने उद्योगमें यशस्वी होता है। जब समाज धर्म-कर्म-रहित, विवेक-हीन और मूढ़ बन जाता है तब उसमें सर्वत्र गन्दगी ही फैल जाती है, सामान्य बूँदा-बाँदीसे वह नहीं धुल जाती, उसके लिये मूसलाधार वर्षाकी ही आवश्यकता होती है। ज्ञानेश्वर, एक-नाथ, तुकाराम और रामदास अपने मेघगर्जनसे सारे समाजको

हिला डालते हैं; उनकी मेघवृष्टिसे समाजकी सारी गन्दगी वह जाती है और कूएँ, नदी, नाले पानीसे भर जाते हैं; पथरीली जमीनको छोड़कर शेष भूमि भीगती है और ऐसी उपजाऊ भूमिमेंसे शिवाजी-जैसे कुशल और समर्थ कृषक चाहे जो अन्न उपजा लेते हैं और सम्पूर्ण राष्ट्र सुखी और समृद्ध 'आनन्दवनभुवन' में परिणत हो जाता है। महाराष्ट्रको ऐसी समृद्धि तुकारामजीके प्रयाणके पश्चात् बीस-बाईस वर्षके भीतर ही प्राप्त हुई। उस सुख-समृद्धिको देखकर भूमिकी और उसे कमानेवालोंकी, खेतोंकी हरियालीकी, उस अन्नप्रचुरताकी तथा उसे भोगनेवालोंके सौभाग्यकी चाहे जितनी प्रशंसा कीजिये, वह उचित ही है और उसमें सभी सहमत हैं। पर प्रेमसे इतनी ही विनय और है कि उस आनन्दमें मेघके उपकारको न भूलें। हताश, परवश, धर्मशून्य बने हुए महाराष्ट्रमें उस मेघवृष्टिके होते ही दीन, दरिद्र, दुखिया महाराष्ट्र 'आनन्दवनभुवन' हो गया। उस आनन्दवनभुवनका माहात्म्य हम श्रीसमर्थ रामदास स्वामीके ही मेघगर्जनसे सुनकर इस मेघ-संघातको विनम्रभावसे वन्दन करें। श्रीशिवाजी महाराजके राज्याभिषेकका परम मङ्गलमय शुभ कार्य सुसम्पन्न होनेके पश्चात् समर्थ रामदास स्वामीने बड़े आनन्दके साथ कहा—

'यह देश अब आनन्दवनभुवन बन गया। स्नान-सन्ध्या, जप-तप, अनुष्ठानके लिये पवित्र उदककी अब कोई कमी न रही। जो लिखा सो ही हुआ, बड़ा आनन्द हो गया, अब प्रेम इस आनन्दवनभुवनमें दिनदूना, रातचौगुना बढ़ता जायगा। पाखण्ड और विद्रोहका अन्त हो गया, शुद्ध अध्यात्म बढ़ा. राम ही कर्ता

और राम ही भोक्ता इस आनन्दवनभुवनके हो गये। भगवान् और भक्त एक हो गये, सब जीवोंका मिलन हुआ और सब जीव इस आनन्दवनभुवनको पाकर सन्तुष्ट हुए। स्वर्गकी रामगङ्गा जहाँ आकर बहने लगीं, ऐसे इस आनन्दवनभुवन-तीर्थकी उपमा किस तीर्थसे दी जाय? स्वधर्मके मार्गमें जो विघ्न थे वे सब दूर हो गये, भगवान्‌ने स्वयं कितने ही कुटिल खल-कामियोंको उठाकर पटक दिया, कितनोंको मसल डाला और कितनोंको काट भी डाला। सभी पापी खतम हुए, हिन्दुस्थान दनदनाकर आगे बढ़ा, अब आनन्द-वनभुवनमें भक्तोंकी जय और अभक्तोंकी क्षय हुई। भगवान्‌के द्रोही गल गये, भाग गये, मर गये, निकाल बाहर किये गये! पृथिवी पावन हो गयी और जो आनन्दवनभुवन था वह आनन्दवनभुवन हो गया।'
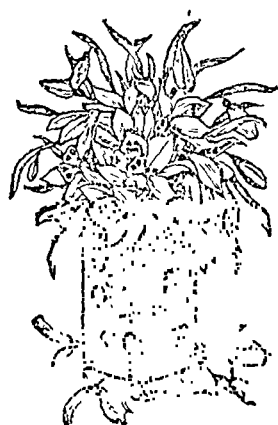
तेरहवाँ अध्याय

चातक-मण्डल

पिपासाक्षामकण्ठेन याचितं चाम्बु पक्षिणा।
नवमेघोज्झिता चास्य धारा निपतिता मुखे॥

तुकारामजीके मुख्य शिष्य

तुकाराम महाराजने स्वयं गुरु बननेकी कभी इच्छा नहीं की। मेघवृष्टि-से उपदेश किया करते थे। तथापि मेघकी ओर अनन्यगतिक होकर देखनेवाले चातक नारायणकी सृष्टिमें उत्पन्न हुआ ही करते हैं। इसमें मेघकी इच्छा-अनिच्छाकी कोई बात नहीं। तुकारामजीका कीर्तन सहस्रों श्रोता सुना करते थे, सुनकर सुखी होते थे और फिर तुरन्त अपने पुराने अभ्यासको लौट भी जाते थे; परन्तु इनमें अनेक ऐसे भी थे जिन्होंने मन, वचन, कर्मसे तुकारामजीका अनुसरण भी किया। ऐसे बड़भागी जीवोंके पावन नामों और उनके पुण्य चरित्रोंका इस अध्यायमें दर्शन करें।

देहू ग्राममें एक पुराने संग्रहमें तुकारामजीके प्रधान-प्रधान शिष्योंके नाम एक साथ लिखे हुए मिले हैं—१–निलोबाराय पिंपलनेरकर, २–रामेश्वर भट्ट वाघोलीकर, ३–गङ्गाराम मवाळ कडूस-कर, ४–महादजी पन्त कुळकर्णी देहूकर, ५–कोंडो पन्त लोहोकरे, ६–मालजी गाडे येलेवाडीकर, ७–गवर शेटवाणी सुदुंब्रेकर,

८—मल्हार पन्त कुलकर्णी चिखलीकर, ९—आंबाजी पन्त लोहगाँवकर, १०—कान्होबा बन्धु देहूकर, ११—सन्ताजी जगनाडे तळेगाँवकर, १२—कोंड पाटील लोहगाँवकर, १३—नावजी माळी लोहगाँवकर और १४—शिवबा कासार लोहगाँवकर।

ये चौदह नाम हैं। इनमें सबसे पहला नाम निलोबाराय (या निलाजी राय) का है। यह नामोल्लेख इसलिये नहीं हुआ है कि तुकारामजीके साथ करताल बजानेवालोंमें यह रहे हों बल्कि इसलिये हुआ है कि तुकारामजीके शिष्योंमें यही सबसे बढ़कर हुए। इन १४ शिष्योंमें ७ ब्राह्मण थे और ७ अन्य वर्णोंके। यह जो कभी-कभी सुननेमें आता है कि 'ब्राह्मणोंने तुकारामजीको सताया' सो ब्राह्मणशिष्योंके इन नामोंसे व्यर्थ-सा ही जान पड़ता है। यह भेद-भाव वारकरी सम्प्रदायमें तो कभी था ही नहीं। तुकारामजीकी छत्रछायामें सभी शिष्य भगवत्कथामृत-पानमें ही मस्त रहते थे और उनका परस्पर प्रेम भी अवर्णनीय था। निलाजीको छोड़ शेष तेरह शिष्य पूना प्रान्तके ही अधिवासी और देहूकी पञ्चक्रोशीके ही भीतरके थे। कान्होबा बन्धु और मालजी गाडे जँवाई तो घरके ही आदमी थे। इन चौदह शिष्योंके अतिरिक्त कचेश्वर ब्रह्मे तथा बहिणाबाईका हाल इधर दस वर्षोंके अन्दर ही मालूम हुआ है, इसलिये इस अध्याय-में इनका भी समावेश होना चाहिये। पहले तेरह शिष्योंकी वार्ता सुनें। तेरहमें चार लोहगाँवके हैं। लोहगाँवमें तुकारामजीका ननिहाल था और वहाँके लोग तुकारामजीको बहुत प्यार भी करते थे इसलिये पहले तेरह शिष्योंका परिचय प्राप्तकर पीछे लोहगाँवको चलेंगे। और इसके बाद कचेश्वर और बहिणाबाईके दर्शन करेंगे और अन्तमें

निळाजी रायका चरित्र देखेंगे। इन सोलह शिष्योंमेंसे निळाजी राय, कान्हजी और बहिणाबाईके अभङ्ग मौजूद हैं; रामेश्वर भट्टके भी चार अभङ्ग और दो आरतियाँ हैं।

१ महादजी पन्त

यह देहूके ज्योतिषी कुलकर्णी थे, तुकारामजीके आरम्भसे ही परमभक्त थे। तुकारामजीके घरानेके साथ इनके घरानेका स्नेह पहलेहीसे चला आता था। तुकाराम महाराजके गृहप्रपञ्चकी चिन्ता इन्हींको अधिक रहती थी, जिजाबाईको समय-समयपर अन्नादि और द्रव्यादि देकर यह उनकी मदद करते थे, उनकी खबर रखते थे और आपत्ति-कालमें सहाय होते थे। महादजी पन्तका यह सारा व्यवहार घरके बड़े-बूढ़ोंका-सा था। इन्द्रायणीके तटपर जहाँ देवीकी अनेक मूर्तियाँ एक साथ हैं, वहाँ तुकारामजी भजन करते थे और भजनमें लवलीन हो जाते थे। एक बार पड़ोसका एक किसान तुकारामजीको अपने खेतकी रखवालीके लिये बैठाकर किसी कामसे एक दूसरे गाँवमें गया। तुकारामजीको अपने तनकी सुधि तो रहती ही नहीं थी, भजनमें ही रमे रहते थे, चिड़ियाँ आकर दाना चुगने लगतीं तो इन्हें तो उनमें नारायणकी मूर्तियाँ दिखायी देती थीं, इससे पक्षी भी निश्चिन्त प्रसन्नताके साथ खेत चुग जाते, ये हाथ जोड़े ही बैठे रहते! वह किसान इस रखवालीके बदले आधा मन अनाज देनेकी बात तुकारामजीसे कह गया था, पर वह जब लौटकर आया तो सब बाल खाली, एकमें भी दाना नहीं। मारे क्रोधके हाथ-पैर पटकता हुआ वह पञ्चोंके पास गया। पर पञ्च जब देखनेके लिये खेतपर आये तब सारा दृश्य

ही उलट गया। जहाँ एक भी दाना नहीं था, वहाँ दो सौ मन अनाज निकला। पञ्चोंने सौ मन अनाज तुकारामजीको दिलाया। पर तुकारामजीने आधे मनसे अधिक लेना अस्वीकार किया। तब लोगोंके कहनेसे महादजी पन्तने उस अन्नराशिको अपने घरमें रखवा लिया और श्रीविट्ठल-मन्दिरके जीर्णोद्धारके काममें उसे सचाईके साथ खर्च किया।

२ गङ्गाराम मवाल

यह तुकारामजीके कीर्तनमें ध्रुवपद अलापते थे। तुकारामजी-के यही पहले ध्रुवपदी थे। यही तुकारामजीके एक मुख्य लेखक भी थे। प्रधान लेखक दो थे, एक यह और दूसरे सन्ताजी तेली चाकणकर। गङ्गाराम मवाल वत्सगोत्री यजुर्वेदी ब्राह्मण थे और दाभाडेतले गाँवमें रहते थे। इनके पिताका नाम नाभाजी था। यह सराफीका काम करते थे, और सम्पन्न थे। स्वभावसे बड़े सात्त्विक, शान्त, सहिष्णु और प्रेमी थे। इनका कुल-नाम महाजन था। इनके मृदु सौम्य स्वभावके कारण तुकारामजी इन्हें विनोदसे 'मवाल' (नरम) कहा करते थे। गोपालबुवाने इनके अन्तः-करणको 'मोमसे भी मुलायम' कहकर इनका वर्णन किया है, गङ्गा-रामजीकी तरह ही सन्ताजी तेलीका भी स्वभाव था। स्वभाव दोनोंका मिलता था, इससे दोनों एक दूसरेके बड़े प्रेमी भी थे। ऐसे प्रेमी, ऐसे नैष्ठिक और ऐसे दुराशारहित ध्रुवपदिये—प्रेममें मस्त होकर नाचनेवाले मञ्जुल स्वरसे स्वर-में-स्वर मिलानेवाले और तन-मनसे तुकारामजीका अनुगमन करनेवाले, तुकारामजीके पीछे खड़े रहकर उनके भजनकी टेक या स्थायी पद गानेवाले ध्रुवपदिये—

थे, इससे तुकारामजीके कीर्तनमें रंगदेवता नाच उठते थे और श्रोताओंपर बड़ा अद्भुत प्रभाव पड़ता था, इन गङ्गाराम नरम-के वंशज आज भी पूना और कडूसमें मौजूद हैं । पहले पहल तुकारामजीसे इनका साक्षात् भामनाथ पर्वतपर हुआ । गङ्गाराम नरम अपनी खोयी हुई भैंसको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वहाँ पहुँचे थे । तुकारामजी उस समय भजनके आनन्दमें थे । इन्हें देखकर उनके मुँहसे एक बात निकल गयी । उन्होंने कहा, 'जाओ, घर लौट जाओ, भैंस तो तुम्हारे घरमें ही बँधी है ।' यह लौटे, घर पहुँच-कर देखते हैं कि सचमुच ही भैंस बँधी खड़ी है । चार दिनसे उसका पता नहीं था, ढूँढ़ते-ढूँढ़ते गङ्गाराम हैरान हो गये, आज वह भैंस आप ही लौट आयी । गङ्गारामने इसे उस साधुके वचन-का ही प्रभाव जाना । उनका यह ज्ञान अन्यथा भी नहीं था । कारण, साधुओंके सहज वचनोंमें ऐसी ही क्रियासिद्धि होती है । गङ्गारामने दूसरे ही दिन उत्तम भोजन तैयार कराया और एक थालमें पूरण-पूरी आदि सब पदार्थ सजाकर रखे और उस थालको सिरपर रखकर वह भामनाथ पर्वतपर तुकारामजीके समीप ले गये । तुकारामजीके सामने थाल रखकर उनकी चरण-वन्दना की और भोजन पानेकी, बड़ी दीनतासे विनती की । तुकारामजीने इनके निष्कपट स्नेहको जानकर भोजन किया । पर ऐसी उपाधि बढ़ने-की आशङ्कासे वह कुछ ही दिन बाद उस स्थानको छोड़कर भण्डारा पर्वतपर चले गये । गङ्गारामजीके चित्तपर तो तुकारामजीकी मूर्ति खिंच गयी । और वह भण्डारा पर्वतपर भी तुकारामजीके पास जाने-आने लगे । यह समागम अब इतना बढ़ा कि तुका-

रामजीके समीप दो आदमी सदा ही छाया-से रहने लगे—एक गङ्गाराम और दूसरे सन्ताजी ! तुकारामजीकी छायाकी यह युगल-जोड़ी ही थी। तुकारामजीको माघ शुक्ला दशमीके दिन गुरूपदेश हुआ था। इस निमित्त तुकारामजीसे अनुमति लेकर गङ्गारामजी कडूसमें इस दिन आनन्दोत्सव मनाने लगे। यह उत्सव गङ्गा-रामजीके वंशज अभीतक बड़े ठाटके साथ पन्द्रह दिनतक लगातार किया करते हैं। इन उत्सवके दिनोंमें उनके यहाँ अशौच या वृद्धि नहीं होती और किसी बच्चेको माता भी नहीं निकलती। अभीतक यही मान्यता चली आयी है और मवालवंशज इसे तुकारामजीका प्रसाद मानते हैं। गङ्गारामके पुत्रका नाम विट्ठल था। इनके वंशमें रामकृष्ण नामके कोई महात्मा भी हुए, जो परमहंस-वृत्तिसे पण्ढरपुरमें रहा करते थे।

३ सन्ताजी तेली

इनका कुछ हाल तो ऊपर आ ही चुका है। यह चाकणके रहनेवाले, कुल-नाम इनका सोनवणे। इनके पुत्रका नाम बालाजी। इनके वंशज तलेगाँवमें मौजूद हैं। सन्ताजीके हाथकी लिखी हुई तुकारामजीके अभंगोंकी बहियाँ तलेगाँवमें हैं। कहते हैं तुकारामजी और सन्ताजीके बीच यह शपथ-प्रतिज्ञा थी कि हम दोनोंमेंसे जिसकी मृत्यु पहले हो उसे जो जीवित रहे वह मिट्टी दे। तुकारामजी तो मरे नहीं, अदृश्य हुए। उनके अदृश्य होनेके कई वर्ष बाद सन्ताजीका चोला छूटा। उनके घरके लोग उन्हें मिट्टी देने लगे पर कितनी भी मिट्टी दी तो भी सन्ताजीका मुँह मिट्टीसे नहीं तोपा जा सका, वह मिट्टीके ऊपर खुला ही रहा। किसी तरह मुँह

नहीं तोपा गया, तब मध्यरात्रिके समय उस स्थानमें तुकारामजी स्वयं प्रकट हुए और उन्होंने अपने हाथसे मिट्टी दी, तब मिट्टी देनेका काम पूरा हुआ। उस अवसरपर सन्ताजीके पुत्र बालाजी-को तुकारामजीने तेरह अभङ्ग दिये। उनमेंसे एकका भाव इस प्रकार है—

'गौओंको चराते हुए मैंने जो वचन दिया था उससे मुझे एक तेलीके लिये आना पड़ा। तीन मुट्ठी मिट्टी देनेसे उसका मुँह तुपा। (यह तो बाहरी बात है, असलमें) तुका कहता है, मैं इसे विष्णुलोकमें लिवा जानेके लिये आया हूँ।'

सन्ताजीकी समाधि भण्डारा पर्वतके नीचे सुदुम्बर नामक ग्राममें है।

४ गवर सेठ बनिया

यह कर्णाटकके लिङ्गायत बनिया सुदुम्बरमें रहते थे। बड़े सात्त्विक थे। तुकारामजीके महाप्रयाणके पश्चात् इनकी देह छूटी। मृत्युके पूर्व इन्होंने रामेश्वर भट्ट और कान्हजीको अपने समीप बुला लिया था और उनके मुखसे तुकारामजीके अभङ्ग सुनते हुए इन्होंने देह त्याग किया। उस समय तुकारामजीके रूपकी ओर इनकी ऐसी लौ लग गयी थी कि अन्त समयमें तुकारामजी प्रकट हुए। इन्होंने अपने हाथसे तुकारामजीके ललाटमें चन्दन लेपन किया और गलेमें फूलोंका हार डाला। तुकारामजीको और किसीने नहीं देखा पर सबने अधरमें हार लटका हुआ देखा और तुकारामजीके नामकी जयध्वनि की, उसी ध्वनिमें मिलकर गवर सेठके प्राण चले गये।

५ मालजी

यह तुकारामजीके जवाँई याने उनकी कन्या भागीरथीके पति थे। पति-पत्नी दोनोंकी ही तुकारामजीपर बड़ी भक्ति थी। तुकारामजीने मालजीको नित्य-पाठके लिये गीताकी पोथी दी थी।

६ तुकाभाई कान्हजी

तुकारामजीके भाई कान्हजी पहले तुकारामजीसे बाँट-बखरा कराके अलग हो गये थे, पर पीछे इनके हृदयपर तुकारामजीका प्रभाव पड़ा और यह तुकारामजीकी शरणमें आकर शिष्य बने। यह तुकाभाई कहलाने लगे। तुकारामके अभङ्गोंकी 'गाथा'में इनके भी अनेक उत्तम अभङ्ग हैं। तुकारामजीके महाप्रयाणपर इन्होंने जो विलाप किया है और भगवान्‌को जो खरी-खोटी सुनायी है उस विषयके अभङ्ग तो बड़े ही करुणारसपूर्ण हैं।

७ मल्हार पन्त चिखलीकर

यह भी तुकारामजीके बड़े नियमनिष्ठ भक्त थे और कीर्तनमें करताल बजाते थे।

८ कोंडो पन्त लोहोकरे

यह भी ध्रुवपद गाया करते थे। एक बार इन्होंने तुकारामजीपर अपनी यह इच्छा प्रकट की कि मैं काशीयात्राको जाना चाहता हूँ, आपके अनेक धनी-मानी भक्त हैं, उनसे कुछ कह दीजियेगा तो मैं आरामसे पहुँच जाऊँगा। तुकारामजीने बात सुनी और अपने आसनके नीचेसे एक अशर्फी निकालकर उनके हाथपर रखी और कहा कि 'यह लो, इसे भँजाकर जरूरी सामान

लिया करो, पर जो भी खर्च करो एक पैसा रोकड़ जमा रखो, इससे उसी पैसेकी, दूसरे दिन अशर्फी बन जाया करेगी।' कोंडो पन्तने बड़े कुतूहलके साथ वह अशर्फी अपनी टेंटमें खोंसी और वहाँसे विदा लेकर उसी दिन उसका चमत्कार आजमाया। पैसेकी अशर्फी बन जाती है, यह प्रत्यक्ष देखकर उनके कुतूहलका ठिकाना न रहा। तुकारामजीने उनसे यह कह रखा था कि यह बात और किसीसे न कहना। अस्तु। तुकारामजीने उनके साथ काशीमें तीन अभङ्ग भेजे थे। पहले अभङ्गमें गङ्गाजीको माता कहकर पुकारा है और यह प्रार्थना की है—

(१)

'भगवति मातः! मेरी विनती सुनो। आपके चरणोंमें मैं अपना मस्तक रखता हूँ। आप महादोषनिवारिणी भागीरथी सब तीर्थोंकी स्वामिनी हैं। जीवन्मुक्ति देनेवाली हैं, आपके तीरपर मरना मोक्षलाभ करना है; इहलोक और परलोक दोनोंके लिये आप सुख देनेवाली हैं। सन्तोंने जिसे पाला-पोसा वह श्रीविष्णुका दास तुका यह वचन-सुमन आपकी भेंट भेजता है।'

(२)

दूसरे अभङ्गमें श्रीकाशीविश्वनाथसे प्रार्थना करते हैं—

'आप विश्वनाथ हैं, मैं दीन, रङ्क, अनाथ हूँ। मैं आपके पैरों गिरता हूँ, आप कृपा कीजिये, जितनी कृपा करेंगे वह थोड़ी ही होगी क्योंकि मैं (आपकी कृपाका) बड़ा भुक्खड़ हूँ। आपके पास सब कुछ है और मेरा सन्तोष अल्पसे ही हो जाता है। तुका कहता है भगवन्! मेरे लिये कुछ खानेको भेजिये।'

(३)

'विष्णु-पदमें अपने करोंसे पिण्डदान कर चुका हूँ। गयावर्णन मेरा हो चुका है। पितरोंके ऋणसे मैं मुक्त हो चुका हूँ। अब मैंने कर्मान्तर कर लिया है। हरिहरके नामसे बम-बम बजा चुका हूँ। तुका कहता है, मेरा सब बोझ अब उतर गया है।'

इन तीन अभङ्गोंमें भागीरथी, काशीविश्वेश्वर और विष्णु-पदकी प्रार्थना की है। कोंडोजीने तुकारामजीसे मिली हुई सुवर्ण-मुद्रासे सम्पूर्ण यात्रा पूरी की। चातुर्मास्य उन्होंने काशीमें किया और तब लोहगाँवमें लौट आये। तुकारामजीके चरणवन्दन किये और यात्राका सब हाल निवेदन किया। पर एक बात झूठ कह दी। उन्हें यह डर हुआ कि तुकारामजी अपनी सुवर्ण-मुद्रा कहीं वापस न माँग बैठें। इसलिये उन्होंने बड़ी समयसूचकताके साथ पहले ही कह दिया कि यात्रासे लौटते हुए सुवर्ण-मुद्रा जाने कहाँ खो गयी। तुकारामजीने कहा, तथास्तु। घर लौटकर कोंडो पन्तने देखा कि दुपट्टेके छोरमें बाँधकर रखी हुई मुद्रा न जाने कहाँ गायब हो गयी! तुकारामजी-जैसे सर्वसमर्थ पुरुषसे ऐसा कपट किया, इस बातपर उन्होंने बड़ा पश्चात्ताप किया और तुकारामजीके चरणोंमें गिर उनसे अपना अपराध क्षमा कराया।

९ रामेश्वर भट्ट

रामेश्वर भट्ट तुकारामजीके विद्वेषी थे, पीछे उनके परम भक्त हुए; यह कथा पहले कही जा चुकी है। वाघोलीमें रामेश्वर भट्टके भाईके वंशज हैं और बहुल नामक स्थानमें स्वयं रामेश्वर भट्टके

वंशज हैं। रामेश्वर भट्टके परदादा कान्ह भट्ट कर्णाटक प्रदेशमें बादामी नामक स्थानमें रहते थे। वहाँसे वह पूनेमें आये और वहीं बस गये। इनके पूर्वज कर्णाटक ही थे, इन्हींके समयसे यह घराना महाराष्ट्रीय हुआ है। कान्ह भट्टके पुत्र चण्ड या चाण्ड भट्ट, चाण्ड भट्टके पुत्र कान्ह भट्ट और कान्ह भट्टके पुत्र रामेश्वर भट्ट हुए। रामेश्वर भट्टके पुत्र विट्ठल भट्ट हुए। विट्ठल भट्टका वंश बहुल ग्राममें विद्यमान है। रामेश्वर भट्टके कुलमें वेदाध्ययन पूर्वपरम्परासे ही चला आया था। इन्होंने सम्पूर्ण वेद अपने पितासे ही पढ़े। यह रामके उपासक थे। जिस मूर्तिकी यह पूजा करते थे, वह मूर्ति बहुल ग्राममें इनके वंशजोंके पास है। वाघोलीमें व्याघ्रेश्वर महादेवका स्थान प्रसिद्ध है। रामेश्वर भट्टने यहाँ बड़ा अनुष्ठान किया था। घरकी श्रीराममूर्तिकी पूजा-अर्चा करके यह नित्य ही व्याघ्रेश्वरके मन्दिरमें आकर एकादण्णी (एकादश रुद्रपाठ) करते थे। इनके वंशज 'बहुलकर' कहलाते हैं और इनकी पैतृक ज्योतिषी वृत्तिके वाघोली, भांवडी, बहुल, चिंचोली और शिंदेगव्हाण—ये पाँच गाँव अभीतक इनके अधिकारमें हैं। रामेश्वर भट्ट जब तुकारामजीके शिष्य हुए तबसे वारकरी मण्डलमें उनकी बड़ी प्रतिष्ठा हुई। तुकारामजीके पीछे कीर्तनमें यह झाँझ लेकर खड़े होते थे। दस-बारह वर्ष यह तुकारामजीके सत्सङ्गमें रहे, तुकारामजीने महाप्रस्थान किया तब यह देहूमें ही थे और कुछ झगड़ा पड़नेपर वहाँ इन्होंने ही शास्त्रीय व्यवस्था दी थी। इनकी समाधि वाघोलीमें है। बहुलकरोंके यहाँ मार्गशीर्ष शुक्ल १४ को इनकी तिथि मनायी जाती है।

१० शिवबा कासार

लोहगाँवमें तुकारामजीका ननिहाल था और लोहगाँवके लोग भी इन्हें बहुत चाहते थे, इससे लोहगाँवमें तुकारामजीका आना-जाना बराबर लगा रहता था। वहाँ तुकारामजीके कीर्तनका रंग और भी गाढ़ा रहता था। सारा लोहगाँव उनके कीर्तनपर टूट पड़ता था और आसपासके भी सैकड़ों लोग आ जाते थे। पर नहीं आता था शिवबा कासार, और केवल आता ही नहीं था सो नहीं, घर बैठे तुकारामजीकी खूब निन्दा भी किया करता था। वह जैसा दुष्ट, भ्रष्ट और कुटिल था, सब जानते थे। पर तुकारामजीका दयार्द्र अन्तःकरण तो यही चाहता था कि कोई कैसा भी दुष्ट प्रकृतिका मनुष्य हो, वह कीर्तन श्रवण करे, भक्ति-गङ्गामें नहा ले और शुद्ध होकर तर जाय। लोगोंके बहुत कहने-सुननेपर वह एक दिन लोगोंकी बात रखनेके ही विचारसे कीर्तन सुनने आ ही तो गया। दूसरे दिन उसका मन कहने लगा कि चलो, जरा कीर्तन ही सुन आओ; फिर वही मन यह भी कहे कि अरे, कहाँ जाते हो, बढ़ाओ बखेड़ा; पर उसके पैर उसे घसीट ही लाये। तीसरे दिन कोई विकल्प नहीं पड़ा, अपनी ही इच्छासे आप ही बड़ी प्रसन्नताके साथ कीर्तन सुनने आया। इसके बाद तीन दिनतक उसकी उत्कण्ठा बढ़ती ही गयी। सातवें दिन तो वह तुकारामजीका भक्त ही बन गया। तुका-रामजीके निर्मल हृदयकी अमोघ वाणीका यह प्रसाद था, जिसने सात दिनमें एक बड़े दुर्वृत्तको सुधारकर भगवान्‌का प्रेमी बना दिया। तुकारामजीने कहा है कि 'खल दुर्जनको निर्मल सुजन

बना देंगे। गधेको घोड़ा बनाकर दिखा देंगे।' शिवबा कासारको सचमुच ही उन्होंने कुछ-का-कुछ बनाकर दिखाया—यह पत्थरको ही पिघलानेका-सा काम था। तुकारामजीके सङ्गसे शिवबाका रूपान्तर हो गया। उसकी स्त्री अपने पतिका नया रूप, रंग और ढंग देखकर बहुत घबरायी। उसके जो पतिदेवता नित्य हाय पैसा! हाय पैसा! करते हुए पैसेके लिये जाने क्या-क्या काण्ड कर डालते थे, वे अब विट्ठल! विट्ठल! कहने और आँख मूँदकर बैठ रहने लगे! भला, यह कोई संसारियोंका काम है। संसारमें आसक्त उस स्त्रीको तुकारामजीपर बड़ा क्रोध आया। उसने तुकारामजीको इसका बदला चुकानेका निश्चय किया और वह समयकी प्रतीक्षा करने लगी। एक दिन शिवबा तुकारामजीको बड़े प्रेम और सम्मानके साथ अपने घर लिवा गये। तुकारामजी जब स्नान करने बैठे तब इस 'कृत्या' ने जान-बूझकर उनके बदनपर अदहनका उबलता हुआ पानी डाल दिया। उससे शरीरकी क्या हालत हुई वह तुकारामजीके ही शब्दोंमें सुनिये—

'सारा शरीर जलने लगा है, शरीरमें जैसे दावानल धधक रहा हो। अरे राम! हरे नारायण! शरीर-कान्ति जल उठी, रोम-रोम जलने लगे, ऐसा होलिकादहन सहन नहीं होता, बुझाये नहीं बुझता। शरीर फटकर जैसे दो टुकड़े हुआ जाता हो, मेरे माता-पिता केशव! दौड़े आओ, मेरे हृदयको क्या देखते हो? जल लेकर वेगसे दौड़े आओ। यहाँ और किसीकी कुछ नहीं चलेगी। तुका कहता है, तुम मेरी जननी हो, ऐसा सङ्कट पड़नेपर तुम्हारे सिवा और कौन बचा सकता है?'

फूलसे भी कोमल जिनका चित्त होता है, उन परोपकाररत महात्माओंके साथ नीच लोग जब ऐसी नीचता करते हैं, तब थोड़ी देरके लिये तो इस संसारसे अत्यन्त घृणा हो जाती है और जी यह चाहता है कि यहाँसे उठ चलो। उस चुड़ैलने उन करुणा-निधिके कोमल अङ्गोंपर उबलता हुआ पानी छोड़ा, इन शब्दोंको सुनते ही बदन जल उठता है। तुकारामजी शिवाकी स्त्रीपर जरा भी क्रुद्ध नहीं हुए पर भगवान्‌का उसपर कोप हुआ। उसके शरीरपर कोढ़ फूट निकला। उसकी व्यथासे वह छटपटाने लगी। रामेश्वर भट्टके कहनेसे तुकारामजीको स्नान कराना सोचा गया था। दैवी लीला कुछ विचित्र ही होती है। तुकारामजीके इस स्नानसे जो मिट्टी भींगी वही मिट्टी शिवबाने अपनी स्त्रीके सारे शरीरमें मल दी। इससे वह महारोग दूर हो गया! उसके भी भाग्योदयका समय आया। उसने बड़ा पश्चात्ताप किया, बिलख-बिलखकर खूब रोयी, तुकारामजीके चरणोंपर गिरी, तुकारामजीने उसे आश्वासन देकर शान्त किया। शेष जीवन उसका अपने पतिके साथ 'श्रीराम कृष्ण हरि विट्ठल' भजनमें बड़े सुखसे बीता।

११ नावजी माली

यह भी लोहगाँवके रहनेवाले थे। तुकारामजीके बड़े भक्त थे, सुगन्धित पुष्पोंकी मालाएँ बड़े प्रेमसे गूँथ-गूँथकर यह तुकारामजीको पहनाते थे। इस प्रकार उन्होंने अपनी कला ही तुकारामजीको अर्पण की थी। माला गूँथकर बेचना तो उनकी जीविका ही थी, पर वह अपनी जीविकाका बहुत-सा समय भगवत्प्रेममें लगाते थे—बड़े प्रेमसे श्रीविट्ठलनाथ, श्रीतुकाराम और श्रीहरिकीर्तनके

श्रोताओंके लिये बड़े सुन्दर हार और गजरे तैयार कर ले आते थे और बारी-बारीसे सबको पहनाते थे। उन्होंने अपने बागमें बड़ी भक्तिसे तुलसीके बिरवे लगा रखे थे। नाना प्रकारके सुन्दर सुगन्धित फूलोंके पेड़ और पौधे तो लगा ही रखे थे। इनकी क्यारियोंमें घास निराते हुए, जल सींचते हुए, फूल तोड़ते हुए, माला गूँथते हुए वह श्रीविट्ठलका ध्यान करते हुए निरन्तर नाम-स्मरण करते रहते थे। बड़े प्रेमसे भजन करते थे। इनके प्रेम-मधुर भजन और नृत्यको देखकर तुकारामजी इनसे बहुत ही प्रसन्न रहते थे। नावजी जब कीर्तनमें आ बैठते तब तुकारामजी यही कहकर उनका स्वागत करते कि 'हमारे प्राण-विश्राम आ गये!'

१२ अम्बाजी पन्त

यह लोहगाँवके जोशी कुलकर्णी थे। इन्होंने तुकारामजीकी चरण-सेवासे कृतार्थता लाभ की। यह एकाग्रचित्त होकर कथा सुनते थे। श्रोताओंमें ऐसी एकाग्रता और किसीकी नहीं होती थी। एक समयकी बात है कि लोहगाँवमें मध्यरात्रिमें यह तुकारामजीका कीर्तन सुनते हुए तल्लीन हो गये थे और उसी समय उनके घरपर उनके बच्चेका प्राणान्त हुआ। बच्चेकी माँ उस दुःखसे पागल-सी हो गयी। और बच्चेके प्रेतको उठाकर कीर्तन-स्थानमें ले आयी; वहाँ प्रेतको नीचे रखकर अपने पति और तुकारामको खूब खोटी-खरी सुनाने और प्रलाप करने लगी। उसके प्रलाप और विलापको देखते हुए तुकारामजीके मुखसे एक अभङ्ग निकला। इस अभङ्गमें तुकारामजीने भगवान्‌से प्रार्थना की—

'हे नारायण ! आपके लिये निष्प्राणको चैतन्य कर देना कौन-सी बड़ी बात है ! हे स्वामिन् ! पहलेके गीत हम क्या जानें । अब यहीं उन बातोंको प्रत्यक्ष करके क्यों न दिखा दें ? हमारा अहोभाग्य है जो आपकी शरणमें हैं, आपके दास कहाते हैं । तुका कहता है, अपनी सामर्थ्य दिखाकर अब इन नेत्रोंको कृतार्थ कीजिये ।'

इसी प्रकार भगवान्से विनय करते और भगवान्का भजन करते एक प्रहर बीत गया, तब तुकारामजीके हृदयकी गुहार भगवान्‌को सुननी पड़ी और उस मृत बालकको प्राण-दान कर उठाना पड़ा । भक्तोंके चरित्रोंसे ऐसी-ऐसी अद्भुत घटनाएँ हो जाया करती हैं, पर इस विषयमें ध्यानमें रखनेकी बात यही है कि भक्तके चित्तमें यह भाव नहीं होता कि यह काम मैंने किया या मेरे कारण बना । ऐसा अभिमान उनके चित्तको दूरसे भी स्पर्श नहीं कर पाता । भक्त जब पूर्ण निरभिमान होता है और इसी ज्ञानमें लीन रहता है कि करने-करानेवाले भगवान् हैं, तभी उनकी वाणी भी भगवान्की ही हो जाती है—जो कुछ भक्तके मुँहसे निकल जाता है, भगवान् उसे क्रियाफलपरिपूर्ण करते हैं ।

१३ कोंड पाटील

तुकारामजी जब लोहगाँव जाते तब इन्हींके यहाँ ठहरते थे । यह ताल देनेमें बड़े प्रवीण थे । तुकारामजीके बड़े प्रिय थे ।

लोहगाँव

शिवबा कासार, नावजी माली, अम्बाजी पन्त और कोंड पाटील ये चारों शिष्य लोहगाँवके अधिवासी थे । तुकारामजी देहू और

लोहगाँव इन्हीं दो गाँवोंमें सबसे अधिक रहते थे, इन्हीं दो गाँवोंमें उनके स्वजन और प्रियजन अधिक थे। देहूमें तो उनका अपना घर ही था, और लोहगाँवमें उनका ननिहाल था। देहूसे भी अधिक लोहगाँवके लोग इन्हें चाहते थे। महीपति बाबा अपने भक्तलीलामृतमें कहते हैं—

'श्रीकृष्णका जन्म ... मथुरामें हुआ पर उनका असीम आनन्द गोकुलको ही मिला, वैसे ही श्रीतुकारामका सारा प्रेम लोहगाँववालोंने ही लूटा।'

यह लोहगाँव * पूनेसे ईशान्य दिशामें यरवदाके उस ओर नौ मीलपर है। वारकरीमण्डलमें यह प्रसिद्ध भी है। तुकारामजीका ननिहाल इसी गाँवमें था और उनकी माताके माइकेका कुलनाम 'मोझे' था। गाँवकी रचना तथा गाँववालोंके पास जो कागज-पत्र हैं उन्हें देखनेसे इस विषयमें कोई शङ्का नहीं रह जाती। तुकारामजीके ननिहालवाले घरमें एक शिला थी। इसीपर बैठकर तुकारामजी भजन किया करते थे। तुकारामजीके पश्चात् यह शिला उठाकर एक 'वृन्दावन'† पर रखी है। यहाँ वारकरियोंके

---

* प्रसिद्ध इतिहासकार स्व० राजवाडेने लोहगाँवको पूनेकी नागझरी नदीके किनारेका एक ग्राम बताया था। पर कई वर्ष पूर्व इस ग्रन्थके लेखकने उसका सप्रमाण खण्डन करके असली लोहगाँवका पता बता दिया है। भारत इतिहाससंशोधक मण्डलके तृतीय सम्मेलन-वृत्तमें श्रीपांगारकर महोदयका वह लेख छपा है। लोहगाँवका उपर्युक्त वर्णन लेखकने इसी लेखसे यहाँ उतारा है।

† तुलसीकी ऊँची-सी कियारी या गमलेको महाराष्ट्रमें 'वृन्दावन' कहते हैं।

भजन अब भी होते हैं । पण्ढरीके वारकरी आलन्दी जाते हुए मार्गशीर्ष कृष्ण ९ के दिन यहाँ ठहरते हैं। अभी उस दिनतक मोझेवंशके लोग यहाँ जमींदार थे, अब इस वंशका कृष्ण मोझे नामक व्यक्ति बम्बईमें एक मेवाफरोशके यहाँ नौकर है । शिवबा कासारका मकान अब खँडहरके रूपमें मौजूद है । उसकी टूटी-फूटी दीवारोंसे यह पता चलता है कि यह कोई बड़ी भारी हवेली रही होगी । इस हवेलीका दरवाजा पश्चिमकी ओर था । हवेलीके सामने महादेवजीका एक बेमरम्मत मन्दिर है । लोग बतलाते हैं कि इसी मन्दिरमें तुकारामजी और शिवाजी महाराज बैठकर बातें किया करते थे । लोहगाँवके शिवजीके पास पाँच सौ बैल थे, इनके द्वारा वह राँगा, सीसा और बर्तनका बड़ा कारबार करता था। तुकारामजीके समयमें पुनवाडी (पूना) छोटी-सी मण्डी थी और लोह-गाँवके इलाकेमें समझी जाती थी । लोहगाँवके बड़े-बड़े गिरे हुए मकान, वहाँका बड़ा भारी महारवाडा, वहाँके मालियों और कासारोंके पुराने मकान तथा गाँवका ढाँचा देखकर ऐसा जान पड़ता है कि तुकारामजीके समयमें यह कोई बहुत बड़ा कसबा रहा होगा । लोहगाँवसे पैदल रास्तेसे आलन्दी अढ़ाई कोस, देहू सात कोस और सासवड नौ कोस है । लोहगाँवमें कासार, मोझे, खांदवे और माली पुराने अधिवासी हैं । कोंड पाटील खांदवे, नावजी माली और शिवबा कासार (तुकारामजीके शिष्य) इसी लोहगाँवके थे । मालियोंमें भालेकर, घोरपडे, गरुड और भूकण ये चार घर वेतनवाले हैं अर्थात् परम्परासे जीविकाके लिये जागीर पाये हुए हैं । ....गाँवमें तुकारामजीका मन्दिर है । इस मन्दिर-

को छोड़ तुकारामजीका स्वतन्त्र मन्दिर और कहीं नहीं है। यह मन्दिर गुण्डोजी बाबाके शिष्य इराप्पाका बनवाया बताया जाता है। पुनवाडीकी ओरसे गाँवमें घुसते ही 'कासारविहीर' (बावली) आती है। यह बावली बहुत बड़ी और रमणीक है। बावलीकी पूर्व, पश्चिम और दक्षिण तीन दिशाओंमें बड़े-बड़े आले हैं और बावलीके भीतर ही चारों घाट इतनी बड़ी जगह है कि पचास-पचास ब्राह्मण एक साथ बैठकर सन्ध्या-वन्दन कर सकते हैं। बावलीमें दक्षिण ओर एक शिलालेख खुदा हुआ है। यह शाके १५३४का है। शिलालेखपर तुलाका चिह्न बना है। मध्यका मुख्य लेख अच्छी तरह पढ़ा जाता है। अगल-बगलके अक्षर शिलाके कोन-किनारे घिस जानेसे नहीं पढ़े जाते। इस शिला-लेखसे यह जान पड़ता है कि संवत् १६६९ में यह गाँव 'कसबा लोहगाँव' था।

यहाँके एक पट्टेमें यह लिखा हुआ मिला कि अमुक 'कान्होजी रायगढ़में महाराजकी चाकरीमें था, वह मरनेके लिये गाँवमें आया।' इससे भी इस बातकी पुष्टि होती है कि तुकारामजीके हरिकीर्तनसे निनादित मावल प्रान्तसे ही शिवाजीकी शूरवीर सेना तैयार हुई।

१४ कचेश्वर ब्रह्मे

भारत इतिहास मण्डलके शाके १८३५ के वार्षिक विवरणमें श्रीपाण्डुरङ्ग पटवर्धनने कचेश्वर कविकी आत्मचरित्रात्मक १११ ओवियाँ, कुछ कागज-पत्र और दो आरतियाँ प्रकाशित की हैं। आरतियाँ तो इससे पहले ही हमें मिल चुकी थीं। आत्मचरित्र

नहीं मिला था, यह आत्मचरित्र बड़े महत्त्वका है। चाकणमें ब्रह्मे नामका वेदपाठी ब्राह्मणकुल प्रसिद्ध है। कचेश्वर इसी कुलमें उत्पन्न हुए। बचपनमें यह बड़े नटखट और ऊधमी थे। जीर्णपुरा (वर्तमान जुन्नर) से बीजापुरतक आप गश्त लगा आये। पीछे, कचेश्वर कहते हैं, 'मुझे कुछ चमत्कार दिखायी दिया, जिससे मुझे गीतासे प्रेम हो गया।' इसके बाद वह विष्णुसहस्रनामका भी पाठ करने लगे। एक बार किसीने उन्हें भोजनमें मिला विष खिला दिया, उससे उन्हें दमा हो गया। किसीने सलाह दी कि 'अम्बाजी पन्तके घर तुकारामजीके अभङ्गोंका संग्रह है, वहाँ जाओ और तुकारामजीके अभङ्ग पढ़ो, इससे तुम्हारी बीमारी दूर हो जायगी।' कचेश्वरको यह सलाह जँची और वह देहूमें आये। यहाँ—

भगवान्के दर्शन करके मन प्रसन्न हुआ। सन्तोंके मुखसे हरिकीर्तन सुना, ऐसा जान पड़ा जैसे तुकारामजी स्वयं ही कीर्तन कर रहे हों और आनन्दसे झूम रहे हों। आँधीसे जैसे कदली हिलती है, हरि-प्रेमसे तुकाराम वैसे ही डोल रहे थे। कचेश्वरको ऐसा प्रतीत हुआ कि तुकारामजी नृत्य करते-करते अब कहीं नीचे न गिर पड़ें, इसलिये उन्होंने तुकारामजीको कन्धेका सहारा देकर उन्हें सँभाल-सा लिया। दूसरे दिन तुकारामजीकी आज्ञासे कचेश्वर स्वयं ही कीर्तन करने लगे। उनकी व्याधि दूर हो गयी। इनके पिताको यह बात पसन्द नहीं थी कि कचेश्वर इस तरह शूद्रोंके मेलेमें नाचा-गाया करे। कचेश्वर अपने आपेमें नहीं थे, भगवद्भजन और हरिनामसंकीर्तनके आगे वह किसीकी कुछ सुनते ही नहीं थे। पिताने आखिर उन्हें घरसे निकाल

दिया । यह निकल आये । कुछ समय बाद इन्हें अपनी जमीन-जायदाद मिली, योगक्षेमकी कुछ चिन्ता न रही, कथा-कीर्तनमें समय व्यतीत करने लगे, चित्त परमार्थके परम रसका अधिकाधिक आस्वादन करने लगा । कचेश्वरकी कुछ कविताएँ भी प्रसिद्ध हैं । इन्होंने एक वार एक चमत्कार भी दिखाया था । शाके १६०७ में चाकणचौगसी गाँवोंमें अवर्षणके कारण बड़ा भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा, यज्ञादि अनेक अनुष्ठान किये गये पर इन्द्र भगवान् प्रसन्न नहीं हुए । तव सव लोगोंके कहनेसे कचेश्वरने वर्षाके लिये हरि-कीर्तन किया । कचेश्वरके हरिकीर्तनके प्रतापसे मेघ घिर आये और जोरोंसे वरसने लगे, यह कथा प्रसिद्ध है, इस सम्बन्धके कागजपत्र भी अव प्रकाशित हो गये हैं । पर्जन्यके लिये कीर्तन करना स्वीकार करते हुए उन्होंने यह कहा था कि 'श्रीहनुमान्जी-के मन्दिरमें आनन्दगिरि मठमें हरिकथाके लिये मण्डप खड़ा करो । श्रीहरिकी कथा-कीर्तन करेंगे, भगवान्को पुकारेंगे, उससे पर्जन्य-वृष्टि अवश्य होगी ।' कथा-संकीर्तन आरम्भ हुआ, नाम-संकीर्तन होने लगा और उसी क्षण वृष्टि आरम्भ हुई और दिन और रात २४ घण्टे इतने जोरोंकी मूसलाधार वृष्टि हुई कि लोग तृप्त हो गये और कहने लगे कि अव वृष्टि थम जाय तो अच्छा ! इस प्रकार सव लोग बड़े सुखी हुए । इस कथाका समर्थक ऐतिहासिक प्रमाण भी मौजूद है । कचेश्वरके वंशज पूना और सतारामें जागीरदार हैं ।

१५ बहिणाबाई

तुकारामजीके शिष्यमण्डलमें बहिणाबाईका स्थान बहुत ऊँचा है । यह कई वर्ष देहूमें तुकारामजीके सत्संगमें रहीं, उनके

कीर्तन सुनती रहीं और उनकी कृपासे स्वानुभवसम्पन्न भी हुई। इन्होंने कुछ अभंग आत्मचरित्रात्मक और कुछ उपदेशात्मक रचे हैं। निलोबा राय तथा महीपतिबाबाके वचनोंकी बड़ी मान्यता है, पर एक तरहसे इनसे भी अधिक महत्त्व बहिणाबाईके वचनोंका है। कारण, बहिणाबाईने तुकारामजीके सम्बन्धमें जो कुछ लिखा है वह तुकारामजीको प्रत्यक्ष देखकर तथा उनके सत्संगसे लाभ उठाकर अधिकारयुक्त वाणीसे लिखा है। बहिणाबाईके अभंगोंका संग्रह संवत् १९७० में खाम गाँवके श्रीउमरखानेने प्रकाशित किया था। पर मुझे इन अभंगोंकी असली हस्तलिखित प्रति बहिणाबाईके शिऊर (शिवपुर) ग्राममें बहिणाबाईके वंशज श्रीरामजीसे प्राप्त हो गयी है। इसी शिऊर गाँवमें बहिणाबाईकी तथा निलोबा रायके शिष्य शंकरस्वामीकी समाधि है। इनके वंशज भी इसी स्थानमें रहते हैं। बहिणाबाईका नाम तुकारामजीके शिष्योंके नामोंमें है और रामदास स्वामीके शिष्योंकी नामावलीमें भी है। इसलिये यथार्थ बहिणाबाई वारकरी थीं या रामदासी, या बहिणाबाई एक नहीं दो थीं, यह एक विवाद ही था। पर शिऊरमें तीन दिन रहकर सब पोथियों और कागज-पत्रोंको देख लेनेपर यह निश्चय हुआ कि बहिणाबाई दो नहीं, एक ही हैं। इन्होंने तुकारामजीसे दीक्षा ली थी और पीछे उत्तर वयस्में यह रामदासके सत्संगमें रहीं। समर्थ रामदासने हनुमान्‌जीकी एक प्रादेशमात्र (बित्ताभर) मूर्ति दी थी। यह मूर्ति बहिणाबाईके राम-मन्दिरमें अभीतक है। बहिणाबाईपर कब, कैसे तुकारामजीने अनुग्रह किया, इसका वर्णन स्वयं बहिणाबाईने अपने अभंगोंमें किया है।

बहिणाबाईके अभंगोंकी मूल हस्तलिखित प्रतिमें भी कई जगह 'सद्गुरु तुकाराम समर्थ,' 'श्रीतुकाराम,' 'रामतुका' कहकर गुरु-रूपमें 'श्रीतुकाराम महाराज तथा श्रीरामदास स्वामी' दोनोंकी ही वन्दना की है।

बहिणाबाईका जन्म संवत् १६९० में हुआ। वह बारह वर्ष-की थीं तब स्वप्नमें तुकारामजीने उनपर अनुग्रह किया। इनके अभंग-संग्रहमें आत्मचरित्रके ५२, निर्याणके ३४ तथा भक्ति, वैराग्य, ब्रह्म और माया, विट्ठल, पण्ढरी, त्रिगुण, अनुताप, संत, सद्गुरु, ज्ञान, मनोबोध, ब्रह्मकर्म, पतिव्रताधर्म, प्रवृत्ति इत्यादि विषयोंपर अनेक अभंग हैं। निलोबा रायकी-सी ही इनकी वाणी प्रासादिक है। यह पूर्व जन्मकी योगभ्रष्टा थीं, पूर्व पुण्यके प्रतापसे उत्तम कुलमें जन्म ग्रहणकर इन्होंने तुकारामजीका अनुग्रह प्राप्त किया, रामदास स्वामीका भी सत्संग-लाभ किया और परम पद-को प्राप्त हुईं। तुकारामजीका उनपर जो अनुग्रह हुआ उसी प्रसंगको यहाँ देखना है। कोल्हापुरमें जयराम स्वामीके कीर्तन हुआ करते थे। बहिणाबाई उस समय बालिका थीं। वह इन कीर्तनोंको सुना करती थीं। इन्हीं कीर्तनोंमें तुकारामजीके अभंग उन्होंने सुने और चित्तपर ये अभंग जम-से गये। उनके पुण्य-संस्कार-घटित मनपर उसी बालवयस्में तुकारामजीकी वाणी नृत्य करने लगी और तुकारामजीके दर्शनोंके लिये वह तरसने लगीं। बहिणाबाई स्वयं ही बतलाती हैं—

'तुकारामजीके प्रसिद्ध अद्वैत पदोंके पीछे चित्त उनके दर्शनोंके लिये छटपटाने लगा है। जिनके ऐसे दिव्य पद हैं वह

यदि मुझे दर्शन देते तो हृदयको बड़ा सन्तोप होता। कथामें उनके पद सुनते-सुनते उन्हींकी ओर आँखें लग गयी हैं। हृदय-में तुकारामजीका ध्यान करती हूँ और उस ध्यानका घर बनाकर उसके भीतर रहती हूँ। वहिन कहती है, मेरे सहोदर सद्गुरु तुकाराम जब मुझे मिलेंगे तो अपार सुख होगा।'

* * *

'मछली जैसे जलके विना छटपटाती है वैसे मैं तुकारामके बिना छटपटा रही हूँ। जो कोई अन्तःसाक्षी होगा वही अनुभवसे इस बातको समझेगा। सञ्चितको दग्ध कर डाले, ऐसा सद्गुरुके बिना और कौन हो सकता है? बहिन कहती है, मेरा जी निकला जाता है, तुकाराम! तुझे क्यों दया नहीं आती?'

आर्त चातककी दशापर करुणाघनको भला दया कैसे न आवेगी? सात दिन और सात रात तुकारामजीका ही निरन्तर ध्यान था, और किसी बातकी सुध नहीं थी, तब मार्गशीर्ष कृष्ण ५ रविवार (संवत् १६९७) के दिन तुकारामजीने स्वप्नमें उन्हें दर्शन दिये, उपदेश दिया और हाथमें गीता थमा दी। तब बहिणाबाई कहती हैं—

'मन आनन्दित हुआ, चिन्मयस्वरूप अन्तःकरणमें भर गया, और 'यह क्या चमत्कार हुआ' सोचती हुई मैं उठ बैठी। तुकारामजी-का वह स्वरूप सामने आता है, उस स्वरूपमें जो मन्त्र उन्होंने बताये वे याद आते हैं। सत्य ही स्वप्नमें उन्होंने मुझपर पूर्ण कृपा की। जिसके स्वादकी कोई उपमा नहीं ऐसा अमृत पिला दिया! इसका साक्षी तो जिसका तिसके पास मनहीमें है। बहिन कहती

है, सद्गुरु तुकारामने सत्य ही पूर्ण कृपा की। उन्हींके पदोंसे विश्रान्ति मिलती है। श्रीविट्ठलकी-सी ही उनकी मूर्ति है। सच-मुच ही तुकारामजीकी सब इन्द्रियोंके चालक श्रीपाण्डुरङ्ग ही तो हैं।'

वहिणाबाईको दूसरी बार फिर तुकारामजीका स्वप्न-दर्शन हुआ। पीछे वह अपने पतिके साथ देहूमें आयीं। यहाँ तुकारामजी-के प्रत्यक्ष दर्शन हुए।

'माता, पिता, भाई और पतिके साथ मैं वहाँ आयी, जहाँ इन्द्रायणी बहती हुई चली आयी हैं। यहाँ आकर इन्द्रायणीमें स्नान किया, श्रीपाण्डुरङ्गके दर्शन किये, अन्तरंगमें सृष्टि आनन्दमय दीखने लगी। उस समय तुकारामजी भगवान्की आरती कर रहे थे, उन्हें प्रणाम करके चित्तको प्रकृतिस्थ किया, स्वप्नमें उनका जो रूप देखा था वही वहाँ प्रत्यक्षमें देखा, उस रूपको आँखें भरकर देख लिया।'

देहूमें तो आये, पर ठहरें कहाँ ? इस विचारसे रास्ता चल रहे थे, इतनेमें मम्बाजीका 'बड़ा-सा मकान' दिखायी दिया। इसी घरमें ये लोग घुसे। इन्हें घुसे चले आते देखकर वह महाक्रोधी मम्बाजी अग्निशर्मा हो उठा और मारनेके लिये दौड़ा। ये बेचारे वहीं दालानमें अपना सब सामान रखकर बाहर निकल आये। बाहर निकलते ही कोंडाजी पन्त लोहोकरेसे भेंट हुई। कोंडाजीने इन सबको बड़े आग्रहके साथ अपने यहाँ भोजनके लिये बुलाया। इनसे उन्होंने कहा—

'यहाँ श्रीविट्ठल-मन्दिरमें नित्य हरि-कथा होती है। कथा स्वयं तुकारामजी करते हैं जो हम वैष्णवोंकी साक्षात् माता हैं। आपलोग यहीं रहिये, खाने-पीनेकी कुछ चिन्ता मत कीजिये,

उसका प्रबन्ध हमलोग कर लेंगे। यह पुण्य भी हमें लाभ होगा। बहिन कहती है तब हमलोग तुकारामके लिये देहूमें रह गये।'

तुकारामजीके दर्शन, कीर्तन और सत्संगका परम सुख लूटनेवाली महाभाग्यवती बहिणाबाई कहती हैं—

'मन्दिरमें सदा ही हरि-कथा होती रहती है और मैं भी दिन-रात श्रवण करती हूँ। तुकारामजीकी कथा क्या होती है, वेदोंका अर्थ प्रकट होता है। उससे मेरा चित्त समाहित होता है। तुकारामजीका जो ध्यान पहले कोल्हापुरमें स्वप्नमें देखा था, वही ज्ञानमूर्ति यहाँ प्रत्यक्ष देखी। उससे नेत्रोंमें जैसे आनन्द नृत्य करने लगा हो। दिनमें या रातमें निद्रा तो एक क्षणके लिये भी नहीं आती। कैसे आवे? अब तो तुकाराम ही अन्दर आकर बैठ गये हैं। बहिन कहती है कि आनन्द ऐसी हिलोरें मारता है कि मैं क्या कहूँ, जो कोई इसे जानता है, अनुभवसे ही जानता है।'

मम्बाजीकी कथा

बहिणाबाई तो इस प्रकार अन्य भक्तोंके साथ जिस समय तुकारामजीके दर्शन और उपदेशका आनन्द ले रही थीं उस समय गोस्वामी मम्बाजी बाबा क्या कर रहे हैं यह देखना अब जरूरी है। इस अध्यायमें हमलोगोंने तुकारामजीके भक्तोंको ही देखा कि वे तुकारामजीको कितना मानते और कैसे पूजते थे तथा उनसे कितना गाढ़ा स्नेह रखते थे। पर इस मिष्टान्न भोजनके साथ कुछ खटाई भी तो होनी चाहिये, सुन्दर सुशोभित प्यारे मुखड़ेको नजर न लगने देनेके लिये एक काली बिन्दी भी तो होनी चाहिये। यदि ऐसा न हो तो यह संसार संसार ही न रह जायगा। इसलिये

खटाईके रूप इन गोसाईंको, मम्त्राजीरूप इस काली बिन्दीको भी जरा निहार लें। मम्बाजी गोसाईं तुकारामजीको मानो पीड़ा पहुँचानेके लिये ही पैदा हुए थे। तुकारामजी तो निष्काम भजन करते थे और मम्बाजीने खोल रखी थी परमार्थकी दूकान! तुकाराम भगवान्की भक्तिसे लोगोंके हृदय भरा करते थे और मम्बाजी लोगोंसे पैसा वसूलकर अपना घर भरते थे। पर इनके इस व्यवसायमें तुकारामजीके कारण बड़ी बाधा पड़ती थी। लोग तुकारामजीकी ओर ही झुकते, उन्हींके जाकर पैर पकड़ते थे, यह देख मम्बाजी उनसे मन-ही-मन बहुत जलते थे, उनके नामसे चिढ़ते थे, उनसे बड़ा द्वेष करते थे। तुकारामजीको इन बातोंका कुछ खयाल ही नहीं था। 'वासुदेवः सर्वमिति' को प्रत्यक्ष करनेवाले, भूतमात्रमें भूतभावन भगवान्को देखनेवाले सर्वभूतहितरत भगवद्भक्त महात्माके हृदयमें भगवान्के सिवा और किसी वस्तुके लिये अवकाश ही कहाँ? पर भगवान्का कौतुक देखिये कि अपने प्रियतम भक्तकी शान्तिका अलौकिक तेज दिखानेके लिये कहिये, या भक्तकी शान्तिकी परीक्षाके लिये कहिये, उन्होंने एक कसौटी पैदा की जो तुकारामजीके घरके बिल्कुल बगलमें मम्बाजीको लाकर रखा। दुर्जनके बिना सज्जनका सौजन्य छिपा ही रह जाता है, संसारपर उसका प्रकाश फैलने नहीं पाता।

'बुरे भलेको दिखा देते हैं, हीन उत्तमको बता देते हैं। तुका कहता है, नीचोंसे ऊँचोंका पता लगता है।'

मम्बाजीने तुकारामजीसे वैर ठाना। पर तुकारामजीकी भक्ति इतनी ऊपर उठी हुई थी कि वह निरन्तर अजातशत्रुत्वके परम

सुखासनपर ही विराजमान रहते थे। मम्बाजी तुकारामजीका कीर्तन सुनने आया करते थे, अवश्य ही द्वेषबुद्धिसे आया करते थे पर तुकारामजीको इससे क्या? वह तो मम्बाजीपर प्रेमकी ही दृष्टि रखते थे। यदि किसी दिन मम्बाजी कीर्तनमें न आते तो तुकारामजी उनके लिये कीर्तन रोक रखते, उनकी प्रतीक्षा करते, उन्हें बुलानेके लिये किसीको भेज देते और उनके आनेपर उनका बड़ा स्वागत करते! पर 'औंधे घड़ेका पानी' किस कामका? मम्बाजीपर कुछ भी असर न होता। वह अपने द्वेषको ही सुलगाते रहते! आखिर एक दिन मम्बाजीके द्वेषको भभक उठनेके लिये अच्छा अवसर मिला।

तुकारामजीके श्रीविट्ठल-मन्दिरसे सटा हुआ-सा ही मम्बाजीका मकान था। उनके मकान और तुकारामजीके मन्दिरकी परिक्रमाके बीच रास्तेमें ही मम्बाजीने फूलोंके कुछ बिरवे लगा रखे थे और एक छोटा-सा बगीचा-सा ही तैयार किया था। उस बगीचेके चारों ओर काँटोंकी बाड़ लगा दी थी। एक दिनकी बात है कि तुकारामजीको उनके ससुर अप्पाजीसे मिली हुई भैंस बाड़को रौंदती हुई मम्बाजीके बगीचेके अन्दर घुस गयी। बस, फिर क्या था! मम्बाजी तुकारामजीपर लगे गालियोंकी बौछार करने! परिक्रमाके रास्तेमें काँटे छितरा गये थे। हरिदिनी एकादशीका दिन था, यात्रियोंकी उस दिन बड़ी भीड़ होती, परिक्रमा करते हुए उनके पैरोंमें कहीं काँटे न गड़ें, इसलिये तुकारामजीने स्वयं ही अपने हाथों उन काँटोंको वहाँसे हटाया और रास्ता साफ किया। पर उधर मम्बाजीके द्वेषको भभक उठनेका भी अच्छा रास्ता मिला। साँपपर भूलसे भी यदि पैर पड़ जाय तो वह जैसे काल-सा बनकर

काट खानेको दौड़ता है वैसे ही मम्बाजी भी मारे क्रोधके दाँत पीसते हुए तुकारामजीपर टूट पड़े और उन्हीं काँटोंकी बाड़ोंसे उन्हें मारने लगे। मुँहसे गालियाँ बकते जाते थे और हाथसे बाड़ें मारते जाते थे। मारते-मारते तुकारामजीको अधमरा-सा कर डाला। तुकारामजीकी शान्तिकी परीक्षाका यही समय था और तुकारामजी इस परीक्षामें पूर्णरूपसे उत्तीर्ण हुए। तुकारामजीने मम्बाजीकी बेदम मार चुपचाप सह ली, मुँहसे एक भी शब्द उन्होंने नहीं निकाला और कोई प्रतीकार भी नहीं किया। महीपतिबाबा कहते हैं कि मम्बाजीने तुकारामजीकी पीठपर दस-बीस बाड़ें तोड़ीं। तुकारामजी शान्त रहे, शान्तिसे इसकी फरियाद मन्दिरमें भगवान्‌के पास ले गये। उस अवसरपर उन्होंने छः अभङ्ग कहे, उनमेंसे एकका भाव इस प्रकार है—

बड़ा अच्छा किया, भगवन्! आपने बड़ा अच्छा किया जो क्षमाका अन्त देखनेके लिये काँटोंकी बाड़ोंसे पिटवाया, गालियोंकी वर्षा करायी, अनीतिसे ऐसी विडम्बना करायी और अन्तमें क्रोधसे छुड़ा भी लिया।

'काँटोंका रास्ता साफ करने चला तो' 'काँटोंसे ही कटवाया' इससे तुकारामजीका चित्त कुछ दुखित तो हुआ पर भगवान्‌ने 'क्रोधसे जो छुड़ा लिया' इसीका उन्हें बड़ा सन्तोष था। जिजाईने बड़ी सावधानीके साथ एक-एक करके उनके बदनसे सब काँटे निकाले और उन्हें आरामसे सुला दिया। फिर जब कीर्तनका समय उपस्थित हुआ और मन्दिरमें कीर्तनकी तैयारी हो चुकी और तुकारामजीने देखा कि मम्बाजी अभीतक नहीं आये तब वह स्वयं

उनके घर गये, उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया और उनके पैर दबाते हुए पैरोंके पास बैठ गये। मम्बाजीके चित्तमें चुभे ऐसी कोई बात उन्होंने नहीं कही। सरल और विनम्र भावसे यही कहने लगे कि दोष तो मेरा ही है। मैंने पेड़ोंको पीड़ा न पहुँचायी होती तो आपको भी क्षोभ न होता। मुझे बड़ा दुःख है कि आपके हाथ और वदन मेरे कारण दर्द कर रहे होंगे। यह कहकर आँखोंमें जल भरकर सिर नीचा करके वह उनके पैर दबाने लगे। तुकारामजीका यह विलक्षण सौजन्य देखकर मम्बाजीका कठोर हृदय भी थोड़ी देरके लिये पसीज उठा। मन-ही-मन वह बहुत ही लज्जित हुए और तुकारामजीके साथ कीर्तनको चले। तुकाराम-जीकी शान्ति, क्षमा और दयाने सदाके लिये लोगोंके हृदयोंमें अपना घर कर लिया।

मम्बाजीकी यह कथा बहुत प्रसिद्ध है। पर इतनेसे इनके क्रोधी और ईर्षालु स्वभावका पूरा इलाज नहीं हो पाया। उनके ईर्ष्या-द्वेषकी आगकी लपटें बहिणाबाईके भी जा लगीं। बहिणा-बाई अपने सब सामानके साथ इन्हींके यहाँ ठहरी थीं। मम्बाजी-की यह इच्छा थी कि ऐसी श्रद्धालु स्त्रियोंको तो हमारे-जैसे आचार-वान् गुरुओंसे ही दीक्षा लेनी चाहिये। बहिणाबाईकी समझ तो इतनी बड़ी नहीं थी, इसलिये यही उनके पीछे पड़े और कहने लगे कि, 'तुका शूद्र है, उसका कीर्तन सुनने मत जाया करो। शूद्रके भी कहीं ज्ञान होता है! हाँ, उपदेश तुम्हें लेना है, तो हमसे लो।' रोज-रोज यही बात सुनते-सुनते बहिणाबाई थक गयीं और एक रोज उन्होंने मम्बाजीको कोरा जवाब सुना ही तो दिया

कि, 'मैं उपदेश ले चुकी हूँ। अब मुझे उपदेशकी आवश्यकता नहीं है।' यह सुनते ही मम्बाजीके क्रोधकी आग भभक उठी। वहिणाबाईकी एक गौ थी, उसे इन्होंने पकड़कर बाँधा और बड़ी क्रूरतासे उसपर डंडे चलाये। गौकी पीठपर जो डंडे पड़े उनके चिह्न, लोगोंने तुकाराम महाराजकी पीठपर बने देखे। बहिणाबाई ऐसे-ऐसे अत्याचारोंसे बहुत ही तंग आ गयीं। तब महादजी पन्तने उन्हें अपने घरमें टिकाया। यह सारा हाल बताकर वहिणाबाई आगे कहती हैं—

'तुकारामजीकी स्तुतिका पार कौन पा सकता है? तुकारामको इस कलियुगके प्रह्लाद समझो। अपने अन्तःकरणका साक्षी करके जो भी उनकी स्तुति करते हैं वे निजानन्दमें रमते हैं। वहिन कहती है, लोग उनकी तरह-तरहसे स्तुति करते हैं। पर एक शब्दमें उनकी यथार्थ स्तुति यही है कि तुकाराम केवल पाण्डुरङ्ग थे।'

१६ निलाजी राय

पिंपलनेरके निलोबा या निलाजी राय तुकारामजीके शिष्योंमें शिरोमणि हुए। प्रायः सभी शिष्य भोले-भाले, श्रद्धालु, प्रेमी और निष्ठावान् थे और तुकारामजी सबसे अत्यधिक प्रेम करते थे। रामेश्वर भट्ट विद्वान् थे और बहिणाबाईका अधिकार बड़ा था, पर तुकारामजीके उपदेशोंकी परम्परा जारी करनेवाले और त्रिभुवनमें उनका झण्डा फहरानेवाले जो एक शिष्य हुए वह थे निलोबा राय ही। तुकारामजीके तीन पुत्र थे, उनमें परमार्थके नाते नारायण वोवा अच्छे थे पर निलोबाके अधिकारको पानेवाला कोई

भी न हुआ। इनका अधिकार तुकारामजीकी ही कृपाका फल था, इसमें सन्देह नहीं, पर था वह अधिकार तुकारामजीके अधिकारकी बराबरीका ही। निलोबा रायका चरित्र, यह समझिये कि तुकाराम महाराजके ही चरित्रका नया संस्करण था। वारकरी सम्प्रदायके देवपञ्चायतनमें ये ही तो पाँच देवता हैं—ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम और निलोबा। यह पञ्चायतन सर्व-मान्य और सर्वप्रिय है। उत्कट भगवत्-प्रेम, प्रखर वैराग्य, अलौकिक ज्ञानभाग्य इत्यादि गुण निलोबामें अपने गुरु तुकारामके समान ही थे। लोकदृष्टिमें उनका आदर भी ऐसा ही था कि तुकोबा और निलोबा एक ही माने जाते थे और यह मान्यता समुचित भी थी। निलोबाकी गुरुपरम्पराका विवरण पहले आ ही चुका है। गुरु-कृपाके सम्बन्धमें निलोबा कहते हैं—

'परम कृपालु श्रीसद्गुरुनाथ तुकाराम स्वामी आये। उन्होंने अपना हाथ मेरे मस्तकपर रखा और प्रसाद देकर आनन्दित किया। मेरी बुद्धिको बढ़ा दिया और गुणगान करनेकी स्फूर्ति प्रदान की। नीला कहता है, बोलता हुआ मैं दीखता हूँ पर यह सत्ता उनकी है।'

अबतक निलाजीका कोई स्वतन्त्र चरित्र नहीं था। महीपतिबाबाने अपने 'भक्तविजय' ग्रन्थ (अध्याय ५६) में इनकी दो-एक बातें कहकर अपने इन गुरु-भाईको गौरवान्वित किया है। पर अब मुझे निलोबाके सम्पूर्ण ओवीबद्ध चरित्रकी हस्तलिखित पोथी उन्हींके वंशजोंसे मिल गयी है। इस 'निलाचरित्र' में २० अध्याय हैं जिनमें सब मिलाकर २४०० ओवियाँ हैं। इस

चरित्र-ग्रन्थसे यह पता चलता है कि निलाजी तुकारामजीके समकालीन नहीं थे, तुकारामजीको उन्होंने देखातक नहीं था। तुकारामजीके वैकुण्ठधाम सिधारनेके २५-३० वर्ष बाद संवत् १७३५ (शाके १६००) के लगभग तुकारामजीने उन्हें स्वप्नमें दर्शन दिये और उनपर अनुग्रह किया। पिंपलनेर स्थान नगर जिलेके अन्दर पर पूना जिलेकी सरहदपर है। निलाजी पीछे यहीं आकर रहे, पर उनका जन्मस्थान वहाँसे कुछ दूर नैर्ऋत्य कोनेमें शिऊर नामसे प्रसिद्ध है। यह शिऊरके जोशी कुलकर्णी थे। इनके दादा गणेश पन्त और पिता मुकुन्द पन्त सुखी और सम्पन्न थे। ये ऋग्वेदी देशस्थ ब्राह्मण थे। धन-धान्यसे समृद्ध थे, गोठ गाय-बैलोंसे भरा था, अच्छी वृत्ति थी, सभी बातें अनुकूल थीं।

निलाजी जब १८ वर्षके हुए तभी प्रपञ्चका सारा भार उनपर आ पड़ा। इनकी स्त्री मैनाबाई बड़ी साध्वी, शीलवती और धर्माचरणमें पतिके सर्वथा अनुकूल थीं। उनके साथ बड़े सुखसे इनका समय व्यतीत होता था। इन्हें जैसे वैराग्य प्राप्त हुआ, उसकी कथा बड़ी मनोरञ्जक है। इनका यह नित्यक्रम था कि प्रातःकाल स्नानादि करके यह श्रीरामलिङ्गका बड़ी भक्तिसे पूजन करते और उसके बाद कुलकर्णका काम देखते थे। एक बार ऐसा संयोग हुआ कि यह पूजामें बैठे थे और कचहरीमें इनकी बुलाहट हुई। इन्होंने कहला दिया कि 'अच्छा, आता हूँ।' पर पूजामेंसे बीचमें ही कैसे उठते? इस बीच चार बार चपरासी आ गया पर इनकी पूजा समाप्त नहीं हुई। तब आखिरको यह पकड़वा मँगाये गये! कचहरी पहुँचनेपर इन्होंने अपना हिसाब दिया

और वहाँसे जो लौटे सो यही निश्चय करके बैठ गये कि अब इस चाकरीको अन्तिम नमस्कार है ।

ज्ञानकी ओर दृष्टि करके विवेकसे अपने अन्दर देखा और कहने लगे, 'ऐसे संसारमें आग लगे, ऐसा प्रपञ्च जलकर भस्म हो जाय जो परमार्थमें बाधक होता है ! यदि मैं स्वाधीन होता तो क्या देवतार्चनको ऐसे बीचमें ही छोड़ देता ? धिक्कार है पराधीन होकर जीनेको ! खोटे काम करो, किसानोंको लूटो, नीच बनकर दूसरोंका धन हरण करो और अपना और अपने कुटुम्ब-परिवार-का पेट भरो, इससे अधिक लज्जाजनक जीवन और कौन-सा है ? धिक्कार है ऐसे जीवनको !!!'

निलाजीने उसी दिन उस वृत्तिका त्याग किया और यह निश्चय कर लिया कि संसार-दारिद्र्यको नष्ट करनेके लिये अब साधु-सन्तोंका सङ्ग करेंगे और परमार्थरूपी धन जोड़ेंगे । उन्हें अपने जीवनपर बड़ा अनुताप हुआ । 'अनुतापसे देह जलने लगी, कण्ठ भर आया और नेत्रोंसे अश्रुधारा बह चली ।' अपनी सहधर्मिणीपर अपना निश्चय प्रकट करते हुए उन्होंने कहा, 'मैं तो अब भगवान्को ढूँढ़नेके लिये घर-बार छोड़कर चला ही जाऊँगा । पर मैं तर जाऊँ और तुम इसी मायामें छटपटाती हुई पड़ी रहो, यह मुझे कब पसन्द होने लगा ? इसलिये यदि तुम अखण्ड परमार्थ-सुख चाहती हो तो मेरे साथ चलो ।' मैनावती लज्जासे मुँह नीचा करके बोली, 'मैं मन, वचन, कर्मसे आपके चरणोंकी दासी हूँ । आप आज्ञा करें और मैं उसका पालन करूँ, यही तो मेरा धर्म है । माया-मोहके समुद्रमें मैं डूबी जा रही हूँ

और आप अपने हाथका सहारा देकर मुझे उबार रहे हैं, इससे बढ़कर सौभाग्य और मेरे लिये क्या होगा ? नाथ ! आपके बिना मैं यहाँ नहीं रह सकती, ऐसे रहनेसे तो मर जाना अच्छा है। आप जहाँ भी जायँ, मैं बड़ी प्रसन्नतासे आपके पीछे-पीछे चलूँगी। ठाकुरजीके बिना मन्दिर, जलके बिना कमल बनकर मैं नहीं रहूँगी। दीप-ज्योतिके समान मेरा-आपका अटूट सम्बन्ध है।'

यह सुनकर निलाजी बहुत प्रसन्न हुए और अपना घर-बार, गाय-बैल सब दान करके सहधर्मिणीको सङ्ग लिये उन्होंने प्रस्थान किया ! घूमते-फिरते पण्ढरीमें आये, वहाँके अपार प्रेमानन्दमें दोनों ही तल्लीन-से हो गये। उस समय तुकारामजीकी कीर्ति सर्वत्र फैली हुई थी। तुकारामजीकी महिमा जानकर ये पति-पत्नी आलन्दी होकर देहूमें आये। देहूमें उस समय तुकारामजीके पुत्र नारायणबाबा थे। उनके साथ निलाजीकी बड़ी घनिष्ठता हुई। नारायणबाबासे उन्होंने तुकारामजीका सम्पूर्ण चरित्र सुना। इससे तुकारामजीके चरणोंमें उनका चित्त स्थिर हो गया। कुछ काल वहाँ रहनेके बाद निलाजी पन्त और मैनावती तीर्थयात्रा करने आगे बढ़े। अनेक तीर्थोंमें भ्रमण किया। ज्ञानेश्वरी, नाथभागवत, तुकारामजीके अभङ्ग आदिका श्रवण-मनन बराबर होता रहा। अन्तको उन्हें तुकारामजीका ऐसा ध्यान लगा कि—

तुका ध्यानमें और तुका ही मनमें
दीखे जनमें तुका, तुका ही वनमें।
ज्यों चातककी लगी रहे लौ घनमें
नीला रटता तुका! तुका! त्यों मनमें॥

तुकारामजीके दर्शनोंके लिये मन अत्यन्त व्याकुल हो उठा। बस, यही एक धुन लग गयी कि 'तुका! अपने चरण दिखाओ।' अन्तको उन्होंने अन्न-जल भी छोड़ दिया, धरना देकर बैठ गये; तब तुकारामने स्वप्नमें दर्शन दिये और उपदेश किया।

'तुकारामजीने उनके मस्तकपर हाथ रखा और उठाकर बैठाया। कहा, 'नीला! सावधान हो जा, भ्रान्तिसे बन्द हुआ नेत्र अब खोल।' तुकारामजीने फिर मन्त्र दिया, उसके भालमें कस्तूरी-तिलक लगाया, अपने गलेकी तुलसीमाला उतारकर निलाके गलेमें डाली।'

तुकारामजीने निलाजीके गलेमें यह अपने सम्प्रदायकी ही माला डाल दी और यह आज्ञा की कि 'आबालवृद्ध नर-नारी सबको भक्तिपन्थमें लगाओ।'

'अपना सञ्चित किया हुआ सब धन जैसे पिता अपने पुत्रको दे जाता है वैसे ही सद्गुरु (तुकाराम) ने अपना सम्पूर्ण आत्मज्ञान इन्हें दे डाला।'

निलाजीपर तुकाराम पूर्ण प्रसन्न हुए। तुकाराम पण्ढरीकी जो वारी किया करते थे उसे निलाजीने जारी रखा। निलाजी हरिकीर्तन करने लगे, श्रोताओंपर उनका बड़ा प्रभाव पड़ा। उनकी प्रासादिक स्फूर्तिदायिनी वाणी श्रोताओंके हृदयोंको अपनी ओर खींच लेती थी। उनके मुँहसे धाराप्रवाह अभङ्ग निकलने लगे। पाण्डुरङ्ग भगवान् पूर्ण प्रसन्न हुए। पिंपलनेरका पाटील उनके आशीर्वादसे रोगमुक्त हुआ, तब बड़े सत्कारके साथ वह निलाजीको पिंपलनेर लिवा लाया और उनकी बड़ी सेवा करने लगा। निलाजी सन्त कहलाये, उनका संकीर्तन-समाज खूब

बढ़ा। उनका यश बढ़ानेवाले अनेक दैवी चमत्कार हुए। निलाजीकी कन्याका जब विवाह हुआ तब उसकी सब सामग्री भगवान्‌ने स्वयं ही प्रस्तुत की। ऐसी-ऐसी अनेक अद्भुत घटनाएँ हुईं। नगरमें सतत दो मास कीर्तन होते रहे। नगरका यह कानून था कि दो पहर रात बीतनेपर कीर्तन समाप्त हो जाया करे। तदनुसार इनके कीर्तनके लिये भी नगरके कोतवालने यही हुक्म जारी करना चाहा। पर भगवान्‌का दरबार ठहरा। वहाँ मनुष्योंकी सुनवायी कब होने लगी? निलाजी कीर्तन कर रहे हैं, दो पहरके बदले तीन पहर रात बीत जाती है तो भी कीर्तन बन्द नहीं होता। तब कोतवाल सिपाहियोंके एक दलके साथ कीर्तन बन्द करने खुद चला आया। आकर बैठा, बैठते ही हरिका नाम और भक्तकी वाणी उसके कानोंमें पड़ी। संकीर्तनके प्रेमानन्दने उसके हृदयपर ऐसा अधिकार जमाया कि कोतवाल कीर्तन बन्द करनेकी बात भूलकर वहीं जम गया और निलाजीके चरणोंमें गिरकर उनका शिष्य बना। निलाजीकी—

'मूर्ति ठिंगनी-सी थी, वर्ण गोरा था, नाक सरल थी, नेत्र बड़े-बड़े थे। हृदय विशाल और कमर पतली थी। डील-डौल सब तरहसे सुहावना था।'

गलेमें तुलसीकी माला पड़ी रहती, हाथमें फूलोंके गजरे होते। कीर्तनके लिये खड़े होते तब बड़े ही सुहावने लगते और कीर्तन-रंगमें ब्रह्मस्वरूप ही प्रतीत होते थे। कीर्तनकी शैली ऐसी सरल और सुबोध होती थी कि आबाल-वृद्ध वनिता तथा तेली-तमोलीतक सब अनायास ही समझ लेते और उससे लाभ उठाते थे।

निलाजीका कीर्तन सुनने एक वनजारा आया था। यह बड़े ही क्रूर स्वभावका आदमी था पर निलाजीका कीर्तन सुनते-सुनते इसे पश्चात्ताप हुआ और यह निलाजीकी शरणमें आया और वारकरी बन गया। निलाजी एक बार इसके अनुरोधसे इसके घरपर भी गये। इसने उनकी बड़ी सेवा की। पर इसकी स्त्रीने निलाजीको बहुत बुरा-भला कहा। कहा, 'तुमलोग बड़े खोटे, कपटी और ढोंगी हो। मेरे पतिको फुसलाकर तो तुमलोगोंने मेरा सत्यानाश कर डाला। बड़े कुटिल, लोभी और पापी हो इत्यादि।' यह सुनकर निलाजी स्वामी उसके समीप दौड़े गये और उसके पैर पकड़ लिये और बोले, 'माता ! तुम सच कहती हो, मैं ऐसा ही पतित हूँ, मन्द-बुद्धि हूँ, तुमने बड़ा अच्छा उपदेश किया। अब मेरी समझमें आया। अब जननीके इन वचनोंको मैं हृदयमें धारण करूँगा।'

निलाजीका अधिकार महान् था, यह उनकी अभङ्गवाणीसे भी स्पष्ट प्रतीत होता है। उनके वैराग्य, क्षमा, शान्ति और उपदेशपद्धतिने लोगोंके हृदयोंमें घर कर लिया। तुकारामजीके पश्चात् वारकरी भक्ति-पन्थका प्रचार जितना निलाजीने किया, उतना और कोई भी न कर सका। उन्होंने सचमुच ही सम्पूर्ण महाराष्ट्रपर भागवत-धर्मका झण्डा फहरा दिया।

१७ श्रीतुकाराम महाराजके पश्चात्

निलाजीके प्रधान शिष्य शिऊरके गर्गगोत्री यजुर्वेदी ब्राह्मण शंकर स्वामी थे इनके परपोतेके पोते इस समय मौजूद हैं। इनका कुल-नाम लाखे था, पुरखे लखपती थे, सराफीका काम करते

थे। शंकर स्वामी जब पूनेमें थे तब निलाजीके साथ आलन्दी और पण्ढरीकी यात्रा करते थे। इनपर जब निलाजीका पूर्ण प्रसाद हुआ तब यह शिऊरमें जाकर रहने लगे। शंकर स्वामीके शिष्य मलाप्पा वासकर नामक एक लिङ्गायत वणिक् थे जो निजाम-राज्यमें भालकी नामक ग्राममें रहते थे। मलाप्पा वासकरने ही पहले-पहल वारकरी मण्डलकी एक नवीन शाखा निर्माण की और आषाढ़ी एकादशीके दिन ज्ञानेश्वर महाराजकी पालकी आलन्दीसे भजन-समारम्भके साथ पण्ढरपुर ले जानेकी प्रथा चली। तुकारामजीके पुत्र नारायणबाबाने छत्रपति शाहू महाराजसे पुरस्कारस्वरूप तीन गाँव प्राप्त किये। इनके पुत्र जागीरदारोंके ढंगसे रहने लगे। एक बार पण्ढरपुरमें मलाप्पा कीर्तन कर रहे थे और वहाँ तुकाराम-जीके पोते गोपालबाबा पधारे। मलाप्पाने उनकी चरण-वन्दना की और यह निवेदन किया कि श्रीहरिका कीर्तन करनेका अधिकार यथार्थमें आपका है। आपकी अनुपस्थितिमें मुझसे जैसा बन पड़ा, मैंने कीर्तन किया, अब आप ही कीर्तन सुनाकर इन कानोंको पवित्र करें। कहते हैं कि उस समय गोपालबोवाके मुखसे दो अभङ्ग भी शुद्धरूपमें नहीं निकले! इससे उनकी बड़ी नामहँसायी हुई और मलाप्पाने खूब खरी-खरी सुनायी! गोपालबोवाके चित्तपर इसका बड़ा प्रभाव पड़ा। वह भण्डारा पर्वतपर छः वर्ष रहे, वहाँ उन्होंने तुकारामजीके अभङ्ग, ज्ञानेश्वरी आदिका अध्ययन किया और फिर कीर्तन भी करने लगे। उन्होंने वारकरी सम्प्रदायकी एक और शाखा निकाली। यह देहूकी शाखा हुई। तबसे वारकरी सम्प्रदायकी दो शाखाएँ चली आती हैं। सीधी गुरुपरम्परासे

चली आयी हुई शाखा वासकरोंकी है, इसलिये यही विशेष मान्य है। विगत सौ दो सौ वर्षके भीतर वारकरी सम्प्रदायमें अनेक महात्मा उत्पन्न हुए और सभी जातियोंमें हुए। सन्तोंके चरित्र-लेखक और तुकारामजीके अनुगृहीत महीपतिबाबाका (संवत् १७७२—१८४७) विस्मरण भला कैसे हो सकता है? सखाराम बावा अम्मलनेरकर, बाबा अझरेकर, नारायण अप्पा, प्रह्लाद बुवा बडवे, चातुर्मासे बोवा, त्र्यंबक बुवा भिडे, हैबन्त राव बावा, गङ्गु काका, गोदाजी पाटील, ठाकुर बोवा, भानुदास बोवा, भाऊ काटकर, साखरे बोवाके मूलगुरु केसकर बोवा, बाबा पाध्ये, ज्योतिपन्त महाभागवत, पूनेके खण्डोजी बोवा इत्यादि अनेक भक्त हुए जिनके नाम संस्मरणीय हैं। साखरे बोवा, विष्णु बोवा जोग, व्यङ्कट स्वामी प्रभृति लोगोंने भी वारकरी सम्प्रदायकी बड़ी सेवा की है। विगत छः सौ वर्षमें भागवतधर्म महाराष्ट्रमें अच्छी तरहसे व्याप्त हो गया है। कोल्हापुर, सतारा, सोलापुर, नगर, पूना, नासिक, खानदेश, वरार, नागपुर और निजामराज्यके मराठी भाषा-भाषी सब स्थानोंमें ज्ञानेश्वर महाराज, नामदेव राय, एकनाथ-जनार्दन, तुकाराम महाराज और निळोबा राय तथा अनेक सत्पुरुष भागवत-धर्मका प्रचार कर गये हैं। ज्ञानेश्वर महाराजने जिसकी नींव डाली, नामदेवने जिसका विस्तार किया, एकनाथने जिसपर भागवतका झण्डा फहराया और अन्तमें तुकाराम महाराज जिसके शिखर बने उस भागवतधर्मका अखण्ड और अभङ्ग दिव्य भवन त्रिभुवन सुन्दर श्रीकृष्ण विट्ठलकी कृपा-छत्रछायामें आज भी अपने अति मनोहररूपमें खड़ा है। ऐसे इस भागवतधर्मकी निरन्तर जय हो!

चौदहवाँ अध्याय

तुकाराम महाराज और जिजामाई

स्त्री, पुत्र, घरद्वार सब कुछ रहे, पर इनमें आसक्ति न हो। परमार्थ-युक्ति साधनके द्वारा चित्तवृत्ति सदा सावधान बनी रहे।

—श्रीनाथभागवत अ० १७

१ जिजामाईकी गिरस्ती

तुकारामजीकी प्रथम पत्नी रुक्मिणीबाई अकालमें ही काल-कवलित हुई और तबसे तुकारामजीकी घर-गिरस्ती क्या थी, यथार्थमें उनकी द्वितीया पत्नी जिजाबाईकी ही गृहस्थिति थी। तुकारामजीकी आयुके १७ वर्ष भी पूरे नहीं हो पाये थे जब जिजाईके साथ उनका विवाह हुआ और महाराज जब वैकुण्ठ सिधारे तब जिजाईके पाँच महीनेका गर्भ था। इस तरह दोनोंका समागम २६ वर्ष रहा। इस बीच इनके अनेक सन्तान हुए और बड़ी तंग हालतमें जिजाईको दिन काटने पड़े। तुकारामजी अपने वयस्के २२ वें वर्ष संसारसे विरक्त हुए और संसारसे जो उन्होंने मुँह मोड़ा सो फिर कभी संसारसे उन्हें आसक्ति नहीं हुई! लोकाचारके लिये वह संसारी बने थे पर कहते यही थे कि मेरा

चित्त इस प्रपञ्चमें नहीं है, मेरे शरीरतककी मुझे सुध नहीं रहती। लोगोंसे आओ, विराजो कहकर लोकाचारका पालन करना भी, ऐसी अवस्थामें, उनसे कैसे बन सकता था? एक अभंगमें उन्होंने कहा है, 'मुझे अपने कपड़ोंकी सुध नहीं, मैं दूसरोंकी इच्छाका क्या ख्याल करूँ!'

उन्होंने अपना सब बहीखाता इन्द्रायणीके भेंट किया तबसे कभी उन्होंने धनको स्पर्शतक नहीं किया। इसलिये लोकदृष्टिसे उनकी अवस्था अच्छी नहीं थी। जिजाईके माता-पिता और भाई पूनेमें रहते थे और वे सम्पन्न भी थे। जिजाई शुरू-शुरूमें उनसे सहायता लेकर जहाँतक बन पड़ता था, तुकारामजीकी गिरस्ती सम्हाले रहती थीं। अपने भाईकी मध्यस्थतासे उन्होंने कई बार व्यापारके लिये तुकारामजीको रुपया दिलाया, कई बार तो स्वयं भी तमस्सुक लिखकर महाजनोंसे रुपया लेकर तुकारामजीके हाथोंमें दिया। पर तुकारामजी ठहरे साधु पुरुष और ऐसे साधु पुरुषोंसे उचित-अनुचित लाभ उठानेवालोंकी इस संसारमें कोई कमी नहीं, इस कारण जो भी व्यापार उन्होंने किया उसीमें उन्हें नुकसान ही देना पड़ा और पीछे जब कान्हजी अपने भाईसे अलग हो गये तब तो जिजाईको गिरस्ती चलाना बड़ा ही कठिन हो गया। ऐसी दशामें जिजाईके सन्तान भी होते ही रहे। पतिदेव ऐसे कि कहींसे एक पैसा कमाकर लाना जानते नहीं और घरमें बाल-बच्चोंके लिये अन्नके लाले पड़े हुए थे! ऐसी विचित्र चिन्ताजनक दशा होनेके कारण जिजाईका स्वभाव चिड़चिड़ा और झगड़ालू हो गया हो तो कोई आश्चर्य नहीं। उनका यदि ऐसा

स्वभाव न होता तो कदाचित् इस तरह बार-बार घरसे भण्डारा पर्वतकी ओर न उठ दौड़ते। और संसारका सारा भार अकेली जिजाईपर यदि न पड़ता और अन्न-वस्त्रके भी ऐसे लाले न पड़ते तो जिजाई भी कदाचित् ऐसे चिड़चिड़े मिजाजकी न बनतीं, पर 'क्या होता, क्या न होता' का विचार तो गौण ही है, 'क्या था या है' वही देखना अच्छा है। प्रारब्ध कहिये या ईश्वर-का कौतुक कहिये, तुकारामजी और जिजाईको सारा जीवन एक साथ ही रहकर व्यतीत करना पड़ा। यूरोपके तत्त्ववेत्ता साधु सुक्रातकी स्त्री बड़ी जबरजंग थी। लोग कभी-कभी जिजाईको इसी स्त्रीकी उपमा देते हैं। परन्तु जिजाईमें अनेक उत्तम गुण भी थे और तुकारामजीका नित्य समागम होनेसे उनकी उत्तरोत्तर उन्नति ही हो चली थी। तुकारामजीके वैराग्य और अभ्यासके लिये जिजाईका संग बड़ा उपयुक्त था। इसलिये यही कहना चाहिये कि भगवान्ने अच्छी ही जोड़ी मिलायी। इस जोड़ीके मिलानेमें 'अच्युत' कहानेवाले भगवान् च्युत हुए या चूक गये ऐसा तो नहीं कह सकते। समुद्रमें कोई काठ कहींसे बहता चला आया और कोई कहींसे और दोनों मिल जाते हैं और फिर अलग भी होकर भिन्न-भिन्न दिशाओंमें चले जाते हैं, ऐसा ही जीवोंका भी संयोग-वियोग हुआ करता है। प्रत्येक जीवका प्रारब्धकर्म भिन्न है, प्रत्येक अपने कर्मानुसार जीवदशा भोगता है, सुख-दुःख कोई किसीको दिया नहीं करता। यही यदि शास्त्रसिद्धान्त है और जीव स्वकर्मसूत्रमें बँधा हुआ है तो जिजाई और तुकारामजीके परस्पर समागम और सुख-दुःखका कारण भी उनका प्राक्कर्म ही है।

जिजाईके स्वभावमें कुछ कटुता थी और वह कटुता परिस्थितिसे और भी कटु हो गयी, यह बात सच है, पर उनका कोई ऐसा महान् पुण्यबल भी था जिससे उन्हें इस जन्ममें ऐसे महान् भगवद्भक्तका समागम प्राप्त हुआ और भगवान्, धर्म और सन्तोंके पुण्यप्रद महाफलदायी सत्संगका लाभ हुआ।

२ 'योगक्षेमं वहाम्यहम्'

भक्तोंका योगक्षेम भगवान् कैसे चलाते हैं, कैसे उनकी पत रखते और उनकी बात ऊपर रखते हैं, इसकी कुछ कथाएँ महीपति-बाबाने बड़े प्रेमसे वर्णन की हैं। एक बार तुकारामजीने क्या किया कि जिजाईकी साड़ी किसी अनाथा स्त्रीको दे डाली और जिजाईके पास बस यही एक साड़ी थी जिसे वह कहीं आना-जाना हुआ या लोगोंके सामने निकलना हुआ तो पहना करती थीं। अब उनके पास ऐसी कोई साड़ी नहीं रह गयी। तन ढाकने-भरका कोई फटा-पुराना कपड़ा पहने रहने और उसी हालतमें लोगोंके सामने निकलनेकी नौबत आ गयी, तब भक्तवत्सल भगवान् पाण्डुरङ्गने स्वयं ही जरीका काम की हुई ओढ़नी उन्हें ओढ़ा दी और उनकी लाज रखी।

तुकारामजीके प्रथम पुत्र महादेव पथरीकी बीमारीसे पीड़ित हुए। जिजाईने लाख उपाय किये पर किसीसे कोई लाभ नहीं हुआ। सब उपाय करके जब वे हार गयीं तब उन्हें उन्माद-सा चढ़ आया और उसी अवस्थामें वे अपने बेटेको ले जाकर श्रीविट्ठलके पैरोंपर पटक देनेके विचारसे मन्दिरमें गयीं। मन्दिरमें प्रवेश करते ही बच्चेको पेशाब हुआ और बच्चा अच्छा हो गया।

एक घटना और बतलाते हैं। गिरस्तीका सारा जंजाल सम्हालते-सम्हालते जिजाईके नाकों दम आता था, फिर भी इसी हालतमें तुकारामजीके लिये भोजन तैयार करके पर्वतपर ले जाना पड़ता था। यह आने-जानेका झंझट ऐसा लगा कि इसके मारे कभी-कभी उनके क्षोभका पारावार न रहता। एक दिनकी घटना है कि जिजाई इसी तरह रोटी और जल लिये पर्वतकी चढ़ाई चढ़ रही थीं, बड़ी तेज धूप पड़ रही थी, पैर जल रहे थे, कंकड़ गड़ रहे थे, सारा शरीर झुलसा जा रहा था, सिरपर तो जैसे अंगारे बरस रहे थे; जिजाईके प्राण व्याकुल हो उठे, इसी हालतमें ऊपर चढ़ते-चढ़ते उनके पैरके तलवेमें एक बड़ा-सा काँटा ऐसा भिदा कि भिद-कर पैरके ऊपर निकल आया! जिजा तलमला उठी, और बेहोश होकर गिर पड़ी। जलपात्र हाथसे छूटा—जल धरतीपर गिरा और पैरसे बड़े वेगके साथ रक्तकी धारा बह निकली। कुछ काल बाद उन्हें होश आया, अपने ही हाथसे काँटेको निकालना चाहा पर वह किसी तरह नहीं निकला। काँटेको निकालनेकी चेष्टामें लगी हैं। सोच रही हैं विधनाकी करतूतको, रो रही हैं अपने ऐसे दुर्भाग्यको, कोस रही हैं अपने पिताको कि कैसे अच्छे पति ढूँढ़ दिये और सबसे अधिक दाँत पीस रही हैं उस कलूटेपर जिसका पल्ला पकड़े तुकाजी खड़े हैं और चाहती हैं किसी तरहसे यह काँटा तो निकल आवे! पर काँटा तो ऐसा भिदा है कि किसी तरहसे निकलता ही नहीं! पैरसे रक्त निकल रहा है और जिजाईके मनोमय नेत्रोंके सामनेसे होकर अपने ऐसे पतिके साथ विवाह होनेके समयके दृश्य एक-एक करके गुजरते जा रहे हैं! वह सोच रही है, कैसे ठाटबाटके

साथ पिताने मुझे विवाह दिया, भाईने किस उत्साह और साज-बाजके साथ वरयात्रा करायी और तुला भी की। माइकेमें बीते हुए सुखके वे दिन याद कर-करके तुकाजीके संग रहनेसे होनेवाले कष्टोंपर वह फूट-फूटकर रोने लगी! आँखोंसे शुभ्र जलधारा निकल रही है और पैरसे रक्तधारा! इधर तुकारामजीके पेटमें भूखकी ज्वाला उठी और उधर उसकी लपट श्रीविट्ठलनाथके हृदयपर जा लगी। जिजाईके कष्टोंने भी वहाँ पहुँचकर दयामैयाको जगाया। कारण, ये कष्ट एक पतिव्रताके स्वधर्म-निर्वाहके कष्ट थे। स्वधर्माचरण करनेवालोंपर भगवान् दया करते ही हैं। दयाके निधान श्रीपाण्डुरङ्ग भगवान् उस झलाती धूपमें धूपकी जलन और काँटेकी भिदनसे तड़पती हुई जिजाईके सम्मुख प्रकट हुए। जिन्होंने जिजाईके सम्पूर्ण गृहसौख्यको स्वयं ही हर लिया था और इस कारण जिजाई जिन्हें अपने सुखका हर्त्ता जानकर ही भजती थीं वह नारायण भी वैसे भजनके अधीन हो गये। श्रीविट्ठलनाथजीकी वह श्याम सगुण लावण्यमूर्ति सम्मुख खड़ी देखकर क्या जिजाईको कुछ सन्तोष हुआ? नहीं, वहाँ तो क्रोधाग्नि और भी वेगसे भड़क उठी और जिजाई क्रोधके अंगारे बरसाने लगीं। कहने लगीं, 'यही है वह काला-कलूटा जिसने मेरे पतिको पागल बना दिया! अरे ओ निर्दयी! तू अब भी पीछा नहीं छोड़ता! क्या अब मेरे पीछे पड़ना चाहता है? मेरे सामने अपना यह काला मुँह लेकर क्यों आया है?' यह कहकर जिजाईने भगवान्‌की ओर पीठ फेर दी और दूसरी ओर मुँह करके बैठ गयी! जिजाईकी उस विलक्षण दृढ़ताको देखकर भगवान्‌के

भी जीमें कुछ कौतुक करनेकी इच्छा हुई ! वह लीलानटवर जिस ओर जिजाईने मुँह फेरा था उसी ओर सम्मुख होकर खड़े हुए ! जिजाईने झुँझलाकर फिर मुँह फेर लिया, भगवान् वहाँ भी सम्मुख हो गये, आठों दिशाएँ जिजाई घूम गयीं, पर जिधर देखो उधर वही काले कृष्णकन्हैया जिजाईके छलैया खड़े हैं, इधर देखो तो वही, उधर देखो तो वही, ऊपर देखो तो वही, नीचे देखो तो वही, कहाँ किधर वह नहीं ? यह हालत जिजाईकी उस समय हो गयी !

रावण, कंस, शिशुपाल इत्यादिको जिन्होंने उनके भगवद्विद्वेषके कारण ही तारा उन लीलानटवर श्रीविट्ठलने अपने परम भक्तकी सहधर्मिणीके चारों ओर चक्कर लगाकर उसकी दृष्टि अपनी ओर खींच ली तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? किसी भी निमित्तसे हो भगवान्‌की ओर जहाँ चित्त लगा तहाँ जीवका सब काम बना । जिजाई जिस ओर दृष्टि डालतीं उसी ओर उन्हें श्रीकृष्ण दृष्टि आते । आखिर, उन्होंने अपने दोनों नेत्र दोनों हाथोंसे खूब कसकर बन्द कर लिये, तब तो भगवान् अन्तरमें भी दिखायी देने लगे ! पिता जिस प्रकार अपनी पुत्रीपर हाथ फेरे उसी प्रकार भगवान्‌ने जिजाईके अङ्गपर अपना कमलकर फिराया, और जिजाईका पाँव अपनी पालथीपर रखकर ऐसी सुविधासे कि जिजाईको किञ्चित् भी वेदना नहीं प्रतीत हुई, वह काँटा चटसे निकाल लिया । तब जिजाई और उनके साथ-साथ भगवान् तुकारामजीके समीप गये । तुकारामजीने इन दोनोंको एक साथ जो देखा तो उन्हें रात्रि और दिवाकरके साथ-ही-साथ आनेका

भान हुआ। तुकारामजीके साथ-साथ भगवान् और जिजाईने भी भोजन किया। वहीं बैठे-बैठे भगवान्‌ने एक पत्थर हटाया तो वहाँसे स्वच्छ जलका झरना बहने लगा!

३ दोषका भागी कौन?

तुकारामजी और जिजाईके झगड़ेमें दोषका भागी कौन है— तुकाराम या जिजाई? यह प्रश्न उपस्थित करके, दूसरोंके झगड़ोंमें पञ्च बनकर पड़नेवाले कई विद्वानोंने इसकी बड़ी चर्चा की है। कितनोंका यह कहना है कि तुकारामजी जब गृहस्थ थे, एक स्त्रीका पाणिग्रहण कर उसे घर ले आये थे, उससे उनके सन्तान भी थी, तब उन्हें उस स्त्री और उन सन्तानोंका अवश्य ही पालन-पोषण करना उचित था। यह उनका कर्तव्य ही था। इस कर्तव्यका पालन उन्होंने नहीं किया, इसलिये तुकाराम ही सर्वथा दोषी हैं। पाठक! हम आप भी जरा इस प्रश्नको इस अवसरपर विचार लें। सारे जगत्‌को उपदेश करनेवाले तुकारामजीको क्या इतना भी ज्ञान नहीं था कि अपने स्त्री और सन्तानके प्रति अपना कर्तव्य वह न समझ सकते? और ऐसी बात भला कौन कह सकता है? और ऐसी बात हो भी कैसे सकती है? इसलिये बात कुछ और है। तुकारामजी और जिजाईकी जो नहीं बनी इसमें यथार्थमें दोष तो किसीका भी नहीं है। तुकारामजीके अभङ्ग-संग्रहोंमें 'तुकारामजीके प्रति उनकी स्त्रीके कठोर वचन' शीर्षक सात अभङ्ग हैं। इन अभङ्गोंको कुछ लोग असली मानते हैं और कुछ नहीं मानते। जो हो, पर उन अभङ्गोंसे इतना तो अवश्य ही जाना जा सकता है कि तुकारामजीपर जिजाईके

कौन-कौनसे आक्षेप हो सकते थे। जिजाईका मानो यही कहना था कि—

(१) यह कोई काम-काज नहीं करते, कुछ उपार्जन नहीं करते; विवाह करके मेरे पति तो बन बैठे, पर इनके तथा बच्चोंके लिये अन्न-वस्त्र मुझे ही जुटाना पड़ता है। स्त्रीकी जाति मैं कितना दुःख उठाऊँ और किस-किसके सामने अपना दीन वदन दिखाऊँ ?

(२) इन्हें अपने तनकी कोई चिन्ता नहीं, न सही; पर इन्हें हमारी कोई चिन्ता हो सो भी नहीं !

(३) स्वयं तो कुछ कमाकर लाते नहीं, पर यदि कहींसे कुछ आ जाय तो वह भी लुटा देते हैं। अन्न हो, वस्त्र हो अथवा और कोई वस्तु हो, जो भी जो कुछ माँगता है, वह, अपने बच्चोंको पूछतेतक नहीं, और उसे दे डालते हैं। दूसरोंके पेट भरते हैं पर मेरी या बच्चोंकी कोई परवा नहीं करते। कभी एक पैसा कमाना नहीं, हाँ, घरमें यदि कुछ पड़ा हो तो उसे भी गँवा देना, यही इनका धन्धा है।

(४) घरमें तो रहना जानते ही नहीं, जब देखो तब वनको ही दौड़े जाते हैं, इन्हें ढूँढ़कर पकड़ लाना पड़ता है तब इनका आगमन होता है।

(५) सब कीर्तनियाँ मिलकर रातको बड़ा कोलाहल मचाते हैं, किसीको सोने नहीं देते। इनके संग-साथसे इनके साथी भी घरबारत्यागी विरागी बन रहे हैं और उनकी स्त्रियाँ भी घरोंमें बैठी मेरी तरह रो रही हैं।

जिजाईके ये आक्षेप हैं। इन्हें झूठ तो तुकारामजी भी नहीं बतलाते। जिन सात अभंगोंकी ये बातें हैं उनमेंसे प्रत्येक अभंगके अन्तिम चरणमें तुकारामजीका उत्तर भी रखा हुआ है। उत्तर एक ही है कि, 'सञ्चितका भाग मिथ्या है, मिथ्याका भार ढोनेमें व्यर्थ ही माथा खपाना है।'

जिजाबाईका कहना जिजाबाईकी दृष्टिसे ठीक है, सामान्य संसारी जनोंकी दृष्टिसे भी ठीक है, संसारको सत्य माननेकी दृष्टिसे भी बिल्कुल ठीक है। जिजाईको अकेले तुकारामजीकी गिरस्तीका सारा भार अपने सिरपर उठाना पड़ा, इससे उन्हें बहुत कष्ट हुए, कष्टोंसे उनका मिजाज चिड़चिड़ा बन गया, चिड़चिड़ेपनसे जो कुछ उन्होंने कहा वह इस तरहसे बिल्कुल सही है और उनके दुःखोंसे संसारी जीवोंको स्वाभाविक ही सहानुभूति होती है। पर तुकारामजीकी ओर देखिये और तुकारामजीकी दृष्टिसे विचारिये तो उनका भी कोई दोष नहीं दिखायी पड़ता। संसारका मिथ्यात्व जब प्रकट हो गया, उससे मन उपराम हो गया और सांसारिक सुख-दुःखके विषयमें चित्त उदासीन हो गया तब उस सुख-दुःखसे उत्पन्न होनेवाले कर्तव्य ही कहाँ रह गये ? इसलिये इसमें तो तुकारामजीका कोई दोष नहीं दिखायी पड़ता। सूर्यके सामने जब अन्धकार ही नहीं रहा, जाग उठनेपर स्वप्नगत संसार ही जब नहीं रहा, नदीके उस पार पहुँचे हुएपर नदीकी लहरें जाकर नहीं गिरीं तो इसमें सूर्य, जागृत और उत्तीर्ण पुरुषको कोई भी विवेकी पुरुष दोषी कह सकता है ? जागता हुआ पुरुष और स्वप्नमें बड़बड़ानेवाली

स्त्री इन दोनोंका मिलन जैसा है वैसा ही तुकारामजी और जिजाईका जीवन-मिलन है। स्वप्नमें बड़बड़ानेवाली स्त्रीके शब्दोंका जाग्रत पुरुषके समीप कोई मूल्य नहीं होता, प्रत्युत जागता हुआ पुरुष उसे भी जगानेका ही प्रयत्न करता है। उसी प्रकार तुकारामजीने जिजाईको जगानेके लिये 'पूर्णबोध' के अभङ्ग कहे हैं। तुकारामजी और जिजाईका झगड़ा सत्त्वगुण और रजोगुणका झगड़ा है, परमार्थ और प्रपञ्चका या ब्रह्म और मायाका झगड़ा है। प्रकृतिके दास जीव प्रकृतिके सब कामोंको ही ठीक समझते हैं, पर प्रकृतिप्रभु पुरुषके सामने प्रकृति आती ही नहीं, फिर उसका कार्य क्या और उसका अभिनिवेश ही क्या? पुरुष तो असङ्ग और उदासीन है, निर्धन और एकान्ती है, जराजीर्ण अति वृद्धसे भी वृद्ध है। पर अकर्ता, उदासीन और अभोक्ता होनेपर भी पतिव्रता प्रकृति उससे भोग कराती है। वह अविकारी है, पर यह (प्रकृति) स्वयं उसमें विकार बन जाती है, वही उस निष्कामकी कामना, परिपूर्णकी परितृप्ति, अकुलका कुल और गोत्र बन जाती है। इस प्रकार प्रकृति पुरुषमें फैलकर अविकार्य पुरुषको विकारवश बना देती है। ज्ञानेश्वरी (अ० १३) पुरुष ऐसा और प्रकृति ऐसी है! तुकारामजी पुरुष और जिजाई प्रकृतिका यह विवाद अनादिकालसे चला आता है। यह तो अध्यात्म-दृष्टि हुई, पर लोकदृष्टिसे भी देखें तो भी तुकारामजी दोषी नहीं ठहराये जा सकते। संसारी बने रहो और परमार्थ भी साधो, यह कहना तो बड़ा सरल है, पर दो नावोंपर पैर रखनेवाला किसी एक नावपर भी नहीं रहता। इस लोकोक्तिके अनुसार

सभी महात्माओंका अनुभव है। समर्थ रामदास स्वामीने भी (पुराना दासबोध समास १८ में) यही कहा है। बचपनमें माता-पिताने ब्याह करा दिया, पीछे वैराग्य हुआ, ऐसी अवस्थामें कोई भी सच्चा साधक ऐसे ही रह सकता है जैसे तुकारामजी रहे। बाल-बच्चोंका पेट भरना और इसके लिये नौकरी-चाकरी या कोई बनिज-व्यापार करना तो सभी करते हैं। तुकारामजी भी यदि वैसा ही करते तो परम अर्थकी जो निधि उनके हाथ लगी वह न लगी होती और जो धन उन्होंने संसारमें वितरण किया वह भी न कर सकते, यह तो स्पष्ट ही है। कुछ त्यागे बिना कुछ हाथ नहीं लगता। प्रपञ्च, लोभ छोड़े बिना परमार्थ लाभ नहीं हो सकता। तुकारामजीके चित्तने संसारको जड़मूलसहित त्याग दिया, इसीसे परमार्थका मूल उनके हाथ लगा। महान् लाभके लिये अल्पका त्याग करना ही पड़ता है। दो कर्तव्योंके बीच जब झगड़ा चले तब श्रेष्ठ कर्तव्यके लिये कनिष्ठ कर्तव्य त्यागना पड़ता है। सर्वस्व-त्यागी बनना पड़ता है तभी फलोंका भी फल, सुखोंका भी सुख, ध्येयोंका भी ध्येय जो परमात्मा है उसकी प्राप्ति होती है। उस प्राप्तिके लिये तुकारामजीने कभी-न-कभी नष्ट होनेवाले संसारका त्याग किया तो क्या गलती की? सीप फेंककर पारस लेना बुद्धिमानोंका काम ही है। नारायणके लिये गृह, सुत, दारादि संसारकी अहंता-ममताकी मैल काटकर ही उन्होंने संसारको सुवर्ण बना दिया। संसारमें सुवर्णकी माया जोड़नेवाले संसारको सुवर्ण नहीं बनाते, प्रत्युत जो अपने हृदय-सम्पुटमें नारायणके चरण जोड़ते हैं उन्हींका संसार सुवर्ण हो

जाता है ! उनके असंख्य जन्मोंके संसार-बन्ध टूट जाते हैं और संसार सुखमय हो जाता है ! तुकारामजीने एक संसारीके नाते अपनी कोई पत नहीं रखी, यह चाहे अज्ञ जीव कहा करें, पर उनकी अपनी दृष्टिमें और उनके सदृश दृष्टिवालोंकी दृष्टिमें उनका संसार—उनका प्रपञ्च—उनका जीवन सुखमय, लाभमय और परम सौभाग्यमय ही हुआ ! इस सुख, लाभ और सौभाग्यको अगले अध्यायमें विस्तारसे देखेंगे ।

४ जिजामाईको पूर्णबोध

सोतेको जगाना, गुमराहको राहपर लाना, अपना सुख दूसरोंको वितरण करना, यही तो सच्चा परोपकार है । तुकारामजीने संसारको जगाया, उसी संसारमें जिजाई भी आ गयीं । परन्तु जिजाईको खास तौरपर अलग भी तुकारामजीने उपदेश करके लोकदृष्टिसे भी अपने कर्तव्यका पालन किया । जिजाईके लिये जो उपदेश उन्होंने किया उस 'पूर्णबोध' के बारह अभङ्ग हैं । जिजाई भजन करनेवाले वारकरियोंके कोलाहलसे झुँझलाकर जैसे कठोर वचन कहा करतीं, उसपर तुकारामजी उन्हें बड़ी शान्तिसे समझाते—'हमारे घर क्यों कोई आने लगा ? सबको अपना-अपना काम-काज लगा हुआ है ! कौन ऐसा निठल्ला बैठा है जो बिना किसी मतलबके हमारे यहाँ आया करे ? जो कोई भी आता है वह भगवान्के प्रेमसे आता है, भगवान्के लिये ही अखिल ब्रह्माण्ड अपना हो जाता है । भक्तोंके लिये जो तुम ऐसी कठोर बातें कहती हो सो न कहकर मृदु वचन कहो तो इसमें तुम्हारा

क्या खर्च हो जायगा। आदर-मानके साथ बुलानेसे प्रेमवश इतने लोग आते हैं कि जिनका कोई हिसाब नहीं।'

'पूर्णबोध' का पहला अभङ्ग कुछ कूट-सा है—'खेतमें जो उपज होती है उसमें हमारे प्यारे चौधरी पाण्डुरङ्ग हमें बाँट देते हैं। लगानका अभी ७०रुपये देन बाकी है सो वह माँग रहे हैं, अबतक १० रुपये ही दिये हैं। घरमें हंडा, बर्तन हैं, गोठमें गाय, बैल हैं, यही एवज दिखाते हुए दालानमें खाटपर बैठे हुए हैं। मैंने कहा, भाई! ले लो, एक बारमें ही सब लहना चुका लो, इस तरह जब मैं उनसे उलझ पड़ा तब आप चुप हो गये!'

भाव यह है कि इस शरीररूपी खेतके प्रभु पाण्डुरङ्ग हैं, उन्होंने यह नर-तन हमें बर्तनेके लिये दिया है। वह हमें भूखों नहीं मरने देते। इस खेतका लगान ८० रुपये हैं। इसमेंसे हम अबतक १० दे चुके हैं, ७० बाकी हैं, सो यह माँग रहे हैं। अर्थात् यह शरीर ८० तत्त्वोंका है, ये ही ८० तत्त्व उन्हें गिना देने होंगे। इनमेंसे ५ कर्मेन्द्रिय और ५ ज्ञानेन्द्रिय हैं, उन्हें तो मैंने भजनमें लगा दिया है। इस तरह ८० लगानके १० दे चुके, अब बाकीका तकाजा है। खाटपर बैठे हैं याने हृदयमें विराज रहे हैं।

श्रीमद्भगवद्गीतामें तत्त्वसंख्या (अ० १३ श्लोक ५-६) ३६ दी हुई है। श्रीमद्भागवतमें (स्कन्ध ११ अ० २२) इन तत्त्वोंकी संख्याका कई प्रकारसे हिसाब लगाकर ४ से लेकर २८ तक भिन्न-भिन्न संख्याएँ बतायी गयी हैं। श्रीमदासबोधमें (दशक १७ समास ८–९) तत्त्वोंकी संख्या ८२ बतायी है जो

कारण और महाकारण देहको अलग रखनेसे ८० ही रह जाती है। अन्तःकरण ५, प्राण ५, ज्ञानेन्द्रिय ५, कर्मेन्द्रिय ५ और विषय ५, इस प्रकार २५ तत्त्व हुए। इन २५ के दो-दो भेद—२५ सूक्ष्म और २५ स्थूल, इस प्रकार ५० हुए। इनमें स्थूल और सूक्ष्म देह मिलानेसे ५२ हुए। इन ५२ में ४ स्थान, ४ अवस्थाएँ, ४ अभिमानी, ४ भोग, ४ मात्राएँ, ४ गुण और ४ शक्ति याने २८ तत्त्व ये मिलानेसे तत्त्वोंकी कुल संख्या ८० हुई। ८० तत्त्व इस प्रकार गिना देनेसे 'एको विष्णुर्महद्भूतम्' की प्रतीति और वैकुण्ठकी प्राप्ति होती है।

देहूमें तुकारामजीके अभङ्गोंके एक पुराने संग्रहमें इस अभङ्ग-का आशय यों सूचित किया है—'उपजा=स्वरूप, खेत=भक्ति, हमें=चार खान चार वाणीके जीवोंको, बाँट=अधिकार, चौधरी=स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण—इन चार देहोंके धारक चतुर्धर चौधरी, प्यारे=पुरुषोत्तम, पाण्डुरङ्ग=सगुण, सत्तर रुपया=सत्तर तत्त्व, दस=दस प्राण, दिये=सगुण भक्तिके समर्पित किये। हंडा=अहङ्कार, वर्तन=पञ्चमहाभूत, गाय-बैल=इन्द्रियाँ, दालान=हृदय, खाट=पर्यङ्क, जब मैं उलझ पड़ा तब आप चुप हो गये=दस प्राण समर्पित कर दिये तब जीवभाव नष्ट हुआ, अपने शिवत्वकी प्रतीति हुई तब तुकाराम भगवान्से लड़ पड़े और कहने लगे कि मेरा सब हिसाब साफ हो गया, अब मेरे जिम्मे कुछ बाकी न रहा, इस प्रकार ८० तत्त्व झड़ गये।'

इस अभङ्गमें पञ्चीकरण सूचित किया है। सद्गुरु जब शिष्य-को उपदेश करते हैं तब पहले एकान्तमें पञ्चीकरण समझा

देते हैं। तुकारामजीने एकान्तमें जिजाईको पञ्चीकरण समझा दिया होगा। इससे जिजाईका अधिकार भी सूचित होता है। तुकारामजी आगे कहते हैं—

'विवेकसे यह सारा एकछत्र साम्राज्य है। एक ही सिंहासनासीन सम्राट् हैं। उनके सिवा और कौन मुझे अपनी पीठपर बैठा सकता है?'

भगवान्के सिवा और है ही कौन? इनका खेत मैंने जोता-बोया, असामी बनकर रहा और 'अब यह मेरी जानको लग गये!' इनका पावना इसी देहमें रहकर चुका देनेका मैंने निश्चय कर लिया है। अच्छे मालिक मिले! ऐसे हरि हैं कि सब कुछ हर लेते हैं, इसीलिये कोई इनके पास मारे भयके फटकता तक नहीं। कितनोंको इन्होंने लूट लिया और कितनोंको सन्तोंकी जमानतपर छोड़ रखा है। इनकी निठुरता देखकर लोग इनके नामपर हँसते हैं। यह सर्वस्व छीन लेते हैं पर यह बात है कि सर्वस्व छीनकर वैकुण्ठपद देते हैं। हम इनके चंगुलमें खूब फँसे। इस प्रकार बोध कराते हुए जिजाईसे तुकारामजी कहते हैं कि मेरे विचारमें तुम अपना विचार मिला दो तो मेरा-तुम्हारा विरोध मिट जाय। भगवान्से तो मेरा अन्तरङ्ग स्नेह हो चुका है। यह मेरे करनेसे नहीं हुआ, उन्हींके आदेशसे हुआ है। तुम्हारे लिये यही उपदेश है—

'बच्चेके लिये यह हो और वह हो, यह हवस छोड़ दो। जिन्होंने इसे जन्म दिया, उन्हींका यह है। वही इसकी देख-भाल करेंगे। तुम अपना गला छुड़ा लो, गर्भवासकी यातनाओंसे बचो।'

वासना छोड़ दो, माया जोड़नेकी बुद्धि छोड़ दो। वासनासे ही यमदूत गलेमें अपना फन्दा डालते हैं। उनकी मार बड़ी भयङ्कर है, स्मरण करनेमात्रसे 'मेरा तो कलेजा काँपने लगता है।' यदि तुम्हें मेरी चाह हो तो अपने चित्तको बड़ा करो। चित्तको ऐसा उदार बनाओ कि—

'सज्जनोंका सङ्ग तुम्हारे अनुकूल पड़े, संसारमें तुम्हारी कीर्ति बढ़े। यह कहनेके लिये तैयार हो जाओ कि मेरे गाय-बैल मर गये, बासन-छाजन चोर चुरा ले गये और बच्चे तो मेरे पैदा ही नहीं हुए। आस छोड़ हृदयको वज्र-सा बना लो। इस क्षुद्र सुखपर थूक दो, अक्षय परमानन्द लाभ करो। तुका कहता है, भव-बन्धनोंके टूटनेसे बड़े भारी कष्टोंसे परित्राण होगा।'

मैं तो जल्द ही वैकुण्ठधामको जानेवाला हूँ, तुम भी मेरे साथ चलो। वहाँ हम-तुम आदर पायेंगे। घर-द्वारपर तुलसीपत्र रखकर ब्राह्मणोंको दान करके इस जंजालसे निकल आओ। विचार लो, अच्छी तरह देख लो। 'मैं मेरा' का सर्वथा त्याग करो; भूख-प्यास, द्रव्यादि लोभ, ममत्व—इन सबसे अपने आपको छुड़ा लो और ऐसी सुखी बनो जैसा मैं हूँ—

'मेरी भूख-प्यास कैसी स्थिर है, अस्थिर मन भी जहाँ-का-तहाँ ही स्थिर होकर बैठा है।'

'गुरु-कृपासे भगवान्‌ने मुझसे जो कहलवाया' वही मैं तुमसे कह रहा हूँ।

'सचमुच ही भगवान्‌ने मुझे अंगीकृत कर लिया है, अन्न और

कुछ विचारनेकी बात ही कहाँ रही ? तुम्हारे लिये अब यही उपदेश है कि कटिबद्ध होकर बलवती बनो ।'

तुकाराम महाराजने जिजाबाईको यही अन्तिम उपदेश किया । यह उपदेश वृथा नहीं हुआ । सिद्धोंकी वाणी भला वृथा कैसे हो सकती है ? जिजामाईका आचरण शुद्ध, निष्कलङ्क, पवित्र और पातिव्रत-धर्मानुकूल था । पतिको भोजन कराये बिना उन्होंने कभी भोजन नहीं किया । लौकिक व्यवहारमें पतिसे उनकी नहीं पटती थी तथापि पतिके प्रति उनके प्रेमका स्रोत अत्यन्त शुद्ध और निरन्तर था । तुकारामजीको वह प्राणोंसे भी अधिक प्यार करती थीं । उनका पतिप्रेम अत्यन्त निष्कपट और निर्मल था । तुकारामजीके उपदेशों-का परिणाम उनके ऊपर बहुत ही अच्छा हुआ । दूसरे ही दिन उन्होंने अपना सब घर-द्वार ब्राह्मणको दान कर दिया और सांसारिक बन्धनोंसे मुक्त हो गयीं । तुकाराम-ऐसे महात्माका सत्संग अकारथ ही कैसे जाता ? तुकाराम भी भगवान्से खूब लड़े-झगड़े, पर उनका भगवत्-प्रेम ज्वलन्त था । ऐसी ही बात जिजामाईकी भी समझनी चाहिये । प्रेमके बिना झगड़ा नहीं होता । झगड़ेकी सचाईसे निष्कपट प्रेम, शुद्ध आचरण और सच्ची निष्ठा ही प्रकट होती है ।

५ सन्तान

जिजामाईके काशी, भागीरथी और गङ्गा—ये तीन कन्याएँ और महादेव, विट्ठल और नारायण—ये तीन पुत्र हुए । इनमें काशी सबसे बड़ी थीं और नारायण सबसे छोटे । तुकारामजीके महाप्रस्थानके समय जिजामाई गर्भवती थीं अर्थात् तुकारामजीके प्रयाणके पश्चात्

इनका जन्म हुआ। तुकारामजीने अपने इन पुत्रको इन आँखोंसे नहीं देखा और इन्होंने भी अपने पिताको नहीं देखा। सबसे बड़ी काशी, उनसे छोटे महादेव, इनके बादकी भागीरथी, तब विट्ठल, विट्ठलसे छोटी गङ्गा और गङ्गासे छोटे नारायण। नारायणका जन्म हुआ उस समय गङ्गा बहुत छोटी थीं। उन्हें सम्हालनेके लिये बुधाई नामकी एक दासी रखी गयी थी। तुकारामजी जब भण्डारा या भामनाथ पर्वतपर पहुँचकर भगवान्के भजनमें तल्लीन हो जाते तब उन्हें भूख-प्यासकी सुध न रहती; पर जिजामाई उन्हें भोजन कराये बिना स्वयं कभी न खाती थीं। कभी तो वह स्वयं भोजन लिये वन-जङ्गलमें उन्हें ढूँढ़ती फिरतीं और कभी काशीको भेज देतीं। महादेव और विट्ठलका चित्त प्रायः खेल-कूदमें ही लगा रहता, इससे जिजामाईका कहना वे सदा मानते ही हों, ऐसा नहीं था। कन्याओंके विवाह आदि बड़े गरीबी ढंगसे हुए। कन्याओंके लिये तुकारामजीने वर भी ऐसे ढूँढ़े कि वर ढूँढ़ने घरसे यों ही बाहर निकले, थोड़ी दूर जाकर देखा, रास्तेमें कुछ बालक खेल रहे हैं, वहीं खड़े हो गये। उनमें अपनी जातिके दो बालकोंको उन्होंने देखा, उन्हींको घर लिवा लाये और वधू-वरको हल्दीसे रँगकर विवाह कर दिया। जँवाइयोंकी न तो कोई बारात सजी, न दावतें दी गयीं, न कोई नजर भेंट की गयी और न रीसने-रूठनेका ही कोई अभिनय हुआ! 'दूधके साथ भात खिला दिया और पञ्चामृत पान करा दिया।' उन बालकोंके माता-पिता सम्पन्न थे और तुकारामजीकी ओर उनके भक्त लोग भी तैयार थे, इसलिये पीछेसे चार दिन विवाहका मङ्गलोत्सव होता रहा। इससे जिजामाईको कुछ

सन्तोष हुआ। तुकारामजीके ये जँवाई मोरे, गाडे और जाम्बुलकर घरानेके थे। तुकारामजीकी मझली कन्या भागीरथी बड़ी पितृभक्त और भगवद्भक्त थी। तुकारामजीने प्रयाणके पश्चात् जिन लोगोंको दर्शन दिये उनमें एक भागीरथी भी हैं। तुकारामजीके तीनों पुत्रोंमें नारायणबोवा अच्छे पुरुषार्थी निकले। देहू आदि गाँव इन्होंने ही अर्जित किये। देहूके पाटील इंगलेकी कन्या इन्हें ब्याही थीं। नारायणबोवाके पश्चात् भी तुकारामजीके वंशजोंके साथ देहूके पाटील इंगलोंका सम्बन्ध होता रहा। इस समय देहूमें प्रायः तुकाराम महाराजके वंशजोंके ही घर हैं।

पन्द्रहवाँ अध्याय

धन्यता और प्रयाण

मनकी स्थिरतासे जो स्थिर हो जाता है, भक्तिकी भावनासे जिसका अन्तःकरण भर जाता है और योगशक्तिसे सुसज्जित होकर जो ठिकाने आ जाता है वह केवल परब्रह्म, परम पुरुष कहानेवाला मेरा निजधाम होकर रहता है।

(ज्ञानेश्वरी अ० ८ । ९६, ९९)

जिस स्वरूपको प्राप्त होनेसे नीचे गिरना नहीं होता वह श्रीकृष्णस्वरूप है । श्रीकृष्णकी कीर्ति गाते-गाते भक्त स्वयं ही श्रीकृष्णरूप हो जाते हैं । (नाथ-भागवत अ० ३१)

१ परमार्थ-सुख

परमार्थसाधन करना होता है परम सुखके लिये। तुकारामजीने प्रपञ्चको तिलाञ्जलि देकर परमार्थसाधन किया अर्थात् स्वल्प-क्षणिक सुखका त्याग करके अखण्ड अविनाशी सुख लाभ किया। प्रपञ्चका अर्थ है पाँच विषयोंका सङ्घात। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धसे सुख प्राप्त करनेकी इच्छा करना और उसके पीछे भटकते फिरना। सब जीव प्रपञ्ची हैं और इसीसे दुखी हैं। नरतन सब तनोंमें सबसे श्रेष्ठ रतन (रत्न) है। सब सुखोंमें जो सर्वोत्तम सुख है, जिसके मिलनेसे अन्य किसी सुखकी इच्छा नहीं रह जाती, जिस सुखका कभी क्षय नहीं होता, जिसकी अन्य किसी सुखसे उपमा

नहीं दी जा सकती वह परम सुख इसी नरतनमें ही प्राप्त किया जा सकता है, नरसे नारायण हुआ जा सकता है, सच्चिदानन्द-पदवीको प्राप्त किया जा सकता है। इस मनुष्य-देहके द्वारा चारों अर्थ—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जोड़े जा सकते हैं। इनमें अर्थ और काम अस्थिर और क्षणभङ्गुर हैं, इनसे परे धर्म है और धर्मसे भी परे मोक्ष है। वही परम अर्थ—परम पुरुषार्थ है। चतुर्वर्गका वही परम ध्येय है। यही सकलदुःखविध्वंसकारी महानन्द है। प्रत्येक जीव सुखके लिये छटपटाता रहता है। प्रपञ्ची जीवोंके समान पारमार्थिक जीव भी सुखके ही पीछे दौड़ रहे हैं। अन्तर इतना ही है कि कोई विषयको ही सुखका स्रोत समझकर उसीमें गोते खा रहे हैं और कोई विषयोंसे परे जो निर्विषय आनन्द है उसमें गोते लगा रहे हैं। विषय-सुख पूर्ण सुख नहीं है, इसलिये पारमार्थिक इस सुखको त्यागकर अथवा इससे उदासीन रहकर अखण्ड सुखकी साधनामें लगे रहते हैं। देहेन्द्रियविषय-सन्निकर्षसे होनेवाले सुखसे ऊबकर वे देहातीत, इन्द्रियातीत, विषयातीत सुखके पीछे पड़ जाते हैं। यह परमार्थ-मार्ग ऐसा है कि इसपर पैर रखते ही परम सुखका रसास्वादन आरम्भ हो जाता है। सम्पूर्ण मार्ग सुखानुभवकी वृद्धिका ही मार्ग है, पद-पदपर अधिकाधिक आनन्द है। परमार्थके सम्बन्धमें बहुतोंकी बड़ी विचित्र धारणाएँ हो जाती हैं। उनके चित्तमें यह बात बैठ जाती है कि परमार्थ संसारका रोना है, परमार्थसाधन करना रोते हुए चलना और ऐसी जगह पहुँचना है जहाँ मिट जानेके सिवा और कुछ हाथ नहीं आता। पर यह समझ सूर्यके प्रकाशको

आँखें बन्द करके घोर अन्धकार मान लेनेकी-सी बात है। यथार्थमें परमार्थ रोना नहीं, रोनेको हँसाना है; मरना—मिट जाना नहीं, अजर-अमर पद लाभ करना है; दुःखके आँसू नहीं, आपूर्यमाण आनन्द-समुद्र है। जीवका वास्तविक हित, वास्तविक लाभ, वास्तविक शान्ति और समाधान इसीमें है। इसीलिये तो इसे परमार्थ, परम सुख, परम पुरुषार्थ कहते हैं। पारमार्थिक लोग पागल, नादान, दीवाने, हाथ-पर हाथ धरके बैठ रहनेवाले, आलसी, कापुरुष, दुनियासे बेखबर और अन्धे नहीं होते; जिस संसारमें हम रहते हैं उसे वे ही अच्छी तरहसे देखते और समझते हैं, सदा सावधान रहते, अज्ञान और मोहका वीरतासे सामना करते, एक क्षण भी उद्योगसे खाली नहीं जाने देते, लाभ-हानिका हिसाब ठीक-ठीक रखते हैं, हानिसे बचते और लाभ उठाते हैं। परमार्थके साधन भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। ध्येयसम्बन्धी श्रद्धा और विश्वास अथवा कल्पनाके प्रकार भिन्न-भिन्न हो सकते हैं; पर सबका संयोग उसी एक सकलदुःख-वियोगरूप अखण्ड सुखके महायोगमें ही होता है। तुकारामजीने इस परमार्थ-मार्गपर जबसे पैर रखा तबसे उनका वैकुण्ठपदलाभ पर्यन्त सम्पूर्ण चरित्र इसी परम सुखकी बढ़ती हुई बाढ़का ही इतिहास है। जहाँ इस बाढ़की हद हो जाती है, घट-बढ़की भाषा ही जहाँ नहीं रह जाती, लाभकी परिपूर्णता और सुखकी ओत-प्रोतताका अनुभव होता है वही मोक्ष है, वही वैकुण्ठधाम है। विषयोंका सम्बन्ध जहाँ दृढ़तापूर्वक विच्छिन्न हो गया तहाँ आनन्द-सागर उमड़ने लगता है और ऐसी बाढ़ बढ़ी चली आती है कि आनन्दकी उस बाढ़में अपूर्व आनन्द-तरङ्गोंपर नाचता-सा बहता

हुआ उस पार जा लगता है जहाँ आर है न पार, ओर है न छोर। वही कृतकृत्यताकी परमानन्द पदवी है। श्रीतुकाराम इस परमानन्द पदवीको प्राप्त हुए और तीनों लोकोंमें धन्य हुए। उनका लौकिक जीवन नाना दुःखों और यातनाओंमें बीता, उनके प्रपञ्चका दृश्य बड़ा ही दुःसह रहा; पर यह बाह्य दृष्टि है, बहिर्मुखीन लक्ष्यहीन मोह-दृष्टिका अभिप्राय है, लक्ष्य-पर स्थिर दृष्टिका नहीं! इन दुःसह दुःखों और यातनाओंसे घिरे हुए तुकारामजीका लक्ष्य क्या था? किस लक्ष्यपर उनकी दृष्टि लगी थी, किस ओर वह इन दुःखों और यातनाओंमेंसे होकर जा रहे थे और कैसे उन्होंने अपना मार्ग परिष्कृत कर लिया, कहाँ पहुँचे और क्या पाया? उन्होंने अपना लक्ष्य पा लिया, दुःखों और यातनाओंके भीषण रूपको देखकर वह डर नहीं गये, परिस्थितिके चक्रके पीछे चकराते, चक्कर काटते, भूलते-भटकते ही नहीं रह गये, दुःखों और यातनाओंके घिरावको तोड़कर, परिस्थितिको भेदकर अपने लक्ष्यपर लगी दृष्टिसे निश्चित इष्टमार्ग-पर चलते गये और लक्ष्यपर पहुँच गये। उनकी यात्रा पूरी हुई, साधना सफल हुई, सम्पूर्ण सुख, सम्पूर्ण आनन्द, सम्पूर्ण ज्ञान, सम्पूर्ण भक्ति सभी तो मिल गया, सर्वेश्वर श्रीपाण्डुरङ्ग स्वयं ही निजाङ्ग हो गये, भवाम्बुधिके पार उतर गये, कृतकृत्य हो गये, धन्य हो गये! उस कृतकृत्यता और धन्यताके साधनपथपर चलते हुए तथा क्रमसे साध्यको साधते हुए जो-जो आनन्द उन्होंने लाभ किया, उसके उद्गार हमलोग इस ग्रन्थमें सुनते ही रहे हैं। अब उस अनिर्वचनीय रसका भी कुछ आस्वादन कर सकें तो

कर लें जो अनिर्वचनीय होनेपर भी तुकारामजीकी दयासे उनके वचनोंसे टपक रहा है। सब साधनोंकी परिसमाप्ति किस प्रकार अखण्ड नामस्मरणमें जाकर हुई यह हमलोग पहले देख चुके हैं। नाम और नामी, गुणी और निर्गुण, शिव और जीव, इनकी एक-रूपताके आनन्दमें निमग्न तुकाराम 'प्रेमसे नाचते हैं, गाते हैं, गाते-गाते उसीमें मिल जाते हैं।'

२ आत्मतृप्तिकी डकारें

वहाँ साधन, सम्प्रदाय, भगवान् और भक्त; वर्णधर्म, पाप-पुण्य, धर्माधर्म सब एकमें मिल जाते हैं। इसीके लिये 'सारा अट्टहास था!' सब प्रयत्न सफल हुए। विश्रान्ति मिली। 'तृष्णाकी दौड़ समाप्त हुई।'

'लज्जा, भय, चिन्ता कुछ भी न रहा! सारे सुख आकर पैरोंपर लोटपोट करने लगे।'

* * *

'भक्तिप्रेममाधुरीसे हृदय भर गया, उससे चित्तको आनन्द-ही-आनन्द मिलने लगा। श्रीविट्ठलने अज्ञानका पटल पोंछ डाला, उससे जगत् ही ब्रह्मानन्दसे भर गया।'

* * *

'संसारकी स्मृति विस्मृति होकर पीछे ही रह गयी। चित्त लग गया श्रीरङ्गकी ओर। उस माधुरीका जितना पान करो उसकी प्यास उतनी ही बनी रहती है। उस प्रेम-मिलनमें जितना मिलो, उस मिलनकी रुचि उतनी ही बढ़ती है, पाण्डुरङ्गमें वह कभी

अघाती नहीं, जी कभी ऊबता नहीं। इन्द्रियोंकी लालसा तृप्त हो जाती है, पर चिन्तन सदा बना ही रहता है। तुका कहता है, पेट भर जाता है पर उसकी भूख बनी रहती है। यह सुख ऐसा है कि इसकी कोई उपमा नहीं, कल्पनाकी यहाँतक पहुँच ही नहीं। वह सुन्दर, मधुर, श्रीमुख प्रत्यक्ष सुषमामाधुरी ही है। उसे देखनेके साथ शोक-मोह-दुःख नष्ट हो जाते हैं।'

* * *

'सगुण-निर्गुण एकरस है, वह चिदानन्द है, उसीमें चित्त डूबा रहता है। मन अपनी सारी वृत्तियोंके साथ उसीमें डूब जाता है, देहमें देहभावकी सुध नहीं रहती।'

श्रीरङ्गकी ओर चित्त लगा, उनके चिन्तनका सुख ऐसा है कि उससे कभी जी नहीं ऊबता, उससे कभी तृप्ति नहीं होती, औरकी इच्छा बनी ही रहती है। अब कोई संसार-चिन्ता नहीं रही, कलिकालका भय भाग गया, मोह-दुःख-शोक सब हवा हो गये, अब तो केवल एक श्रीहरि ही हैं, अन्दर भी वही हैं, बाहर भी वही हैं। ('तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः' ईशावास्य उपनिषद्में इस आनन्दका वर्णन किया गया है।)

तुकारामजीके 'बिरहिन' के २५ अभङ्ग हैं। अध्यात्मका रंग शृङ्गारकी भाषामें कोई देखना चाहे तो इन अभङ्गोंको अवश्य देखे। इस प्रपञ्चरूप पतिको छोड़ दिया, उससे मेरी वासना तृप्त न हो पायी; इसलिये मैंने 'परपुरुष' से सहवास किया। यह भेद लोगोंपर प्रकट हो गया, इससे लोग मुझे सताने लगे, मैं तो परपुरुषमें ही रत हो गयी, उसीमें रँग गयी और अब सबसे यह

कहे देती हूँ कि इस व्यभिचारको मैं त्रिकालमें भी न छोड़ूँगी—इस रंगमें तुकाराम स्त्रीत्व स्वीकारकर कुछ वाग्विलास कर गये हैं। ब्रह्मका स्वरूप 'न स्त्री न षण्ढो न पुमान् न जन्तुः' जैसा है और उन्हींसे तुकारामजीका यह सख्य और तादात्म्य है। इसलिये तुकारामजीने यह मनोविनोद किया है। इन अभङ्गोंमें स्वानुभवका प्रसाद भरा हुआ है।

'लोग मुझे छिनार कहकर त्रिरादरीके बाहर भले ही निकाल दें, पर यह बनवारी तो मुझे एक क्षण भी अपनेसे अलग नहीं करता। लोक-लाज तो उतारकर मैंने खूँटीपर टाँग दी है, उससे उदास होकर बैठी हूँ, मुझे अब अपने जीका ही कोई डर नहीं रहा और न किसीसे कोई आस लगाये बैठी हूँ। मैं तो उसीको रात-दिन पास बैठाये रखना चाहती हूँ, उसके बिना एक क्षण भी मुझसे नहीं रहा जाता। लोग अब मेरा नाम छोड़ दें, समझ लें कि मैं मर गयी; तुकिया अब अनन्तके पास पड़ी रहती है। इसीमें उसे सुख मिलता है। यही उसका नेम है। गोविन्दके पास बैठ गयी, अब मैं पीछे फिरनेवाली नहीं। श्यामसलोने परब्रह्मको मैंने वर लिया. अब उनकी पटरानी होकर बैठी हूँ। अब कुछ देखना, सुनना-सुनाना नहीं चाहती, चित्तमें अकेले चितचोर आकर बैठ गये हैं। बलीको पाकर हम बलवती बन बैठी हैं, सारे संसारपर अपना अधिकार जमावेंगी। पलभर पीड़ा सह ली, अब अपुरन्त निजानन्द जोड़ लिया है। अब हँसेंगी, रूठेंगी और अपुरन्त अन्तर्मधुरिमाको बढ़ावेंगी। सेवा-सुखसे विनोद-वचन कहती हैं कि हम और कोई नहीं, केवल एक नारायण हैं। तुका

कहता है कि अब हम द्वन्द्वके ऊपर उठ आयी हैं, स्वच्छन्द ग्वालिनोंके साथ चल रही हैं।'

'अखिल भूतोंका सन्तर्पण किया'; सारी भूमि दान कर दी; दिन और रात एक पर्वकाल बन गये; जप, तप, तीर्थ, योग, याग सब कर्म यथासांग हो चुके; सब फल अनन्तके समर्पण कर दिये; 'तुका कहता है, अब अबोल बोल बोलता हूँ, तन-मन-वचनमें तो अब मैं नहीं रह गया।'

'भगवान् सामने आ गये'—'शुभ-अशुभकी सारी थकावट दूर हो गयी।' 'उन्होंने केवल क्रीडा-कौतुकके लिये जीव-शिवकी गुड़ियाँ बनायी हैं, वहाँ इन लोकोंका कहाँ पता है? यह सारा आभास अनित्य है।' अर्थात् शुभाशुभ कल्पनाएँ विलीन हो गयीं। जीव और शिव, भगवान् और भक्त एक ही हैं, उनमें भेद नहीं, भेद तो केवल एक कौतुक था! सात लोक और चौदह भुवन आभासमात्र रह गये! एक हरिको छोड़ और कुछ भी नहीं है, वर्णधर्म उसका खेल है। 'एककी समूची बुनावट है, उसमें भिन्न और अभिन्न क्या? वेद पुरुष नारायणने यही निर्णय सुनाया है।'

'तुकाको प्रसादरसका सौरस प्राप्त हुआ, चरणोंके समीप निवास मिला, इतना निकट कि कुछ भेद ही न रह गया।'

अब मैं सुख-स्वरूप हूँ। दुःखान्तकारी यह सुख-समुद्र कहाँ-से कैसे उमड़ आया? 'भेदकी भावना जड़से जाती रही'—

'तेरा मेरा कैसा है, जैसे सागरमें तरङ्ग। दोनोंमें हैं एक ही विट्ठल श्रीपण्ढरिनाथ। तन्तुपट जैसा एक है, विश्वमें वैसा ही

तुका व्यापक है । लवण जलमें मिला दो तो भेद क्या रह जाता है ? वैसा ही तेरे भीतर समरस होकर मैं समा गया हूँ । आग और कपूर मिलते हैं तो क्या काजल अलग रह जाता है ? तुका कहता है, वैसे ही मेरी-तेरी ज्योति एक है । बीजको भूँजकर लाई की, अब जनन-मरण कहाँ ? आकारको अब ठौर कहाँ, देह ही जो भगवान् बन गयी ! चीनीसे फिर ईख नहीं उपजता, तब मेरा गर्भवास कैसा ? तुका कहता है, यह सारा योग है, घट-घटमें पाण्डुरङ्ग हैं ।'

बीज भूँजकर जब लाई बना ली तब वह बोनेके काम नहीं आ सकती, उसी प्रकार तुकाराम कहते हैं कि हमारा कर्म ज्ञानाग्निसे दग्ध हो चुका है इसलिये हमारा जन्म-मरण अब नहीं हो सकता । ईखसे चीनी बनती है पर चीनी होकर ईखपनेको वह नहीं लौट सकती, उसी प्रकार देहका आश्रय करके हम ब्रह्मस्थितिमें आ गये, अब यह ब्रह्मस्थिति लौटकर देह नहीं बन सकती । घट-घटमें भगवान् हैं और हम भी तद्रूप हैं । हमारी देहतक भगवान् बन गयी है, अब नाशवान् शरीरसे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं रहा ।

'देहभाव प्रेतभाव हो गया'—सब देहधर्म लय हो गये । काम-क्रोधादि अनाश्रित होकर फूट-फूटकर रो रहे हैं और यमराज आहें भर रहे हैं ! शरीर वैराग्यकी चितापर ज्ञानाग्निसे जल रहा है । देहघटको भगवान्‌के चारों ओर घुमाकर उनके चरणों-के समीप फोड़ डाला और महावाक्य-ध्वनि करके बम-बमका घोष किया । कुल और नामरूपको तिलाञ्जलि दी ! तुकाराम कहते हैं,

यह शरीर जिनका था उन्हींको (पञ्चमहाभूतोंको) सौंपकर मैं निश्चिन्त हो गया ।

'अपने हाथों अपनी देहमें आग लगा दी'—पाञ्चभौतिक देहको ब्रह्मबोधकी आगमें जला डाला । ज्ञानाग्निसे दहकती हुई चितापर अमृतसञ्जीवनी छिड़ककर भूमिको शान्त किया, घर कोड़ डाला, उसी क्षण सब कर्म समाप्त हो गये ! अब केवल श्रीहरिके नामसे ही नाता रह गया है । 'तुका कहता है, अब आनन्द-ही-आनन्द है, सर्वत्र गोविन्द हैं, जिधर देखो उधर गोविन्द ही हैं ।'

'पिण्डदान इसी पिण्डको देकर कर दिया'—इस देहपिण्डको ही दान कर दिया और पिण्डकी मूलत्रयी और त्रिगुणकी तिलाञ्जलि दी । 'सर्वं विष्णुमयं जगत्' का रहस्य खुल जानेसे सम्पूर्ण सव्यापसव्य कर्म समाप्त हो गया । 'तुका कहता है, सबका ऋण उतार दिया, अब एक बार सबको अन्तिम नमस्कार करता हूँ ।'

'अपनी मृत्यु अपनी आँखों देख ली । उस आनन्दका क्या कहना है ? तीनों भुवन आनन्दसे भर गये; सर्वात्मभावसे उस आनन्दको लूटा । जनन-मरणके अशौचसे, अपने आपेके सङ्कोचसे मैं निवृत्त हो गया ।'

इस प्रकार तुका नारायणस्वरूप हुए । सदेह वैकुण्ठ जानेका निश्चय होनेसे, हो सकता है उन्हें यह खयाल पड़ा हो कि मेरे चले जानेके पीछे मेरा क्रिया-कर्म कोई न कर पायेगा, इसलिये जीते जी ही उन्होंने अपना सारा क्रिया-कर्म स्वयं ही कर डाला और सम्पूर्ण कर्मबन्धसे मुक्त हो लिये । विश्वको कँपानेवाले कलिकालको

भी उन्होंने मात किया ! 'विद्ययाऽमृतमश्नुते,' 'मृत्योः समृत्यु-मामोति' इत्यादि उपनिषद्वचनोंके अनुसार तुकोबाराय मृत्युको मारकर स्वयं जीवित रहे ।

'निरञ्जनमें बाँधा हमने अपना घर,'—दृश्य विश्वका, मायाका (अञ्जन) जहाँ कोई स्पर्शतक नहीं, उस निरञ्जनमें हमने अखण्ड निवास किया है । अहङ्कारकी छूत छूट गयी और अब शुद्ध-बुद्ध-निराभास परमात्मरसमें समरस होकर रहते हैं ।

'पाण्डुरङ्गने ही करी कृपा पूर्ण'—पाण्डुरङ्गका ही यह कृपा-प्रसाद है । 'मेरी विठामाई मैयाने मुझे निजरूपके पालनेमें पौढ़ा दिया है और वह अपने बच्चेके लिये अनाहत ध्वनिसे गान गा रही है ।'

* * *

रक्त श्वेत कृष्ण पीत प्रभा भिन्न ।
चिन्मय अंजन अँखियन आँजा ॥१॥
तेही अंजन कारणे दिव्य दृष्टि पायी ।
कल्पना विसारी द्वैताद्वैत ॥ टेक ॥
देशकालवस्तु भेद सब नाशा ।
आत्मा अविनाशा विश्वाकार ॥२॥
कहाँ था प्रपंच यह है परब्रह्म ।
अहं सोऽहं ब्रह्म जाना जाना ॥३॥
तत्त्वमसि विद्या ब्रह्मानंद सांग ।
सोहि तो निजांग तुका भये ॥४॥

रक्त (रज), श्वेत (सत्त्व), कृष्ण (तम) और पीत—इन गुण-प्रकाशसे परे जो चिन्मय अञ्जन है वह श्रीगुरुने मेरे नेत्रोंमें लगाया, उससे मेरी दृष्टि दिव्य हो गयी, द्वैत और अद्वैतकी भेद-कल्पना जाती रही और निर्विकल्प ब्रह्मस्थिति प्राप्त हुई। देशगत, वस्तुगत, कालगत भेद सब नष्ट हो गये, एक अविनाशी विश्वाकार आत्मा प्रत्यक्ष हुआ। यह समझमें आ गया कि प्रपञ्च तो कहीं था ही नहीं, केवल एक परब्रह्म ही है। जीव-शिव एक हो गये। तुका सशरीर ब्रह्म हो गये !

* * *

उछरत सिंधु सरित हि मिलत।
आपही खेलत आप ही सों ॥१॥
मध्य परी सारी उपाधि घनेरी।
मेरे तेरे हरी बीच खड़ी ॥टेक॥
घट मठ आये आकासके जाये।
गिरा जो गिराये उत ही तें ॥२॥
तुका कहे बीजै बीज दिखराये।
फूल पात आये अकारथ ॥३॥

समुद्र भाफ बनकर ऊपर जाता और मेघरूपसे वृष्टि करके नदीमें आकर मिलता है और फिर नदीप्रवाहके साथ समुद्रमें जा मिलता है; इस प्रकार समुद्र आप ही अपनेसे खेलता है, ऐसा ही सम्बन्ध हे भगवन् ! हमारे-आपके बीच है। बीचमें जो नाम-रूपादि उपाधि है वह व्यर्थ है। मुण्डकोपनिषद्में है—

'यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे-
ऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय।'

यही दृष्टान्त इस अभङ्गमें स्पष्ट हुआ है । जहाँसे श्रुति बोली वहींसे तुकारामकी गिरा गिरी है, इससे उनकी वाणीको श्रुतिमत्त्व प्राप्त हुआ है ।

* * *

क्षणिक संसार-सुखको तिलाञ्जलि देकर तुकारामजीने जो अखण्ड अक्षय परमात्मसुख भोग किया उसका आस्वादन वे ही कर सकते हैं जो उसी भूमिकापर हों। यहाँ केवल दिग्दर्शनमात्र करनेका प्रयास किया है, इसमें ज्ञान और उपासना एक हो गयी है । यह केवल द्वैत नहीं है, केवल अद्वैत भी नहीं है। यह अद्वैतभक्ति, मुक्ति-से परेकी भक्ति, अभेदभक्ति है । यह अभेदभक्ति ही भागवत-धर्मका रहस्य है, इसका पहले विवेचन किया जा चुका है । उसकी प्रतीति उपस्थित प्रसङ्गसे पाठकोंको हो सकेगी । अखिल आकारको कालने कवलित किया है, पर नामको तुकारामने अविनाशी कहा है । इससे भी यह स्पष्ट है कि ज्ञानके पश्चात् प्रेमाभक्तिका आनन्द बढ़ता ही जाता है । 'वही भक्ति वही ज्ञान । एक विट्ठल ही जान ॥' यह ज्ञानोत्तर भक्तिका मर्म है । सगुण-निर्गुणरूप जो हरि हैं उन 'मुझ एक (श्रीहरि) के विना उसके लिये यह सारा जगत् और वह स्वयं भी कुछ नहीं है ।' ऐसे भक्त-की सहज स्थिति ही ज्ञानभक्ति है । उसे ज्ञानी कहिये, भक्त कहिये, कुछ भी कहिये, सब सुहाता है । उसके अध्यात्मरंगमें भक्तिका रस होता है और भक्तिके रंगमें अध्यात्मरस होता है । 'ॐ तत्सदिति सूत्रका सार । कृपाके सागर पाण्डुरङ्ग ॥' इस प्रकार श्रीहरिके रास-रंगमें लवलीन हो गये और 'अखिल अन्त बहिर

वही हो रहे' —हरिरूप हो गये। देहकी सुध तो जाती ही रही थी। अब उनके महाप्रस्थानका समय उपस्थित हुआ। श्रोताओंका सौभाग्य सिमट चला। तुकारामजीका अवतारकार्य समाप्त हुआ। संवत् १७०६ (शाके १५७१) का फाल्गुन मास आया। तुकारामजीकी वैकुण्ठ-स्थिति अचल हो रही। द्वादशीके दिन जिजामाईको पूर्ण बोध किया। कृष्णपक्ष (अर्थात् पूर्णिमान्त मास-के हिसाबसे चैत कृष्णपक्ष) की प्रतिपदाकी रात्रिमें गोपालपुरा नामक स्थानमें नान्दुरगीके वृक्षके नीचे कीर्तन करनेके लिये तुकाराम खड़े हुए। कीर्त्तन आरम्भ हुआ।

२ प्रयाण

निर्याणके अभङ्ग प्रसिद्ध हैं। तुकारामजीकी देह ज्ञानभक्ति-योगसे ब्रह्मरूप हो चुकी थी। उन्होंने उस दिन नाम-सङ्कीर्तन-भक्तिकी अमृत-वर्षा की। प्रेमामृत पानकर सन्त-सज्जनोंके हृदय आनन्दसे भर गये। नाम-भक्तिका उत्कर्ष दिखानेके लिये तुकाराम-जीका अवतार हुआ था।

ढूँढ़त ही न बने। तासों चरण चित लीने॥ १॥
ऐसी करो दयानिधि। देखें जन ना कदी॥ २॥

'घोटें सब लार जेते ब्रह्मज्ञानी' यह अभङ्ग चला। तुकाराम कहने लगे, जो-जो ब्रह्मज्ञानी मुक्त, तीर्थयात्री, यज्ञ, दान, तप, कर्म-कर्ता हैं उन सबके मुँहमें नाम-सङ्कीर्तन-रसकी मिठास उत्पन्न करूँगा, वे तब लार घोटा करें। ज्ञानसहित सब साधनोंको कीर्त्तन-भक्तिके आनन्दके सामने झिपा दूँगा। मैं जब चला

वैकुण्ठप्रयाणके स्थानमें नांदुरगीका वृक्ष

पृष्ठ ६५४

जाऊँगा तब लोग मेरे धन्यवाद गायेंगे और श्रोता अपने बालबच्चों-से कहेंगे कि 'बड़े भाग्य हमारे जो तुका दिखाने !'

भगवन्नामकी महिमा गाते-गाते, तुकोबाराय जिस वैकुण्ठसे मृत्युलोकमें आये थे वह वैकुण्ठ, वह श्रीमहाविष्णु, वे सनकादि सन्त, वह सुरऋषि नारद, वह वाहनेश्वर गरुड़, वह आदिमाया श्रीमहालक्ष्मी, वे समग्र वैकुण्ठवासी भक्तजन सब नेत्रोंमें समा गये और उन्हींमें वह भी तन्मय हो गये । जागतेमें जिसका ध्यान लगा रहता है, पलक लगते ही वह सामने आ जाता है, वैसे ही सारा जीवन जिस ध्यानमें बीतता है वही मृत्युसमयमें हृदयमें समा जाता है। तुकारामजीके नेत्र जो कुछ देखते थे, कान जो कुछ सुनते थे, मन जो कुछ मनाता था, वाणी जो कुछ बोलती थी, चित्त जो कुछ चिन्तन करता था, अन्दर-बाहर जो कुछ भाव-भराव था वह सब विट्ठलमय था; इस कारण प्रयाणकालमें श्रीविट्ठलके सिवा उनके लिये और कोई गति ही नहीं थी ! विष्णुसहस्रनाममें 'वैकुण्ठः पुरुषः प्राणः' वैकुण्ठको महाविष्णुके नामोंमें गिनाया है। उनका लोक भी वैकुण्ठ ही है। सब परम विष्णुभक्त वैकुण्ठमें ही रहते हैं। वैकुण्ठसे जगत्-कल्याणके लिये नीचे मानवलोकमें आते हैं और धर्मकार्य करके पुनः निज धामको चले जाते हैं। सम्पूर्ण विश्व अव्यक्तसे व्यक्तिमापन्न होता है और फिर अव्यक्तमें ही जाकर लीन होता है। जो जहाँसे आता है, वहींको लौट जाता है। तुका वैकुण्ठसे आये, जीवनभर वैकुण्ठकी ओर ही ध्यान लगाये रहे और प्रयाण भी वैकुण्ठको ही कर गये ।

'हे सनकादि सन्त ! आप बड़े कृपावन्त हो। इतना उप-

कार हो कि भगवान्‌से मेरा नमस्कार कहो और करुणा उपजाकर वैकुण्ठके राणासे यह विनती करो कि तुका कहता है कि अब मेरी सुधि लो और जल्द सवारी भेज दो।'

यह कहकर तुकारामजीने गरुड़जीसे प्रार्थना की कि 'भगवान्‌को शीघ्र ले आओ।' शेषनागके सामने भी गिड़गिड़ाये कि 'जाओ हृषीकेशको जगा दो।' 'मेरा चित्त उन्हींके आनेकी ओर लगा है, माइके जानेकी बाट जोह रहा हूँ।' 'अब माँ-बाप स्वयं ही मुझे लिवा ले जायँगे।' इसके पश्चात् तुकारामजीके अंगपर शुभ चिह्न उदय होने लगे। मन वैकुण्ठ गमन करनेको उत्कण्ठित हो गया, वृत्ति वैकुण्ठकी ओर चली, देहभाव जाता रहा। प्रपञ्चकी हवा, मृत्युलोकके सङ्गकी दूषित वायु उनके लिये असह्य हो उठी। सनकादि सन्त वैकुण्ठमें भगवद्दर्शनके नित्य आनन्दमें निमग्न रहते, गरुड़-से एकनिष्ठ भक्त जहाँ परिचर्या करनेमें सदा तत्पर रहते, साक्षात् आदिमाया लक्ष्मी जहाँ अपने कोमल करोंसे भगवान्‌के कोमलतर चरणोंको दबाती हुई अखण्ड परमानन्दमें निवास करती हैं उस शुद्ध सत्त्व पावन दिव्य वैकुण्ठधामको जानेके लिये तुकारामजीका मन अत्यन्त उत्कण्ठासे फड़फड़ा रहा था। श्रीमहाविष्णु तब 'तुकाको अकेला देख' वैकुण्ठसे आ गये। भगवान्‌को और किसीने भी नहीं देख पाया!

'श्रीहरि आ पहुँचे। उनके हाथोंमें शंख-चक्र सुशोभित थे। गरुड़जी फड़फड़ाते हुए बड़े वेगसे दौड़े आये, उनके फड़ात्कारसे 'नाभी-नाभी' ध्वनि निकल रही थी। भगवान्‌के मुकुट-कुण्डलोंकी दीप्तिके सामने गभस्तिमान् अस्त हो गये। मेघ-श्याम वर्ण, विशाल नेत्र,

सुन्दर मधुर चतुर्भुजमूर्ति प्रकाशित हुई । गलेमें वैजयन्तीमाल लटक रही थी, पीताम्बर ऐसा दमक रहा था जैसे दसों दिशाएँ जगमगा उठी हों । तुका सन्तुष्ट हुआ जो घर ही वैकुण्ठपीठ चला आया ।'

यह कहते-कहते तुकाराम अन्तर्धान हो गये । उनका शरीर फिर किसीने नहीं देखा ! वह अदृश्य होकर अदृश्यमें मिल गये, सशरीर वैकुण्ठमें मिल गये ।

तुकाराम महाराजके पुत्र नारायण बोवाने एक लेखमें लिख रखा है कि 'तुकोबाराय कीर्तन करते-करते अदृश्य हो गये ।' हाथ आया हुआ चिद्रत्न खो गया, यह कहकर सब शिष्य फूट-फूटकर रोने लगे । वह चैत्र कृष्ण (अमान्त मास फाल्गुन कृष्ण) द्वितीयाका दिन था जिस दिन तुकाराम महाराज अदृश्य हुए । पञ्चमीके दिन उनका करताल, तम्बूरा और कम्बल मिला । पाँच दिन भक्तोंने कीर्तन-भजन-महोत्सव किया । तुका सशरीर वैकुण्ठ गये, इसलिये उनका क्रियाकर्म करनेका कुछ प्रयोजन नहीं रहा । यही शास्त्रीय व्यवस्था सप्तमीके दिन रामेश्वर भट्टने दी और इसे सबने शिरोधार्य किया । तबसे तुकाराम महाराजका प्रयाण-महोत्सव देहूमें प्रतिवर्ष उसी मासकी कृष्ण २ से ५ तक हुआ करता है ।

तुकाराम महाराज चले गये तब उनके भक्तोंके शोकका कोई पारावार न रहा । उस प्रसंगपर कान्हजीने सैंतीस अभंग रचे जिनसे यह कल्पना करते बनती है कि दुःखसे उनका हृदय कितना विदीर्ण हो गया था—

'दुःखसे हृदय फटा जाता है, कण्ठ रूँध गया है। हाय! हमारे सखा! ऐसा क्या अपराध हमने किया कि जो तुम हमें ऐसे बीहड़ वनमें छोड़कर चले गये? ऐसे करुण स्वरसे बच्चे तुम्हें पुकार-पुकार कर रो रहे हैं कि धरती फटा चाहती है! हम सब तुम्हारे अंग थे न? इन्हें क्या अपने संग तुम नहीं ले जा सकते थे? तुम जानते हो, तुम्हारे सिवा दोनों लोकोंमें हमारा कोई सखा नहीं है। 'कान्हा' कहता है, तुम्हारे विछोहसे हम सब अनाथ हो गये! आओ, प्यारे! एक बार आकर मिल तो जाओ।'

* * *

'भक्ति, मुक्ति, ब्रह्मज्ञान तेरा भाड़में जाय! पहले मेरा भाई मुझे जल्द ला दो। ऋद्धि, सिद्धि, मोक्ष—सब खूँटीपर टाँग दो। पहले मेरा भाई मुझे जल्द ला दो। मत ले जाओ अपने वैकुण्ठको। पहले मेरा भाई मुझे जल्द ला दो, तुकाभाई कहता है, पाण्डुरङ्ग! सावधान! कहीं ऐसा न हो कि तेरे सिर हत्या लगे!'

४ सदेह वैकुण्ठ-गमन

तुकाराम जो सदेह वैकुण्ठको चले गये इससे आधुनिक विद्वानोंके दिमाग चकरा गये हैं, चर्चाका चरखा चलाकर अपना-अपना विचार भी प्रकट कर रहे हैं। इन विचारोंके खण्डन-मण्डनके फेरमें पड़नेका कोई प्रयोजन नहीं है। पर बहुतोंने मुझसे यह प्रश्न किया है कि 'तुकाराम सशरीर वैकुण्ठको कैसे चले गये?' इस प्रश्नका उत्तर भला मैं क्या दे सकता हूँ? ऐसा तो है नहीं कि मैं वैकुण्ठसे चला आ रहा हूँ और यहाँ आकर अपने 'मुमुक्षु' पत्रके कार्यालयमें बैठकर यह चरित्र लिख रहा हूँ! मैं

वैकुण्ठका आँखों देखा हाल भला कैसे बता सकता हूँ ? प्रत्यक्ष-प्रमाण जहाँ न हो वहाँ शब्द-प्रमाण माना जाता है, सो इस प्रसंगमें भरपूर है और वही मैं पेश कर सकता हूँ ! और अधिक-से-अधिक, तुकारामजीके सदेह वैकुण्ठ-गमनके विषयमें, यही कह सकता हूँ कि इस अद्भुत घटनापर मेरा पूर्ण विश्वास है। यह जमाना आधिभौतिक शास्त्रोंके प्रचारका है अर्थात् इन चर्म-चक्षुओंसे जो दिखायी दे उसीको मानने, दृश्य सृष्टिसे परेकी अदृश्य शक्तियोंका अस्तित्व अस्वीकार करने, शब्द-प्रमाणको उड़ा देने और मनमानी बातोंको लिख मारनेका जमाना है। सामान्य विद्वानोंकी ऐसी ही प्रवृत्ति है। ऐसे समयमें जब श्रद्धाकी सुध ही नहीं है, धर्मकी धारणाशक्तिका सहारा ही छूटा-सा जा रहा है तब तुकारामजीके सदेह वैकुण्ठ-गमनकी-सी विलक्षण बातें बुद्धिको जँचा देना असम्भव ही है। और मेरी तो इतनी योग्यता भी नहीं कि इस विषयमें अपने अनुभवकी कोई बात कह सकूँ। भगवान्‌की दयासे थोड़ा-सा सत्संग-लाभ इस जीवनमें हो गया और सन्त-समागममें कई ऐसी बातें देखनेमें आयीं जिनतक आधिभौतिक विज्ञानकी पहुँच नहीं है। ऐसी बातें मैंने देखी हैं, बहुतोंने देखी होंगी। कृमि-कीटसे लेकर मनुष्य-देहतक कुछ किञ्चिज्ज्ञता हमलोगोंको प्राप्त हुई है पर ऐसा कोई ज्ञान हमें नहीं प्राप्त हुआ है, न कोई ऐसा प्रमाण हमारे पास है जिससे हम यह कह सकें कि मनुष्ययोनिसे परे देव-गन्धर्वादि लोक हैं ही नहीं। मन, बुद्धि, अन्तरात्माका कौन-सा निश्चित ज्ञान हमें मिल गया है ? देहके विषयमें भी हमारा ज्ञान कितना है ? स्वप्नसृष्टिकी

पहेली तो अभीतक समझी ही नहीं गयी ? जागृतिका किञ्चिज्ज्ञान, स्वप्नसृष्टिका कुछ नहीं-सा ज्ञान और उसके परे शून्य ज्ञान—यही तो हमारे ज्ञानकी पूँजी है। इतने-से ज्ञान यानी लगभग पूर्ण अज्ञानके बलपर हम अध्यात्मयोग तथा साधु-सन्तोंकी सब बातोंको झूठ कह देनेका दुस्साहस करें तो यह केवल 'मुखमस्तीति वक्तव्यम्' के सिवा और कुछ नहीं हो सकता ! यह केवल जबानतराशी है ! ऐसे अनधिकारी विद्वान् कहानेवालोंको अधिकारी अनुभवी पुरुष 'फाल्गुने बालका इव' समझकर ही चुप रहते हैं। यूरोप और अमेरिकामें मनोविज्ञान तथा अन्य गूढ़ विज्ञानोंकी खोज नवीन रीतिसे आजकल करनेका प्रयत्न हो रहा है। अध्यात्मज्ञानका यह केवल श्रीगणेश-सा कहा जा सकता है। भारतवर्ष देश अध्यात्म-ज्ञानकी खानि है। न जाने कितनी शताब्दियोंसे यहाँ इस गूढ़ ज्ञान-विज्ञानका अध्ययन-अध्यापन ही क्यों, अनुभव और आनन्द छाया हुआ है ! कितने प्रत्यक्षदर्शी महात्मा हो गये हैं, उसकी कोई गणना नहीं ! तुकारामजी इसी देहमें, इसी देहके साथ, कैसे वैकुण्ठको प्राप्त हुए; वैकुण्ठ क्या है और कहाँ है; वहाँ कोई कैसे पहुँचता है, इत्यादि बातोंका ज्ञान वैसे ही स्वानुभवसम्पन्न पुरुष बता सकते हैं जिनकी तुकारामजीकी-सी पहुँच हो। गणितकी पहेलियाँ गणितज्ञ ही समझ सकता है, मोट ढोनेवाला बेचारा उन्हें क्या समझे ? वह यदि मोट ढोनेको ही गणितका सम्पूर्ण ज्ञान मान ले और गणितशास्त्रमें अपनी टाँग अड़ावे तो उसे हम जो कुछ कह सकते हैं वही उन विद्वानोंको भी कहा जायगा जो आधिभौतिक व्यापारकी कुछ बाह्य जीवनोपयोगी व्यवहारकी

बातोंका ज्ञान ढोते फिरते हैं । पर भीतरी अध्यात्मका जिन्हें कोई पता नहीं ! तुकारामजीने भक्तियोगका पर पार देखा, उत्कट भक्तियोगसे खिंचकर 'अष्ट महासिद्धियाँ उनके द्वारपर आकर हाथ जोड़े खड़ी रहती थीं ।' 'पिण्डमें पिण्डका पिण्डा' पारकर अर्थात् शरीरका पार्थिव अंश आपमें, आपका तेजमें, तेजका वायुमें, वायुका आकाशमें, इस प्रकार पाञ्चभौतिक देहका लय करके वह वैकुण्ठस्वरूप हुए । कई ज्ञाताओंका यही कथन है । गुलाबराव महाराज कहा करते थे कि देहके साथ वैकुण्ठ जाया जा सकता है । शब्द-प्रमाणको देखते हुए रामेश्वर भट्टका वचन है और अन्य अनेक सन्तों और कवियोंके वचन हैं, सबका यही अभिप्राय है कि तुकाराम सदेह वैकुण्ठ गये ।

रामेश्वर भट्ट कहते हैं—'पहले जो बड़े-बड़े कवीश्वर हुए उन सबसे पूछा कि आपके कलेवर कौन ले गया ? सबसे पूछकर वह विमानमें बैठ चले गये ।' निलोबारायने 'मानवदेहको लिये निजधाम चले' इस आशयकी आरतीमें कहा है कि 'श्रीतुकारामके योगकी यही सिद्धि थी कि वह कायासहित मुक्त हुए।' मयूर कवि कहते हैं कि 'श्रीराम-जैसे तुकाराम सशरीर वैकुण्ठधाम सिधारे' कचेश्वरकी उक्ति है कि 'श्रीतुकारामने सन्तोंमें जो बड़ी कीर्ति पायी वह यही है कि उन्होंने इस देहको भी सायुज्य-गति दी ।' मध्वनाथ कहते हैं, 'तुकारामजी वैकुण्ठके स्वामी हुए ।' भक्त-मञ्जरिमालाकार भी यही कहते हैं कि 'तुकारामने इस जड़ देह-को विमानपर बैठाया ।' रङ्गनाथ स्वामीका एक बड़ा मजेदार पद इस प्रसङ्गपर है जिसका आशय इस प्रकार है—

'नरदेह लिये वणिक् जो वहाँ पहुँचा, वह वाणी सुनो। घटको फोड़कर जनकादिने मिट्टी अनुभव की; यह तुका वैसा नहीं है, इसने घटको रखकर चित्तमें उसे धारण कर लिया। औरोंने दूधको छोड़कर पानी पीया, यह तुका वैसा नहीं है, इसने दूधको रखकर उसका मक्खन चाखा। औरोंने 'कोऽहम्' का छिलका निकालकर 'सोऽहम्'का रस पान किया; यह तुका वैसा नहीं है, यह 'कोऽहम्' को विना छीले ही खाकर पचा गया। औरोंने इस मिश्रपुटमेंसे जड़को फेंक दिया; यह तुका वैसा नहीं है। इसने पारससे लोहेको भी सोना बना लिया। जड़बुद्धि 'अहम्' वाले इस देहको निजस्वरूपमें ढो ले गया, निज रंगमें इसका रंग देखनेका ही श्रीरङ्गने निश्चय किया। अस्तु, इस वाणीका अत्र सार मर्म कहता हूँ कि योगियोंका जन्म क्या है?—जगत्को दिखायी देना। और मरण क्या है?—जगत्से अदृश्य हो जाना। व्यक्ताव्यक्त होनेके ये अघटित धर्म योगियोंके अपने रंग हैं।'

मेरे विद्यालयीन गुरु और विख्यात संस्कृतज्ञ पण्डित गोपाल राव नन्दरगीकर शास्त्रीजीने सशरीर स्वर्ग सिधारनेके चार-पाँच दृष्टान्त वाल्मीकिरामायणसे ढूँढ़कर दिये हैं। उन्हें मैं पाठकोंके आगे रखता हूँ—

(१) कौशिककी बहिन सत्यवती इस शरीरके साथ ही स्वर्ग सिधारी।

सशरीरा गता स्वर्गं भर्तारमनुवर्तिनी।

(बाल० ३४। ८)

(२) बालकाण्ड ५७—६० में त्रिशंकुकी समग्र कथा पाठक देखें, त्रिशंकुके चित्तमें यह तीव्र लालसा लगी कि एक महायज्ञ करके सदेह स्वर्गको जायँ—गच्छेयं स्वशरीरेण देवतानां परां गतिम् ।' (५७ । १२) पर वसिष्ठने इसका विरोध किया और यह शाप दिया कि तुम चाण्डालत्वको प्राप्त होगे। त्रिशंकु चाण्डाल हुआ। तब वह विश्वामित्रकी शरणमें गया। विश्वामित्रने उसे यह वरदान दिया कि—

अनेन सह रूपेण सशरीरो गमिष्यसि ॥

(५९ । ४)

और यज्ञ रचनेके लिये ब्राह्मणोंको बुलाकर विश्वामित्रने उनसे कहा—

स्वेनानेन शरीरेण देवलोकजिगीषया ।
यथायं स्वशरीरेण देवलोकं गमिष्यति ॥
तथा प्रवर्त्यतां यज्ञो भवद्भिश्च मया सह ।

(६० । ३-४)

'हम-आप मिलकर ऐसा यज्ञ रचें जिससे यह राजा इसी शरीरसे स्वर्गको चला जाय।'

यज्ञ आरम्भ हुआ। देवताओंको हविर्भाग देनेका जब समय आया तब विश्वामित्रने उनका आवाहन किया पर देवता नहीं आये, तब विश्वामित्रका क्रोध भड़का और उन्होंने कहा—

स्वार्जितं किञ्चिदप्यस्ति मया हि तपसः फलम् ॥
राजंस्त्वं तेजसा तस्य सशरीरो दिवं व्रज ।
उक्तवाक्ये मुनौ तस्मिन् सशरीरो नरेश्वरः ॥
दिवं जगाम काकुत्स्थ मुनीनां पश्यतां तदा ।

(६० । १४–१६)

'मैंने जो कुछ तपका फल स्वयं अर्जन किया है, हे राजन् ! उसके तेजसे तुम सशरीर स्वर्गको जाओ । मुनिके इस वचनके प्रतापसे वह राजा सब मुनियोंके देखते हुए सशरीर दिव्यलोकको चला गया ।'

(३) अयोध्याकाण्ड सर्ग ११० में महर्षि वसिष्ठने श्रीरामचन्द्रजीसे रघुकुलके पूर्व पुरुषोंकी नामावली निवेदन की है । उसमें राजा त्रिशंकुके सम्बन्धमें यही कहा है कि 'स सत्यवचनाद्वीरः सशरीरो दिवं गतः ।' अर्थात् वह वीर पुरुष सत्य वचनके द्वारा सशरीर दिव्यलोकको प्राप्त हुआ ।

(४) वन-वन घूमते हुए एक बार एक वनमें आनेपर सुग्रीव श्रीरामचन्द्रजीसे उस वनका इतिहास कहते हुए बतलाते हैं—

अत्र सप्तजना नाम मुनयः शंसितव्रताः ।
सप्तैवासन्नधःशीर्षा नियतं जलशायिनः ॥
सप्तरात्रे कृताहारा वायुनाचलवासिनः ।
दिवं वर्षशतैर्याताः सप्तभिः सकलेवराः ॥

(किष्किन्धा० १३ । १८-१९)

(५) अदृश्यं सर्वमनुजैः सशरीरं महाबलम् ।
प्रगृह्य लक्ष्मणं शक्रस्त्रिदिवं संविवेश ह ॥

(उत्तर० १०६ । १७)

(६) स्वयं श्रीरामचन्द्र अपने शरीर तथा भ्राताओंसहित वैष्णवतेजमें प्रवेश कर गये—

विवेश वैष्णवं तेजः सशरीरः सहानुजः ॥

(उत्तर० ११० । १२)

महाभारत (स्वर्गारोहण पर्व अ० ३ । ४१-४२) में यह वर्णन है कि धर्मराज युधिष्ठिरने मानव-देह त्यागकर दिव्य वपु धारण किया और देवताओंके साथ दिव्य धामको गये—

गङ्गां देवनदीं पुण्यां पावनीमृषिसंस्तुताम् ।
अवगाह्य ततो राजा तनुं तत्याज मानुषीम् ॥
ततो दिव्य वपुर्भूत्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ।

तुकाराम महाराज सशरीर वैकुण्ठको गये और कीर्तन करते-करते वह अदृश्य हो गये, यह घटना अपूर्व तो है ही, पर इसी प्रकारकी गति और भी कुछ महात्माओंने पायी है । मुक्ताबाई इसी प्रकारसे देखते-देखते ही गुप्त हो गयीं । कबीरसाहबके विषयमें भी ऐसी ही बात कही जाती है । कबीरसाहबने १०१ वर्षकी आयुमें एक दिन अपने शिष्योंसे गुलाबके फूलोंकी सेज तैयार करनेको कहा । सेज तैयार हुई, कबीरसाहब उसपर एक दुशाला ओढ़कर लेट गये । कुछ समय बाद शिष्योंने दुशाला उठाकर देखा, कबीर-साहब तो नहीं हैं । वहींसे वह गुप्त हो गये । यह घटना अनेक हिन्दू और मुसलमान लेखकोंने आँखों देखी कहकर लिख रखी है । (अडयर बुलेटिन मार्च १९१६) सिख-सम्प्रदायके संस्थापक गुरु नानकका भी अन्त इसी प्रकार हुआ । वयस्के ७०वें वर्ष उनकी इहयात्रा समाप्त हुई । उनका अन्त्य-संस्कार हिन्दू-धर्मकी विधिसे किया जाय या इस्लामके अनुसार, यह झगड़ा उनके शिष्यों-में छिड़ गया । यही विवाद चल रहा था जब एक शिष्यने उनके मृत शरीरपरसे ज्यों चद्दर उठायी त्यों ही वह शरीर गायब हो गया, इससे दहन-दफनका झगड़ा भी मिटा । (एनीबेसण्टकृत 'दि

[illegible] । [illegible] [illegible] (रघुवंश सर्ग १५) [illegible] श्री-तुकाराम महाराजके 'सदेह वैकुण्ठ गमन करने और कीर्तन करते-करते अदृश्य हो जाने' की घटनाकी सत्यता प्रमाणित कर रहे हैं। फिर भी इस सत्कथा-प्रसङ्गपर जिनका विश्वास न जमता हो वे कृपा करके श्रीतुकाराम महाराजके अभंगोंका विश्वास और आदर के साथ शान्त चित्तसे अध्ययन करें और महाराजने भगवत्प्रसाद लाभ करनेका जो स्वानुभूत साधन-मार्ग उन्हीं अभंगोंमें बताया है-उसपर चलें। यही प्रार्थना करके—

'श्रीतुकाराम महाराजकी जय'

—के घोषमें उनके इस चरित्रग्रन्थको पूर्ण करते हैं और यह नव वाक्पुष्प श्रीपाण्डुरङ्ग भगवान्‌के चरणोंमें समर्पित कर पाठकोंसे विदा लेते हैं।

इति

"ॐतत्सत्श्रीकृष्णार्पणमस्तु"